कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबंध

हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण सन्त-काव्य : तुलनात्मक अध्ययन

— डॉ. कृष्णा रैणा



शारदा प्रकाशन
महरौली, नई दिल्ली-110030



शारदा प्रकाशन
महरौली, नई दिल्ली - ११००३०

— डॉ॰ कृष्णा रैणा

हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण सन्त-काव्य : तुलनात्मक अध्ययन

शारदा प्रकाशन
भूलभुलैयाँ रोड, महरौली, नई दिल्ली-११००३०
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : प्रथम संस्करण १६७७
५०.०० © डा० कृष्णा रैणा

सोहन प्रिंटिंग सर्विस द्वारा
शशि प्रिंटर्स, शाहदरा में मुद्रित

Hindi Aur Kashmiri Nirgun Sant Kavya (Comparative study)
by
Dr. Krishna Raina
Price Rs 50.00

विषयानुक्रम

शुभाशंसाएँ
प्रस्तावना

१. कश्मीरी-भाषा और भक्ति-साहित्य की रूपरेखा ६

कश्मीरी-भाषा की विशेषताएँ, कश्मीरी भाषा और लिपि, कश्मीरी भक्ति-साहित्य का आरम्भ और विकास, कश्मीरी सूफ़ी-काव्य, सगुण राम-भक्ति काव्य-धारा, कृष्ण-भक्ति काव्य-धारा, शिव-भक्ति काव्य-धारा, हिन्दी का भक्ति-साहित्य : सन्त काव्य, सूफी प्रेमाख्यान काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य।

२. सन्तों को प्रभावित करने वाले विभिन्न दार्शनिक मत ३८

अद्वैत दर्शन, विशिष्टाद्वैतवाद, शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों का वैषम्य, द्वैतवाद, अचिन्तय भेदाभेद, द्वैताद्वैत मत, शुद्धाद्वैत मत, कश्मीरी शैव मत, सूफी मत, कश्मीरी निर्गुण सन्त-काव्य।

कश्मीरी निर्गुण सन्त-काव्य ६६-१७८

३. १४वीं और १५वीं शताब्दी के कश्मीरी सन्त-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा ६६

ललद्यद : जीवन, काव्य, साधना, दार्शनिक विचारधारा।

नुंदर्योश (नन्द ऋषि) : जीवन, काव्य, दार्शनिक विचारधारा : सिद्धान्त पक्ष, साधना पक्ष। ८६

४. १६वीं और १७वीं शताब्दी के कश्मीरी सन्त कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा १०५

रोपभवनि (रूपभवानी) : जीवन, काव्य, विचारधारा : सिद्धान्त पक्ष, साधना पक्ष।

५. १८वीं और १९वीं शताब्दी के कश्मीरी सन्त-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा १२२

मिर्ज़काक : जीवन, काव्य, विचारधारा : सिद्धान्त पक्ष, साधना पक्ष।

संत परमानन्द : जीवन, रचनाएँ, दार्शनिक विचारधारा : सिद्धान्त पक्ष एवं साधना पक्ष १३५

शमसफकीर : जीवन, रचनाएँ, विचारधारा : सिद्धान्त पक्ष एवं साधना-पक्ष। १५०

कृष्णराज़दान : जीवन, रचनाएँ, दार्शनिक विचार — १६०
सिद्धान्त-पक्ष एवं साधना-पक्ष
संत लछकाक और संत रामानन्द : — १६६
लछकाक की दार्शनिक विचारधारा : सिद्धान्त एवं साधना-पक्ष, संत रामानन्द की दार्शनिक विचारधारा : सिद्धान्त एवं साधना-पक्ष

हिन्दी निर्गुण सन्त-काव्य — १७६-२८५

६. १४वीं और १५वीं शताब्दी के हिन्दी सन्त-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा — १७६

संत नामदेव : जीवन, रचनाएँ, दार्शनिक विचारधारा :
सिद्धान्त एवं साधना-पक्ष।
संत कबीर : जीवन, रचनाएँ, दार्शनिक विचार : — १६२
सिद्धान्त एवं साधना पक्ष, रहस्यवाद।
गुरु नानक : जीवन, रचनाएँ, दार्शनिक विचार : — २१४
सिद्धान्त एवं साधना-पक्ष।

७. १६वीं और १७वीं शताब्दी के हिन्दी संत-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा — २२८

संत दादूदयाल : जीवन, रचनाएँ, दार्शनिक विचारधारा :
सिद्धान्त एवं साधना-पक्ष।
संत रज्जबजी : जीवन, रचनाएँ, दार्शनिक विचार : — २४१
सिद्धान्त एवं साधना-पक्ष।
संत सुन्दरदास : जीवन, दार्शनिक विचारधारा। — २५४
संत मलूकदास : जीवन, दार्शनिक विचारधारा। — २६१
संत दूलनदास : जीवन, दार्शनिक विचारधारा। — २६५

८. १८वीं और १९वीं शताब्दी के हिन्दी सन्तकवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा — २७०

चरणदास जी : जीवन और विचारधारा।
संत पलटू साहब : जीवन और विचारधारा। — २७५

तुलनात्मक अध्ययन — २८६-३२५

९. हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-कवियों की दार्शनिक विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन

सिद्धान्त-पक्ष : तुलनात्मक अध्ययन — २८६
साधना-पक्ष : तुलनात्मक अध्ययन — ३०४
परिशिष्ट-१ (पत्र) — ३२७
परिशिष्ट-२ : संदर्भ ग्रंथ-सूची — ३२८

शुभाशंसाएँ

(१)

रक्षा-मंत्री,
भारत सरकार, नई दिल्ली-११००१

भारत की सन्त-परम्परा बहुत प्राचीन है। इसके आदिकाल का निर्णय करना कठिन नहीं है। समय-समय पर सन्तों ने विशेषकर निर्गुण सन्तों ने अपनी सरल-सहज वाणी-द्वारा गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वों का ज्ञान देने के साथ-साथ उपयोगी समाज सुधार करने के लिए भी जनता का मार्ग-दर्शन किया है, अनुप्राणित किया है। सन्तों को भौगोलिक या साम्प्रदायिक सीमायें बान्ध नहीं सकतीं। इनकी वाणी सार्वभौम है, मानव मात्र के लिए है। यातायात द्रुतगामी साधनों के अभाव के युग में अधिक से अधिक लोगों तक अपना संदेश पहुँचाने के लिए ही ये भ्रमण करते रहते थे। यही कारण है कि उनकी भाषा भी किसी प्रदेश या क्षेत्र से बन्धी हुई शुद्ध भाषा नहीं रही। सभी भाषाओं से उपयुक्त शब्द लिये गये। अतः इनकी भाषा को जनभाषा कहना ही अधिक उचित है।

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णिम काल माना जाता है। इस काल में अधिकांशतः भक्ति और सन्त-काव्य की रचना हुई है। भक्तिकाल के साहित्य में अधिकतर सगुण काव्य उपलब्ध है। निर्गुण सन्तों की वाणियाँ उनके देशाटन के कारण स्थान-स्थान पर बिखर गईं और उन सभी का संकलन एवं प्रकाशन करना सम्भव न हो सका। हाँ, मूल रूप में इनकी पाण्डुलिपियाँ अब भी यत्र-तत्र मिल जाती हैं। इस विषय के शोध-छात्र इनके संकलन-कार्य में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

सन्त-काव्य विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध है। भाषा वैभिन्य होते हुए भी उनकी मूल विचारधारा में शाश्वत सत्य के दर्शन होते हैं। सन्त काव्य चाहे उर्दू में हो या हिन्दी में, कश्मीरी में हो या बंगाली में, हर भाषा के काव्य की उपादेयता लगभग समान है। इनमें स्थूल रूप से जो मत-भिन्नता मिलती है उसी को लेकर शोध-छात्र इनका तुलनात्मक अध्ययन और दार्शनिक विवेचन करते हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत हो चुका है जो अब पुस्तक का रूप धारण करने जा रहा है। प्रस्तुत प्रबन्ध में डा० श्रीमती कृष्णा रैणा ने हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण-सन्त-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करके विभिन्न दार्शनिक विचारों का सुन्दर विवेचन किया है। उर्दू, कश्मीरी आदि विभिन्न भाषाओं की दुर्लभ पाण्डुलिपियों में उपलब्ध सन्त-काव्य को इस ग्रन्थ के माध्यम से साहित्य-प्रमियों के समक्ष प्रस्तुत करने

में इन्होंने वास्तव में ही बहुत बड़ा परिश्रम किया है। शोध-प्रबन्ध साहित्यिक, दार्शनिक और राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अभी तक अप्रकाशित सन्त-वाणी में से कुछ इसमें सम्मिलित हो जाने से इसकी उपादेयता और अधिक बढ़ गई है। उर्दू, कश्मीरी आदि अनेक भाषाओं में उपलब्ध काव्य हिन्दी ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित होने से भारतीय भाषाओं को परस्पर निकट आने का अवसर मिलता है। ऐसी पुस्तकों की इस दृष्टि से एक और उपयोगिता बढ़ जाती है। श्रीमती रैणा-द्वारा इस प्रकार का प्रयास वास्तव में सराहनीय है।

मुझे आशा है कि इस शोध-प्रबन्ध के पुस्तक का रूप धारण कर लेने पर हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण श्रीवृद्धि होगी और साहित्य-प्रेमी पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

लेखिका का प्रयास सफल हो।

(जगजीवन राम)

(२)

डा० कृष्णा रैणा का शोध-प्रबंध 'हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' एक ऐसी विषय-वस्तु पर प्रकाश डालता है जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। मध्यकालीन संत-काव्यधारा हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी बहती रही है। डा० रैणा ने इस शोध-प्रबंध को जिस पैनी दृष्टि से देखा और विश्लेषित किया है वह प्रशंसनीय है। देश की अन्य भाषाओं के संदर्भ में जब हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा जायगा तो यह पुस्तक बहुत उपयोगी होगी।

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, —(डा०) बच्चन सिंह

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

(३)

डा० कृष्णा रैणा ने हिन्दी और कश्मीरी सन्त-काव्य के तुलनात्मक विवेचन से एक अछूते विषय पर अनुसन्धान का काम किया है। कश्मीरी साहित्य का विश्लेषण अभी तक उपेक्षित रहा है और हिन्दी में तो यह नगण्य ही रहा है। इस दृष्टि से डा० रैणा का शोध-प्रबन्ध इस अभाव को पूरा करता है। आधुनिक युग में भारतीय भाषाओं का विकास तेजी से होने लगा है और यह न केवल देश के हित में है, जन-साधारण के हित में भी है। इस तरह का प्रयास न केवल अपनी आत्मा को पहचानने के लिए

आवश्यक है, देश की विविधता में एकता को पहचानने के लिए भी आवश्यक है। भारतीय संत-काव्य पर डा० रैणा की गहरी पकड़ है और इसकी साक्षी कश्मीरी महिला-कवि रूपभवानी के काव्य की पहचान-परख में मिलती है। इस तरह एक उपेक्षिता के काव्य को आलोकित करने में डा० रैणा का योगदान सराहनीय है। शोध-प्रबन्ध के अन्तिम चरण में हिन्दी और कश्मीरी भाषा के सन्त-कवियों के चिन्तन को उजागर करने में आलोचक ने पैनी दृष्टि का परिचय दिया है। इस तरह दोनों भाषाओं के संत-काव्य की वस्तुगत और शैलीगत विशेषताओं का विवेचन स्तरीय है।

चण्डीगढ़ —(डा०) इन्द्रनाथ मदान

(४)

डा० कृष्णा रैणा का शोध-प्रबंध 'हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, (१४वीं से १९वीं शताब्दी तक) हिन्दी शोध-साहित्य को एक अभूतपूर्व देन है। इसमें कई दुर्मिल हस्तलिखितों का उपयोग करके, कश्मीरी शैवदर्शन के 'त्रिक और स्वंद' वैशिष्टय को स्पष्ट करते हुए, विदुषी लेखिका ने भारतीय संत-साहित्य की भावात्मक एकता के सूत्र को स्पष्ट किया है। यह रचना न केवल परिश्रम पर मौलिक अनुसंधान का एक उत्तम नमूना है अपितु लल्लद्यद, नंदर्योश, रूपभवानी, मिर्ज़ा-काक, परमानन्द, कृष्णराज़दान आदि कश्मीरी संतों के विषय में उनके जीवन, दार्शनिक विचार और काव्य-कृतियों के बारे में, कई नये तथ्य इस ग्रन्थ में मिलते हैं। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक विवेचन में डा० कृष्णा ने कई नये आयाम जोड़े हैं। मैं इस विषय का एक अत्यल्पज्ञ विद्यार्थी हूँ, मुझे भी यह पुस्तक पढ़कर कई नई बातों का पता लगा। क्षेमेन्द्र और अभिनवगुप्त के कश्मीर ने एक ऐसे शिव-शक्ति संयोग को अपने निर्गुण काव्य के माध्यम से व्यक्त किया कि उसमें सूफी विचार-धारा आत्मसात् हो गई। कबीर, नामदेव, नानक ने जिस हिन्दू-मुस्लिम एकता की नींव रखी, जिसे नेहरू जी ने 'मिली-जुली संस्कृति' कहकर विशेष रूप से सराहा, कश्मीरी निर्गुण संतों ने उसकी मूलभूत दार्शनिक संश्लिष्ट नींव रखी थी। डा० कृष्णा रैणा का हमें आभार मानना चाहिए कि सारे भारत में मध्ययुगीन संत-साधना का जो अन्तःसूत्र योगमार्ग और भक्तिमार्ग, ज्ञान और वैराग्य के समन्वय तथा रूढ़िविरोध और बौद्ध-तंत्र-शाक्त-स्वतंत्र विचारों के रूप में व्यक्त हुआ, उसका इतना सुंदर और सटीक चित्रण और उद्घाटन उन्होंने इस में किया है। यह वस्तुतः भारत की सब भाषाओं और विदेश में भी इस विषय के शोध-कार्यकर्ताओं के लिए एक उत्तम पथ-निर्देशक, मानक ग्रन्थ के रूप में सदा याद किया जायेगा।

शिमला —(डा०) प्रभाकर माचवे

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है—हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (१४वीं शताब्दी से १९ वीं शताब्दी तक)

वास्तव में तुलनात्मक अध्ययन का उत्तरदायित्व आलोचना एवं अनुसंधान से भी अत्यधिक महवत्त्पूर्ण है क्योंकि उच्चतर ज्ञान की उपलब्धि तुलना पर ही आधारित होती है। संसार के विभिन्न देशवासियों में वर्ण, धर्म और जातिगत भेदभाव होने के उपरान्त भी उनकी अनुभूति और विचारों में समानता पाई जाती है। यही कारण है, विश्व-साहित्य में अभिव्यक्त चेतना और अनुभूति समान है। भाषा विचारों और भावों का परिधान है, अभिव्यक्ति का माध्यम है। अनुसंधान और तुलनात्मक अध्ययन में भी कुछ अधिक पार्थक्य दृष्टिगोचर नहीं होता। अनुसंधान की प्रक्रिया में तुलनात्मक विधान की भी सहायता ली जाती है और तुलनात्मक अध्ययन में भी गम्भीर अन्वेषण, परीक्षण और निष्कर्ष आदि साहित्यिक आलोचना तथा अनुसंधान की प्रक्रियाओं से लाभ उठाया जाता है।[1]

तुलनात्मक अध्ययन एक ही साहित्य के या विभिन्न साहित्यों के दो लेखकों या युगों की समानताओं तथा भिन्नताओं पर प्रकाश डालकर उनके कारणों का अन्वेषण करता है। तुलनात्मक अध्ययन मुख्य रूप से तीन प्रकार का माना जाता है :

१. एक ही साहित्य के अन्तर्गत तुलनात्मक अध्ययन।

२. एक साहित्य का अन्य साहित्यों पर प्रभाव।

३. दो या उससे अधिक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन।

प्रथम प्रकार में एक ही भाषा के दो कवियों या दो लेखकों की तुलना की जाती है जैसे डा० गोविन्द त्रिगुणायत का कबीर और जायसी के रहस्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन (यह शोध-प्रबन्ध है)। इस प्रकार के अध्ययन में दो प्रवृत्तियों या दो युगों की भी तुलना की जा सकती है।

द्वितीय प्रकार में एक साहित्य का दूसरे साहित्य पर प्रभाव दर्शाया जाता है।

---

१. भारतीय साहित्य (पत्रिका), वर्ष ८, अंक २, १९६२ अप्रैल, पृ० १२९।

इसमें डा० विश्वनाथ मिश्र का हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव, डा० सरनामसिंह का हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव तथा डा० ब्रह्मानन्द जी का हिन्दी भाषा और साहित्य का बंगला भाषा और साहित्य पर प्रभाव आदि शोध-प्रबन्ध आते हैं। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन में एक साहित्यिक व्यक्तित्व का अन्य साहित्यिक व्यक्तियों तथा एक साहित्यिक प्रवृत्ति का द्वितीय साहित्य की प्रवृत्ति पर प्रभाव सिद्ध किया जा सकता है।

तृतीय प्रकार में दो या उससे अधिक साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसमें भिन्न भाषा के दो कवियों, दो विशिष्ट कृतियों, दो वृत्तियों या युगों या दो भाषाओं में एक साहित्यक विधा की तुलना की जाती है। दो भाषाओं के दो कवियों की तुलना में डा० शंकर राजुल नयुडु का 'कम्बन और तुलसी' शोध-प्रबन्ध आता है, दो विशिष्ट कृतियों में डा० विद्यामिश्र का वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन आता है। दो वृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन में डा० प्रभाकर माचवे का हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत-काव्य, डा० के० भास्करन नायर का हिन्दी और मलयालम के भक्त-कवियों का तुलनात्मक अध्ययन आदि शोध-प्रबन्ध आते हैं। दो भाषाओं में एक साहित्यिक विधा की तुलना में डा० पाण्डुरंग राव का आन्ध्र-हिन्दी रूपक (हिन्दी और तेलगू का नाटक साहित्य—एक अध्ययन) और डा० दामोदर का हिन्दी और मलयालम के सामाजिक उपन्यास आदि शोध-प्रबन्ध आते हैं।

तुलनात्मक अध्ययन के तीन प्रकारों में अन्तिम अथवा तृतीय प्रकार विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी में तुलनात्मक अध्ययन का समग्र रूप प्रकट होता है। इसमें शोधार्थी को दो साहित्यों का समुचित अध्ययन एवं अनुशीलन करना पड़ता है। उसे उन साहित्यों के मूल स्वरों के साथ-साथ साहित्यिक भाषा, प्रांतों की संस्कृति, सभ्यता एवं वातावरण का सम्यक ज्ञान होना चाहिए अन्यथा तुलनात्मक अध्ययन गंभीर नहीं हो सकता। ऐसे तुलनात्मक अध्ययनों से विभिन्न साहित्यों में बिखरी हुई मानव-चेतना का स्पष्टीकरण हो जाता है।[1]

तुलनात्मक साहित्य का उद्देश्य और इसकी आवश्यकता—यद्यपि प्रत्येक भाषा की अपनी विशेषता है तथापि भाषाओं में भावों का समान अस्तित्व है। तुलनात्मक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य इसी भिन्न साहित्यों की भाषागत भिन्नताओं में साहित्यिक एकरूपता का निरूपण करना है। यह हमारे सीमित ज्ञान का विस्तार करता है। हम अपनी विशेष भाषा, प्रांत अथवा जाति के अतिरिक्त अन्य भाषा-भाषी प्रदेशों से भी अवगत होते हैं। तुलनात्मक अध्ययन विश्वमानव-एकता का उद्घाटन करता है। इसका उद्देश्य साहित्यिक प्रक्रियाओं की परीक्षा, तुलना, वर्गीकरण और तथ्यों का प्रकटीकरण करना है।

भारतवर्ष में विशेषकर इस प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि यहाँ

---

१. वही, पृ० १३५।

अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं जिनकी अपनी विशेषता है तथा अपना समृद्ध साहित्य है। अतः भारतीय साहित्य को समग्र रूप से जानने के लिए प्रादेशिक साहित्यों को जानना और उनसे अवगत होना अत्यावश्क है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार भारतीय संस्कृति की एकता के वे तत्त्व प्रकाश में आने चाहिएँ जो विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों के माध्यम से मुखर हुए हैं। ऐसे विषयो में सांस्कृतिक एकता और प्रादेशिक विशेषताओं का युगपत अध्ययन अपेक्षित होगा।[1]

उपर्युक्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-काव्य के तुलनात्मक अध्ययन को मैंने अपने शोध का विषय बनाया है। हिन्दी और कश्मीरी भाषा में भाषागत कोई साम्य नहीं क्योंकि कश्मीरी दरद परिवार की भाषा है। अतः भाषागत अध्ययन को छोड़कर मैंने संतों की दार्शनिक विचारधारा को ही अपना क्षेत्र चुना है।

हिन्दी में संत, अंग्रेजी में सेंट (Saint) और कश्मीरी में 'सन्थ' प्रायः एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं यद्यपि इनमें उच्चारण वैभिन्य है। हिन्दी भाषा में संत शब्द का प्रयोग साधारणतः किसी भी सदाचारी और पवित्रात्मा के लिए होता है। कभी-कभी यह साधु, विरक्त एवं महात्मा शब्दों के लिए भी प्रयुक्त होता है। हिन्दी का एकवचन संत शब्द संस्कृत शब्द 'सन्' का बहुवचन है।[2] अंग्रेजी का सेंट शब्द वस्तुतः लैटिन सेंशियो (Sancio) के आधार पर निर्मित सैंक्टस (Sanctus) शब्द से बना है। इसका अभिप्राय भी पवित्र करना है। यह ईसाई धर्म के कतिपय प्राचीन महात्माओं के लिए 'पवित्रात्मा' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

वैदिककाल में 'सत्' शब्द का प्रयोग ब्रह्म व परमात्मा के लिए हुआ है। ऋग्वेद में बताया गया है कि क्रान्तदर्शी विप्रलोग उस एक व अद्वितीय 'सत' का ही वर्णन अनेक प्रकार से किया करते थे।[3]

उपनिषद्-काल में सत् शब्द का प्रयोग ब्रह्म के लिए होता था। आरम्भ में एक अद्वितीय 'सत्' ही वर्तमान था।[4] तैत्तिरीय उपनिषद में भी सम्भवतः इसी आधार पर कहा गया है कि यदि पुरुष ब्रह्म असत है, तो वह स्वयं भी असत् हो जाता और यदि

---

१. अनुसंधान की प्रक्रिया, डा० सावित्री सिन्हा, डा० विजयेन्द्र स्नातक, १९६०, पृ० ७५-७६।

२. उत्तरी भारत की संत परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, २००८ वि०, पृ० ४।

३. सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बधुधाकल्पयन्ति ।।
—ऋग्वेद म० १०, अध्याय ११४, सूत्र ५।

४. 'सदैव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।'
—छान्दोग्य उपनिषद्, द्वितीय खण्ड १।

ऐसा जानता है कि ब्रह्म है तो ब्रह्मवेत्ता लोग उसे भी सत् समझा करते हैं।[१] भागवत महापुराण में इसे पवित्रात्मा के लिए प्रयुक्त किया गया है। सज्जन स्वयं सदैव पवित्र हैं ही, वह तीर्थों को भी पवित्र करते हैं।[२] श्रीमद्‌भगवद् गीता में 'सत्' शब्द के अन्य भी अर्थ बतलाये गये हैं। उसमें कहा गया है कि सत् शब्द ऊंतत्सत् वाक्य में ब्रह्म का निर्देश करता है।[3]

मराठी भाषा में 'संत' और 'भक्त' शब्द-प्रयोग किसी समय विशेष रूप से केवल उन भक्तों के लिए ही होने लगा था जो विट्ठल या वारकरी सम्प्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण भक्ति के आधार पर चलती थी। इन लोगों में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ व तुकाराम जैसे भक्तों का नाम आता है।[४] कर्णाटक में संतों को अनु-भावी कहते हैं। अनुभावी का अर्थ है, साक्षात्कारक, अनुभव किया हुआ।[५]

हिन्दी भाषा में संत शब्द का अर्थ निर्गुण साधकों के लिए रूढ़ हो गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने कबीर आदि निर्गुणियों को ही संत कहा है—सूरदास या तुलसीदास को नहीं। कश्मीरी भाषा में भी लल्लेश्वरी, नुंदर्योश आदि निर्गुण साधकों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता है। हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण साधकों ने स्वयं भी संत शब्द का प्रयोग किया है। कबीरदास ने संतों का लक्षण उनका निर्वैरी, निष्काम, प्रभु का प्रेमी और विषयों से विरक्त होना कहा है। संत का विशेष लक्षण विरक्ति है, वह सन्तोष से अपना जीवन-यापन करता है क्योंकि उसे ज्ञात है कि ईश्वर उसके आगे-पीछे है।[६] गरीबदास संत और सांई को एक मानते हैं।[७] गुलाल साहब ने भी संत को ब्रह्म का ही स्वरूप माना है।[८] निर्गुण संतों के अतिरिक्त भक्त-कवि तुलसीदास ने भी

---

१ असन्नेव स भवति असदब्रह्मोति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मे ति चेद वेद संतमेन ततोविदुः ॥—तैत्तिरीयोपनिषद्, व० ६-१

२. प्राणेय तीथाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥
—भागवत महापुराण, स्क० १, अ० १९, श्लोक ८।

३. ऊंतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च विहिताः पुरा॥ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, अध्याय १७, श्लोक २३।

४. Mysticism in Maharastra, R. D. Ranade, 1933. Page 42.

५. संतों का वचनामृत, श्री रं० रा० दिवाकर, १९६२, पृ० ३।

६. संत न बांधै गांठडी, पेट समाता लेइ।
सांई सूं सन्मुख रहै, जहाँ मांगै तहाँ देइ॥
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ वि०, पृ० ४५।

७. गरीबदास जी की बानी, पृ० ६७।

८. निर्गुन मत सोइ वे को अन्ता,
ब्रह्म सरूप अध्यानम संता॥—गुलालसाहब की बानी, पृ० ११४।

संतों के लक्षण रामचरितमानस में दिये हैं। उन्होंने संत और सज्जन को एक मान कर संत का आचरण चन्दन-तुल्य कहा है, कुठार से काटे जाने पर चन्दन अपनी सुगन्धि कुठार में लगाता है।[1]

कश्मीरी संत कवयित्री सत्संग की पवित्रता को महत्त्व देती है।[2] परमानन्द के अनुसार संत जन सहस्रों को भी धूलि के समान मानते हैं।[3] उनकी वाणी सत्य होती है।[4] कृष्णराज़दान के अनुसार ब्रह्म का साक्षात्कार सज्जन पुरुष ही कर सकते हैं।[5] मिर्जकाक के अनुसार भी आदि पुरुष को केवल संत ही जान सकते हैं।[6]

विभिन्न भाषाओं के संत-काव्य के तुलनात्मक अध्ययन पर मैंने दो ही शोध-प्रबन्ध देखे। वे हैं डा० प्रभाकर माचवे का हिन्दी और मराठी संत-काव्य तथा डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया का हिन्दी और पंजाबी संत-साहित्य।

कश्मीरी भाषा के संत-कवियों की ओर अभी तक किसी का ध्यान ही नहीं गया है। कश्मीर यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश प्राचीन काल से ही रहता आया है परन्तु इसका साहित्य अभी तक अंधकार के गर्त में ही है। कश्मीरी साहित्य पर कुछ छुटपुट लेख और अंग्रेजी विद्वानों के दो-तीन ग्रन्थ छोड़कर इसकी सभी कृतियां अभी तक पाण्डुलिपियों के रूप में ही सुरक्षित हैं। यही कारण है कि मुझे कश्मीर के कई ग्रामों में जाकर पाण्डुलिपियों का अन्वेषण करना पड़ा। कश्मीरी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थ का अभी तक अभाव है। उपलब्ध साहित्यिक रचनाओं में काल-क्रमानुसार इतनी रिक्तता है कि इसका इतिहास अभी तक नहीं लिखा गया। द्वितीय बात यह भी है कि कश्मीरी साहित्य और इसके इतिहास की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया। कल्चरल अकादमी श्रीनगर ने कई प्रयास अवश्य किये हैं परन्तु उनमें संकलन की मात्रा अधिक है और शोध की अल्प-कश्मीरी भाषा की पत्र-पत्रिकाओं का भी अभाव-सा है। डा० आर० के० काव ने शारदा रिसर्च सीरिज के तीन अंक अंग्रेजी में प्रकाशित किये थे परन्तु

---

१. संत असंतहि कैअसि करनी, जिमि कुठार चंदन आचरनी।
काटहु परसु मलय सुनुभाई, निजगुन देइ सुगन्ध बसाई।
—रामचरितमानस, तुलसीदास, १९३८ ई०, पृ० ८०५।

२. सतसंगो पवित्र दोरुम।
—अमृतवाणी, रामज्यू भल्ला, १९६१ ई०, पृ० ४०।

३. संत युद छि सास सास ज़ाननय ।।
—परमानन्द सूक्तिसार (भाग २)मास्टर जिन्दाकौल, सं० १९४२ ई०, पृ० १४३।

४. सत जन छिव त सत वाक दियूम।—वही, पृ० १७९।

५. सज्जन पौरुश यिम अस्य प्रकृति पर
चिरकाल प्रावुख ईश्वर स्थान ।।—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०,पृ० ८

६. तस जानि कुस जानि संतय,
भजन नाम राम रामै ।।—मिर्जकाक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, १९६३ ई०, पृ० १।

किसी कारणवश इसका प्रकाशन भी बन्द हो गया। कश्मीरी भाषा की अपनी शारदा लिपि अब मृतप्राय हो चुकी है। इस लिपि का ज्ञान वहाँ अल्प संख्यकों को ही है। अंग्रेजी और उर्दू में कश्मीरी लिखने के प्रयास भी सफल नहीं रहे क्योंकि उनमें उच्चारण-अशुद्धियां खटकती हैं। यही कारण है, मुझे कश्मीरी को देवनागरी लिपि में देने के लिए भिन्न रूप-चिन्हों को ढूंढना पड़ा, जिससे उच्चारण में भी सरलता आ गई है और जो टंकन-यंत्र में भी उपलब्ध हैं। कश्मीरी साहित्य के अमुद्रित होने का एक विशेष कारण यह भी है कि इसका कोई रूप टंकन-यंत्र में उपलब्ध नहीं था।

इन सब कठिनाइयों के उपरान्त भी मैं 'हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर रही हूँ जो कश्मीरी साहित्य के आलोचनात्मक और तुलनात्मक विवेचन करने का प्रथम प्रयास कहा जा सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को मैंने नव अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय—कश्मीरी भाषा और भक्ति-साहित्य का विकास है। इसमें मैंने कश्मीरी भाषा की उत्पत्ति और विकास, कश्मीरी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ और लिपि का विवेचन करके इस साहित्य में उपलब्ध प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। कश्मीरी भक्ति-साहित्य के विवेचन के साथ-साथ हिन्दी के भक्ति-साहित्य का भी उल्लेख किया है।

द्वितीय अध्याय 'संतों को प्रभावित करने वाले विभिन्न दार्शनिक मत' है। इसमें वेदान्त, शैवमत और सूफीमत का उल्लेख है। वेदान्त के अन्तर्गत अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैतवाद और अचिंत्य भेदाभेद का विवेचन कर शैवमत के चार उपसंप्रदाय—पाशुपत मत, शैव सिद्धान्त, वीर शैवमत और कश्मीर शैवमत का विवेचन प्रस्तुत किया है। सूफीमत के अन्तर्गत इस मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है।

तृतीय अध्याय '१४वीं और १५वीं शताब्दी के कश्मीरी संतकवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा' से सम्बन्धित है। इसमें लल्लद्यद और नुंदर्योश के जीवन, राजनैतिक पृष्ठभूमि, रचनाएँ और विचारधारा का विवेचन शीर्षक और उपशीर्षकों के अन्तर्गत हुआ है।

चतुर्थ अध्याय '१६वीं और १७वीं शताब्दी के कश्मीरी संत और उनकी दार्शनिक विचारधारा' है। इस काल में एक ही संत कवयित्री रूपभवानी आती है। इस अध्याय में मैंने अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर रूपभवानी का जीवन, वंशावली, युग और रचनाओं का विवेचन करके दार्शनिक विचारधारा का विवेचन किया है।

पंचम अध्याय '१८वीं और १९वीं शताब्दी के कश्मीरी संतकवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा' है। इसमें संत-कवि मिर्ज़ाकाक, परमानन्द, शमसफकीर, कृष्णराज़दान, लछकाक और रामानन्द के जीवन, युग-परिस्थितियाँ और दार्शनिक विचारधारा का विवेचन प्रमुख रूप से पाण्डुलिपियों से किया गया है।

षष्ठ अध्याय '१४वीं और १५वीं शताब्दी के हिन्दी संत-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा' है। इसमें संत नामदेव, कबीर और गुरु नानक आते हैं। इस अध्याय

कवियों के जीवन, युग-परिस्थितियाँ और दार्शनिक विचारधारा का उल्लेख किया गया है।

सप्तम अध्याय '१६वीं और १७वीं शताब्दी के हिन्दी संत-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा' है। इसमें दादूदयाल, रज्जबदास, सुन्दरदास, मलूकदास और संत दूलनदास के जीवन और विचारधारा का विवेचन है।

अष्टम अध्याय में १८वीं और १६वीं शताब्दी के हिन्दी संत-कवि चरणदास और पलटूदास के जीवन, काव्य तथा दार्शनिक विचारधारा का विवेचन किया गया है।

नवम अध्याय में हिन्दी एवं कश्मीरी भाषा के संत-कवियों की दार्शनिक विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें सिद्धान्त पक्ष और साधनापक्ष के अन्तर्गत दोनों भाषाओं के कवियों की विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन कालक्रमानुसार किया है। इस अध्याय से स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं के कवियों के ब्रह्म, जीव, जगत् और माया-सम्बन्धी क्या विचार थे। व्यवहार-पक्ष में उन्होंने कैसे साधना के बाह्याडम्बरों—अवतारवाद, जाति-प्रथा आदि का खण्डन कर प्रेम, ज्ञान और योग आदि तत्त्वों को महत्त्व दिया। कवियों की नारी-सम्बन्धी विचारधारा भी इसी से अवगत होती है। भाषागत विभिन्नता होने पर भी दोनों भाषाओं की काव्य-शैली में जो साम्य है वह भी इसमें दर्शाया गया है।

शोध-प्रबन्ध प्रारम्भ करने के समय घबराहट होना स्वाभाविक ही था क्योंकि कश्मीरी साहित्य से सम्बन्धित सामग्री या तो थी ही नहीं या थी तो उर्दू में या पाण्डुलिपियों में। परन्तु अपने पूज्य गुरु आचार्य डा० विनयमोहन शर्मा के स्नेहपूर्ण पथ-प्रदर्शन और उत्साह से यह कार्य दो वर्ष में ही पूर्ण हुआ। अपने व्यस्त जीवन में भी उन्होंने सदैव गंभीरता से मुझे समय-समय पर उत्साहित करके मार्ग-प्रदर्शन किया। आरम्भ में उनके कहे हुए शब्द 'इस कार्य को तपस्या और साधना समझ कर शीघ्र समाप्त करना चाहिए' मुझे सदा के लिए प्रेरणादायक और पथ-प्रदर्शक बनेंगे। मुझे आशा है, सफलता की कुंजी ही ये शब्द हैं। शब्दों से आचार्य जी का धन्यवाद करना मूर्खता है और न मुझ में इतना साहस ही है।

मैं डा० कमलेश की भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे उर्दू का आरम्भिक ज्ञान करवाया। मैं श्री बी० एन० रैणा, श्री आर०बी० शर्मा और डा० एस०एन० शर्मा की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने उर्दू और शारदा में लिखे कश्मीरी ग्रन्थों और पाण्डुलिपियों को देवनागरी लिपि में लिखवाने में सहायता दी। इस कार्य के बिना मेरा शोध-प्रबन्ध एकांगी ही रह सकता था। पाण्डुलिपियों तथा कई संतों की समाधियों के चित्रों की व्यवस्था का श्रेय भी उनको ही है। मैं हृदय से इनकी आभारी हूँ।

हांगलगुण्ड ग्राम के पं० जियालाल और श्रीनगर के पं० राजनाथ साधू की सहायता को मैं कभी नहीं भूल सकती जिन्होंने मिर्ज़ाकाक, लछकाक तथा रामानन्द के काव्य की पाण्डुलिपियाँ कुछ दिवस के लिए अर्चना-स्थान से हटाकर मुझे देने की कृपा की, मैं हृदय से इन दोनों महानुभावों की आभारी हूँ।

नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा कश्मीर की रिसर्च लाइब्रेरी के डायरेक्टर महोदय को मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ जिनकी सहायता से मुझे कई मुद्रित और अमुद्रित पुस्तकें उपलब्ध हुईं।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री परशुराम चतुर्वेदी, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, डा० प्रभाकर माचवे, डा० इन्द्रनाथ मदान, डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० ब्रजलाल वर्मा और दादू महाविद्यालय, जयपुर के अध्यक्ष महोदय ने समय-समय पर मेरी शंकाओं का समाधान किया, उसके लिए मैं हृदय से उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला।

—कृष्णा रैणा

१ कश्मीरी भाषा और भक्ति-साहित्य की रूप-रेखा

कश्मीरी भाषा

कश्मीर विशाल भारत का एक प्रान्त है। इसका कुल क्षेत्रफल ८४४७ वर्गमील है। इसके उत्तर में चीन, रूस और पामीर हैं, पूर्व में तिब्बत, पश्चिम में अफगानिस्तान और पाकिस्तान स्थित हैं। भारत के इस प्रान्त की सीमा के साथ चार बड़े देशों— चीन, रूस, अफगानिस्तान और पाकिस्तान की सीमाएँ होने के कारण, कश्मीर का राजनीतिक महत्त्व भी है।

कश्मीर को 'कशीर' और यहाँ की भाषा को 'कोशुर' कहा जाता है। कश्मीरी भाषा मुख्यतः कश्मीर घाटी में बोली जाती है। कश्मीरी भाषा का क्षेत्रफल लगभग १०००० वर्गमील है और इसके बोलने वालों की संख्या लगभग १५ लाख है। जम्मू प्रान्त के उत्तर-पूर्वी प्रदेश किशतवाड़ की बोली 'किशतवाड़ी' भी इसी की एक उप-भाषा है। प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प के मतानुसार इस भाषा के लिए कश्मीरी नाम का सर्वप्रथम उल्लेख अमीर खुसरो (१३वीं शती) की 'नुहसिपिह्र' में मिलता है पर कश्मीर में १७वीं शती तक इसे 'देशभाषा' या 'भाषा' नाम से ही सूचित किया जाता था।[1] लोक या जन भाषा के लिए भाषा (भाखा) और देशभाषा शब्द का प्रयोग हिन्दी क्षेत्र में भी प्रचलित था। १७वीं शताब्दी में मराठी के भक्त-चरित्रकार महीपत बुआ ने भी कबीर की भाषा को 'देशभाषा' कहा है।[2]

कश्मीरी भाषा कब और कैसे प्रचलित हुई, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार कश्मीरी वास्तव में एक दरद भाषा है। परन्तु इसके दक्षिण में बोली जाने वाली भारतीय आर्य शाखाओं की भाषाओं ने इसे अत्यधिक प्रभावित किया है। कश्मीर देश दो सहस्र वर्ष तक संस्कृत भाषा का मुख्य केन्द्र रहा है। अतः यहाँ की देशभाषा (कश्मीरी) पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। यही कारण है कि कश्मीरी की शब्दावली संस्कृत से मिलती-जुलती है जिसके फलस्वरूप कुछ लोग

---

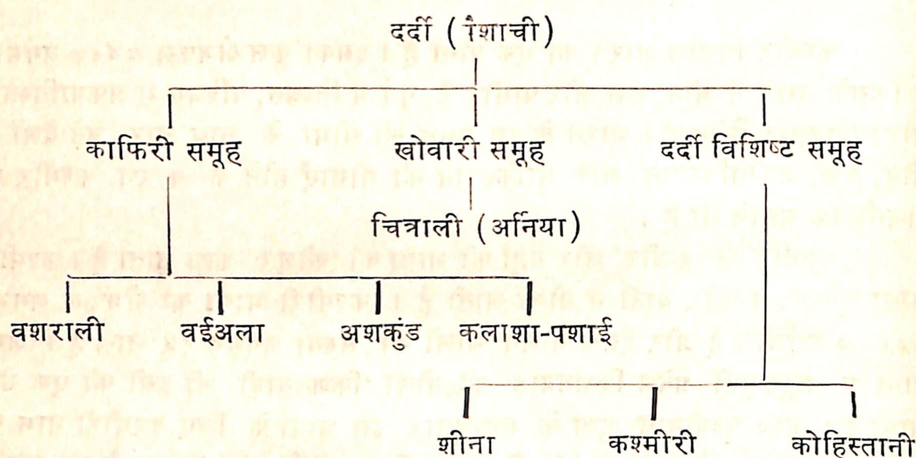
१. हिन्दी साहित्य-कोश (प्रथम खण्ड) डा० धीरेन्द्र वर्मा, संवत् २०१५ वि०, पृ० २१०।

२. "कबीर बोले हिन्दुस्तानी देशभाषा ग्रामुली"
डा० विनयमोहन शर्मा का मत, ३० अगस्त, १९६५ के वार्तालाप में।

इसे भ्रमवश संस्कृत से निकली हुई भाषा मानते हैं। वरन् यह एक दर्दी भाषा है।[1]

दर्दी या पैशाची भाषा हिन्दी-ईरानी की एक उपशाखा है। इस भाषा का क्षेत्र पामीर और पश्चिमोत्तर पंजाब के बीच पड़ता है। भाषा-गठन की दृष्टि से यह ईरानी और भारतीय आर्य के मध्यमार्ग की है।[2] दर्दी या पैशाची भाषाओं के कई समूह हैं—काफिरी, खोवारी और दर्दी विशिष्ट : जिनकी कई उपभाषाएँ भी हैं। काफिरी-समूह की उपभाषाएँ वशराली, वईअला, अशकुण्ड और कलाशा-पशाई हैं। खोवारी में चित्राली या अर्निया आती है। दर्दी विशिष्ट में शीना, कश्मीरी और कोहिस्तानी आती हैं।

दर्दी भाषा के इन समूहों तथा उपभाषाओं को इस प्रकार मान-चित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है—



इस प्रकार 'कश्मीरी' दर्दी विशिष्ट समूह के अन्तर्गत आती है।

---

1. "Kashmiri is a mixed language, having as its basis a language of the Dard group of the Dardic family allied to Shina. It has powerfully been influenced by Indian culture and literature and the greater part of its vocabulary is now of Indian origin and is allied to that of Sanskritic-Indo-Aryan languages of Northern India. As, however its basis—in other words its phonetic system, its accidence, its syntax, its prosody—is Dardic, it must be classed as such and not as a Sanskritic form of speech". Linguistic Survey of India, Vol VIII, Part II : Grierson, Edition 1919, Page 253.
२. कश्मीर का लोक साहित्य, मोहनकृष्ण दर, संस्करण १९६३, पृ० ४१।

प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प कश्मीरी को दरद परिवार की सन्तान बताना युक्तियुक्त नहीं मानते। उनके अनुसार ग्रियर्सन के मत का समर्थन बहुत कम हो पाता है— विशेषकर क्रियापदों और सर्वनाम की दृष्टि से। प्रो० पुष्प निम्न तथ्य प्रस्तुत करते हैं—

१. कश्मीरी क्रियापदों का विकास एक ऐसी संश्लेषण-पद्धति पर होता रहा है जो भारत की दूसरी आधुनिक भाषाओं में प्रचलित नहीं है, जैसे हावुन (दिखाना) के भिन्न रूप देखने से स्पष्ट होता है।

२. कश्मीरी भाषा में जो घोष-महाप्राण ध्वनि का अभाव है वह सिन्धी और पश्तो में भी मिलता है। पंजाबी तथा डोगरी में भी इन वर्गों का उच्चारण 'ह' की ध्वनि से मुक्त है। पूर्वी बंगाली और राजस्थानी में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

३. बिल्हण, कल्हण, शितिकण्ठ और श्रीवर आदि की साक्षियों से स्पष्ट होता है कि कश्मीरी भाषा भी उन्हीं परिस्थितियों और प्रभावों का परिणाम है जिनसे गुजराती, मराठी, बंगाली, हिन्दी और उर्दू का विकास हुआ है। प्रो० पुष्प अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संभवतः कश्मीरी का उद्‌गम वह पैशाची है जिसे ब्राह्मण-ग्रन्थों में उदीच्य कहा गया है।[1]

डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या कश्मीरी को भारतीय आर्य समूह की भाषा नहीं, वरन् एक दर्दी भाषा मानते हैं।[2] इस दर्दी समूह की भाषाएँ भारत के सुदूर पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश तथा भारत-अफगान के उत्तर-पश्चिम में बोली जाती है। इनकी तीन शाखाएँ हैं—

१. कश्मीरी, शीना और कोहिस्तानी
२. खोवार, चित्राली
३. कलाशा, गव्रबती, परी, लघमानी, दीरीतिराही, वै, वासी, वैरी, अशकुन्द इत्यादि।[3]

सर जार्ज ग्रियर्सन ने इन भाषाओं एवं बोलियों के समूह को एक स्वतन्त्र समूह माना था और भारतीय ईरानी को तीन भागों में विभाजित किया था—

१. पश्चिम की ईरानी
२. पूर्व की भारतीय आर्य
३. उत्तर में दर्दी भाषाएँ

दर्दी भाषाएँ भारतीय आर्य की अपेक्षा ईरानी कुल के निकटतर हैं जिनका विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है। केवल हिन्दू एवं बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण कश्मीरी भाषा का घनिष्ट सम्बन्ध हिन्दू भारत तथा उसकी संस्कृत भाषा से रहा है।[4] दर्दी भाषाओं के ध्वनि-विज्ञान एवं रूप तत्त्व की मूल भावना भी भारतीय आर्य संस्कृत

---

१. कश्मीरी भाषा और साहित्य, १९५६ ई०, पृ० २।
२. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, द्वितीय संस्करण १९५७, पृ० १३६।
३. वही, पृ० १४४।
४. वही, पृ० १४४।

से भिन्न है और बर्बर बोलियों के रूप में उनका इतिहास भी भिन्न है। अतएव उन्हें मुख्य भारतीय आर्य समूह से भिन्न गिनना ही युक्तियुक्त होगा।[1] प्रोफेसर निरोध-भूषण राय के अनुसार कश्मीरी भाषा दरद परिवार की भाषा है और 'शीना' से अत्यधिक सम्बन्धित है।[2]

कश्मीरी भाषा का उद्‌भव इबरानी से भी माना जाता है।[3] मान्यता यह है कि प्राचीन समय में यहूदियों का एक समूह अपने देश सीरिया से निकलकर यहाँ आ बसा था। यह समूह अपने साथ अपनी भाषा भी लाए थे। इनके अनुसार कश्मीरी में किसी पुरुष के नाम के साथ आदरसूचक जो 'जू' शब्द जैसे 'रामजू', 'लालजू', 'मानजू' आदि लगाया जाता है वह यहूदियों की भाषा का ही प्रभाव है क्योंकि जू (Jew) यहूदियों को ही कहते हैं। परन्तु यह भी कोई दृढ़ आधार नहीं है। 'जू' शब्द ब्रजभाषा में भी प्रयुक्त होता है। श्री अमल सरकार ने भी कश्मीरी को दर्द परिवार की भाषा माना है।[4] और इसके बोलने वालों की संख्या ५०८६ बतायी है।[5]

जब तक किसी अन्य मत का दृढ़ आधार प्राप्त न हो तब तक डा० ग्रियर्सन का मत मानने में ही कल्याण है। भौगोलिक सीमा समीप होने के कारण कश्मीरी भाषा और रूसी भाषा में कई शब्द एक समान हैं, जैसे 'समावार' जो कश्मीरी भाषा में एक विशेष प्रकार की केतली के लिए प्रयुक्त शब्द है, उसमें चाय बनाते भी हैं और वितरित भी कर सकते हैं। रूस में भी यही शब्द इसी वस्तु-विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। यह शब्द पहले कश्मीरी भाषा में था या रूसी में या दोनों में से किस भाषा ने इसे अपने अन्दर पहले समाहित किया, यह भाषाविज्ञानियों के लिए समस्या है।

कश्मीरी भाषा के विकास के चिह्न १२वीं शताब्दी से ही प्राप्त होते हैं। प्रसिद्ध कश्मीरी इतिहासकार कल्हण ने सन् ११५० के लगभग 'राजतरंगिणी' की रचना की है जिसमें कल्हण ने यहाँ के तीर्थ और नदियों के संस्कृत नाम न देकर उनके कश्मीरी नाम दिये हैं। कल्हण ने लम्बोदरी नदी का 'लिद्दर'[6] और खीरभवानी के लिए 'तुलमुला'[7] नाम का प्रयोग किया है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों के नाम, जो आज भी कश्मीरी भाषा में प्रचलित हैं, कल्हण ने प्रयुक्त किये हैं। देवग्राम के

---

१. वही, पृ० १४५।
2. Ain-1-Akbari of Abul-Fazl-1-Allami, Vol. II, Sir Jadu Nath Sarkar, Edition 1949, Page 351.
३. "तामीर" पत्रिका, अक्तूबर ५७ तथा जनवरी ५८ अंक।
4. Handbook Of Languages And Dialects Of India, Amal Sarkar, 1964, page 91.
5. Ibid, Page 85.
६. दत्वाग्रहारं लेदयी लवारं द्विजपर्षदे।
—राजतरंगिणी, कल्हन, प्रथम तरंग ९०, (स्टीन) संस्करण १९६०, पृ० ५
७. तूलमूल्यापहर्ता च चन्द्रभागातटे स्थित: (चतुर्थ तरंग ६३८, पृ० ६८)

लिए देग्राम[1] (अब दिगोम) और खोनमूसा (बिल्हण की जन्मभूमि) के लिए 'खोनमुश'[2] शब्द प्रयुक्त किए हैं। इसी प्रकार कल्हण ने कई मुहावरों का प्रयोग भी किया है[3] जो कश्मीरी जनता में तब प्रचलित थे, जैसे 'नोंव शीन छु गालान प्रोनिस शीनस' अर्थात् नये हिम से पुराना हिम नष्ट होता है। यह प्रयोग कल्हण के समय भी प्रचलित थे, तभी उसने अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ में इनका प्रयोग किया है और आज भी उसी अर्थ में प्रचलित हैं। इससे स्पष्ट है कि १२वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही कश्मीरी भाषा का विकास हो चुका था।

कश्मीरी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ—१. कश्मीरी एक संयोगात्मक भाषा है। यह विशेषता चीनी भाषा में मुख्य रूप से लक्षित है। शब्दों में सुर की भिन्नता के कारण अर्थ में भी परिवर्तन आता है। चीनी भाषा में ब ब ब ब प्रत्यक अक्षर में थोड़ा-थोड़ा सुरभेद करने से भिन्न-भिन्न अर्थ निकलता है। कश्मीरी भाषा में भी यही बात है, जैसे ''बर'' शब्द का अर्थ द्वार है। इसी शब्द के उच्चारण-वैभिन्य के कारण भिन्न अर्थ निकलते हैं :

बर	—	दरवाज़ा
बर्	—	दुःखी होना
बैर	—	दरार
बुर	—	फर्श के रोम
बुर्	—	लकड़ी पर रन्दा देने से जो पतला छिलका उठता है।
बेर	—	छोटी मिट्टी की दीवार
बीरअ	—	लकड़ी की गेंद
बार	—	बोझ

२. अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा कश्मीरी भाषा की वर्णमाला में स्वरों की संख्या अधिक है। इसी कारण कश्मीरी को लिपिबद्ध करने में कठिनाई का अनुभव होता है। कश्मीरी भाषा को स्वरों की भाषा कहते हैं क्योंकि इसमें स्वर-व्यवस्था जटिल है।

३. कश्मीरी भाषा में अनेकार्थवाची शब्दों का आधिक्य है, जैसे :

(अ)

खूर	—	नाई का उस्तरा
खूर	—	पाँव की एड़ी
खूर	—	नौका चलाने का चप्पा
खूर	—	कालीन बनाते समय धागा काटने का यंत्र

---

१. देग्रामस्थो डामरोथ दत्वास्कंदं निपातितः। (सातवीं तरंग २६६, पृ० ११५)

२. स खगिखोनमुषयौ : कर्ता मुख्याग्रहारयोः। (प्रथम तरंग ९०, पृ० ५)

३. हिमेनैव हिमं शाम्येदुष्टकृतेनैव दुष्कृतम्। (पाँचवी तरंग ४०१, पृ० ८८)

(आ)

ओर	—	आलूबुखारा
ओर	—	भूमि के अन्दर उगने वाली सब्ज़ियों का कठोर भाग
ओर	—	सर्प का कुंडलाकार में बैठना
ओर	—	घास का विशेष गोलाकार
ओर	—	लोहे का एक अस्त्र जो कलाकारों के काम आता है।

४. कश्मीर में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या अधिक है। दोनों की भाषा एक है परन्तु रूप दोनों के भिन्न हैं। हिन्दुओं की कश्मीरी में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है, जैसे श्रान (स्नान), न्यशतुर (नक्षत्र), न्यन्दर (निद्रा), कुकिल (कोकिल), क्रूद (क्रोध), न्यरमल (निर्मल) आदि। मुसलमानों की कश्मीरी में फारसी शब्द, जैसे ख़त, नज़र, असर, हक़, साफ़, ख़लथ इत्यादि। यह भिन्नता शब्दावली तक ही सीमित नहीं है अपितु हिन्दुओं और मुसलमानों की कश्मीरी भाषा का उच्चारण भी भिन्न है, जैसे :

हिन्दू उच्चारण	**मुसलमानी उच्चारण**	**अर्थ**
ब्रोर	ब्योर	बिल्ली
कूर	क्यूर	कुँआ
पंछ	पाँछ	पाँच
दह	दाह	दस
प्रार	प्यार	प्रतीक्षा करना
खारुन	खालुन	नीचे से ऊपर लाना।

स्पष्ट है कि मुसलमानों के उच्चारण मे कठोर वर्णों का आधिक्य नहीं है।

५. साधारणत: जब एक भाषा की शब्दावली कोई दूसरी भाषा अपनाती है तो अपने प्रवाहानुकूल उन शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन करती है। कश्मीरी भाषा में भी ऐसे शब्दों की प्रचुरता है जिनका ध्वनि-परिवर्तन तो हुआ, पर मूल अर्थ वही है।

मूलशब्द	**कश्मीरी**	**अर्थ**
आर्द्र: (सं०)	ओदुर	गीला
एला (सं०)	ओल	इलाची
कुलाल (सं०)	क्राल	कुम्हार
दन्त: (सं०)	दन्द	दान्त
गुर्ज़ (फारसी)	गरवजे	रसोई के कोने पर बना हुआ लकड़ी का चौखटा।
मज़दूर (फा०)	मजूरू	मजदूर
काग़ज़ (अरबी)	काकज़	कागज़

६. कश्मीरी वर्णमाला में एक वर्ण 'च़' का प्रयोग होता है जैसे च़ूर (चोर), च़ामन (पनीर), च़ोर (चार) आदि। यह ध्वनि मराठी भाषा में भी है।

७. कश्मीरी भाषा मे सघोष महाप्राण व्यंजन ध्वनियों का अभाव है, अर्थात

महाप्राण का नहीं। वहाँ के उच्चारण में ख, छ, ठ, थ और फ है परन्तु घ, झ, ढ, ध, भ नहीं। यही कारण है कि कश्मीरी जनता भय, भाभी, बोझ आदि के स्थान पर 'बय', 'बाबी' और 'बोज' शब्द का उच्चारण करती है।

कश्मीरी भाषा की लिपि

कश्मीरी भाषा की मूल लिपि शारदा लिपि है। इसमें लिखा प्राचीन कश्मीरी साहित्य आज भी उपलब्ध है। शारदा लिपि 'ब्राह्मी लिपि' से व्युत्पन्न है। उत्तरी ब्राह्मी को ही ईसा की चौथी शताब्दी में गुप्त लिपि की संज्ञा मिली और इसके अक्षरों तथा स्वरों की मात्राओं की कुटिल आकृतियों के कारण इसका नाम कुटिल रखा गया। इसका प्रचार ईसवी की छटी से नवीं शताब्दी तक रहा। इसी से नागरी और शारदा लिपियाँ निकली हैं।

ब्राह्मी लिपि भारतवर्ष की प्राचीन लिपि है। पहले इस लिपि के लेख अशोक के समय अर्थात् ईसवी-पूर्व की तीसरी शताब्दी तक के ही मिले थे परन्तु कुछ वर्ष हुए इस लिपि के दो छोटे-छोटे लेख, जिनमें से एक प्रिपावा के स्तूप से और दूसरा बर्ली गाँव से मिले हैं, वे ईसवी-पूर्व की पाँचवीं शताब्दी के हैं।[१] डा० बूलर फिनिशिअन् लिपि के २२ अक्षरों से ब्राह्मी के २२ अक्षरों की उत्पत्ति बतलाते हैं परन्तु यह मत संगत नहीं है। सेमटिक और ब्राह्मी लिपि की बनावट में बड़ा अन्तर है और इनकी लेखन-प्रणाली एक-दूसरे के विपरीत है। ब्राह्मी लिपि के अक्षर न तो फिनिशिअन् या किसी अन्य लिपि से निकले हैं और न उसकी बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखने की प्रणाली किसी और लिपि से बदल कर बनाई गई है। यह भारतवर्ष के आर्यों का अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है।[२] चाहे इसका कर्ता ब्रह्म देवता माना जाकर इसका ब्राह्मी नाम पड़ा या साक्षरसमाज ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका फिनिशिअन् से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कश्मीर देश की अधिष्ठात्री देवी शारदा मानी जाती है जिससे वह देश 'शारदा देश' या शारदामण्डल भी कहलाता है। इसी कारण वहाँ की लिपि को 'शारदा लिपि' कहते हैं। इस लिपि का प्रचार भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी भागों अर्थात् कश्मीर और पंजाब में रहा है और इसके प्राचीन शिलालेख, दानपत्र, सिक्के तथा हस्तलिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं। ईसवी सन् की ८वीं शताब्दी के राजा मेरुवर्मा के लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय तक तो पंजाब में भी कुटिल लिपि का प्रचार था, जिसके पीछे उसी लिपि से शारदा लिपि बनी। शारदा लिपि का सबसे प्रथम लेख सराहां (चम्बा राज्य में) की प्रशस्ति है जिसकी लिपि ईसवी सन् की १०वीं शताब्दी के आस-पास की है। यही समय शारदा लिपि की उत्पत्ति का माना जा सकता है।[३]

---

१. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, तृतीय संस्करण १९५९, पृ० ४१।
२. वही, पृ० २८
३. वही, पृ० ७३।

शारदा लिपि में विशेष ध्वनि को अभिव्यक्त करने के लिए विशेष चिह्न हैं[1] अतः कश्मीरी भाषा के लिए यह उपयुक्त लिपि है। इसके पढ़ने में कुछ कठिनाई अवश्य है।[2] शारदा और नागरी लिपि के कई वर्ण, जैसे उ, ऊ, क, ढ, य और व एक समान हैं। शारदा में 'अ' को 'आदव अ' ई को 'यायवी यी' ख को 'खोनि ख' इस प्रकार से उच्चरित किया जाता है। शारदा लिपि की वर्णमाला इस प्रकार है :

स्वर :

(शारदा)

(देवनागरी) अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ

(शारदा)

(देवनागरी) - ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः

व्यंजन :

(शारदा)

(देवनागरी) क ख ग घ ङ

(शारदा)

(देवनागरी) च छ ज झ ञ

(शारदा)

(देवनागरी) ट ठ ड ढ ण

(शारदा)

(देवनागरी) त थ द ध न

1. "The carada (Devanagri) system of writing Kasmiri has the advantage of using fixed definite signs for fixed definite sounds." Essay On Kasmiri Grammer, Grierson, Edition 1899, Page 30.
2. A Manual of the Kashmiri Language Vol. 1, Grierson, Edition 1911, Page 14.

(शारदा) [illegible]

(देवनागरी) प फ ब भ म

(शारदा) [illegible]

(देवनागरी) य र ल व

(शारदा) [illegible]

(देवनागरी) श ष स ह क्ष

पठानों के शासनकाल में शारदा लिपि में लिखने पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। उसी समय से कश्मीरी के लिए फारसी लिपि का प्रचलन हुआ। शारदा लिपि के लिए टंकन-यन्त्र का अभाव है अतः इसमें प्रकाशन-कार्य नहीं होता। आधुनिक युग में कश्मीरी जनता का अल्पांश ही इस लिपि से परिचित है।

कश्मीरी भाषा को लिखित रूप देने के लिए शारदा के अतिरिक्त रोमन, फारसी और देवनागरी लिपि का भी प्रयोग होता है।

रोमनलिपि : ग्रियर्सन आदि अंग्रेजी विद्वानों ने कश्मीरी भाषा को रोमन लिपि में लिखा है। ग्रियर्सन के अनुसार कश्मीरी स्वरों का क्रम बड़ा जटिल है। कई स्वर तीन या उससे भी अधिक रूपों में उच्चरित होते हैं जिसके लिए उन्होंने कुछ चिह्न भी बनाये हैं और उनका प्रयोग किया है।[1] वे चिह्न इस प्रकार हैं :

a a ă

i i ė

o o ō.

u u ū.

ü ü ǖ

a ai au ĕ ẹ̆ ẹ̆ ŏ ọ̆ ô ö̤

1. A Manual of the Kashmiri Language Vol 1. Grierson, Edition 1911, Page 15.

श्री जियालाल कौल ने भी अपनी पुस्तक 'कश्मीरी लेरिक्स' में रोमन लिपि को ही अपनाया है।

फारसी लिपि : कश्मीरी के लिए फारसी लिपि का प्रयोग पठान शासन से ही आरम्भ हुआ है। यद्यपि इस लिपि में कश्मीरी का अत्यधिक साहित्य उपलब्ध है तथापि यह भी उच्चारण की दृष्टि से उपयुक्त लिपि नहीं है। एक तो इसमें वर्णसंख्या कम है अतः चिह्नों का अधिक प्रयोग इसको जटिल बना रहा है। कहीं-कहीं इसमें मात्राओं का प्रयोग भी नहीं होता है और पाठक को मस्तिष्क का सारा बल लगाकर शुद्ध उच्चारण स्वयं ढूंढना पड़ता है। कल्चरल अकादमी से प्रकाशित प्रायः समस्त पुस्तकें इसी लिपि में लिखी उपलब्ध हैं।

देवनागरी लिपि : कश्मीरी भाषा के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग गुलाबसिंह के शासनकाल से आरम्भ होता है। उस समय से लेकर कश्मीरी हिन्दू इसी लिपि का प्रयोग करते हैं। फारसी और रोमन लिपि से देवनागरी लिपि कश्मीरी के लिए अधिक उपयुक्त है परन्तु शारदा का स्थान यह भी नहीं ले सकती। आज तक देवनागरी लिपि के कश्मीरी भाषा में प्रयुक्त तीन रूप उपलब्ध हैं :

१. श्री सिरीकण्ठ तोषखानी द्वारा निर्मित
२. श्री जियालाल कौल जलाली द्वारा निर्मित
३. रूपान्तर सभा द्वारा निर्मित

श्री तोषखानी द्वारा निर्मित रूप इस प्रकार है[1] :

अ	अछ	(नेत्र)
आ	लार	(खीरा)
इ	तुर	(टकुड़ा)
ई	त्र	(सर्दी)
ओ	थ्य	(छह)
ओ	ओस	(था)
उ	दुद	(दूध)

श्री जियालाल कौल जलाली द्वारा निर्मित रूप[2] :

---

१. प्रताप मैगज़ीन, एस० पी० कालेज, सन् १९५५।
२. कशिरि ज़बर, पंडित जियालाल कौल जलाली, संवत् २००८ पृ० ३।

ऊ	तर	(टुकड़ा)
ऊ	तुर	(सर्दी)
न्य	श्य	(छह)
ओ़	ओ़स	(था)
औ़	दो़द	(दूध)

रूपान्तर सभा द्वारा निर्मित रूप[1] भी कुछ इसी तरह के हैं।

तीनों रूपों को देखने से ज्ञात होता है कि इनमें सरल को भी जटिल बनाने का प्रयत्न किया गया है। दूसरी कठिनाई यह है कि टंकन-यन्त्र की दृष्टि से ये तीनों रूप उपयुक्त नहीं हैं। टंकन यन्त्र में

आदि चिह्न नहीं हैं। अतः इन तीनों रूपों को जटिल और टंकन-यन्त्र के अनुपयुक्त समझकर अवहेलना करनी पड़ती है। तुर और तूर को क्रमशः तुरे और तूरे भी लिखा जा सकता है। 'अ॑' का प्रयोग 'अ॑छ' के लिए जलाली महोदय ने 'अ' के साथ 'ग' की आधी मात्रा लगाकर किया है जिसको कश्मीरी से अपरिचित व्यक्ति 'अग्छ' ही पढ़ लेगा 'अंछ' नहीं। इसी प्रकार श्री तोषखानी का लिखा दुद साधारण 'द्वोद' लिखा जा सकता है और इसमें किसी विशेष चिह्न की आवश्यकता नहीं पड़ती है। चिह्नों के लिए अर्धविराम (,) और बिन्दु (·) का प्रयोग सरलता से संभव है। ये टंकन-यन्त्र में भी उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त कठिनाइयों को समाप्त करने के प्रयत्न-स्वरूप मैंने इस निम्न सरल रूप का प्रयोग किया है:

अ'	अ'छ	(नेत्र)
आ'	आ'स	(मुख)
तु'	तु'र	(टुकड़ा)
तू'	तू'र	(शीत)
द्वो	द्वोद	(दूध)
न्वो	न्वोश	(बहू)
ओ;	नो;र	(बाजू)
च़	चा़मन	(पनीर)
छ़	छा़य	(प्रतिबिम्ब)

यह पूर्व प्रयुक्त रूपों से सरल भी है और टंकन-यन्त्र के अनुकूल भी है। इसी कारण मैंने अपने शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट में जो संत-कविता का नमूना दिया है उसमें यही वर्णमाला और इन्हीं चिह्नों का प्रयोग किया है।

---

१. प्रताप मैगज़ीन एस० पी० कालेज, श्रीनगर, सन् १९५५।

कश्मीरी भक्ति-साहित्य का आरम्भ और विकास

कश्मीरी साहित्य का आरम्भ १३वीं शताब्दी में शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' से हुआ है। 'महानय प्रकाश' में विशेष रूप से तांत्रिक पूजा का वर्णन है और संस्कृत शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग है। अत: आज की कश्मीरी भाषा से वह भाषा नितान्त भिन्न प्रतीत होती है। 'महानय प्रकाश' से पूर्व कश्मीरी साहित्य की कोई रचना अभी उपलब्ध नहीं है। कश्मीर में १३वीं शताब्दी तक संस्कृत भाषा का प्राधान्य था। वसुगुप्त, कल्लट, मम्मट, सोमानन्द, अभिनवगुप्त, कल्हण, बिल्हण जैसे विद्वानों ने संस्कृत साहित्य को अमूल्य देन दी है। उस समय तक कश्मीरी 'भाषा' या 'देशभाषा' के नाम से ही प्रचलित थी। कालचक्र में संस्कृत का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया, इस्लाम के आगमन से अरबी और फारसी का क्षेत्र विस्तृत हुआ : ऐसी परिस्थिति में कश्मीरी भाषा ने साहित्यिक रूप धारण कर लिया। यद्यपि कश्मीरी साहित्य का आरम्भ शितिकण्ठ की रचना से माना जाता है परन्तु इस भाषा का स्पष्ट रूप सबसे प्रथम संत कवयित्री लल्लद्यद के 'वाख्यों' या पदों में ही उपलब्ध है। मैं उसी को कश्मीरी भाषा की आदि-कवयित्री मानती हूं।

कश्मीरी साहित्य कब आरम्भ हुआ ? कैसे इसका विकास हुआ तथा किन परिस्थितियों में इसने भिन्न मार्ग ग्रहण किए यह सब अभी अन्धकार में ही है। कश्मीर के इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थों की संख्या अत्यधिक होने पर भी कश्मीरी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों का अभी अभाव है। कुछ स्वतन्त्र लेख इस अभाव की पूर्ति नहीं कर सकते। यही कारण है कि कश्मीरी साहित्य की परिस्थितियाँ और युग-विभाजन आदि के विषय में सामग्री का अभाव है।

श्री शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम' ने कश्मीरी साहित्य को चार कालों में विभाजित किया है[1] :

१. आदिकाल। २. पूर्व मध्यकाल। ३. उत्तर मध्यकाल।
४. आधुनिक काल अथवा देशभक्ति काव्य तथा प्रयोगवाद काल।

आदि काल का समय श्री भट्ट जी ने १३वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक माना है। पूर्वमध्य काल को ही इन्होंने गीत-काव्य काल की संज्ञा दी है और इसका समय १६वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक माना है। उत्तरमध्यकाल को इन्होंने भक्ति व आख्यान-काव्य काल कहा है और इसका समय १९वीं शताब्दी माना है। आधुनिक काल का समय २०वीं शताब्दी के आरम्भ से आज तक है और यही देशभक्ति-काव्य या प्रयोगवाद काल है।

प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प ने कश्मीरी साहित्य को पाँच कालों में विभाजित किया है[2] :

---

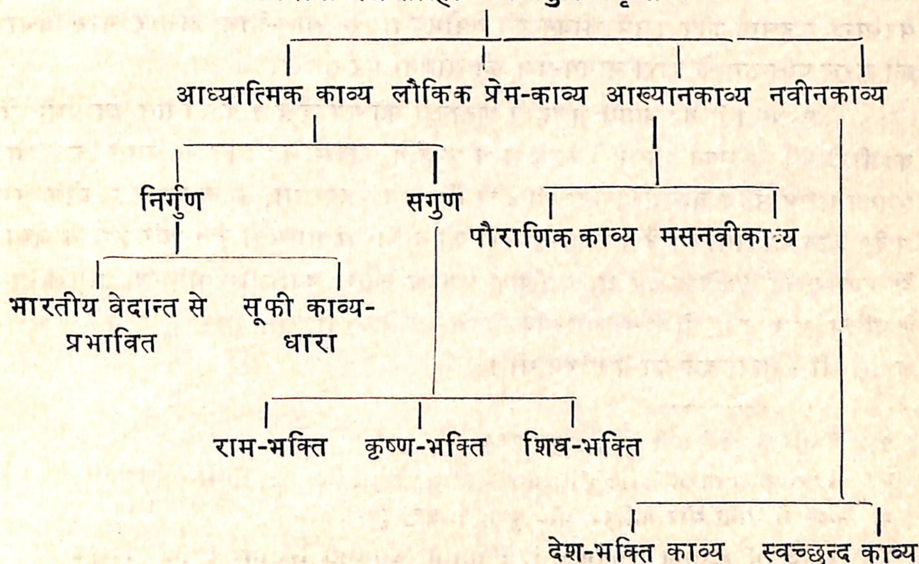
१. माध्यम पत्रिका, वर्ष १, अंक ५. १९६४, पृ० ६१-६२।
२. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २१०।

१. आदिकाल (१२०० से १३५० ई०)
२. प्रबन्धकाल (१३५० से १५०० ई०)
३. गीतिकाल (१५०० से १७५० ई०)
४. प्रेमाख्यान काल (१७५० से १९०० ई०)
५. आधुनिक काल (१९०० से आगे)

ये दोनों काल-विभाजन आरम्भिक होने के कारण महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं परन्तु इनके अन्तर्गत उन सभी प्रवृत्तियों या धाराओं का समावेश नहीं होता जो कश्मीरी काव्य में आदिकाल से ही उपलब्ध हैं। अतः कश्मीरी साहित्य का प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर विभाजन करना आवश्यक है। कश्मीर आदि काल से ही दार्शनिकता का क्षेत्र रहा है। इस प्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब यहां के साहित्य में पाना स्वाभाविक ही है। यहां भी निर्गुण और सगुण भावना की रचनाएँ उपलब्ध हैं, निर्गुण में भी दो धाराएँ हैं। एक वह जो पूर्णतः भारतीय अद्वैतदर्शन से व्याप्त काव्य है और द्वितीय जो सूफियों की दार्शनिक विचारधारा से प्रभावित है। सगुण भक्ति-काव्य की तीन धाराएँ यहां उपलब्ध हैं क्योंकि कश्मीर प्रदेश में राम और कृष्ण की भक्ति के साथ-साथ शिव-भक्ति का भी आधिक्य है और मुख्य प्रचलित मत यहाँ का शैवमत ही है।

इस प्रकार सगुण-भक्ति-काव्य में कृष्ण-भक्ति काव्य, राम-भक्ति काव्य और शिव-भक्ति काव्य उपलब्ध हैं। द्वितीय धारा प्रेमकाव्यों की है जिसमें लौकिक प्रेमकाव्य आता है। यह दाम्पत्य प्रेम की तरलता से स्निग्ध है। इसमें मानव का हास, शोक, अश्रु, मुस्कान और जीवन के कटु अनुभवों का प्रतिबिम्ब है। प्रकृति-प्रेम-काव्य में केवल प्रकृति के सौन्दर्य का ही वर्णन है। कश्मीर का प्राकृतिक सौन्दर्य और आकर्षण ही इस काव्य के लिए उत्तरदायी है। तृतीय धारा आख्यान-काव्यों की है जिनमें पौराणिक-काव्य और मसनवी-काव्य आते हैं। चतुर्थ धारा नवीन काव्य की है। इसमें देश-प्रेम, क्रान्ति और स्वच्छन्दता का वातावरण है। इन्हीं धाराओं को दृष्टि में रखकर कश्मीरी साहित्य का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :

कश्मीरी पद्य-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियां



१. आध्यात्मिक निर्गुण-काव्य :

इस काव्य का आरम्भ लगभग चौदहवीं शताब्दी में संत लल्लद्यद के 'वाख्यों' अथवा पदों से होता है। इनके काव्य में वेदान्त, योग, इन्द्रिय-निग्रह, सहजोपासना, बाह्याडम्बरों का विरोध आदि विशेष भावनाएँ उपलब्ध हैं। इनका समस्त साहित्य आध्यात्मिक स्वर से मुखरित है। इन्होंने चैतन्य गूढ़ दर्शन, भक्ति और ज्ञान से अखण्ड अव्यक्त की स्वरूपभूत सत्ता का साक्षात्कार किया है और उसकी अभिव्यक्ति काव्य में की है। ये ब्रह्मानन्द में तल्लीन रहती थीं। यहाँ तक कि इन्हें अपने शरीर की भी सुध-बुध नहीं रहती थी, जीवन के अन्तिम काल में वे अर्द्धनग्नावस्था में तत्त्वदर्शी साधक की भांति एक अद्‌भुत सम्मोहावस्था में घूमा करती थीं। वे पूर्ण रूप से संत थीं। अत्यन्त ऊँची स्थिति पर पहुंचने से एक प्रकार का मतवालापन आ जाता है, आध्यात्मिक मदिरा के नशे में मनुष्य इतना चूर हो जाता है कि भले ही उस पर लोग हंसें या उसकी खिल्ली उड़ायें इसमें उसका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। लल्लद्यद ऐसी ही अवधूत मस्तानी थीं।[1] लल्लद्यद अद्वैतवादी हैं और पूर्ण रूप से एक ब्रह्म में विश्वास करने वाली हैं।[2] इन्होंने महात्मा बुद्ध की भाँति अपनी विचारधारा को संस्कृत भाषा में नहीं अपितु साधारण जनता की भाषा में व्यक्त किया है। लल्लद्यद का काव्य किसी भी भाषा के संतकाव्य से टक्कर ले सकता है।

इसी परम्परा में नुंदर्योश, मिर्ज़काक, मास्टर ज़िन्दकौल, शमसफकीर, हबीबुल्लानौशहरी और पं० नीलकण्ठ शर्मा आदि आते हैं। लल्लद्यद के ही समकालीन परन्तु आयु में उनसे छोटे नुंदर्योश की वाणी में भी आध्यात्मिक स्वर की गूँज स्पष्ट होती है। इन्होंने जिस काव्य की रचना की है वह लल्लद्यद की विचारधारा से ही प्रभावित है। यही कारण है कि कहीं-कहीं पंक्तियों-की-पंक्तियां भी समान हैं। इनके काव्य में ज्ञान, भक्ति और सदाचार का विस्तृत उल्लेख है। इनकी परम्परा र्येश (अर्थात् ऋषि) परम्परा कहलाई और इसमें जीवन की तपोमयता के साथ-साथ आचार और विचार की सरल पवित्रता के द्वारा मानव-प्रेम की साधना पर ही ज़ोर दिया गया।[3]

रूपभवानी का समय सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। वे भी संत कवयित्री थीं, कश्मीरी और संस्कृत भाषा के साथ-साथ उन्होंने फारसी का ज्ञान भी प्राप्त किया था। उनका ध्यान सदैव अध्यात्मिकता की ओर ही लगा रहता था, उनके काव्य में योग और अद्वैत ज्ञान का समावेश है। बाह्याडम्बरों को वे मिथ्या समझती हैं। ज्यों-ज्यों वे जीवन में अग्रसर हुईं उनके अन्दर आध्यात्मिक प्रकाश बढ़ता गया और पवित्रता प्रत्यक्ष हुई। वे पवित्र और नम्र थीं, आध्यात्मिक रुचि वाली तथा ज्ञान और गुणों की अत्युत्तम आदर्श थीं। नारी-वर्ग का वे गौरव थीं।[4]

---

१. वैचारिकी, शचीरानी गुर्टू, सन् १९६२, पृ० २८२।

२. Daughters of The Vitasta, Prem Nath Bazaz, Edition 1959, P. 131.

३. कश्मीरी भाषा और साहित्य, प्रो० पुष्प, १९५६, पृ० ६।

४. Life of Rupa Bhawani, Pandit Anand Koul, 1932, Page 1.

मिर्ज़काक की कविता में भी यह आध्यात्मिक स्वर है परन्तु उनका काव्य अभी जनता के सामने अप्रकाशित होने के कारण नहीं आया है। उनकी रचनाओं की पाण्डुलिपियां श्रीनगर के ह्राँगलगुण्ड ग्राम में देखने को मिलती हैं। मिर्ज़काक का ब्रह्म निर्गुण है, उसका कोई नाम, रूप-आकार नहीं है। वह ज्ञान और योग से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रणय की महिमा का गान भी किया है।

शमसफकीर और हबीबुल्लानौशहरी यद्यपि मुसलमान हैं परन्तु उनका काव्य भी इसी श्रेणी में आता है। भारतीय संतों की भांति उन्होंने भी निर्गुण ब्रह्म का वर्णन किया है और उसे इन्द्रियातीत माना है। इनकी कविता में फारसी शब्दावली अवश्य मिलती है परन्तु उसमें अन्तर्निहित भावधारा वही है जो अन्य संत कवियों की है।

मास्टर जिन्दकौल और पं० नीलकण्ठ शर्मा आधुनिक संत कवि हैं। इनकी कविता आध्यात्मिकता से पूर्ण है। ये दोनों अपनी साधना से कश्मीरी साहित्य को समृद्ध बना रहे हैं। मास्टर जी का 'स्मरण' कविता-संग्रह उच्चकोटि का है। इनको साहित्य अकादमी से पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है और ये अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों में भी भाग ले चुके हैं।

इन कवियों के अतिरिक्त संत लछकाक, संत रामानन्द और टिकलाल गंजू की आध्यात्मिक कविताओं की पाण्डुलिपियां भी मुझे उपलब्ध हुई हैं जिनका वर्णन मैंने अगले अध्यायों में किया है। आध्यात्मिक कविता-वर्ग में परमानन्द और कृष्ण-राज़दान की भी कुछ कविताएँ आती हैं जिनमें उन्होंने निर्गुण ब्रह्म का विवेचन किया है।

कश्मीरी सूफी-काव्य :

कश्मीर में इस्लाम ने मध्य एशिया से प्रवेश पाया। यहाँ इस धर्म का प्रथम आरम्भ करने वाले सैयद बुलबुल शाह हैं। ये राजा सहदेव के समय कश्मीर आये थे।[1] बुलबुल शाह की मृत्यु सन् १३२७ ईसवी में हुई। इसके पश्चात् सैयद जलालुद्दीन, सैयद ताजुद्दीन, सैयद मसूद और सैयद यूसुफ यहां इस्लाम धर्म का प्रचार करने आये परन्तु इन सभी में सूफी सैयद अली हमदानी (शाहहमदान) ही महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तविक रूप से इन्हें ही कश्मीर में इस्लाम धर्म का प्रचारक माना जाता है।[2] कश्मीर में इनका प्रथम आगमन शहाबुद्दीन के शासनकाल में सन् १३७२ में हुआ था। उसके पश्चात् ये पुनः सन् १३७९ और सन् १३८३ में मश्मीर यात्रा के लिए आए। ये भी सूफी संत और विद्वान थे। इन्होंने अपने से पूर्ववर्ती सूफी रचनाओं का संकेत अपनी रचनाओं में किया है। इन्होंने सम्बोधन-गीत और रहस्यात्मक कविताएँ लिखी हैं जो सूफी विचारधारा, जीवन और धर्म के प्रति उदार मानवतावादी दृष्टिकोण से पूर्ण हैं।[3]

---

1. A History of Kashmir, P. N. Koul Bamzai, Edition 1962, Page 482.
२. वही, पृ० ४८३।
३. वही, पृ० ४८४।

सैयद अली हमदानी अपनी द्वितीय यात्रा के समय अपने साथ सात सौ सूफी सैयद लाये थे जिसके परिणामस्वरूप कश्मीर घाटी में तीव्र गति से सूफीमत का प्रचार हुआ। काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है अतः यह विचारधारा काव्य-क्षेत्र में भी पनपी। शेख नूरुद्दीन या नुंदर्योश की अनेक कविताएँ सूफी विचारधारा से अनुस्यूत हैं। मीर सना-उल्लाह कीरी की नातें और पैगम्बर इस्लाम की प्रशस्तियां भी इसी वर्ग में आती हैं। अब्दुल नादिम भी सूफी कवि थे। ये श्रीनगर में रैणावारी के रहने वाले थे। इनका जन्म सन् १२५८ और मृत्यु सन् १३२९ में हुई। इन्होंने तीन प्रकार के गीत लिखे हैं—नातें, मुनाजात और शहर आशूब। इनकी नातों में हृदय की मर्मस्पर्शी, भावनाओं का अंकन है, जैसे :

मके किस टाठिस नूरि बदनस
मदनी मदनस वन्दसय जान ।।[1]

(अर्थात् मक्का के प्रिय और सुन्दर शरीर वाले पर मैं अपना जीवन न्योछावर करूंगा।)

हक्कानी भी सूफी कवि थे। इनके काव्य में भी प्रेम की तीव्रता है :

हा यार' सितम गार' वुछतो ब' कते लो।
छि चशम' पुर खुमार' हान्यन्दरि हते लौ ।।[2]

(अर्थात् हे निष्ठुर प्रेमी ! देखो मैं कहाँ हूँ। मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध हूँ, अलसाये नेत्रों में क्या मादकता है !)

वे अपने को इस संसार में असमर्थ पाते हैं और ईश्वर का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं क्योंकि वही उनकी प्रार्थना सुनने वाला है और अन्तिम निर्णय देने वाला है।[3]

सगुण राम-भक्ति-काव्य-धारा :

कश्मीर के भक्तों ने राम, कृष्ण और शिव की भक्ति की है और भिन्न-भिन्न काव्यों की रचना की है। इसी आधार पर कश्मीरी साहित्य में राम-भक्ति-धारा, कृष्ण-भक्ति-धारा और शिव-भक्ति-धारा काव्य उपलब्ध हैं।

कश्मीरी राम-भक्ति-काव्य में 'राम' कौशल्यासुत और सीतापति राम ही हैं, वे निर्गुण निराकार ब्रह्म नहीं हैं। कश्मीरी साहित्य में रामभक्ति-काव्य का प्रथम रचयिता कौन है, कहा नहीं जा सकता, क्योंकि कश्मीरी साहित्य अभी अंधकार के गर्त में ही है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रथम राम-भक्त-कवि दिवाकर प्रकाश अर्थात् प्रकाशराम हैं जिन्होंने १८वीं शताब्दी में राम-सम्बन्धी प्रथम कविता लिखी है। कश्मीरी भाषा में पांच राम-काव्य उपलब्ध हैं :

१—श्री दिवाकर प्रकाश का राम अवतार चयर्थ (चरित्र)
२—विष्णु कौल का विष्णुप्रताप रामायण।

---

१. अब्दुल अहद नादिम (उर्दू में), मीर गुलाम रसूल नाज़की, प्रकाशन १९६१, पृ० ७४।
२. हक्कानी, (उर्दू में) मौलाना फितरति कश्मीरी, प्रकाशन १९५९, पृ० २२।
३. बार खोदाए क्याह छु म्योन पाए, कन्दि छम थर थर अन्दि कर न्याये। वही, पृ० ५२

३—लक्ष्मण जी बुलबुल नागाम की रामगीता ।
४—पं० नीलकण्ठ शर्मा का रामचर्यथ
५—पं० नीलकण्ठ शर्मा का रामायणि शर्मा

राम अवतार चर्यथ के रचयिता श्री दिवाकर प्रकाश अर्थात् कुरीग्राम के प्रकाशराम हैं जिनका निधन सन् १८२८ ईसवी में हुआ है। इस कृति का रचनाकाल सन् १७५४-६२ ईसवी बताया जाता है। इसकी कथावस्तु में वाल्मीकि रामायण का ही आधार है। एकाध स्थल पर कवि ने परिवर्तन अवश्य किया है। जैसे, इसमें सीता जी को मन्दोदरी की पुत्री बताया गया है। लवकुश-चरित्र में करुण वातावरण उत्पन्न करने में कवि को सफलता मिली है। रामचन्द्र जी का वनवास जाना निश्चित हुआ, उन्होंने सुन्दर वस्त्र उतारकर भोज-पत्र के वस्त्र धारण किये। यह परिधान पहनाने के लिए कैकयी को ही बुलाया गया। सारी जनता राम-राम करने लगी। सीताजी को भी अत्यधिक दुःख हुआ। वे नेत्रों से रक्त के अश्रु बहाती हुई आई।[1]

'विष्णु प्रताप रामायण' २०वीं शताब्दी की रचना है। इसके रचयिता विष्णु-कौल व्योस नामक ग्राम के निवासी थे। इसके साथ ही 'शंकर रामायण' का भी उल्लेख आता है। ये दोनों रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। श्री विष्णुकौल के पुत्र श्री ओंकारनाथ कौल के पास 'विष्णु प्रताप रामायण' की पाण्डुलिपि सुरक्षित है।

'रामगीता' के रचयिता श्री लक्ष्मण जू 'बुलबुल' हैं। वे नागाम के निवासी थे। इनका जन्म सन् १८२२ तथा निधन सन् १८८४ में हुआ है। इन्होंने रामगीता रचना के अतिरिक्त कुछ राम-सम्बन्धी भजनों की रचना भी की है। ये रामस्मरण को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। इनके अनुसार रामस्मरण से ही ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण होता है जिसके सामने सूर्य का प्रकाश भी धुंधला पड़ता है।[1]

कश्मीरी काव्य के प्रमुख रामकवि पंडित नीलकण्ठ शर्मा (जन्म सन् १८८८) हैं। इन्होंने 'रामचर्यथ' और 'रामायणि शर्मा' की रचना की है। 'रामचर्यथ' का रचना काल सन् १९१३ है। यह कवि की प्रारम्भिक रचना है, सरस और सरल है तथा इसमें रामकथा का संक्षिप्त उल्लेख है। कवि की द्वितीय रचना 'रामायणि शर्मा' है। इसका

---

१. मुकरर यि सपुद गछि राम बनवास।
वलुन तम्य बुर्ज़ त्रोवुन खास अतलास।
अन्यिख कीकी ते पोर्यनख बुर्ज़ जामय।
परुन लोग शहर सोरुय राम रामय।
सती सीता पकान गयि पान मारान।
वदान 'आ'स खून न्यतख आ'स हारान।
मार्गदर्शक (जम्मू कश्मीर विशेषांक) वर्ष ५, अंक ७, १९६५।

२. पान अद' ज्ञान बुजमल'।
नेरि नन्य गछि पल।
सिरियि सन्दि खौते न्यर्मल।
राम राम राम कयंजे ॥ वही पृ० ५५।

रचना-काल सन् १६१६-१६२६ है। यह विशालकाय ग्रन्थ है। इसका आधार वाल्मीकी रामायण, पद्मपुराण और तुलसी का रामचरितमानस है परन्तु शैली में फारसी का प्रभाव भी है। रावण द्वारा सीता-हरण के पश्चात् रामचन्द्र जी विरह-व्याकुल होकर पुष्पों से सीता जी का पता पूछते हैं।[1] युद्ध-वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है। राक्षसों और वानरों का युद्ध हो रहा है। असुर गदाओं से युद्ध कर रहे हैं जिनसे लोहा पीटने की-सी भयंकर ध्वनि होती है।[2] इन रचनाओं के अतिरिक्त श्री कृष्ण 'राज़दान', श्री राजकाक, श्री हलधर जी, गोपीनाथ बेताब और श्रीनगर के स्वामी रामानन्द ने राम-गीतों की रचना की है। श्री कृष्ण 'राज़दान' ने निर्गुण पदों की रचना के साथ-साथ कृष्ण-काव्य और राम-काव्य को भी अमूल्य निधि दी है। ये वनपूह के निवासी थे। इनका निम्न भजन अत्यन्त प्रसिद्ध है :

टोठान चय छुख भक्ति भावस,
शाम रूप लगयो रामनावस।

(अर्थात् आप भक्तों के भक्तिभाव पर रीझ जाते हैं, हे श्याम-रूप राम, मैं आपके राम-नाम की बलि-बलि जाऊंगा।)

श्री राजकाक ने सख्य भाव की भक्ति की है। वे कहते हैं—हे प्यारे सीताराम! मेरे मित्र, मैं तुम्हें तुलसीदल चढ़ाऊंगा।[3] संत श्री हलधर जी बारामुला के बौद्धमुला और नारवाव स्थानों में निवास करते थे। इनका 'राजादि राजा महाराजा रामजी' वाला भजन अत्यन्त सुन्दर है। वे द्वितीय भजन में निर्देश करते हैं कि मुझे राम की पाती आई है। मैं राम-नाम जपूँगा। मैं उसके लिए क्षण-क्षण प्रातः और सायं प्रेमासव के चषक भरूंगा :

म्ये रामुन आम नामय।
परस बो राम रामय।
बरस बो लोल जामय।
गरे गरि सुब्बु शामय।[4]

सफापुरा गांव के अध्यापक श्री गोपीनाथ बेताब ने भी रामभजनों की रचना की है। उनकी कविताओं में दीन भाव का आधिक्य है। वे राम से प्रार्थना करते हैं कि

---

१. आसान चजन दर चमन अय समन।
खयालन कमन छख बमन पय चुवन।
गुलालो दिलस दाग छुम चोन ह्यू।
निशाना तसुन्दर वनतै कथ जायि छू॥ वही, पृ० ५५।

२. असुर आंस्य गोज़व सूत्यन जंग करान,
गरान जन अहन आस्य आहंगरान।
वनन यी अकिस अख रटुन हा रटुन।
ब' खंजर चुटुन तय ख्वोरन तल खटुन॥ वही, पृ० ५५।

३. सीताराम टाठि म्यतरय म्यानि लागय दान दान तौलसी। वही, पृ० ५२।

४. वही, पृ० ५६।

काया-रूपी लंका में मन-रूपी रावण का नाश करके चित्त-रूपी विभीषण को प्रेम का राज्य सौंप दो। हे सुन्दर रघुवीर रामचन्द्र,[१] मैं अपनी दीन अवस्था का वर्णन करता हूँ। हे सर्वेश्वर, आप इस पर ध्यान दें।[३]

श्री राजकाक के अतिरिक्त अन्य रामभक्त कवियों ने रामभक्ति दास्य भाव से ही की है। वे राम को विष्णु का अवतार नहीं मानते हैं अपितु शिव, शक्ति और राम को एक मानते हैं। राम ही सर्वशक्तिमान, सर्वात्मा और सर्वेश्वर है।

कृष्ण-भक्ति काव्य-धारा :

इस धारा के प्रमुख कवि मट्टन के परमानन्द और वनपूह ग्राम के कृष्णराजदान हैं। परमानन्द ने 'सुदामा चरित' और 'राधास्वयंवर' की रचना की है। परमानन्द श्री कृष्ण के भक्त थे। उन्होंने समस्त संसार को कृष्ण के सौन्दर्य पर अर्पण किया था। वे गोकुल अपने हृदय को ही मानते थे और अपनी इच्छाओं, विचारों और मन की तरंगों की उपमा गायों से देते थे। प्रकाश स्वरूप कृष्ण जीव के मन ही में वास करता है।[२] कृष्ण जैसी संतान के लिए वासुदेव और देवकी ने तपस्या की थी और नंद-जसोदा और अन्य ग्वाले उसको झुलराने लगे।[३] राधा का जन्म भी वहीं हुआ जिसने जन्मते ही कृष्ण-कृष्ण जप करना आरम्भ किया। ऐसे शिशु को पाकर सभी प्रमुदित हुए।[४] मुरली मनोहर श्यामसुन्दर कृष्ण अजर और अमर हैं।[५]

कृष्ण राज़दान भी कृष्ण-भक्त कवि हैं। उन्होंने भक्ति-गीतों की रचना की है। उनकी कई कविताएँ इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं कि कश्मीरी लोक गीतों का एक अंग बन गई हैं।[६] कृष्ण राज़दान अपने मन को बिन्द्राबन मानते हैं जिसमें कृष्ण और गोपिकाएँ रास-क्रीड़ा कर रहे हैं।[७] श्रीकृष्ण आनन्द-स्वरूप हैं, वही भक्तों को मुक्ति देने वाला है, प्राणियों के लिए वह प्राण है, वही संजीवन बूटी है, दीनों का धन

---

१. वही, पृ० ५६।

२. गूकल हृदय म्योन तति चोन गूर्यवान।
   च्यॅथ विमर्श दीप्तिमान भगवानो।
   परमानन्द सूक्तिसार, जिन्दाकौल, संस्करण, १९४१, पृ० ६७।

३. वसुदीव दीवकी तफ ग्रास्य करान
   गछ्ख चय ज़न सन्तानो।
   जसुदा ते नन्द गूर चेय कोछि रछान। वही, पृ० ७६।

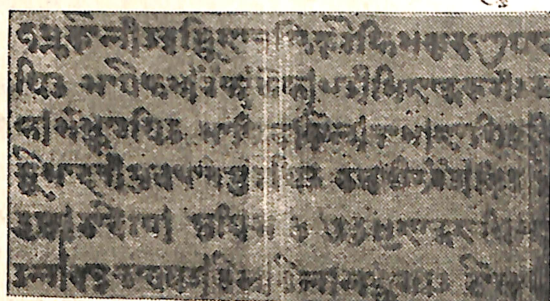
४. वही, पृ० ८६-८७।

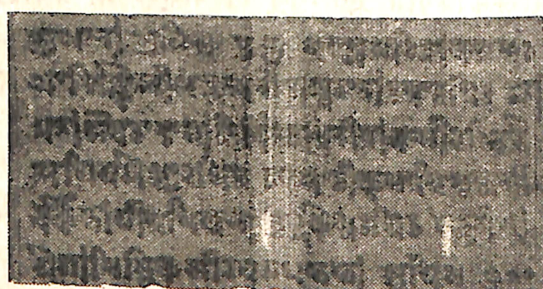
५. वही, पृ० १५७।

६. (अ) जसुदा छि नन्द गूरिस कुन वनन वनन छि राधा-कृष्ण ज़ाव।
   आ'स मुसराविथ आश्चर छु ननन वनन छि राधा-कृष्णज़ाव।
   (ब) समिथ करव प्रथयवास
   पकिव रास गिन्दने। (पाण्डुलिपि से)

७. मन म्योन बिन्द्राबन त लोलो, आत्मरूप नारायण त लोलो।
   सूत्य सूत्य वछ़ गुपियन ते लोलो, तथि मंज़ छु रास खेलन ते लोलो।
   शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३, पृ० ३१०।

है, गुणियों के लिए गुण है, वही सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है।[1] सन् १९५० के लगभग साहिब कौल ने 'कृष्ण चरित' की रचना की है। इसमें दो सौ दो पद हैं। पाण्डुलिपि के पृष्ठों की संख्या एक सौ चौंसठ है। इसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। शारदा लिपि में लिखे इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि रिसर्च लाइब्रेरी श्रीनगर में सुरक्षित है जिसके प्रथम और अन्तिम पृष्ठ का चित्र मैं यहाँ प्रस्तुत करती हूँ।





शिव-भक्ति काव्य-धारा :

कश्मीर आदि काल से ही शिव-भक्ति का केन्द्र-स्थान रहा है। भारतीय दर्शन में कश्मीर शैवमत का अत्यधिक महत्त्व है। शिव-भक्ति की भावना वहाँ के काव्य का

---

१. कृष्ण नाव छु आनन्द गन ते लोलो।
कृष्ण नाव छु मोक्ष भक्त्यन त लोलो।
मन म्योन बिन्द्रावन ते लोलो
कृष्ण नाव छु प्रान प्रानियन त लोलो।
कृष्ण नाव छु अन्न प्रानन ते लोलो
कृष्ण नाव छु संजीवन त लोलो।
कृष्ण नाव छु आरत्थन दन त लोलो।
कृष्ण नाव छु ग्वोणियन ग्वोन ते लोलो।
कृष्ण नाव छु अभिज्ञ्यथ ज्ञन त लोलो। वही, पृ० ३१२।

भी प्रमुख अंग है। शिव-भक्ति काव्य में परमानन्द का "शिव परिणय" और श्रीकृष्ण राज़दान का 'शिवलग्न' काव्य आता है। शिव ही सब देवताओं का देव है, उसी का जय-जय कार करना चाहिए।[१] हे शिव, मुझे अपनी ओर आकृष्ट करो जिससे मैं संसार-सागर से पार हो जाऊँ।[२] तुम्हारी प्रतीक्षा में भक्त ही तुम्हारा साक्षात्कार कर सकते हैं।[३] परमानन्द कवि शिव-शम्भू मन्त्र के जाप का आदेश देते हैं।[४]

कृष्ण राज़दान के अनुसार शिव ही परब्रह्म है, वही ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वही पापों का नाश करने वाला है। वही संसार का पालक और जीव का मुक्तिदाता है।[५] वही निराशाओं को आशा में परिणत करने वाला है, वही अंधकार में ज्ञान-रूपी प्रकाश दिखाता है, वही विष्णु के रूप में अवतार धारण करता है और अहंकारी जीवों का नाश करता है। वह माया से निर्लिप्त है और दूर शृंखलाओं में निवास करता है।[६] इस शिव के आनन्दामृत का पान केवल गुरु ही कर सकता है।[७] संत लछकाक ने भी कई शिव-भक्तिपूर्ण कविताएँ की हैं। उनके अनुसार शिव उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त है जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश।[८] संत रामानन्द की कविताओं में भी शिव का उल्लेख आया है।

---

१. नायक शिव राज़नि दायको विनायको जय जय कार।
परमानन्द सूक्तिसार, मास्टर ज़िन्दाकौल, संस्करण १९५८, पृ० १।

२. निम पानस कुन दिम तार भवसर,
हर हर हर शिव शंकर जी॥ वही, पृ० ३।

३. यिम चानि दयायि रूज़िथ छि प्रारान,
गारान छुहख शिवय,
तिमन च़ गारान यिम छिय चे छ़ारान,
गारान छुहख शिवय॥ वही, पृ० ७।

४. मन थिर कर पूजन प्रभु, मंतर पर शिव शम्भू॥ वही, पृ० ४८।

५. सदा शिव स्वामियो छुख पाफ गालान,
सदाशिव स्वामियो छुख जगि पालान,
सदाशिव स्वामियो छुख स्वर्ग दावान,
सदाशिव स्वामियो छुख मोकलावान।
शिव परिणय, कृष्ण राज़दान, सं० १९२३, पृ० १३८।

६. स्यठहन नावमीजन मन्ज आश थावान,
स्यठहन गटि मंज छुख गाश हावान,
विष्णु रूप छुख अवतार दारान,
स्यठहन अहंकार प्यठ छुख वालान,
सदा मायायि अन्द कनि छुख च़ रूज़िथ
तमाशाह छुख वुछान बनि क्याह अथ,
तबय छुख छोह दिवान कोहन ते बालन,
सदा शिव स्वामियो छुख ज़गि पालान। वही, पृ० १३८।

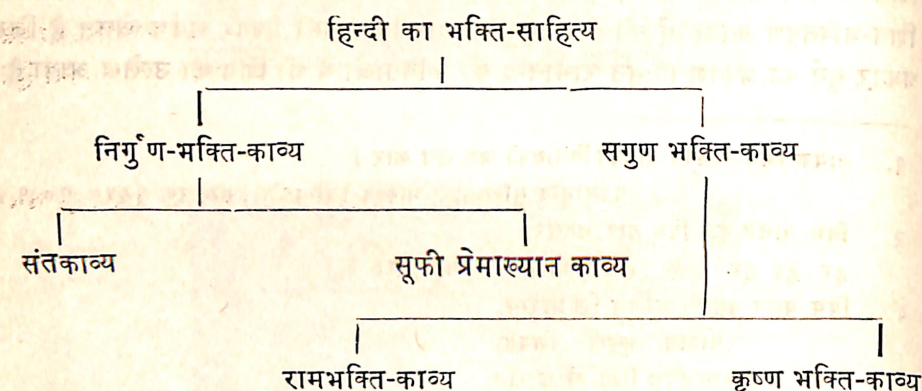
७. शिवनाथ आनन्द अमृथ चावतम,
सद्‌ग्वोर हावतम गटि मंज़ गाश। वही, पृ० ९।
(पाण्डुलिपि से)

८ शिव छुम थलि थलि यिथ रव प्रज़ले, सु प्रकाश छुम खले।

उनके अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है, जो शिव 'अमरनाथ' में है वही जीव की आत्मा में भी है। जीव ही शिव है।[1] इस प्रकार शिव-भक्तिपूर्ण कविताएँ कश्मीरी पद्य साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं।

हिन्दी का भक्ति-साहित्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल का समय संवत् १३७५ से १७०० तक माना जाता है।[2] हिन्दी में उपलब्ध भक्ति-साहित्य की दो धाराएँ हैं—निर्गुण भक्ति-साहित्य और सगुण भक्ति-साहित्य। निर्गुण भक्ति-साहित्य में संत-काव्य और सूफी प्रेमाख्यान काव्य आता है। सगुण भक्ति-साहित्य में राम-भक्ति साहित्य और कृष्ण-भक्ति साहित्य उपलब्ध है। इस प्रकार हिन्दी भक्ति-काव्य का विभाजन इस प्रकार होता है :



संत-काव्य : संत-काव्य भारतीय अद्वैत दर्शन से प्रभावित साहित्य है। संतों का ब्रह्म निर्गुण निराकार है, अवर्णनीय और अशरीरी है। वह पुष्प की सुगन्धि से भी पतला है परन्तु सर्वत्र व्याप्त है। वह इन्द्रियातीत है, गूंगे का गुड है, शून्य है, निरंजन है। संतों ने ब्रह्म को उन्हीं नामों से पुकारा है जिनसे सगुण भक्त पुकारते हैं। परन्तु इनमें तात्त्विक भेद है। निर्गुण संतों का राम परब्रह्म का प्रतीक है। वह दशरथ-सुत या सीता-पति राम नहीं है। कभी-कभी संत ब्रह्म के लिए सत्तनाम शब्द का भी प्रयोग करते हैं। इनकी भक्ति-साधना स्वभावतः निर्गुण एवं निराकार की उपासना के अन्तर्गत आती है। इन्होंने अपनी रचनाओं में भक्ति और साधना की चरम अभिव्यक्ति की है। उपासना की अपेक्षा इन्होंने ज्ञान और प्रेम को महत्त्व दिया है। इनके अनुसार जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध अंश-अंशी का सम्बन्ध है। माया का आवरण समाप्त होने पर जीव और ब्रह्म पुनः एक हो जाते हैं।

---

१. अज़ा अमरनाथ शिवय स्वज़ान्य सुय शिव।
जुव गव आत्मदीप यस नाव प्यव॥ (पाण्डुलिपि से)

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, सन् १९५८, पृ० २१३।

संतों ने माया की सत्ता मानी है। यही जीव को भ्रम में डालती है। इसके दो रूप कंचन और कामिनी हैं। यह खाण्ड के समान मीठी है परन्तु विष के समान इसका प्रभाव कटु है। संतों के अनुसार जो दृश्यमान है वह जगत् है परन्तु यह नश्वर है। यह उस कागज़ के टुकड़े की भाँति है जो जल की बूंद पड़ने पर ही गल जाता है।

संतों के अनुसार निष्काम, शुभचिंतन एवं आत्मानन्द का जीवन ही सात्त्विक जीवन है। उन्होंने स्वानुभूति, विचार-स्वातन्त्र्य, आत्मनिष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता तथा सदाचरण को महत्त्व दिया है। यही संतों का आदर्श जीवन है। वे मानव समाज के सुधार का आधार व्यक्तिगत सुधार और विकास को मानते हैं। संतों के सदाचार-नियमों का प्रस्फुटन तीन क्षेत्रों में हुआ है। ये क्षेत्र हैं—(१) व्यक्तिगत जीवन, (२) सामाजिक क्षेत्र और (३) धार्मिक जगत्। इन तीनों क्षेत्रों में कोई विभेद-रेखा नहीं है वरन् ये सभी एक-दूसरे का अवलम्बन लेकर आगे चलते हैं। ये सभी अन्योन्याश्रित हैं।[1]

संतों ने ब्रह्म को पुरुष और जीव को नारी माना है, जो कबीर आदि संतों के अनेकानेक पदों से स्पष्ट होता है। इन्होंने निर्गुणोपासना के साथ प्रेमाभक्ति का सम्मिश्रण किया है। पति-पत्नी का भाव वास्तव में प्रेम की पराकाष्ठा का सूचक है इसी कारण संतों का सबसे प्रिय प्रतीक दाम्पत्य भाव ही रहा है।

संत सम्प्रदाय का नाथ-सम्प्रदाय से सीधा सम्बन्ध है। अतः संत-कवियों पर योग का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। इनके काव्य में इंगला, पिंगला, षट्चक्र, सहस्रदल कमल, कुण्डलिनी और ब्रह्म-रन्ध्र आदि का उल्लेख मिलता है। इन्होंने सहज समाधि को अधिक प्रश्रय दिया है क्योंकि इससे इन्द्रियों की विषय-वासनादि से सहज में मुक्ति हो जाती है।

संतों का काव्य पदों और दोहों में उपलब्ध है। इन्होंने प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखे हैं। पद-संख्या के अनुसार ही सतपदी, दुपदी, अष्टपदी, बारहपदी आदि का विभाजन होता है। यह पद-परम्परा हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक युग अर्थात् अपभ्रंश काल से ही चली आ रही है। कवि जयदेव की गीतगोविन्द-जैसी रचना उक्त पद्धति या बौद्धों के चर्यापदों का ही अनुसरण करती है। विद्यापति एवं चंडीदास आदि के पद भी लगभग उसी ढंग से लिखे गये मिलते हैं।[2] इन पदों के अतिरिक्त संतों ने दोहा-चौपाई पद्धति को अपनाया है। इनकी रचनाएँ साखी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

संतों ने गूढ़ विषयों का परिचय देते समय प्रतीकों का सहारा लिया है। वे अत्यन्त गूढ़ तत्त्व और उसकी रहस्यमयी अनुभूति की अभिव्यक्ति रहस्यपूर्ण भाषा में करते हैं। इनकी उलटबासियों में प्रतीकों और रूपकों का अत्यधिक प्रयोग मिलता है।

संत-काव्य में प्रधान रूप से शान्त रस है। इस काव्य का विषय ब्रह्म रहा है अतः निर्वेद स्थायीभाव की परिणति शान्त रस में होती है। जहाँ संतों ने ब्रह्म को पति और जीव को नारी माना है वहाँ शृंगार रस भी उपलब्ध होता है। इसी प्रकार ईश्वर

---

१. हिन्दी अनुशीलन (पत्रिका) वर्ष १३, अंक १-२, सन् १९६०, पृ० ३५१।
डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित का लेख "सन्तों की नैतिक दृष्टि"

२. संत-काव्य, परशुराम चतुर्वेदी, सन् १९६१, पृ० २८।

की विशालता का वर्णन करने में अद्भुत रस का भास भी होता है परन्तु प्रधान रस शान्त और शृंगार रस ही है।

संत शिक्षित नहीं थे। कविता करना उनका लक्ष्य नहीं था। वे पहले संत थे, बाद में कवि। यही कारण है, उनकी भाषा साधारण बोलचाल की भाषा है जिसे खिचड़ी भाषा या संध्याभाषा भी कहा जाता है। संतों का लक्ष्य भावाभिव्यक्ति करना था, काव्य-रचना नहीं। यही कारण है, संत-काव्य में कलापक्ष सुदृढ़ नहीं है।

सूफी प्रेमाख्यान-काव्य : सूफी मत इस्लाम का संशोधित संस्करण है। इस मत की रचनाओं में हृदय की विशालता का आभास मिलता है। सूफियों ने लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है और सूफी मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। ये प्रेम-काव्य प्रबन्ध-काव्य की कोटि में आते हैं। इनकी कथा हिन्दू पात्रों के जीवन की घटना होती है। इन प्रेमाख्यानों में हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति भी आदर भाव प्रकट किया गया है। इन कथाओं में ऐतिहासिक पात्र भी हैं और काल्पनिक भी।

सूफियों ने ब्रह्म को नारी और जीव या साधक को प्रियतम माना है। अतः इन्होंने नायिका के सौंदर्य को ज्योति-पुंज के रूप में चित्रित किया है। यही इनका नूर है।इसके प्रति साधक आकृष्ट होता है और अपना सर्वस्व त्यागने के लिए उद्यत हो जाता है। सूफियों के अनुसार मानव के शरीर में ईश्वर का पूर्ण प्रतिरूप है। जगत् उसकी केवल आंशिक छवि है।[१]

सूफियों का मुख्य विषय प्रेम रहा है। प्रेम के वियोग पक्ष को इन्होंने अत्यधिक महत्त्व दिया है। प्रेम का वास्तविक रूप विरह में ही निखरता है। अतः सूफियों ने भी प्रेमी-प्रेमिकाओं के वियोग का मार्मिक वर्णन किया है। बारहमासे का वर्णन उत्कृष्ट है। प्रेम की संयोगावस्था का वर्णन करते समय अश्लीलता भी आई है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ये प्रबन्धकाव्य सफल नहीं कहे जा सकते। क्योंकि इनमें नायक-नायिका के जीवन का एक तत्त्व प्रेम ही चित्रित है। उनमें जीवन के विविध घात-प्रतिघातों का अभाव है, जीवन की विविधता भी नहीं है। काल्पनिक पात्र अप्राकृतिक लगते हैं। नायक राजकुमार तो हैं, पराक्रमशील हैं परन्तु उनका यह तत्त्व गौण है। उनका आदि और अन्त प्रेम है।

इन काव्यों में लोक-पक्ष और हिन्दू-संस्कृति का चित्रण अवश्य हुआ है। जनसाधारण का अन्धविश्वास और लोकव्यवहार के चित्रण के अतिरिक्त तीर्थ, व्रत, जादू-टोना, यंत्र-तंत्र-प्रयोग, लोकोत्सव तथा तत्कालीन जीवन में प्रचलित कथा-रूढ़ियों का चित्रण भी हुआ है। सूफियों ने हिन्दुओं की कहानियाँ लेकर हिन्दुओं की ही भाषा में लिखकर हिन्दू संस्कृति एवं धर्म का सामान्य परिचय दिया है। यह सांस्कृतिक समन्वय

---

१. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा० सरला शुक्ल, सं० २०१३ विक्रमी, पृ० ६८।

सूफियों की विशेष देन है। इन कवियों ने हिन्दू पात्रों में हिन्दुओं के आदर्श की ही प्रतिष्ठा की है। षट् ऋतु-वर्णन भारतीय पद्धति के अनुसार है।

सूफियों ने शैतान को स्वीकार किया है। यही शैतान भारतीय दर्शन के अनुसार माया है। यही साधक को सत्पथ से भ्रमित करता है। साधक गुरु या पीर के द्वारा शैतान से मुक्त होता है।

प्रेमाख्यानों में शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार में भी वियोग शृंगार का निखार इन रचनाओं में उपलब्ध है। संयोग शृंगार में इन कवियों ने इतनी रुचि नहीं दिखाई है। वह वर्णन अश्लीलता की सीमा पर भी पहुँच गया है। शृंगार रस के अतिरिक्त इन रचनाओं में वीर रस भी मिलता है। जहाँ नायक साहस का कार्य करते हैं वहाँ वीर रस का प्रतिपादन हुआ है। गोरा-बादल के युद्ध-वर्णन में वीररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है यद्यपि इन काव्यों में करुण, शान्त और बीभत्स रस के संकेत भी कहीं-कहीं मिलते हैं परन्तु प्रधानता शृंगार रस की ही है।

सूफियों ने अलौकिक प्रेम को व्यक्त करने के लिए लौकिक प्रेम-कहानियों का आश्रय लिया है और प्रत्यक्ष से परोक्ष सत्ता का आभास दिया है। इन कथाओं में नायिका ब्रह्म और नायक साधक के रूप में व्यक्त हुआ है। वास्तव में ये कहानियाँ जीव और ब्रह्म के एक होने की कहानियाँ हैं। पद्मावत का 'तन चितउर मन राउर कीन्हा' इसी उद्देश्य को व्यक्त करता है।

सूफियों ने प्रेमाख्यानों की रचना में जिस अवधी भाषा का प्रयोग किया है वह अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है। यह अवधी साहित्यिक न होकर लोक-प्रचलित अवधी है। इसमें कहीं-कहीं ब्रज और भोजपुरी भाषा की शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। अरबी-फारसी के शब्द भी कहीं-कहीं मिलते हैं। अवधी भाषा के मुहावरों और लोकोक्तियों का भी सूफी कवियों ने अच्छा प्रयोग किया है।

सूफियों के काव्य में समासोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। फारसी की मसनवी पद्धति से तो वस्तुतः उत्तरी भारत के भी वे सूफी कवि अपने को नहीं बचा सके जिन्होंने अपनी प्रेम-गाथाओं को इधर की अवधी में लिखा तथा जिन्होंने दक्खिनी हिन्दी वालों से कहीं अधिक भारतीय प्रसंगों को भरसक सुरक्षित रखने की चेष्टा भी की।[1] ये काव्य दोहा-चौपाई छन्द में लिखे गये हैं जो वर्णनात्मकता के लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं।

सूफी कवियों में कुतुबन, मंझन, जायसी आदि प्रमुख हैं।

राम-भक्ति काव्य

राम-भक्त कवियों के उपास्यदेव विष्णु के अवतार राम हैं। वे ही परम-ब्रह्म-स्वरूप हैं और युग-युग में अवतार लेते हैं। ये राम दशरथ-सुत और सीता-पति राम हैं।

१. हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान, श्री परशुराम चतुर्वेदी, सन् १९६२, पृ० १९४।

इनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। डा० राजकुमार पाण्डेय के अनुसार, रामचरितमानस से अधिक तुलसीदास की गीतावली में शील का निरूपण अधिक है। हमें उनके महाकाव्य में शील की वैसी कोमल एवं ऋजु मुद्रायें, हृदय के विविध भावों की वैसी सहज स्वाभाविक एवं स्पष्टतम विवृत्ति नहीं दिखाई देती जैसी कि गीतावली की मुक्त काव्य-राशि में हमें पग-पग पर परिलक्षित होती है।[१] राम-भक्ति काव्य में श्री रामचन्द्र का लोक-रक्षक रूप ही प्रधान है। वे मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं और आदर्श के प्रतिष्ठापक हैं। राम-काव्य में राम-भक्ति के साथ-साथ शिव, कृष्ण आदि अन्य देवताओं की उपासना भी उपलब्ध है। राम काव्य के सम्राट तुलसीदास ने स्वयं रामचन्द्र-द्वारा सेतुबन्ध के अवसर पर शिव की पूजा करवाई है। अत: हम कह सकते हैं कि राम-भक्ति काव्य की भक्ति-भावना बड़ी उदार है। इस साहित्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति का भी समन्वय है। सगुणवाद और निर्गुणवाद में भी राम-कवियों ने एक-रूपता दिखाई है जिससे राम-काव्य की समन्वयात्मक भावना पुष्ट होती है।

राम-काव्य लोककल्याण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इस काव्य में आदर्श गृहस्थ और लोक-सेवी राम-सीता को उपास्य माना गया है। जिससे मानव-जीवन का स्तर उच्च बन जाता है। इस साहित्य में उच्छृंखल प्रेम का चित्रण नहीं है अपितु एक आदर्श को उपस्थित किया गया है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श सम्राट् हैं, कौशल्या आदर्श माता है, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई हैं, सीता आदर्श पत्नी है और हनुमान आदर्श सेवक हैं। राम-काव्य में राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, भाई-भाई और स्वामी-सेवक के आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इस काव्य में जीवन की समस्त वृत्तियों का चित्रण करके सर्वांगीणता उपस्थित की गई है। राम ब्रह्म होते हुए भी मानव रूप में हैं। उनका आदि और अन्त आदर्श है।

राम-भक्ति काव्य की भक्ति-पद्धति वैधी है और इसमें नवधा भक्ति के प्राय: सभी अंगों का विधान है। इन कवियों ने सेवक-सेव्य भाव की भक्ति को स्वीकार किया है और इसी को संसार-सागर से पार होने का एकमात्र आश्रय माना है। इन कवियों का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। इनकी भक्ति-पद्धति विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित है। रामकवि जीव-ब्रह्म में अंश-अंशी सम्बन्ध मानते हैं और जीव को सत्य मानते हैं क्योंकि वह ब्रह्म का अंश है।

राम-काव्य प्रधानत: साहित्यिक अवधी भाषा में लिखा गया है परन्तु ब्रज-भाषा का प्रयोग भी साथ-साथ हुआ है। तुलसीदास जी के ग्रन्थ या तो अवधी में हैं या ब्रजभाषा में।[२] केशवदास की रामचन्द्रिका में भी ब्रजभाषा का प्रयोग है। राम-काव्य में अन्य भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हैं। तुलसीदास का शब्द-चयन अत्यन्त उपयुक्त और पांडित्यपूर्ण है।

---

१. रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, डा० राजकुमार पाण्डेय, सन् १९६३, पृ० १९४।

२. तुलसीदास की भाषा, डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, २०१४ वि०, पृ० ३६४।

राम-भक्त कवि प्रायः सभी विद्वान थे, उन्होंने विविध छन्दों और अलंकारों का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है। इस काव्य में रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार मुख्य रूप से मिलते हैं। केशवदास को छोड़कर अन्य किसी कवि ने शब्दालंकारों को महत्त्व नहीं दिया है। इस काव्य के प्रसिद्ध छन्द दोहा और चौपाई हैं परन्तु इनके अतिरिक्त कुंडलिया, सवैया, सोरठा, घनाक्षरी आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है।

राम-काव्य में सभी शैलियों की रचनाएँ मिलती हैं। रामचरितमानस और अष्टयाम प्रबन्ध-काव्य हैं, राम-गीतावली और रामध्यान-मंजरी गीत-पद्धति पर लिखी गई रचनाएँ हैं। रामायण महानाटक और हनुमन्नाटक में संवाद पद्धति है। तुलसी काव्य में ही दोहा-चौपाई वाले चरित-काव्य, विनय के पद, लीला-पद आदि उपलब्ध हैं। तुलसीदास इस शाखा के कवि-सम्राट् हैं, वे दार्शनिक कवि हैं। उनका काव्य भक्ति रस का काव्य है। उनमें काव्यकवित्व भी है और शास्त्रकवित्व भी।[१] उनका समग्र साहित्य रसमय है। उनका रामचरितमानस नौ रसों से परिपूर्ण है। इनके गीतकाव्य में नौ रसों में से कुछ रस मिल जाते हैं किन्तु विनयपत्रिका तो भक्ति-रस का प्रौढ़ काव्य है।[२] इस शाखा के अन्य कवि केशवदास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम, महाराजा विश्वनाथसिंह, महाराजा रघुराजसिंह तथा आधुनिक काल के अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त और निराला उल्लेखनीय हैं।

कृष्ण-भक्ति काव्य

कृष्ण-काव्य का उपास्य देव श्रीकृष्ण है। कृष्ण की उपासना अति प्राचीन काल से होती चली आई है। कृष्ण के नेतृत्व में किसी सात्वत धर्म का स्थापित किया जाना तथा उनके ही आधार पर भागवत सम्प्रदाय का प्रतिष्ठित होना भी मान्य रहता आया है।[३] माधुर्य भक्ति के दार्शनिक, साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक सभी आधार दृढ़ हैं। दार्शनिक दृष्टि से भक्त भगवान् की लीलाओं का दर्शन करके भाव-मग्न हो मधुर प्रेम की अनुभूति करता है।

साहित्यिक दृष्टि से वह राधा-कृष्ण के मधुर लीला-सम्बन्धी सरस पदों को पढ़ता और सुनता है। इसमें वर्णित विभावादि से उसका मधुर रति स्थायी भाव रस-दशा को प्राप्त होता है जिससे उसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भक्त राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं के ध्यान द्वारा अपने काम-भाव को उन्हीं में लीन कर देता है। रूपान्तर की इस प्रक्रिया द्वारा काम-भाव के निःशेष हो जाने पर उसे मधुर प्रेम का अनुभव होता है।[४]

---

१. तुलसीदर्शन मीमांसा, डा० उदयभानुसिंह, २०१८ वि०, पृ० ३६६।
२. तुलसी के भक्तत्यात्मक गीत, डा० वचनदेवकुमार, सन् १९६४, पृ० २०२।
३. भक्त-साहित्य में मधुरोपासना, श्री परशुराम चतुर्वेदी, संवत् २०१८ वि०, पृ० १४९।
४. ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य में माधुर्य-भक्ति, डा० रूपनारायण, संस्करण १९६२, पृ० २२४।

कृष्ण-भक्ति काव्य में श्रीकृष्ण का गोपाल कृष्ण एवं गोपीबल्लभ रूप ही अपनाया गया है। कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण के नीति-विशारद नरेश और धर्मोपदेशक रूप को गौण बनाकर उसकी ब्रज-लीलाओं का गान किया है। इसी लीला से उन्हें असीम आनन्द की उपलब्धि होती है। इसी कारण कृष्ण-काव्य में कृष्ण की वात्सल्यपूर्ण लीलाएँ, सख्य और माधुर्य भाव की लीलाओं का प्राचुर्य है। इन कवियों का उद्देश्य राधा-कृष्ण और गोपी-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का स्मरण, चिंतन और गायन करना ही प्रधान रहा है। यह काव्य माधुर्य भाव से व्याप्त है। कृष्ण-काव्य के सम्राट् सूरदास ने कृष्ण की प्रेमलीलाओं का वर्णन संयम और सूक्ष्म भावमयता से किया है जो पीछे के काव्यों में नहीं मिलता है। यही कारण है, कृष्ण-काव्य की प्रणय-लीलाओं की परिणति आगे रीतिकालीन काव्य में लौकिक श्रृंगार के रूप में हुई। कृष्ण-कवियों ने भागवत का आधार लेकर कृष्ण-चरित में नवीन रंग-रूप भर दिया। कृष्ण-भक्त कवियों की रचनाओं पर भागवत का प्रभाव इतना अधिक है कि कभी-कभी तो 'सूरसागर' भी भागवत का अनुवाद-सा लगता है।

कृष्ण-काव्य में श्रृंगार और वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। श्रृंगार में संयोग और वियोग दोनों पक्ष चरम सीमा पर पहुँच गये हैं परन्तु वियोग की तीव्रता की मार्मिक अभिव्यंजना अत्यधिक मिलती है। 'मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो', 'मैया कबहुँ बढ़ैगी चोटी' आदि पदों में वात्सल्य का मनोवैज्ञानिक चित्रण उत्कृष्ट हुआ है। सूरदास ने वात्सल्य और श्रृंगार रस के चित्रण में अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है।

कृष्ण-काव्य में एकांगिता अवश्य है। इसमें जीवन के विविध पक्षों का अभाव है। इसमें श्रीकृष्ण का आनन्दमय रूप चित्रित किया गया है। श्रीकृष्ण परमात्मा है और गोपिकाएँ जीवात्मा। राधा माधुर्य भाव की भक्ति का उच्चतम प्रतीक है। इसमें जीवन के वात्सल्य और प्रणय पक्ष का वर्णन और निखार है। कृष्ण-काव्य में राम-काव्य की लोक-मंगल भावना का अभाव है।

कृष्ण-भक्त कवियों ने प्रेमलक्षणा-भक्ति को अपनाया है और पात्रों के स्वभाव-भेद के अनुसार वात्सल्य, सख्य और कान्ता भाव में परिणत किया है। इन्होंने कान्ता भाव की भक्ति को ही उच्च माना है और उसी को महत्त्व दिया है। इनका प्रेम आदर्श प्रेम है।

कृष्ण-भक्त कवियों ने काव्य की रचना गेय मुक्तक रूप में ही की है। इन्होंने जीवन के किसी एक विशेष पक्ष को लिया है और उसी पक्ष के मार्मिक संकेत दिये हैं अतः मुक्तक की रचना करने में ये कवि सफल हुए हैं। कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन चित्रित करने के लिए यह शैली उपयुक्त नहीं थी। कृष्ण-काव्य में कथात्मक प्रसंगों में चौपाई, सार, सरसी छन्दों का प्रयोग भी मिलता है परन्तु प्रधानता गीति पदों की ही है। नन्ददास की रूपमंजरी और रसमंजरी ग्रन्थों में दोहा-चौपाई का प्रयोग भी मिलता है। इसके अतिरिक्त इस काव्य में सवैया, छप्पय, गीतिका और अरिल्ल छन्दों का भी प्रयोग मिलता है।

अधिकांश कृष्ण-काव्य ब्रजभाषा में लिखा गया है। यह श्रीकृष्ण की जन्मभूमि ब्रज की मधुर भाषा है जिसका प्रमाण भारतेन्दु काल के कवियों के इस भाषा के प्रति अगाध मोह से स्पष्ट होता है। कृष्ण-भक्ति काव्य में ऋजु तत्त्वों के प्रधान्य के कारण अभिधा शक्ति का ही प्राचुर्य है। चित्रांकन और भाव-व्यंजना के लिए लक्षणा का प्रयोग किया गया है। माधुर्य भक्ति की अभिव्यक्ति में राग-तत्त्व के प्राधान्य के कारण मानवीय दुर्बलताओं की अभिव्यक्ति भी हुई है। दुर्बल व्यक्ति का अस्त्र होता है व्यंग्य क्योंकि वह प्रतिशोध लेने में असमर्थ रहता है। यही कारण है, व्यंग्य, कटूक्ति, उपालम्भ सभी कुछ उन्होंने अपने कृष्ण को अर्पित किये हैं जिसके फलस्वरूप कृष्ण-भक्ति काव्य में व्यंजना का संयोजन सबल बन पड़ा है।[१] प्राय: सर्वत्र कृष्ण-भक्त कवियों की व्यंजना भाव द्वारा प्रेरित होने के कारण रसात्मकता से सयुक्त है।

इस धारा के प्रमुख कवि सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास, परमानन्द दास तथा अष्टछाप के अन्य कवि हैं।

---

१. ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना-शिल्प, डा० सावित्री सिन्हा, संस्करण, १९६१ ईसवी, पृ० १५६।

२ संतों को प्रभावित करने वाले विभिन्न दार्शनिक मत

हिन्दी और कश्मीरी साहित्य की विभिन्न काव्य-धाराओं का विश्लेषण और तुलनात्मक अध्ययन करने से पूर्व उन धार्मिक मतों की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है जो इन धाराओं के कवियों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर गये हैं। भारतवर्ष प्राचीन काल से ही दार्शनिकता प्रधान देश रहा है, भिन्न-भिन्न युगों में यहाँ भिन्न-भिन्न अध्यात्म सम्बन्धी विचारधाराएँ प्रस्फुटित हुई हैं जिनकी परम्परा वेदों से ही चली आ रही है।

वेदान्त दर्शन भारतीय अध्यात्म-शास्त्र का चरम विकास माना जाता है। वेदान्त का अर्थ वेद का अंत या सिद्धान्त है। जैमिनी की पूर्वमीमांसा में वेदों में निहित कर्मकाण्ड और बादरायण व्यास की उत्तरमीमांसा में उपनिषदों का दार्शनिक विवेचन है। वेदान्त दर्शन की मुख्य छः धाराएँ प्रचलित रही हैं :

१. अद्वैतवाद
२. विशिष्टाद्वैत
३. द्वैताद्वैत
४. शुद्धाद्वैत
५. द्वैतवाद
६. अचिंत्यभेदाभेद

अद्वैत दर्शन : इस दर्शन का प्रसिद्ध आधार ग्रन्थ बादरायण व्यास जी का ब्रह्म-सूत्र है। भिक्षुओं अर्थात् संन्यासियों के लिए उपादेय होने के कारण इन सूत्रों को 'भिक्षुसूत्र' भी कहते हैं।[1] पांच सौ पचपन सूत्रों वाले इस ग्रन्थ की व्याख्या भिन्न-भिन्न आचार्यों ने की है। ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय तथा फलाध्याय हैं। इसके तृतीय अध्याय में सगुण विद्या-निरूपण तथा निर्गुण ब्रह्म-विद्या का निरूपण मिलता है। शंकराचार्य के पूर्व इस मत के प्रधान प्रतिष्ठापक आचार्य गौडपाद हैं। परन्तु पूर्ण प्रचार और प्रसार का श्रेय शंकराचार्य (जन्म ७८८, मृत्यु ८२० ई०) को ही दिया जाता है जिन्होंने अल्प आयु में ही उपनिषद् भाष्य,

---

१. भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय, संस्करण षष्ठ १९६०, पृ० ४०८।

गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, माण्डूक्य कारिका भाष्य, विष्णुसहस्रनाम भाष्य, सौन्दर्य लहरी आदि रचनाएँ की हैं। इन्हीं के नाम से यह मत 'शंकर अद्वैत' प्रचलित है।

शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म : इस समस्त संसार में एक निर्विकार सत्ता सदैव वर्तमान रहती है जो ब्रह्म कहलाती है। ब्रह्म का विचार शंकराचार्य के अनुसार दो दृष्टियों से किया जा सकता है—व्यावहारिक दृष्टि से और स्वरूप-लक्षण की दृष्टि से। व्यावहारिक दृष्टि से जगत को सत्य माना जाता है और ब्रह्म को इसका मूल कारण, सृष्टिकर्ता, पालक और संहारक। वह सर्वशक्तिमान है—इस रूप में वह ईश्वर या सगुण ब्रह्म है जिसकी उपासना की जाती है। स्वरूप-लक्षण की दृष्टि से "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अर्थात् ब्रह्म सत्य और अनन्त ज्ञान-स्वरूप है। इसी को शंकराचार्य के अनुसार परब्रह्म कहा जाता है। यही निर्गुण, निराकार, निर्विशेष ब्रह्म है। सगुण ब्रह्म मायिक है, निर्गुण ब्रह्म पारमार्थिक। "विश्वातीत रूप में ब्रह्म सर्व उपाधियों से रहित है। अतएव वे परब्रह्म को निर्गुण मानते हैं।[१] आत्मा ही ब्रह्म है, विषयी ही विषय है।[२] यही ब्रह्म सत्‌चित् और आनन्द है। और मायावच्छिन्न होने पर यही सगुण ब्रह्म या अपरब्रह्म या ईश्वर कहलाता है। सगुण और निर्गुण इसी ब्रह्म के दो पक्ष हैं, दोनों वास्तव में एक हैं परन्तु भिन्न दृष्टिकोणों के फलस्वरूप सगुण और निर्गुण का भेद माना जाता है। "जगत की अपेक्षा से वह ईश्वर है, निरपेक्ष रूप से वह परब्रह्म है।"[३] ब्रह्म काल और स्थान की सीमा से परे है, सर्वोच्च है, सजातीय, विजातीय और स्वगत है। इसको प्राप्त करने का साधन शंकराचार्य के अनुसार ज्ञान है। यह दृश्यमान जगत अपने आप ही निर्मित नहीं हो सकता है, यह ब्रह्म पर ही आधारित है परन्तु इसकी परिवर्तन-शीलता से ब्रह्म की नित्यता प्रभावित नहीं हो सकती है। निर्गुण ब्रह्म ही इस समस्त संसार का आधार है।[४] उपनिषदों में भी ब्रह्म को 'नेति नेति' कह कर ही समझाया गया है। अतः सब गुणों के निषेध से बचा तत्त्व ही ब्रह्म है। उपनिषदों का ब्रह्म भी वस्तुतः निर्गुण ही है। निर्गुण ही ब्रह्म का पारमार्थिक रूप है।

---

१. भारतीय दर्शन, चट्टोपाध्याय—संस्करण १९६१, पृ० २४६।

2. "Atman is Brahman. The purely subjective is also the purely objective. Brahman seems to be mere abstract being, even as Atman seems to be mere abstract subjectively to the eyes of intellect." Indian Philosophy, Vol II, Radhakrishanan Edition 7th 1956, page 537-38.

३. भारतीय दर्शन, चट्टोपाध्याय दत्त, संस्करण १९६१, पृ० २४७।

4. "Brahman, as the absolute nirguna Brahman (qualityless Brahman) is the basis of the phenomenal world, presided over by Isvara.—AS ource Book In Indian Philosophy, by Radha-krishnan and Noore, Edition 1957, page 507.

जीव : वेदान्त के अनुसार जीव भी ब्रह्म के समान ही अद्वैत है। अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य ही जीव है, जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। माया के कारण ये दो दिखाई देते हैं। जीव आत्मचैतन्य जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं तथा अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय इन पाँच कोषों में प्राप्त होता है। परन्तु आत्मा का शुद्ध चैतन्य रूप इन तीन अवस्थाओं तथा पंचकोषों से परे है। "आत्मा तथा ब्रह्म में नितान्त ऐक्य है। नानात्व ज्ञान से ही संसार है तथा एकत्वज्ञान से ही मुक्ति है।"[१] शंकर के अनुसार आत्मा ज्ञान-रूप भी है और ज्ञाता भी। ज्ञाता वस्तुतः ज्ञान से भिन्न नहीं होता। जीव को अपना स्वरूप-ज्ञान नहीं होता। परिणाम-स्वरूप उसे क्लेश भोगने पड़ते हैं। जीव वास्तव में सत् चित् आनन्द ब्रह्म-स्वरूप है परन्तु अविद्या के कारण उसे वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं है।" उसे अन्य दार्शनिक अणु परिमाण वाला मानते हैं, परन्तु अद्वैत मत में जीव ब्रह्म के समान ही विभु है तथा नाना न होकर एक है।"[२] ईश्वर सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक है परन्तु जीव अबोध, लघु और क्षीण है।[३]

माया : अद्वैतमत के अनुसार माया न 'सत्' है और न 'असत्'। इसको अनिर्वचनीय कहा जाता है। यह ईश्वर की शक्ति है। जिस प्रकार अग्नि से दाहकता अभिन्न है उसी प्रकार ईश्वर से माया अभिन्न है।[४] माया ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप पर आवरण डाल देती है और संसार के रूप में आभासित करती है। शंकर के अनुसार यह बाह्य संसार भ्रम है, माया है।[५] माया अनादि है, ब्रह्म से अभिन्न और अच्छेद्य है। यह शंकर के अनुसार केवल विवर्त की सृष्टि करती है। "इस लीला को अज्ञानी सत्य समझ लेते हैं परन्तु जो तत्त्वदर्शी हैं वे इस लीला को समझ जाते है और इस मायामय

---

१. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, संस्करण षष्ठ १९६०, पृ० ४५५-५६।

२. हिन्दी सासित्य का वृहत् इतिहास, राजबलीपाण्डेय, संस्करण प्रथम, संवत् २०१४, पृ० ५३२।

3. "Samkara holds that while Isvara is omniscient, all powerful and all pervading, the jiva is ignorant, small and weak"
—Indian Philosophy Vol. II, Radhakrishnan, Edition 7th 1956, page 608.

4. "Maya has no separate dwelling place. It is in Isvara even as heat is in fire."
—Indian Philosophy Vol. II, Radhakrishnan 7th Edition 1956, page 572.

5. "The world appearance is Maya (illusion). This is what Samkara emphasizes in expounding his constructive system of the Upnishad doctrine."
A History of Indian Philosophy, Vol. I, Dasgupta, Edition 3rd. 1951, page 442.

संसार में केवल ब्रह्म मात्र उन्हें सत्य जान पड़ता है।''[१] माया के दो रूप हैं, विद्या माया और अविद्या माया। शंकर ने माया का अविद्या रूप ही स्वीकार किया है। माया ही ईश्वर की वह शक्ति है जिससे संसार की सृष्टि होती है। श्री सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता के अनुसार वेदान्त में माया और अविद्या दो भिन्न वस्तुएँ मानी गई हैं। उनके अनुसार माया अज्ञान का वह रूप है जो उच्च की ओर अग्रसर करता है और अविद्या वह रूप है जो अपवित्र की ओर बढ़ाता है।[२] माया के द्वारा ही ईश्वर संसार की सृष्टि कर सकता है। माया ईश्वर के लिए केवल लीला की इच्छा है, यह ईश्वर को मुग्ध नहीं कर सकती है। जीव अज्ञान के कारण उसके वश में आता है। माया अज्ञानी के भ्रम का कारण है। शंकराचार्य के अनुसार माया ब्रह्म की शक्ति है। यह उनकी एक इच्छा मात्र है जिसका वे चाहने पर परित्याग कर सकते हैं परन्तु रामानुजाचार्य के अनुसार माया ब्रह्म का नित्य स्वरूप है।

जगत् : अद्वैतमत के अनुसार 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है। जगत परिणाम और प्रवृत्ति का विषय है। शंकराचार्य के अनुसार सत्य वही है जो सतत् रूप से विद्यमान है। अतः जगत् सत्य नहीं माना जा सकता क्योंकि यह परिवर्तनशील है। सत्य वह है जो त्रिकालाबाध्य हो अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य तथा स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्ति इन तीन दशाओं से बाधित न हो। इस रूप में ब्रह्म ही सत्य है जो तीनों कालों और अवस्थाओं में समभाव से उपस्थित होता है और समस्त नानात्मक जगत् मिथ्या है। इस समस्त संसार का आधार ब्रह्म ही है।[३] यह सत् भी नहीं, असत् भी नहीं। जब तक इसका अस्तित्व है तब तक यह सत्य है और जब इसका अस्तित्व नहीं रहता तब यह असत् है।[४]

---

१. भारतीय दर्शन, चट्टोपाध्याय दत्त संस्करण १९६१, पृ० २३०।

2. "Maya is that aspect of Ajnana by which only the best attributes are projected, whereas Avidya is that aspect by which impure qualities are projected."
   A History of Indian Philosophy, Vol. I. Dasgupta, 1951, page 475.

3. "Samkara argues that the supreme reality of Brahm is the basis of the world."
   Indian Philosophy, Vol. II, Radhakrishnan, Edition 7th 1956, page 582.

4. "Since it exists for a time it is sat(is) but since it does not exist for all times it is as asat (is not)"
   A History of Indian Philosophy, Vol. I, Edition 3rd. 1951, page 443.

मोक्ष : अद्वैतवादी, उपनिषदों के अनुसार, मोक्षावस्था को आनन्दावस्था मानते हैं। मोक्ष का अर्थ ब्रह्मानुभूति है। मोक्ष का तात्पर्य ब्रह्म से तादात्म्य है।[1] शंकराचार्य मुक्ति का साधन ज्ञान मानते हैं, उपासना नहीं। उपासना से केवल चित् की शुद्धि होती है और जीव का ब्रह्म में लय हो जाना ही मुक्ति है। आत्म-साक्षात्कार में 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ का भाव आता है और जीव और ब्रह्म का भेद हटकर मोक्ष का साक्षात् अनुभव होता है। उस समय यह भावना आती है कि निर्विशेष नित्यशुद्ध-बुद्ध मुक्त स्व-प्रकाश चिन्मात्र ब्रह्म मैं हूँ। जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं।

विशिष्टाद्वैतवाद : विशिष्टाद्वैतवाद के प्रमुख प्रचारक रामानुजाचार्य (१०३७-११३७ ई०) हैं। इनसे पूर्व भी नाथ मुनि और यमुनाचार्य ने इसकी परम्परा प्रारम्भ की थी। रामानुजाचार्य ने ईश्वर, जीव और जगत् की पारमार्थिक सत्ता सिद्ध की है। श्री भाष्य, वेदान्तदीप, वेदान्तसार, वेदार्थ संग्रह आदि इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं।

ब्रह्म : रामानुजाचार्य के अनुसार ईश्वर के तीन तत्त्व हैं —चित्, अचित् तथा ईश्वर। चित् से जीव, अचित् से प्रकृति या जड़ तथा ईश्वर से सबके अन्दर एक अन्तर्यामी तत्त्व से तात्पर्य है। रामानुजाचार्य के अनुसार ईश्वर चित्-अचित् दोनों तत्त्वों से युक्त है। जीव और जगत् ईश्वर के ही अधीन रहते हैं। रामानुजाचार्य का ब्रह्म निर्गुण निर्विकल्प नहीं अपितु सगुण सविशेष है। उपनिषदों में जो निर्गुण ब्रह्म का विवेचन मिलता है उसके सम्बन्ध में रामानुजाचार्य का कथन है कि इस निर्गुण ब्रह्म से यह तात्पर्य है कि उस ब्रह्म में अल्पज्ञ जीवों के राग-द्वेष आदि गुण वर्तमान नहीं हैं। रामानुजाचार्य का ब्रह्म अनन्त गुणों का भण्डार है, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान और दयालु है, वही सृष्टि का पालन और संहार करता है। ब्रह्म को निर्गुण इसलिए कहा गया है कि वह प्रकृति से उत्पन्न अशुभ गुणों से शून्य है।[2] वही नानात्व को अपनी एकता में समन्वित करता है। अचित् और चित् उसकी ही शक्तियाँ हैं। रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म एक है। यह सारा ब्रह्माण्ड उसी का शरीर है। संसार के विभिन्न पदार्थ उसी में निहित हैं।[3] जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध अंश-अंशी और विशेषण-विशेष्य का है। ईश्वर प्रधान तथा नियामक होने से विशेष्य है और जीव तथा जगत् अप्रधान होने से विशेषण है। रामानुजाचार्य ने ब्रह्म को 'कारण ब्रह्म' और 'कार्य ब्रह्म' माना है। जब

---

1. "Samkara declares in many passages that the nature of liberation is a state of oneness with Brahmn"
   Indian Philosophy, Vol II, Radhakrishnan, Edition 7th 1956, page 639.
२. भारतीय दर्शन, डा० यदुनाथ सिन्हा, संस्करण प्रथम. १९६०, पृ० ३६१।
3. "He is one. The Universe is his body so that all the diversities that there are in the world are contained in Him."
   The Philosophy of Ramanuja, Dr. Krishna Datt Bharadwaj, Edition Ist, 1958. page 85.

सृष्टि होती है तो ब्रह्म जीवों तथा भौतिक विषयों में व्यक्त होता है। इसे 'कार्य ब्रह्म' कहा गया है और जब प्रलय में विषयों के अभाव में ब्रह्म चित् (अशरीरी जीव) और अव्यक्त अचित् (निर्विषयक प्रकृति) से युक्त रहता है तो उसे 'कारण ब्रह्म' कहते हैं। इसी ईश्वर के इन्होंने पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी तथा अर्चावतार पंचविध रूपों की कल्पना की है। "रामानुज का ईश्वर के विषय में जो मत है वह पाश्चात्य (Theism) के सदृश है। Thiesm का संकुचित अर्थ है ऐसे ईश्वर में विश्वास जो जगत् में व्याप्त है, उससे परे भी है, जिसका कोई विशिष्ट व्यक्तित्व (Personality) है और जो अपनी इच्छा-शक्ति के द्वारा किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जगत् की सृष्टि करता है।[1] रामानुजाचार्य के मतानुसार ब्रह्म चित् और अचित् अंशों से विशिष्ट होते हुए भी एक ही है। वह भूमा है, सत्य ज्ञान और आनन्द से युक्त है, वह नित्य और अनन्त विशिष्ट गुणों से युक्त है। वह जगत् की रक्षा और भक्तों पर कृपा करता है।

जीव --रामानुजाचार्य जीव और ब्रह्म को एक नहीं मानते हैं, जैसे शंकराचार्य मानते हैं। विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी सम्बन्ध है। जिस प्रकार अंश का अस्तित्व अंशी पर, गुण का द्रव्य पर और जीवित शरीर का अस्तित्व आत्मा पर निर्भर है उसी प्रकार मनुष्य का अस्तित्व ईश्वर पर निर्भर है। देह में स्थित आत्मा ही जीव है, वह शरीर, प्राण, बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों से भिन्न है। वह नित्य, अणु और आनन्द-रूप है। रामानुजाचार्य के अनुसार भिन्न-भिन्न दृष्टियों से जीव और ईश्वर का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न है। ईश्वर पूर्ण और अनन्त है, जीव अपूर्ण और अणु है। शंकराचार्य ने आत्मा को विभु माना है।

विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म से जीव भिन्न है। जीव कर्मों के कारण सुख-दुःख का भोग करते हैं। ईश्वर ऐसा नहीं करता है। "जीव गौण ज्ञाता है और ईश्वर प्रधान ज्ञाता है।"[2] ब्रह्म स्रष्टा, नियामक, पालक और स्वामी है। जीव ब्रह्म की ही सृष्टि है। ब्रह्म उसकी रक्षा, पालन और शासन करता है। जीव ब्रह्म पर आश्रित है। ब्रह्म उपास्य है और जीव उपासक। ब्रह्म ही जीव का ध्येय है, जीव ब्रह्म का विशेषण है, उसका अंश है। प्रपत्ति (शरणागति) ही रामानुजाचार्य के अनुसार जीव की आध्यात्मिक उन्नति का श्रेष्ठ साधन है।

जगत – अद्वैतमत की विवेचना करते हुए हम यह कह आये हैं कि शंकर ने जगत् को मिथ्या माना है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म सत्य है, और जगत् मिथ्या है परन्तु रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं। ईश्वर का अचित् तत्त्व ही प्रकृति या जड़ जगत् है। सृष्टि के पूर्व जगत् सत्व, रजस् और तमस से निर्मित प्रकृति के रूप में ब्रह्म के अन्दर ही माना जाता है, जीव भी सृष्टि-पूर्व ब्रह्म के अन्दर ही निवास करता है। जीव और जगत् ब्रह्म के ही तत्त्व हैं। यह ब्रह्माण्ड उसी सर्वशक्तिमान से आया है और नियत समय के पश्चात् पुनः उसी में

---

१. भारतीय दर्शन, चट्टोपाध्याय दत्त, संस्करण १९६१, पृ० २६७।

२. भारतीय दर्शन, डा० यदुनाथ सिन्हा (हिन्दी अनुवाद) संस्करण प्रथम, १९६०, पृ० ३६६।

विलीन हो जायेगा।[1] अतः यह सत्य है, मिथ्या नहीं। ईश्वर ही जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। यह ब्रह्म की ही शक्ति का परिणाम है। वही अपनी स्वतन्त्र इच्छा से जगत् में परिणत होता है। जगत् की वस्तुएँ यद्यपि नित्य नहीं हैं तथापि विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार सत्य हैं।

माया—रामानुजाचार्य ने शंकर के मायावाद पर अनेक आक्षेप करके उसका खण्डन किया है। इनके अनुसार माया का अर्थ ईश्वर की सृष्टि रचने की शक्ति है। ईश्वर जगत् की सृष्टि अपनी माया के कारण ही करता है। जितना ईश्वर सत्य है उतनी ही उसके द्वारा रचित सृष्टि भी। माया सत्व, रजस् और तमस् से बनी है। "प्रकृति अविद्या या माया-मिश्रित तत्त्व है।"[2] इसको प्रकृति इस कारण कहते हैं क्योंकि यह विकारों को उत्पन्न करती है। उसे अविद्या इस कारण कहते हैं क्योंकि वह सम्यक ज्ञान (विद्या) का प्रतिबन्धक है। नाना रूपों से युक्त जगत् का निर्माण करने से वह माया कहलाती है। रामानुजाचार्य परिणाम के सिद्धान्त को सत्य मानते हैं और माया को ईश्वर की अद्‌भुत विषयों की सृष्टि करने वाली शक्ति मानते हैं।

मोक्ष—शंकर के अद्वैत मत के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने का साधन केवल ज्ञान है परन्तु रामानुजाचार्य ज्ञानकर्म समुच्चयवादी हैं। इनके अनुसार मोक्ष-प्राप्ति का साधन ज्ञान नहीं, भक्ति है। भक्ति का उदय कर्म और ज्ञान द्वारा होता है। जीव बन्धन में पड़ा रहता है और इन बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है। यह बंधन अविद्या का ही परिणाम है। बन्धन और मोक्ष ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है। भक्ति का तात्पर्य प्रपत्ति से है।

शंकर के अनुसार मुक्ति से तात्पर्य जीव का ब्रह्म से तादात्म्य और एक रूप हो जाना है परन्तु रामानुजाचार्य के अनुसार मोक्ष ब्रह्म से सामीप्य प्राप्त करने की अवस्था है। रामानुजाचार्य के अनुसार सभी ज्ञानी और भक्त-जीव ईश्वर के सामीप्य की अवस्था को प्राप्त करते हैं। तादात्म्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।[3] इस मत के अनुसार मोक्ष में आत्मा अपनी पृथकता छोड़कर ब्रह्म में लीन नहीं होती अपितु आत्मा कर्मों से रहित होकर ईश्वर के अनन्त ऐश्वर्य का भोग करती है। जीव ब्रह्म के स्वरूप को जान लेता है और उसके अनन्त आनन्द का भोग करता है। ईश्वर भी

---

1. "The Universe comes out of the Supreme and again, after a fixed period, returns to him."
   The Philosophy of Ramanuja, Dr. Krishna Datt Bharadwaj, Edition Ist 1958, page 108.
२. भारतीय दर्शन, डा० यदुनाथ सिन्हा, (हिन्दी अनुवाद) संस्करण प्रथम, १९६०, पृ० ३७२।
3. "According to Ramanuja, all people of true knowledge or devotion have to attain to the state of Divinity and the question of their merging in him never arises."
   The Philosophy of Ramanuja, Dr. Krishna Datt Bhardwaj, Edition Ist 1958, page 212.

जीव की भक्ति और शरणागति से प्रसन्न होकर उसके संचित कर्मों और अविद्या का नाश करके उसे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करता है। विशिष्टाद्वैतवाद में मुक्ति से तात्पर्य ईश्वर का सामीप्य है, तादात्म्य नहीं।

शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में वैषम्य

१. शंकराचार्य ने अद्वैतमत की प्रतिष्ठापना की है और रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद की। शांकर मत में एक अद्वितीय ब्रह्म ही तत्त्व है और इसके अतिरिक्त दृश्यमान प्रपंच कुछ नहीं है। वह सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदों से शून्य है। ब्रह्म निर्गुण निर्विकार है, सत्य ज्ञान और अनन्त स्वरूप वाला है। इसके विपरीत रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म सगुण और सविशेष है। वह सर्वशक्तिमान है, गुणों का अनन्त भण्डार है, चित्, अचित् और ईश्वर उसी के रूप हैं।

२. शंकर ब्रह्म और जीव को एक मानते हैं। आत्मा नित्य शुद्ध-बुद्ध चिन्मय अखण्ड है। शरीर असत् है परन्तु आत्मा सत् पदार्थ है। आत्मा असीम और अनन्त चैतन्य है। रामानुज के अनुसार ईश्वर और जीवात्मा दो भिन्न पदार्थ हैं। जीव में ईश्वर व्याप्त है। जीव और ब्रह्म में विशेषण जीव को शंकर विभु मानते हैं, रामानुज अणु।

३. शंकर के अनुसार जगत् माया का परिणाम है अतः मिथ्या है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत् सत्य है परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से इसको मिथ्या ही माना गया है। इसके विपरीत रामानुजाचार्य जगत् को भी ईश्वर का ही अचित् अंश मानते हैं। यह ईश्वर का अचित् अंश है अतः सत्य है।

४. अद्वैतमत के अनुसार ब्रह्म ही जगत् की रचना का कारण है। सृष्टि का उद्देश्य अपने आप में पूर्ण है। ब्रह्म ही माया की उपाधि से ईश्वर तथा अविद्या की उपाधि से जीव कहलाता है। रामानुज मानते हैं कि सृष्टि रचने में ब्रह्म को माया की आवश्यकता नहीं पड़ती। सृष्टि का उद्देश्य लीला है। जीव और जगत् ईश्वर के ही अंश हैं।

५. 'तत्वमसि' वाक्य की व्याख्या दोनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से की है। शंकर के अनुसार तत् परोक्ष चैतन्य और त्वम् प्रत्यक्ष चैतन्य (जीव) है अतः ब्रह्म और जीव दोनों शुद्ध चैतन्य माने गए हैं। रामानुज के अनुसार तत् सर्वज्ञ ईश्वर तथा त्वम् वह ईश्वर जो अचेतन शरीर से विशिष्ट जीव के रूप में है।

६. शंकर ने मोक्ष का साधन ज्ञान और रामानुज ने भक्ति माना है। शंकर कर्म को बन्धन और रामानुज कर्म को आवश्यक मानते हैं। शंकर के अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ तादात्म्य या एक रूप होना ही मुक्ति है। रामानुज के अनुसार ईश्वर में मिलकर एक हो जाना मुक्ति नहीं, ईश्वर का सामीप्य पाना मुक्ति है, ईश्वर के समान हो जाना मुक्ति है।

द्वैतवाद

द्वैतसिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्त्तक श्री मध्वाचार्य या आनन्दतीर्थ (११९९-१३०३ ई०)

थे। इस मत को मध्वमत और ब्राह्मसम्प्रदाय के नाम से भी अभिहित किया जाता है। मध्वाचार्य के ग्रन्थों में ब्रह्मसूत्रभाष्य, गीताभाष्य, तंत्रसार, महाभारत तात्पर्य-निर्णय आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। द्वैतवाद अद्वैतसिद्धान्त के ठीक विपरीत है। अद्वैतमत में ब्रह्म और जीव एक माने जाते हैं, उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है परन्तु द्वैतवाद का आधारभूत सिद्धान्त है—जीव और ब्रह्म में भिन्नता। इस मत के आचार्यों ने भक्तिवाद का समर्थन और शंकर के मायावाद का खण्डन किया है। मध्वाचार्य ने उपनिषदों के अनेक वाक्यों की द्वैतवादी व्याख्या करके अपने सिद्धान्त को पुष्ट किया है। द्वैतवादी भेद को मुख्य और नित्य मानते हैं। यह भेद पांच प्रकार का है—

१. ईश्वर का जीव से।

२. ईश्वर का जड़ से।

३. जीव का जड़ से।

४. जीव का दूसरे जीव से।

५. एक जड़ पदार्थ का दूसरे जड़ पदार्थ से।

१. ईश्वर और जीव का भेद—जीव और ईश्वर में भेद है क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है, जीव अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान है।

२. ईश्वर और जड़ जगत् का भेद—ईश्वर चेतन है स्रष्टा है, नियामक है और जड़जगत जड़ सृष्टि और नियम्य है। अतः इन दोनों में भेद है।

३. जीव और जगत् का भेद—जीव चेतन और जगत् जड़ है अतः प्राणधारी और प्राण-शून्य पदार्थों में भेद स्पष्ट है।

४. जीव और जीव का भेद—जीव एक नहीं, अनेक हैं। उनके अनुभवों में भी भेद है। सभी जीव सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि का अनुभव करते हैं परन्तु उनके अनुभव में भेद होता है अतः जीवों में भी साम्य नहीं है।

५. जड़ और जड़ का भेद—जिस प्रकार जीव और जीव में भेद है उसी प्रकार एक जड़ पदार्थ और द्वितीय जड़ पदार्थ में भी भिन्नता है।

द्वैतसिद्धान्त के अनुसार मूल तत्त्व दो ही हैं—स्वतंत्र और परतंत्र। विष्णु स्वतंत्र हैं और शेष सब परतंत्र। इन्हीं पांच भेदों का ज्ञान द्वैतमत में मुक्ति का साधन है।

ब्रह्म—मध्वाचार्य के अनुसार विष्णु ही साक्षात् परमात्मा है। वही चेतन तत्त्व को जीव और ईश्वर में विभाजित करता है। यह दोनों सत्, चित् और आनन्द रूप होते हैं। जीव पर केवल माया का आवरण रहता है इसी कारण अज्ञान और काल की सीमा से वह बद्ध रहता है। विष्णु अनन्त गुणपूर्ण है और सर्वज्ञ है। वह जीव और जड़ प्रकृति से अत्यन्त विलक्षण है। विष्णु का शरीर उसका ज्ञान, कल्याण और आनन्द आदि गुण ही हैं, वह शरीरी होने पर भी स्वतंत्र और नित्य है। यही विष्णु अवतार धारण कर लेता है जिनमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं होता है। इनके सभी रूप परिपूर्ण होते हैं। प्रकृति भी उसका शरीर है। वही सारे संसार पर अनुशासन करता है। ब्रह्म-सूत्र

की व्याख्या करते हुए मध्वाचार्य ने यह लिखा है कि परमात्मा ही सृष्टि का स्रष्टा, पालक और संहारक भी है।[1]

मध्वाचार्य ने ईश्वर की शक्ति को लक्ष्मी माना है। यह ईश्वर से भिन्न होती है परन्तु उसी के उधीन। शक्तिमान (ईश्वर) और शक्ति (लक्ष्मी) में इस मत के अनुसार भिन्नता है। यह लक्ष्मी भी ईश्वर के समान ही दिव्य शरीर धारण करती है, अनेकानेक रूपों को धारण करने वाली नित्य मुक्ता है परन्तु यह गुणों में ईश्वर से निम्नस्तर की है। यही कारण है कि वह ईश्वर के अधीन रहती है। जड़ पदार्थों को उपादान कारण बनाकर लक्ष्मी सत्, रज, तम तीन गुणों और काल की सृष्टि करती है।

जीव—मध्वाचार्य के मतानुसार जीव और ब्रह्म में भेद है। जीव ईश्वर का अनुचर है, वह ईश्वर के ही अधीन रहता है। अल्पशक्ति और अल्पज्ञान के फलस्वरूप जीव किसी भी कार्य को पूर्ण रूप से नहीं कर सकता। जीव संसार में आता है परन्तु सदैव ईश्वर के ही आश्रित रहता है। इत मत के अनुसार जीव तीन प्रकार के होते हैं—

१. मुक्तियोग्य
२. नित्य संसारी
३. तमोयोग्य

मुक्तियोग्य जीव मुक्ति प्राप्त करने के योग्य होते हैं। नित्य संसारी कभी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते। वे सदा सुख-दुःख में रहते हैं और कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक को प्राप्त करते हैं। नित्य संसारी जीवों को मध्यम मनुष्य भी कहा जाता है। तमोयोग्य मनुष्य अधम जाति के होते हैं। मध्वाचार्य जीव को ईश्वर की छाया मानते हैं और उसकी इंद्रधनुष से समता करते हैं।[2]

मध्वमत में प्रमुख विशेषता है जीवों में तारतम्य के सद्भाव की। किसी भी दशा में जीव अन्य जीवों के साथ सदृश्य या अभिन्न नहीं होता। मुक्त जीव आनन्दानुभूति अवश्य करता है। "मध्वमत में आनन्दानुभूति में भी परस्पर तारतम्य होता है।

---

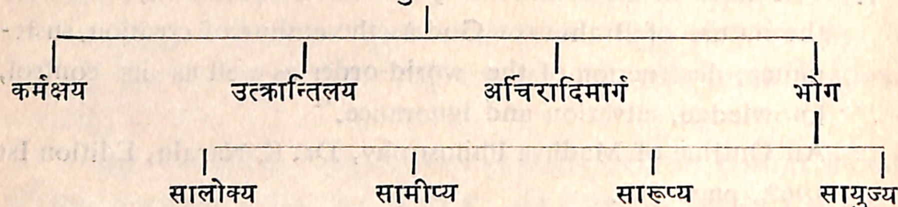
1. "Madhva in his commentary on the Brahmasutra, describes the nature of Brahma or God as the author of creation, sustenance, destruction of the world-order as well as its control, knowledge, salvation and ignorance."
   An Outline of Madhva Philosophy, Dr. K. Narain, Edition Ist 1962, page 110.
2. "Madhvacharya in his commentary on the same Brahmasutra compares the character of jiva as reflection with that of the rainbow and this may go a long way in elucidating his doctrine of jivatman as the reflection of Isvara."
   An Outline of Madhva Philosophy, Dr. K. Narain, Edition Ist 1962, page 145.

मुक्त जीवों के ज्ञानादि गुणों के समान उनके आनन्द में भी भेद है। यह सिद्धांत मध्वमत की विशेषता है।"[1] मध्व के अनुसार ज्ञान और गुणों के समान मुक्त जीवों के आनन्द में भी भेद होता है।

माया—मध्वसिद्धान्त के अनुसार माया को ईश्वर की शक्ति माना गया है जो एक ओर से ईश्वर को सृष्टि रचने में सहायता करती है और द्वितीय ओर से जीवों पर अज्ञान और माया का आवरण डाल देती है। इस सिद्धान्त के अनुसार माया ईश्वर की अचिंत्य शक्ति है जिसके द्वारा वह संसार-क्रम की सृष्टि, पालन और नाश करती है। इस तरह से वह इस मत में दो रूपों में लक्षित होती है। प्रथम रूप में वह ईश्वर के लिए सृष्टि रचने का साधन है और द्वितीय रूप में वह जीवात्मा को सदैव छलने का प्रयत्न करती है।

जगत्—द्वैत सिद्धान्त के अनुसार जगत् सत्य है, मिथ्या नहीं। शंकर के अनुसार मायाजन्य जगत् रज्जुसर्प के समान मिथ्या है। परन्तु द्वैतमत में यह नितान्त सत्य है। यह जगत् परमात्मा से ही निर्मित है, वही इसकी रचना और नाश कर सकता है। अतः यह मिथ्या कैसे हो सकता है? जगत् ईश्वर के ही समान सत्य है। संसार का निर्माण प्रकृति के अणु से हुआ है और इसका आधार ईश्वर की इच्छा है।[2] यह मत माया के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता और न जगत् को मायिक मानता है। इसके अनुसार जगत् एक ठोस सत्य है।

मोक्ष—मध्वाचार्य के अनुसार मुक्ति परमानन्द-रूपा है। परमेश्वर की पूर्ण और निष्काम भक्ति ही मोक्ष का साधन है। जीव परमात्मा के अधीन है परन्तु वह कर्म करने में स्वतंत्र है। जीव भक्ति-साधना द्वारा मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। मध्वाचार्य ब्रह्म और जीव का भेद नित्य मानते हैं अतः उनका मोक्ष से तात्पर्य ब्रह्म के साथ तादात्म्य नहीं है। मध्वाचार्य के अनुसार मोक्ष चार प्रकार का है—कर्मक्षय, उत्क्रान्ति, अर्चिरादिमार्ग और भोग।[3] आगे मध्वाचार्य भोग नामक मुक्ति के भी चार प्रकार मानते हैं, जिनकी तालिका इस प्रकार बन सकती है—



---

१. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, संस्करण १९६०, पृ० ४९५।

2. "It is God's will that is really responsible and the main reason in the creation of the world."
An Outline of Madhva Philosophy, Dr. K. Narain, Edition Ist 1962, page 127.

३. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, संस्करण षष्ठ १९६०, पृ० ४९६।

सालोक्य भोग मुक्ति में मुक्त जीव परमात्मा के लोक में पहुँच कर अपनी इच्छानुसार वहां भोग करता है। सामीप्य भोग मुक्ति में जीव ईश्वर के समीप सान्निध्य प्राप्त कर आनन्द प्राप्त करता है। सारूप्य भोग मुक्ति में मुक्तजीव भगवान् के सदृश गुण और रूप-लाभ करता है परन्तु ईश्वर की समानरूपता को धारण करने पर भी वह परमानन्द भोग में समर्थ नहीं होता। सायुज्य मुक्ति में जीव ईश्वर में प्रविष्ट होकर उन्हीं के शरीर से आनन्द-भोग करता है। देवगण ही सायुज्य भोग मुक्ति के अधिकारी माने गए हैं। मुक्त आत्मा परमात्मा की भांति ही आनन्द का अनुभव करता है। यह मध्वमत की विशेषता है।[1] जीव को वास्तविक दशा का ज्ञान होना और आनन्द को प्राप्त करना ही मोक्ष है।[2] इस प्रकार मध्वाचार्य ने वैष्णव-धर्म को पूर्णरूप से स्थापित करने का प्रयास किया है। मध्वाचार्य ने जीव और ईश्वर में भेद मानकर शंकराचार्य के सिद्धांत का विरोध किया। यह भेद को व्यावहारिक ही नहीं, पारमार्थिक भी मानते हैं। इस प्रकार द्वैत सम्प्रदाय का अपना एक विशिष्ट महत्त्व माना जाता है।

अचिंत्य भेदाभेद

अचिंत्यभेदाभेद के प्रथम प्रवर्त्तक श्री चैतन्य महाप्रभु (१४८५ ई०-१५३३ ई०) माने जाते हैं। यह बल्लभाचार्य के ही समसामयिक थे। "इसे माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदाय भी कहते हैं।"[3] इस मत का विकास माध्व संप्रदाय के अन्तर्गत ही हुआ है, परन्तु तो भी मध्वाचार्य और चैतन्य महाप्रभु के दार्शनिक सिद्धान्तों में अन्तर है। चैतन्य सम्प्रदाय में दार्शनिकता की अपेक्षा उपासना और भक्तिभावना की विशेषता है। चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर भारत को विशेषत: बंगाल को अपने भक्ति आन्दोलन का केन्द्र बनाया। इन्होंने ब्रह्म-सूत्र पर कोई भाष्य नहीं लिखा है और न ही किसी स्वतंत्र ग्रन्थ की रचना ही की है। समय-समय पर इन्होंने जो भक्तों को उपदेश दिये हैं, उन्हीं से इनके सिद्धान्त स्पष्ट होते हैं। इस मत में श्रीमद्भागवत को ही प्रमाण-ग्रंथ माना जाता है। इसी को चैतन्य महाप्रभु ने ब्रह्म सूत्र से भी सर्वोपरि माना है।

इस मत के अनुसार शक्ति (जीव) तथा शक्तिमान (ईश्वर) का सम्बन्ध नितांत विलक्षण है। शक्ति शक्तिमान से भिन्न भी प्रतीत होती है और अभिन्न भी। तर्क से भी चिंतनीय न तो भेदरूप दिखाई देता है और न अभेद रूप। "शक्तिमान (भगवान्)

---

1. "The liberated souls experience the same type of bliss as is enjoyed by the Parmatman."
   An Outline of Madhva Philosophy, Dr. K. Narain, Edition Ist 1962, page 169.
2. "This manifestation of the real nature of jiva is really the state of moksa, a positive condition overbrimming with bliss."
   Same page 164.
३. चैतन्यमत और ब्रज-साहित्य, प्रभुदयाल मीतल, तृतीय संस्करण, १९६२ ई०, पृ० ११०।

तथा शक्ति (स्वरूपादि)में भेद और अभेद दोनों सिद्ध होते हैं और ये दोनों भी अचिंत्य शक्ति के कारण अचिंतनीय हैं। इस प्रकार अचिंत्यशक्ति के कारण यह प्रपंच न तो भगवान् के साथ बिल्कुल भिन्न ही प्रतीत होता है और न अभिन्न ही। इसी विलक्षण दृष्टिकोण के कारण यह मत अचिंत्यभेदाभेद के नाम से दार्शनिक जगत् में प्रख्यात हैं।"[1] इस मत के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रथम विवेचन जीव गोस्वामी के ग्रन्थों में किया हुआ मिलता है। "जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज ने चैतन्य देव के दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में अचित्य भेदाभेद की प्रतिष्ठा की है।"[2]

ब्रह्म और जीव—इस मत के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण ही परमतत्त्व है, वह अनन्त शक्तियों वाला और अनन्त गुणों का भण्डार है। जीव अणुपरिमाण और अनंत है, वह ईश्वर का अंश है। जीव और ईश्वर का सम्बन्ध गुण-गुणी का सम्बन्ध है। ईश्वर की अनंत शक्तियों में से तीन शक्तियाँ ही प्रमुख हैं—

१. अंतरंग शक्ति
२. तटस्थ शक्ति
३. बहिरंग शक्ति

अंतरंग शक्ति को ही स्वरूप शक्ति या चित्शक्ति कहते हैं। तटस्थ शक्ति को जीव शक्ति भी कहते हैं। यही जीवों के आविर्भाव का कारण है। बहिरंग शक्ति माया शक्ति है जो जगत् और प्रकृति का आविर्भाव करती है। इन तीनों शक्तियों के समुच्चय को पराशक्ति कहते हैं। श्री कृष्ण को इस मत में साक्षात् भगवान माना जाता है जो भिन्न-भिन्न अवतार धारण करता है। चैतन्य मत के अनुसार ईश्वर अंतरंग शक्ति में जगत् का निमित्त कारण भी है और बहिरंग शक्ति में उपादान कारण भी।

जगत—शंकर अद्वैत के समान इस मत में जगत् को मिथ्या नहीं अपितु सत्य पदार्थ माना जाता है, यह ईश्वर की ही बहिरंग शक्ति का विकास है। प्रलय के समय भी यह जगत् अव्यक्त रूप से ईश्वर में ही रहता है। केवल दुःख-बाहुल्य होने के कारण साधक को इससे विरक्त रहना चाहिए।

भक्ति—इस मत के अनुसार भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् की स्वरूप शक्ति को धारण करता है। गोपियों की उपासना को इस मत में आदर्श उपासना मानते हैं। भक्ति से ही भक्त ईश्वर को वश में कर लेता है। इस मत में भक्ति के दो प्रकार माने गए हैं—रागात्मिका और वैधी भक्ति। रागात्मिका को ही रुचिभक्ति भी कहते हैं। इसमें भक्त ईश्वर को प्रियतम के रूप में स्वीकार कर अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है। वैधी भक्ति में भक्तिशास्त्र में वर्णित उपायों के अनुसार भक्ति की जाती है। व्रजवनिताओं की उपासना इसमें श्रेष्ठ मानी गई है। रति की उत्कृष्ट कोटि माधुर्य भक्ति में ही रहती है। भक्ति का एकमात्र लक्ष्य भगवान् को प्रसन्न करना है। भक्ति से परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है, यह तत्त्वज्ञान से भी श्रेष्ठ है।

---

१. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, षष्ठ संस्करण १९६०, पृ० ५२०।
२. चैतन्यमत और व्रज साहित्य, प्रभुदयाल मीतल, तृतीय संस्करण १९६२, पृ० १११।

भगवान् के नाम-कीर्तन और प्रेमपूर्वक भक्ति से समस्त कर्म-बंधन छिन्न हो जाते हैं। चैतन्य मत में भगवान् की भक्ति ही जीवन का परम श्रेय है।

माया––चैतन्य मत के अनुसार माया मिथ्या विक्षेप शक्ति नहीं अपितु भगवान् की अचिंत्य शक्ति है। सृष्टि अज्ञान का कार्य नहीं अपितु ईश्वर की अचिंत्य शक्ति का ही कार्य है। परमात्मा जगत् का निमित्त कारण है और अपनी शक्तियों से युक्त उपादान कारण भी। ईश्वर अपनी अचिंत्य शक्ति से ही आत्मोपादान से जगत् की सृष्टि और नियंत्रण करता है।

चैतन्य मत और माध्व संप्रदाय—माध्व संप्रदाय के अन्तर्गत ही चैतन्य मत का जन्म और विकास हुआ है परन्तु आगे चलकर इस मत के दार्शनिक सिद्धांतों में पूर्ण साम्य नहीं रहा। अतः यह एक भिन्न संप्रदाय समझा जाने लगा। फिर भी दोनों सम्प्रदायों के मूल में एकता है। "माध्वसंप्रदाय जहाँ ब्रह्म और जीव की चिर भिन्नता मानता है, वहाँ चैतन्यमत में गुण और गुणी भाव से जीव और ब्रह्म की भिन्नता के साथ अभिन्नता भी स्वीकृत है। इसलिए माध्व सम्प्रदाय को पूर्ण द्वैतवादी और चैतन्य मत को अचिंत्य भेदाभेदवादी कहा जाता है।"[1]

दोनों मतों में साम्य

१. दोनों मत ब्रह्म और जीव की भिन्नता में विश्वास करते हैं।
२. दोनों मत भगवान् की कृपा से ही जीव की मुक्ति मानते हैं।
३. दोनों मत ब्रह्म को सगुण-सविशेष और विभुचेतन मानते हैं।
४. दोनों मत जीव को अणु, चेतन और भगवान का दास मानते हैं।
५. दोनों में जगत् को सत्य और ब्रह्म का परिणाम माना गया है।

दोनों मतों में वैषम्य

१. मध्व-सम्प्रदाय में विष्णु और चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण सर्वोच्च तत्त्व है।
२. मध्व भगवान् के सभी अवतारों को मानते हैं और उनमें से किसी की भी उपासना की जा सकती है परन्तु चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण ही एकमात्र उपास्य है, उसी को पूर्णावतार माना जाता है।
३. मध्व सकर्मा भक्ति और चैतन्य शुद्धाभक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं।
४. मध्व के अनुसार केवल दास्य भक्ति से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है, परन्तु चैतन्य के अनुसार शांत, सख्य, वात्सल्य और मधुर भक्ति से भी ईश्वर की प्राप्ति होती है।
५. मध्वमत में देवताओं को श्रेष्ठ माना जाता है परन्तु चैतन्य मत में ब्रज की गोपियों को।

द्वैताद्वैत मत

द्वैताद्वैत मत के प्रमुख प्रवर्त्तक श्री निम्बार्काचार्य (११वीं शताब्दी) माने जाते हैं। इनका वास्तविक नाम नियमानन्द था। इन्हीं द्वारा प्रवर्तित मत को निम्बार्कमत,

---

१. चैतन्य मत और ब्रजसाहित्य, प्रभुदयाल मीतल, प्रथम संस्करण १९६२, पृ० ११४।

भेदाभेद सम्प्रदाय या द्वैताद्वैत मत कहा जाता है। यह मत अति प्राचीन माना जाता है। बादरायण से पूर्व आचार्य औडुलोमि तथा आश्मरथ्य को भी भेदाभेदवादी माना जाता है। परन्तु प्रमुख व्याख्याता निम्बार्काचार्य ही हैं जिन्होंने वेदान्त पारिजात सौरभ, दशश्लोकी, श्री कृष्णस्वराज आदि ग्रन्थों की रचना की है। श्री निवासाचार्य, श्री केशव भट्ट और श्री पुरुषोत्तमाचार्य इसी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

इस सम्प्रदाय में ब्रह्म, जीव और जगत में परस्पर भेद भी माना जाता है और अभेद भी। जीव और जगत् का मूल कारण ब्रह्म है। अतः दोनों ब्रह्म से अभिन्न हैं। जीव अपने नाम, गुण, रूप में ब्रह्म से भिन्न है, जगत् भी अचेतन होने के कारण ब्रह्म से भिन्न है, इस प्रकार जीव और जगत् ब्रह्म से उद्भूत होने के कारण उससे अभिन्न हैं परन्तु अपने चित् और अचित् स्वरूप के कारण भिन्न हैं। इसी कारण इस मत को भेदाभेद सम्प्रदाय कहा जाता है।

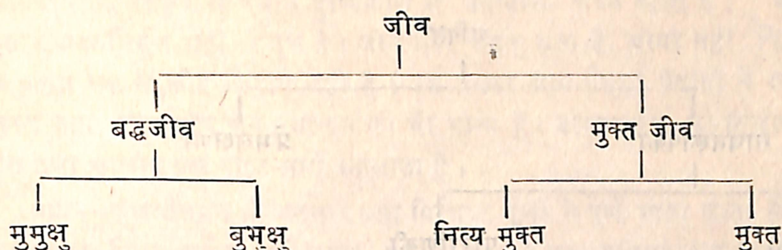
ब्रह्म—निम्बार्क मत में ब्रह्म को सगुण माना जाता है। ब्रह्म ही बल, ज्ञान और गुणों का भण्डार है। "समस्त दोषों से रहित, कल्याणकारक गुणों की राशि, वासुदेवादि व्यूहों से युक्त और सर्वश्रेष्ठ श्री कृष्ण ही इस सम्प्रदाय में ब्रह्म स्वीकार किए गए हैं।"[1] परब्रह्म, नारायण, पुरुषोत्तम, भगवान् आदि उसी के विभिन्न नाम हैं। "ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, सौशील्य, वात्सल्य, करुणा आदि गुण भगवान् में सदा निवास करते हैं।"[2] कृष्ण को ही इस मत में स्रष्टा, पालक और संहारक माना है, वही मोक्ष का कारण, सर्वव्यापी, परम सत्य और अंशी है। उसी को निम्बार्काचार्य ने सगुण ईश्वर स्वीकार किया। सविशेष ब्रह्म में इस सम्प्रदाय के अनुसार कोई अन्तर नहीं है। कृष्ण ही इस सम्प्रदाय के उपास्य हैं, वही गोपीवल्लभ और जीवों पर दया करने वाले हैं। इस मत में श्री कृष्ण की उपासना पाँच प्रकार—शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और मधुर की मानी जाती है परन्तु मधुर उपासना को ही श्रेष्ठ गिना जाता है। इस मत में राधा का स्थान भी स्वीकार किया गया है और राधाकृष्ण की सखी-भाव से सेवा करने का विधान है।

जीव—निम्बार्काचार्य के अनुसार जीव या चित् ज्ञान-स्वरूप है परन्तु ईश्वर के अधीन है। "ईश्वर नियन्ता है, जीव नियम्य है। ईश्वर के वह सदा अधीन है, मुक्त दशा में भी यह ईश्वर पर आश्रित रहता है।"[3] ईश्वर विभु है और जीव अणु। शारीरिक भिन्नता के कारण प्रत्येक जीव में परस्पर भेद है परन्तु आत्मा की एकता के कारण जीवों में एकता भी है। जीव संख्या में नाना हैं। वह ईश्वर का अंश है परन्तु यहाँ अंश से तात्पर्य शक्ति रूप से है। जीव सर्वशक्तिमान् ईश्वर का शक्ति

---

१. ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति, डा० रूपनारायण, प्रथम संस्करण १९६२, पृ० ६४
२. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, षष्ठ संस्करण १९६०, पृ० ५०३।
३. वही, पृ० ५००।

रूप है। जीव इस मत के अनुसार बद्ध और मुक्त दो प्रकार के हैं। फिर बद्ध और मुक्त के भी दो वर्ग होते हैं। यह वर्गीकरण इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है—



बद्धजीव संसार के अनेक दु:खों के बन्धनों में पड़ा रहता है। मुक्त जीव ईश्वर के अनुग्रह से बन्धन और क्लेश से निवृत्त होकर मुक्ति प्राप्त करता है। मुमुक्षु जीव मुक्ति का इच्छुक होता है। वह क्लेशों और दु:खों से पीड़ित होता है। इसके विपरीत बुभुक्षु विषयानन्द का इच्छुक होता है।

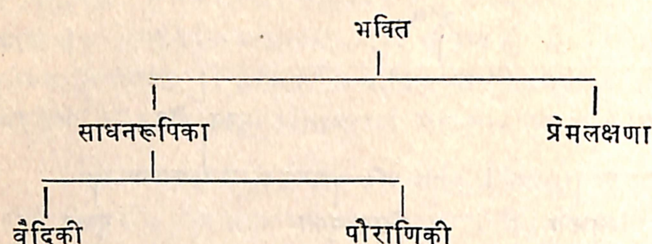
मुक्त जीव भी दो प्रकार के हैं—१. नित्यमुक्त, २. मुक्त। नित्यमुक्त जीवों को प्राकृत दु:खों का अनुभव नहीं होता है, वह ईश्वर के स्वरूप का दर्शन करता है और सदैव भजन में ही मस्त रहता है। मुक्त जीव वे हैं जो केवल अविद्या से उत्पन्न दु:खों से रहित होते हैं। बद्ध और मुक्त दोनों अवस्थाओं में जीव ब्रह्म से भिन्न रहता है और अभिन्न भी। अत: दोनों का भेदाभेद स्वाभाविक है।

जगत्—ईश्वर का अचित् तत्त्व ही इस मत के अनुसार जगत् है। यह अचित् या जड़ पदार्थ ही प्राकृत, अप्राकृत और काल तीन प्रकार का होता है। अप्राकृत तत्त्व प्रकृति तथा काल के प्रभाव से रहित है और परमपद, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और विष्णुपद इसी के विभिन्न नाम हैं। प्राकृत तत्त्व ही जगत् है जो सत्त्व, रज और तम तीन गुणों से युक्त है। यह जगत् नित्य भी है और अनित्य भी। कारण रूप में यह नित्य है और कार्य रूप में अनित्य। प्राकृत तत्त्व ही मन, बुद्धि, देह, इन्द्रिय आदि रूपों में जीव की मोक्ष-प्राप्ति में बाधक बनता है। काल प्राकृत और अप्राकृत तत्त्व के विपरीत समस्त पदार्थों का नियमन करने वाली शक्ति का नाम है।

रामानुज के समान ही निम्बार्क भी तीन तत्त्व मानते हैं—चित्, अचित् तथा ईश्वर। जीव और जगत् सदा ईश्वर के ऊपर आश्रित रहते हैं और इस दृष्टि से वे ईश्वर से अभिन्न हैं, परन्तु स्वरूप की दृष्टि से जीव तथा जगत् ईश्वर से भिन्न हैं। इसी कारण निम्बार्क द्वैत और अद्वैत दोनों को समान महत्त्व प्रदान करते हैं।

भक्ति—निम्बार्काचार्य के अनुसार ब्रह्म श्रीकृष्ण की प्राप्ति का साधन भक्ति है और इस भक्ति को प्राप्त करने का प्रमुख साधन प्रपत्ति है। इसी से जीव पर ईश्वर-कृपा होती है। जीव का वास्तविक कल्याण तब तक नहीं होता है जब तक वह भगवान् की शरण में नहीं आता है। अनुग्रह से ही वह भगवान् की शरण में आता है। अनुग्रह से ही भगवान् के प्रति रागात्मिका भक्ति का उदय होता है। साधन-रूपिका और प्रेमलक्षणा नाम से इस मत में भक्ति के दो प्रकार वर्णित हैं। साधनरूपिका भक्ति भी

वैदिकी और पौराणिकी के वर्गों में विभाजित मानी है। इस वर्गीकरण को इस प्रकार समझाया जाता है—



साधनरूपिका भक्ति का उदय अनेक जन्मों में किए हुए पुण्य कार्यों के परिणाम-स्वरूप होता है। वेदों के अनुसार साधनों को स्वीकार करने वाली भक्ति वैदिकी तथा पुराणों में स्वीकृत साधनों को स्वीकार करने वाली भक्ति पौराणिकी कहलाती है।[1] प्रेमलक्षणा भक्ति में ईश्वर के रूप-गुण और शारीरिक अंगों के प्रति स्वाभाविक प्रेमपूर्ण भक्ति होती है, इसी को उत्तमा, फलरूपा और पराभक्ति कहते हैं।

मोक्ष—इस सम्प्रदाय के अनुसार जीव और ब्रह्म का ऐक्य होना मुक्ति नहीं अपितु ब्रह्म के समान होना ही मुक्ति है। क्रममुक्ति और सद्यः मुक्ति दो प्रकार मुक्ति के इस सम्प्रदाय में मान्य हैं। क्रम मुक्ति से तात्पर्य है निष्काम कर्म द्वारा स्वर्गादि की प्राप्ति, तदनन्तर सत्यलोक में स्थिति, फिर प्रलय के अवसर पर सायुज्य प्राप्त करना है। इसमें एक क्रम-सा रहता है। सद्यः मुक्ति में श्रवण आदि भक्ति द्वारा भौतिक बन्धनों से निवृत्त होकर ईश्वर-कृपा से कृष्ण-लोक में जाना है। निम्बार्काचार्य पर रामानुज का विशेष प्रभाव पड़ा है तथा रामानुज की भाँति उन्होंने भी प्रपत्ति को विशेष महत्त्व दिया है। राधाकृष्ण की भक्ति का शास्त्रीय ढंग से जो उत्तरी भारत में प्रतिपादन हुआ है उसका पूर्ण श्रेय निम्बार्काचार्य को ही है। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर सन्तों के जो तीन वर्ग किये हैं उनमें वे नानक और उनके शिष्यों को भेदाभेदी और सर्वात्मविकासवादी मानते हैं।[2]

शुद्धाद्वैतमत

शुद्धाद्वैत मत के प्रमुख प्रवर्त्तक बल्लभाचार्य (१५३५ वि०-१५८७ वि०) माने जाते हैं। संप्रदाय-परम्परा के अनुसार विष्णुस्वामी इसके मूल प्रवर्तक माने जाते हैं। किंतु इस सम्प्रदाय के प्रचार और प्रसिद्धि का श्रेय बल्लभाचार्य को है। बल्लभाचार्य ने अणुभाष्य, तत्वदीपनिबन्ध, सुबोधिनी आदि ग्रन्थ लिखे हैं। माया से अलिप्त शुद्ध ब्रह्म

१. ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य में माधुर्य भक्ति, डा० रूपनारायण, प्रथम संस्करण १९६२, पृ० ९७।
२. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, (हिन्दी अनुवाद) प्रथम संस्करण, पृ० १९९।

को परमसत्य मानने के कारण बल्लभ वेदांत का नाम शुद्धाद्वैत है। "श्री बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त दार्शनिक जगत् में एकदम नया और ईश्वर, जीव तथा प्रकृति को आध्यात्मिक स्वरूप में नवीन दृष्टिकोण से उपन्यस्त करने वाला है।"[1] बल्लभ के अनुसार ब्रह्म निर्गुण नहीं, सगुण है। जीव और जगत् सत्य है, माया नहीं, फिर भी ब्रह्म के अद्वैत रूप से कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार अन्य वैष्णव वेदांतों में स्वीकृत तीन तत्त्व ब्रह्म, जीव और जगत् बल्लभ को भी मान्य हैं। बल्लभाचार्य का सिद्धान्तपक्ष शुद्धाद्वैत तथा आचार पक्ष पुष्टि-मार्ग कहलाता है।

ब्रह्म—शुद्धाद्वैतमत के अनुसार ब्रह्म विशिष्ट गुणों से पूर्ण माना जाता है। वह एक शुद्ध अद्वैत, नित्य, सर्वज्ञ, शक्तिमान, सर्वगुण-सम्पन्न तथा सच्चिदानन्द-स्वरूप है। जगत् की सृष्टि में ब्रह्म की लीला ही कारण है। ईश्वर अनन्त ऐश्वर्य-युक्त है। भगवान् अनेक रूप होकर भी अपने दास और भक्त के अधीन है। ईश्वर ही समस्त सृष्टि को बनाने वाला है तथा सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। "सर्व खल्विदं ब्रह्म" समस्त सृष्टि ब्रह्म-रूप ही है। ब्रह्म के आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तीन रूप हैं। ब्रह्म का आधिभौतिक रूप जड़ जगत् है। आध्यात्मिक रूप अक्षर ब्रह्म है जो समस्त गुणों के तिरोभाव के कारण निर्गुण रूप तथा ज्ञान से प्राप्य है। आधिदैविक रूप परब्रह्म या सच्चिदानन्द लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण है जो अनन्त ऐश्वर्य-सम्पन्न तथा भक्त को प्राप्य है। भगवान् में सत्, चित् और आनन्द यह तीन अंश रहते हैं, इनमें कोई भी अंश विकार को नहीं प्राप्त करता है। आचार्य बल्लभ के अनुसार श्रीकृष्ण ही एकमात्र शरणस्थल हैं।

जीव—इस मत के अनुसार जीव ब्रह्म का ही रूप तथा अंश है। जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग प्रकट होते हैं उसी प्रकार जीव ब्रह्म के अंश मात्र हैं। ब्रह्म और जीव में अंशीअंश का सम्बन्ध है। ईश्वर के अविकृत चित् अंशों से जीव का आविर्भाव होता है। जीव के उदयकाल में ब्रह्म में केवल आनन्द अंश ही तिरोहित रहता है, जीव नित्य और सत्य है। इस मत के अनुसार जीव तीन प्रकार के हैं—

१. शुद्ध जीव
२. संसारी जीव
३. मुक्त जीव

अविद्या से सम्बन्ध होने से पूर्व जीव शुद्ध कहलाता है, अविद्या के साथ सम्बद्ध जीव संसारी कहलाते हैं। भगवान् के अनुग्रह से जीवों में आनन्द अंश का प्रादुर्भाव होता है। मुक्त अवस्था में जीव में आनन्द अंश प्रकट होता है और वह सच्चिदानन्द रूप प्राप्त कर भगवान् से अभिन्न हो जाता है। "आचार्य बल्लभ जगत् और जीव दोनों को ही प्रभु का अंश कहते हैं और तात्त्विक दृष्टि से उनमें कोई अन्तर नहीं

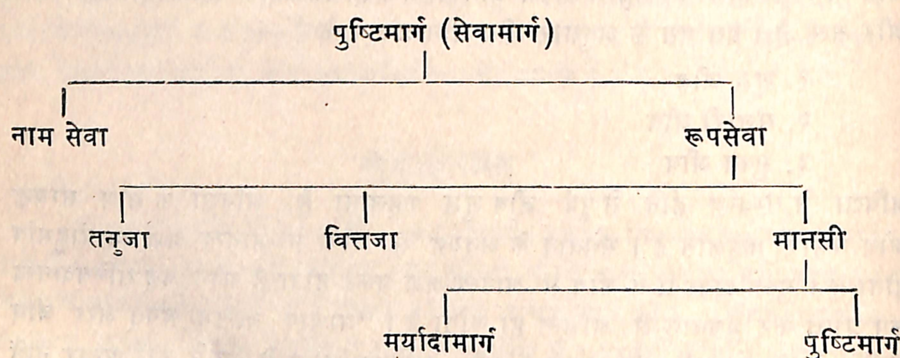
---

1. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक, प्रथम संस्करण २०१४ वि०, पृ० ४६।

मानते। प्राकृतिक जड़ जगत् को वे नित्य प्रभु के साथ मिला हुआ अनुभव करते हैं।"[1] भगवान् में ही सत्, चित् और आनन्द अंश रहते हैं।

जगत्—ब्रह्म के अधिकृत सत् अंश से भौतिक पदार्थों का आविर्भाव होता है। भौतिक पदार्थों के उदय के समय ब्रह्म के दोनों अंश—चित् अंश और आनन्द अंश छिपे रहते हैं, केवल सत् अंश ही प्रकट रहता है। जगत् के विषय में बल्लभाचार्य 'अविकृत परिणामवाद' को मानते हैं। जगत् वस्तुत: ब्रह्मात्मक ही है। सृष्टि और प्रलय का अर्थ जगत्-रूप से ब्रह्म का आविर्भाव और तिरोभाव है। ब्रह्म रूप से जगत् नित्य तथा सत्य है—मिथ्या या माया नहीं। जगत् न मिथ्या है न ब्रह्म से नितान्त भिन्न ही है। ब्रह्म की शक्तियाँ ही सृष्टि और प्रलय हैं। आचार्य जगत् की उत्पत्ति तथा विनाश नहीं मानते, प्रत्युत आविर्भाव तथा तिरोभाव के पक्षपाती हैं। अनुभव-योग्य होने पर जगत् का आविर्भाव होता है और अनुभव-योग्य न होने पर जगत् का तिरोभाव होता है।[2] जिस प्रकार कुण्डल आदि रूपों में परिणत होने पर भी स्वर्ण में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार जगत्-रूप में परिणत होने पर भी ब्रह्म में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है।

साधना मार्ग—भगवान् के त्रिविध रूपों के अनुसार साधनामार्ग भी आधिभौतिक कर्ममार्ग, आध्यात्मिक ज्ञानमार्ग तथा भक्ति के परममार्ग नाम से भिन्न-भिन्न हैं। ज्ञान से निर्गुण-रूप अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है, भक्ति से सच्चिदानन्द सगुणरूप श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है। बल्लभाचार्य का आचार पक्ष अर्थात् "सेवामार्ग पुष्टिमार्ग कहलाता है।[3] नामसेवा और रूप सेवा इसी के दो भेद हैं। रूप सेवा भी तनुजा, वित्तजा और मानसी त्रिरूपों में प्रतिभासित होती है और अंत में मानसी के भी मर्यादामार्ग और पुष्टिमार्ग दो भेद होते हैं। पुष्टिमार्ग अर्थात् सेवामार्ग के इन भेदोपभेदों को इस प्रकार समझाया जा सकता है—



१. भक्ति का विकास, डा० मुंशीराम शर्मा, प्रथम संस्करण १९५८ ई०, पृ० ३८६।
२. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, षष्ठ सं० १९६०, पृ० ५१३।
३. भक्ति का विकास, डा० मुंशीराम शर्मा, प्रथम संस्करण १९५८, पृ० ३८७।

जिसमें शास्त्रविहित नियम, आचार, वैराग्य आदि के द्वारा साधक भगवान् के सायुज्य की साधना करता है, वह मर्यादा मार्ग की भक्ति है। साधनमार्ग में बल्लभाचार्य पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक हैं। पुष्टि का अर्थ है अनुग्रह, भगवान् की कृपा। एकमात्र भगवान् का आश्रय ग्रहण कर लेने पर अनन्य शरणागत भक्त को भगवत् कृपा से प्राप्त होने वाला भगवदनुग्रह पुष्टि भक्ति कहलाती है। मर्यादा भक्ति में फल की अपेक्षा बनी रहती है, पुष्टि भक्ति में किसी प्रकार के फल की आकांक्षा नहीं रहती। इस संसार से उद्धार पाने का सुगम उपाय पुष्टि भक्ति ही है। बिना भगवान् के अनुग्रह से भक्ति नहीं होती है। मनुष्य को भगवान् का अनन्य आश्रय और अनन्य प्रेम होना चाहिए। "भक्ति का जो रूप आचार्य रामानुज ने स्थापित किया था, जिसमें परमेश्वर का सतत ध्यान आवश्यक था और जो उपासना के भीतर आता था, वह निम्बार्क सम्प्रदाय से तो हटा ही था, आचार्य बल्लभ के पुष्टिमार्ग से तो एकदम तिरोहित हो गया।"[1]

भगवान् के अनुग्रह से भक्ति प्राप्त करने का प्रमुख उपाय अन्तःकरण की शुद्धता है। अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए सोलह साधन बताये गए हैं। स्नान, यज्ञ और देवमूर्ति-पूजन —यह तीन बाह्य साधन हैं। इनके अतिरिक्त ईश्वर का ध्यान, सतोगुण का उत्कर्ष, आसक्ति का त्याग, दीनों पर दया, यम-नियम, शास्त्र-श्रवण, भगवान् का कीर्तन, सार्वभौम स्नेह, ईश्वर का सायुज्य आदि अन्य साधन हैं। "बल्लभाचार्य की भक्ति-पद्धति का नूतन रूप और उसमें कृष्ण के माधुर्य भाव की उपासना की स्वीकृति उनकी अपनी विशिष्ट देन है।"[2] बल्लभ के अनुसार भगवान के अनुग्रह से प्रेम-रूप में ही भक्ति का बीज वर्तमान रहता है। भक्ति की ही परमावस्था व्यस्त है जिसमें भगवान् के बिना रहना भक्त के लिए असंभव होता है। इस अवस्था में मनुष्य सबकुछ त्याग कर भगवत्प्रेम में मग्न रहता है।

कश्मीर शैवमत

शिव का अर्थ है कल्याण। सम्भवतः प्रकृति के भयंकर रूपों को देखकर ही आदिम मानव ने कल्याणकारी ईश्वर की कल्पना की होगी। भारत में वैदिक काल से पूर्व ही शिव की उपासना प्रचलित थी—ऐसा सिन्धु घाटी में की गई खुदाई से ज्ञात होता है। वैदिक युग में भी शिव की उपासना के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। यजुर्वेद का रुद्र अध्याय तो निःसंशय शैव धर्म के प्रभाव और प्रचार का एक बड़ा उज्ज्वल प्रमाण है। प्रारम्भिक उपनिषदों में भी शिव की उपासना के संकेत मिलते हैं। पाशुपत, पाश और पशु का उल्लेख सर्वप्रथम हमें अथर्वशिरस उपनिषद् में प्राप्त होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् तो स्पष्ट रूप से एक शैव उपनिषद् है। नारायणीय उपनिषद् भी एक

---

१. भक्ति का विकास, डा० मुंशीराम शर्मा, प्रथम संस्करण १९५८ ई०, पृ० ३६१।

२. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक, प्र० सं० २०१४ वि०, पृ० ५०।

ऐसा ही उपनिषद् है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में शैवधर्म के सिद्धान्त और योग विधि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी शिव, पशुपति, कालदमन और कापालिक का उल्लेख है। वहां शिव और देवी प्रधानतया उपास्य देवों में गिने गए हैं। ईसवी सन् की पांचवी और बारहवीं शताब्दियों के मध्य में भारत में दक्षिण और कश्मीर के जिन शैव दर्शनों का आविर्भाव और विकास हुआ उनके मूल ग्रन्थों को शैवागम के नाम से अभिहित किया जाता है। "वर्तमान खोजों के अनुसार हरप्पा और मोहन जोदड़ो की सभ्यता शैव ही थी। इससे अवैदिक शैवमत की प्राचीनता सिद्ध होती है।"[१] वहाँ आज से पाँच सहस्र वर्ष पूर्व भगवान् पशुपति और देवी की मूर्तियाँ बनाकर लोग उनकी पूजा करते थे। शिव और शक्ति के प्रतीक के रूप में लिंग और योनि की भी पूजा किया करते थे। शैवधर्म में अतिप्रसिद्ध शम्भवी मुद्रा का तथा आसनबन्ध आदि योग कें अन्य अंगों का अभ्यास भी लोग किया करते थे। इन तथ्यों के स्पष्ट प्रमाण वहाँ की प्रस्तरकला के अवशेषों में मिलते हैं।

शैवमत किसी समय जगद्व्यापी था। पुरातत्त्व के विद्वानों का कहना है कि लिंगपूजा किसी समय विशेषतः ईसा के पूर्व सारे संसार में व्यापक धर्म था और रूप और विधि के थोड़े-बहुत भेद के साथ सारे संसार के मूर्तिपूजक लिंगपूजा करते थे। मिश्र, यूनान, बैबिलोन, असुरदेश, इटली, फ्रांस, अमेरिका, अफ्रिका, पालिनेशिया द्वीपों में लिंग पूजा होती थी। मक्के में आज भी एक पत्थर का लिंग है जिसे मुसलमान यात्री चूमते हैं, वह स्वयं मुहम्मद साहब के हाथों का वहाँ रखा हुआ है। भारत के पश्चिम चित्राल, आफरीदिस्तान, काबुल, बलख, बुखारा आदि देशों में तो हिन्दू हैं और शिवालय हैं ही। निदान शिवपूजा किसी समय जगद्व्यापिनी अवश्य थी और हिन्दू भारत में तो शिवपूजा और लिंगपूजा अनादिकाल से परम्परागत रही है।[२]

शैव सम्प्रदाय के चार सम्प्रदाय माने जाते हैं—

१. पाशुपत मत

२. शैव सिद्धान्त

३. वीर शैवमत

४. कश्मीर शैवमत

प्रत्येक के केन्द्रस्थान भिन्न हैं। पाशुपत मत का केन्द्र गुजरात और राजपूताना, शैवसिद्धान्त का तामिल देश, कश्मीर शैवमत का कश्मीर और वीर शैवमत का कर्नाटक प्रदेश है।

पाशुपत मत—इसका प्रचार राजपूताना और गुजरात में है। "इस मत के ऐतिहासिक संस्थापकों का नाम नकुलीश या लकुलीश है।"[३] जिनका समय सम्भवतः ईसा की प्रथम शताब्दी है। इस मत का द्वितीय नाम नकुलीश पाशुपत भी है। नकुलीश

---

१. हिन्दी साहित्य-कोश, डा० धीरेन्द्र वर्मा, संवत्, २०१५ पृ० ७७४।

२. हिन्दुत्व, रामदास गौड़, संवत् १९९५, पृ० ६८९-६९०।

३. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, संस्करण १९६० ई०, पृ० ५५७।

आचार्य की मूर्ति आज भी उपलब्ध है। पाशुपतों की दार्शनिक दृष्टि द्वैतवादी है। इस मत के अनुसार कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त ही पांच मुख्य पदार्थ हैं। पाशुपत मत का साहित्य अल्परूप में ही उपलब्ध है। जिन ग्रन्थों में इस मत के सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है वे निम्न हैं—

१. माधवाचार्य का सर्वदर्शन संग्रह

२. राजशेखर सूरि का षड्दर्शन समुच्चय

३. भासर्वज्ञ की गणकारिका

इनके अतिरिक्त रत्नटीका में किसी अज्ञात कवि ने इन सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या की है। पाशुपत मत का मूल सूत्र ग्रन्थ 'पाशुपत सूत्र' है जो महेश्वर द्वारा रचित है।

शैव-सिद्धान्त—इस मत का प्रधान केन्द्र तमिलनाडु प्रान्त है तथा इसके सिद्धान्त-ग्रन्थ तमिल भाषा में ही प्राप्त हैं। इस मत के प्रमुख चार संत हैं—संत अप्पार, संत ज्ञान सम्बन्ध, संत सुन्दर मूर्ति तथा संत मणिक्कवाचक। इनका आविर्भाव-काल सातवीं-आठवीं शताब्दी है परन्तु इससे पूर्व भी इस मत का प्रचार नक्कीर और कण्णप्प ने क्रमशः प्रथम और द्वितीय शताब्दी में किया है। इस मत की दार्शनिक दृष्टि द्वैतवादी है। इसके अनुसार तीन रत्न माने जाते हैं—शिव, शक्ति और बिन्दु।[१] शिव शुद्ध जगत् के कर्ता हैं, शक्ति कारण है और बिन्दु उपादान। समवायनी और परिग्रह-रूपा शिव की ही दो शक्तियाँ हैं। शैव-सिद्धान्त के अनुसार पति, पशु और पाश यही तीन मुख्य पदार्थ हैं। पति से तात्पर्य शिव, पशु से जीव और पाश से मल है। शिव स्वतन्त्र और सर्वज्ञ है, शिव का शरीर शक्तिरूप है। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह करना शिव का कार्य है। लयावस्था और भोगावस्था शिव की ही दो भिन्न अवस्थाएँ हैं। पशु से तात्पर्य जीव से है। वह अणु है, सीमित शक्तिवाला है, जीव कर्ता भी है क्योंकि पाश-मुक्त होने पर उसमें ज्ञान और क्रिया-शक्ति आती है। पाश वह बन्धन है जो जीव की ज्ञान और क्रिया-शक्ति को नष्ट करता है। जीव वास्तव में शिवतुल्य ही है परन्तु पाशों के कारण वह सीमित होता है। पाशमुक्त होने पर पुनः शिव-तुल्य बन जाता है। दार्शनिक दृष्टि से तमिलनाडु के शैवसिद्धान्त पर भी कश्मीरी शैवमत का प्रभाव रहा है।[२] और यह गौडीय शैवमतों से भी प्रभावित हो चुका था जब इसने कर्नाटक में प्रवेश किया।

वीर शैवमत—वीर शैवमत के मानने वाले जगम या लिंगायत के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके आदि प्रवर्त्तक यद्यपि ब्राह्मण थे परन्तु इस मत में वर्ण-व्यवस्था को

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग १) डा० राजबली पाण्डेय, प्रथम संस्करण, २०१४ विक्रमी, पृ० ५१०।

२. हिन्दी और कन्नड़ में भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन, डा० हरिण्मय, १९५६ ई० पृ० ९८-९९।

कभी नहीं माना गया। इस मत के अनुयायी सदैव शिवलिंग को चांदी के संपुट में बंद कर गले में लटकाते हैं। वीर शैवमत का अत्यधिक प्रचार कर्नाटक प्रदेश में है और इसके आदि प्रचारक 'बसव' माने जाते हैं। रेणुकाचार्य, दारुकाचार्य, एकोरामाचार्य आदि आचार्यों ने भिन्न-भिन्न युगों में इस मत का प्रचार किया है। यह लोग भी सिद्धान्त के अठाईस आगमों को मानते हैं। इस मत का प्रमुख ग्रन्थ शिवयोगी शिवाचार्य का 'सिद्धान्त शिखामणि' है। इसके अतिरिक्त श्रीपति ने जो ब्रह्मसूत्र पर 'श्री कर' भाष्य लिखा है उसमें इस मत को उपनिषद्मूलक सिद्ध किया है।

इस मत की दार्शनिक दृष्टि शक्ति विशिष्टाद्वैत है अर्थात् इसमें शक्ति विशिष्ट जीव तथा शक्ति विशिष्ट शिव के सामरस्य को मोक्ष की चरमावस्था माना गया है। वीर शैवमत कर्मप्रधान है। इसमें कर्मों को महत्त्व देने के कारण ही इसे वीर धर्म या वीर मार्ग भी कहते हैं। इस मत के अनुसार भी शिव ही परम तत्व है और यह चराचर जगत् इसी शिव में स्थित रहता है (स्थ) तथा अन्त में शिव में ही लय होता है (ल) अतः वह 'स्थल' नाम से भी अभिहित है। इस स्थल के इन्होंने अंगस्थल और लिंग-स्थल दो रूप माने हैं तथा लिंग को भी भावलिंग, प्राणलिंग और इष्टलिंग तीन प्रकार का माना है। वीर शैवों का साहित्य कन्नड भाषा में पर्याप्त मिलता है।

कश्मीर शैवमत—कश्मीर में प्रचलित शैव-सिद्धान्त को प्रत्यभिज्ञा दर्शन या कश्मीर शैवमत नाम दिया जाता है। रहस्य सम्प्रदाय और त्र्यंसम्प्रदाय भी इसी की संज्ञायें हैं। वर्तमान युग में कई महानुभावों ने इसे 'त्रिक दर्शन' नाम भी दिया है। काश्मीर-शैवमत के वाङ्मय की दो मुख्य शाखाएँ हैं—स्पन्द-शास्त्र और प्रत्यभिज्ञा-शास्त्र।[1] प्रत्यभिज्ञा से तात्पर्य है जानी हुई बात को पुनः जानना या पहले जानी हुई और फिर भूली हुई वस्तु को पुनः पहचान लेना। त्रिक के नामकरण के विषय में भी अनेक मत हैं। शिव, शक्ति और नर इन तीन तत्वों की ही व्याख्या इस मत में होने के कारण अथवा सिद्धा, नामक और मालिनी इन तीन आगमों की प्रधानता के कारण अथवा आणव, शाक्त और शाम्भव इन तीन प्रकार के उपायों की साधना के कारण ही यह त्रिक-दर्शन कहलाता है। शिव का अर्थ है परमतत्व, शक्ति अर्थात् उसके अवरोहण और आरोहण का उपाय, मार्ग, द्वार आदि और नर से तात्पर्य जीव और उसका जगत् हैं।

कश्मीर-शैवमत की स्पन्द शाखा के आधारभूत वही ७७ सूत्र हैं जिन्हें भगवान् श्रीकण्ठ के स्वप्नादेश से आचार्य वसुगुप्त (८०० ई० के आसपास) ने महादेव गिरि के एक विशाल शिलाखण्ड पर उट्टंकित पाया तथा उद्धार किया।[2] इन सूत्रों को

---

1. The Kashmir Shaivism has two branches, the Spandashastra and Pratyabhijnashastra. Collected Works of Sir R.G. Bhandarkar, Vol. IV. Narayan Bapuji, 1929, page 183.

२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग १) डा० राजबली पाण्डेय, संवत् २०१४ विक्रमी, पृ० ५१८।

स्वयं शिव से रचित माना जाता है। स्पन्दशास्त्र के प्रमुख संस्थापक ये वसुगुप्त ही हैं जिन्होंने 'शिव सूत्र' और 'स्पन्द कारिका' की रचना की है। वसुगुप्त का समय लगभग आठवीं शताब्दी का अन्तिम या नवीं शताब्दी का आरम्भिक काल माना जाता है।[1] वसुगुप्त के पूर्व अनेक शैवागमों का निर्माण हो चुका था। अभिनवगुप्त ने मृगेन्द्र, मातंग, स्वच्छन्द विज्ञान भैरव देवीयामल, कुलिशदामिनी, कुलोत्तर, कुलसार, मालिनी विजय, ब्रह्मयामल, कुब्जिका, वामकेश्वर आदि तंत्रों का उल्लेख किया है। अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि प्रसिद्ध चौंसठ तंत्रों और अनेक अप्रसिद्ध तन्त्रों का निश्चित रचना-काल क्या है। किन्तु यह निश्चित है कि अभिनव द्वारा उद्धृत उपर्युक्त तन्त्रों का निर्माण १०वीं शताब्दी के पूर्व हो चुका था। वसुगुप्त के पूर्व शैवागमों में प्राप्त द्वैतवादी या अनेक तत्त्ववादी दृष्टि को कश्मीरी शैवों ने स्वीकार नहीं किया।[2]

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के संस्थापक सिद्ध सोमनाथ थे जिन्होंने शिव दृष्टि ग्रन्थ लिखा है। इस दर्शन के अन्य आचार्य उत्पलदेव, अभिनव गुप्त, क्षेमराज योगराज जयरथ और शिवोपाध्याय हैं। उत्पलदेव ने ईश्वर प्रत्यभिज्ञाकारिका तथा अभिनव गुप्त ने ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी और तंत्रालोक जैसे ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं। अभिनव गुप्त का काश्मीर शैवमत में वही स्थान है जो वेदान्त दर्शन में शंकराचार्य का है। इन्हीं के शिष्य क्षेमराज ने अपने गुरु अभिनव गुप्त के ग्रन्थों पर भाष्य लिखे और 'प्रत्यभिज्ञा हृदय' नामक मौलिक ग्रन्थ की रचना करके इसे सुदृढ़ बनाया। इस साहित्य के अतिरिक्त स्तोत्र भी उपलब्ध हैं। स्पन्द शास्त्र के प्रचार और प्रसार में आचार्य कल्लट का भी अत्याधिक योग रहा है। एक विचारधारा के अनुसार भट्ट कल्लट ही स्पन्दकारिका के निर्माता माने गये हैं। इस शाखा में भट्ट कल्लट के अनन्तर राजानक रामकण्ठ, आचार्य क्षेमराज और भट्ट भास्कर प्रधान ग्रन्थकारों में गिने जाते हैं। त्रिक दर्शन का साहित्य आगम शास्त्र, स्पन्द शास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र इन तीन वर्गों में मिलता है।

त्रिक दर्शन की आध्यात्मिक दृष्टि अद्वैतवादी हैं। अद्वय परमेश्वर ही परमतत्व है, वही शिव और शक्ति का सामरस्य है। आत्मा चैतन्य रूप है, वही अनादि और अनंत है।[3] यह शुद्ध चैतन्यात्मक परम शिव ही एकमात्र वास्तविक तत्त्व है। यह स्वयं निर्विकार-रूप होता हुआ ही अपने परम स्वातन्त्र्य की महिमा से समस्त पदार्थों में ओतप्रोत होकर ही रहता है। शिव स्वतन्त्र है और इस विश्व का स्वयं उन्मीलन करता है। इस मत के अनुसार जगत् और ईश्वर का सम्बन्ध प्रतिबिम्ब और उसके आधार के सम्बन्ध का जैसा है। समस्त जगत् उसी एक परमशिव में उसी के स्वातन्त्र्य से द्वैत की प्रतीति एक आभास मात्र है और उस आभास से अविर्भाव और तिरोभाव को शिव की शक्ति का विलास माना जाता है।

---

1. Kashmir Shaivaism (Part I) J. C. Chatterji, Edition 1914, page 9.
२. संत-वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव, डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय १९६२ ई०, पृ० ९८।
3. Kashmir Shaivaism (Part I) J. C. Chatterji, 1914, page 42.

इस आभास के सिद्धान्त को मानने के कारण काश्मीर शैवदर्शन की दार्शनिक दृष्टि को श्री चैटर्जी ने 'आभासवाद' नाम से पुकारा है ।[1]

शैवमत के अनुसार छत्तीस तत्त्व हैं जो शिवतत्व, विद्यातत्व और आत्मतत्व इन तीन विभागों के अन्तर्गत आते हैं । ईश्वर में जब सृष्टि की इच्छा प्रस्फुरित होती है तो उसके दो रूप प्रकट हो जाते हैं, शिवरूप ग्रौर शक्तिरूप । शक्ति के बिना शिव को अपनी प्रकाशरूपता का परिज्ञान ही नहीं होता है और शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व ही संभव नहीं । इस प्रकार से शिव और शक्ति एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते हैं । शक्तिरहित शिव शिव नहीं शव है । शिव और शक्ति वस्तुत: एक ही परमतत्व के दो स्वभावों के कारण दो नाम हैं और वह तत्त्व शिव ग्रौर शक्ति का समरस रूप परम शिव है । शक्ति के उत्तरोत्तर परिस्पन्द के द्वारा परमशिव के भीतर विद्या तत्व और मायातत्व का प्रतिबिम्ब-सदृश आभास हो जाता है । विद्या भेदाभेद का और माया पूरे भेद का अवभासन करती है । माया शिव को पुरुष रूप में प्रकट करने के लिए पाँच आवरणों की सृष्टि करती है—कला, राग, अशुद्ध-विद्या, काल और नियति । इन्हीं को कंचुक भी कहते हैं ।

त्रिक दर्शन में वेदान्त के जैसे शुष्क ज्ञान का और वैष्णव दर्शन की जैसी सरस भक्ति का पूरा सामंजस्य है । त्रिक दर्शन की आध्यात्मिक अद्वैत दृष्टि वेदांत की अद्वैत दृष्टि से भिन्न प्रकार की है । काश्मीर शैवमत के अनुसार परमेश्वर में कर्तृत्व है परन्तु वेदान्त के ब्रह्म में ऐसा नहीं है । शैवों का शिव चैतन्य के परिस्पन्द से सदैव स्पन्दमान रहता हुआ सृष्टि, स्थिति और संहार के प्रति उन्मुख बना ही रहता है परन्तु वेदान्त का ब्रह्म स्पन्दहीन आकाशवत शान्त बना रहता है । वह सृष्टि आदि भी वस्तुत: नहीं करता ।

शंकर के अद्वैतवाद में केवल ज्ञान की ही प्रधानता है और परावस्था में भक्ति का कोई स्थान नहीं है परन्तु कश्मीर शैवमत में ज्ञान और भक्ति का सर्वत्र सामंजस्य मिलता है । जगत् की पहेली को सुलझाने के लिए शांकर वेदान्त में अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या का आश्रय लिया गया है, परन्तु कश्मीर शैवदर्शन में इस प्रकार की अविद्या की कल्पना को दोषों में गिना गया है । वहां तो शिव के परिपूर्ण स्वातंत्र्य के सिद्धांत का आश्रय लेकर ही इस पहेली को सुलझाया गया है । ईश्वर की स्वातन्त्र्य-शक्ति के कारण बिना बिम्ब के ही जगत् के रूप का प्रतिबिम्ब स्वत: आभासित होता है । माया भी कोई आकस्मिक वस्तु नहीं है । वह भी एक आभास है जिसका कारण शिव का स्वातंत्र्य है । उसे आत्मा का अपनी इच्छा से परिगृहीत रूप ही माना गया है । काश्मीर शैव दर्शन में ज्ञानयोग से उच्चतर पदवी इच्छा योग अर्थात् शाम्भवोपाय को दी गई है जिसका उल्लेख भी शांकर वेदान्त में कहीं भी नहीं मिलता ।

---

१. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, षष्ठ संस्करण ई० १९६०, पृ० ५६१ ।

सूफीमत

सूफी कौन थे ? कहां से आये थे ? इस विषय में अधिक मतभेद हैं । कई विद्वान सूफ से 'ऊन' का अर्थ लगाकर सूफियों के वस्त्र विशेष प्रकार से ऊन के बने होने के कारण ही उन्हें सूफी कहते हैं। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति पवित्रता, निश्छलता और ज्ञान जैसी भावात्मक संज्ञाओं से भी मानी जाती है। 'सूफा' एक अरबी जाति भी बताई जाती है जिनका वास्तविक स्थान बनीमज़ार था। ये मुहम्मद से पूर्व मक्का में तत्काल-स्थित मन्दिरों में पूजा-उपासना करते थे। सूफी शब्द का सम्बन्ध ग्रीक शब्द 'सोफिया' से भी माना जाता है और धारणा यह है कि सूफी कयामत के दिन सर्वप्रथम पंक्ति में होंगे। अधिकांश विद्वान 'सूफ' से ही सूफी की व्युत्पत्ति मानते हैं। फारसी विद्वान जामी के अनुसार 'सूफी' शब्द हिजरी से आठ सौ वर्ष पूर्व अबूहाशिम के लिए प्रयुक्त हुआ था, इस शब्द का प्रचलन अधिकतर हिजरी दो सौ वर्ष पश्चात् ही हुआ है।[1] सूफ एवं सूफी शब्दों के बीच सीधा शब्दसाम्य दीख पड़ता है। ऊन के वस्त्र धारण करने के कारण वे अपनी निस्पृहता, सादगी तथा स्वेच्छोदारिद्य का प्रदर्शन करने में समर्थ थे। सांसारिक वस्तुओं से उन्हें कोई मोह न था।[2]

भारत में सूफी मत का प्रवेश बारहवीं शताब्दी में हुआ। ये प्रचारक मुसलमान विजेताओं के साथ-साथ आगे बढ़ते जाते थे और दो शताब्दियों में ही ये कश्मीर, दक्षिणभारत तथा बंगाल आदि प्रदेशों तक फैल गये। आरम्भिक मुसलमान विजेताओं के समय में ही सूफियों ने सांसारिकता और पाखण्ड से सुदृढ़ प्रतिक्रिया की।[3] १३वीं और १४वीं शताब्दी में इनका प्रचार खूब रहा। ये सूफी साधक सर्वप्रथम पंजाब और सिंध में आये। सूफीमत का प्रथम चरण पश्चिमी भारत (कश्मीर, सिंध तथा गुजरात) में पड़ा। देहली के सुलतान किसी-न-किसी सूफी साधक के शिष्य या मुरीद बन जाते थे या उन्हें विशेष सम्मान प्रदान करते थे। सूफियों का देहली में प्रभाव होने के कारण उत्तर प्रदेश में इनका फैलना कठिन न रहा।[4] यह धर्म निम्न चार सम्प्रदायों के रूप में प्रचलित हुआ—

१—चिश्ती सम्प्रदाय (समय सन् बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध)
२—सुहरावर्दी सम्प्रदाय (समय सन् तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध)
३—कादरी सम्प्रदाय (समय सन् पंद्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध)
४—नक्शबन्दी सम्प्रदाय (समय सन् सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध)

---

1. Sufism and Vedanta, Part I, Dr. Roma Chaudhri, Edition 1945, page 2.
२. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा० सरला शुक्ल, संस्करण २०१३ विक्रमी, पृ० ४।
3. Sufism, A. J. Arberry, Edition 1956, page 19.
४. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा० सरला शुक्ल, संवत् २०१३, पृ० २६।

इन सम्प्रदायों में कोई सैद्धान्तिक अन्तर नहीं है। केवल आचार-भिन्नता इस सीमा तक है कि एक सम्प्रदाय में ईश्वर का स्मरण उच्च स्वर में किया जाता है तो दूसरे में मौन रहकर और कहीं संगीत के आश्रय में गाकर। ये सभी मत ईश्वर की एकता को मानने वाले हैं। इनका दृष्टिकोण उदार और विशाल था। ये सम्प्रदाय अधिकतर तुर्किस्तान, इराक, ईरान और अफ़गानिस्तान से विभिन्न संतों के द्वारा भारत में स्थापित हुए।[1]

सूफी साधक आत्मा और परमात्मा की एकता मानते हैं। इस दृष्टि से उनमें पैगम्बरी ऐकेश्वरवाद से भिन्नता है। पैगम्बरी ऐकेश्वरवाद सृष्टि और अल्लाह में भेद मानते हैं और इसी कारण पैगम्बर को भी अधिक महत्त्व देते हैं। यही कारण है कि मन्सूर ने जब अनल्हक (मैं ही ब्रह्म हूँ) कहा था तो उसे मृत्युदण्ड दिया गया। क्योंकि यह इस्लाम के अनुसार कुफ्र की बात थी। सूफियों के अनुसार ईश्वर कर्त्ता, पालक, संहारक और परम सत्य रूप है। सूफियों की ब्रह्म-सम्बन्धी विचारधारा इजादिया, वजूदिया और शुहुदिया तीन प्रकार की है। इजादिया विचारधारा के अनुसार वे ईश्वर का अस्तित्व सृष्टि से भिन्न मानते हैं। ईश्वर ही सृष्टि का निर्माता है। ईश्वर और सृष्टि का सम्बन्ध इनके अनुसार कर्त्ता और कृति का है। शुहूदिया विचारधारा वाले ईश्वर और सृष्टि में बिम्ब और प्रतिबिम्ब का सम्बन्ध मानते हैं, वजूदिया विचारधारा के अनुसार उस एक तत्व को ही सृष्टि में प्रसारित माना जाता है। सूफियों के अनुसार भी अहं या खुदी की भावना के नष्ट होने पर ही आत्मा और परमात्मा का एकत्व होता है। इसी कारण सूफी कवियों के नायक-नायिका का पाणिग्रहण करवाया जाता है। परमतत्व और मानव के वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों में परमात्मा की चेतना वर्तमान है। परमात्मा और आत्मा में व्यावहारिक भेद है परन्तु वास्तविक नहीं।

सूफी मुहम्मद के नूर की उत्पत्ति परम ज्योति से मानते हैं। वही इस सृष्टि का निमित्त एवं उपादान कारण बन गया। इनके अनुसार मानव के शरीर में ईश्वर का पूर्ण प्रतिरूप है। जगत् उसकी केवल आंशिक छवि है।[2]

सूफियों के अनुसार माया के दो रूप हैं—प्रथम तो शरीर के अन्तर्गत 'अहं' या 'नफ्स' की भावना है और द्वितीय बाह्य संसार का आकर्षण। अहं भाव से ही भ्रम उत्पन्न होता है, जीव में अज्ञान होता है जिसके फलस्वरूप वे परमात्मा के स्वरूप को नहीं देख सकते हैं। इनके अनुसार जगत् से भिन्न एक शाश्वत सत्ता है, उसी का अन्वेषण करना चाहिए।

सूफी साधना की चार अवस्थायें मानते हैं—शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारिफत। शरीअत से तात्पर्य है धर्मग्रन्थों की विधि का पालन और कर्मकाण्ड। तरी-

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, संस्करण १९५८ ई०, पृ० ३०२।

२. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा० सरला शुक्ल, संस्करण २०१३ विक्रमी पृ० ६८।

कत में बाह्य क्रियाओं की ओर ध्यान न देकर हृदय की शुद्धता से परमसत्ता का ध्यान किया जाता है, यह उपासनाकाण्ड है। हकीकत में भक्ति या उपासना से परमसत्य का ज्ञान होता है और मारिफत सिद्धावस्था है। इसमें साधक कठिन उपवास या मौन साधना द्वारा परमात्मा में विलीन होना चाहता है। ईश्वर की कृपा पर निर्भर साधक की अवस्थाओं को 'हाल' कहा जाता है। हाल की उपलब्धि ईश्वर की कृपा का फल है। सूफियों का साध्य फना है, मुहोब्बत नहीं, मुहोब्बत तो साधनमात्र है। अतः सूफियों के अनुसार इन सोपानों का क्रम, इन्हें अबूदिया (एकनिष्ठ), इश्क (प्रेम), जहद (स्वेच्छा-त्याग), म्वारिफ (साधन चतुष्टय सम्पन्न), वज्द (आत्मविस्मृति), हकीकत (परमज्ञान और वस्ल) कहते हैं।[१]

सूफियों ने 'जिक्र' और 'फिक्र' का विशेष उल्लेख किया है। ईश्वर के गुणों का चिन्तन करना जिक्र कहलाता है।[२] साधक अहंभाव का नाश करके अपने को परम-स्वरूप के ध्यान में लगा देता है। 'फिक्र' का उद्देश्य आत्म-विस्मृति है। साधक को व्यक्तिगत इच्छाओं और आकांक्षाओं से अनासक्ति हो जाती है, वह परमतत्त्व के आगे आत्मसमर्पण करता है।

सूफियों ने इश्क (प्रेम) को अत्यधिक महत्त्व दिया है। इसमें 'स्व' और 'पर' की भावना नहीं रहती है। सूफियों के नायक-नायिका का सामान्य प्रेम ही परमप्रेम का संकेत करता है। इन्होंने ब्रह्म को नारी मानकर उसे प्रियतमा का रूप दिया है और जीव अर्थात् साधक प्रियतम बनकर उसका अन्वेषण करता है। सूफियों के अनुसार प्रेम ही सत्यमार्ग है, प्रेमपूर्ण हृदय में कैलाश होता है। परमतत्त्व को प्राप्त करने का माध्यम सूफियों के अनुसार प्रेम ही है। एक सूफी का कथन है कि दुनिया में जो कुछ है, इश्क का जलवा है। आग इश्क की गर्मी है, हवा इश्क की बेचैनी है, पानी इश्क की रफ्तार है, खाक इश्क का कयाम है, मौत इश्क की बेहोशी है, जिन्दगी इश्क की होशि-यारी है, रात इश्क की नींद है, दिन इश्क का जागना है, मुस्लिम इश्क का जमाल है, काफिर इश्क का जलाल है, नेकी इश्क की कुरबत है, गुनाह इश्क से दूरी है, बिहिश्त इश्क का शौक है, दोज़ख इश्क का जौक है। सार रूप में इश्क ही सबकुछ है। प्रेम सौन्दर्य से जाग्रत हो सकता है और सूफियों की परमसत्ता सौन्दर्यमय है। उसका प्रकाश (नूर) चहुं ओर विकीर्ण है अतः उसके प्रति प्रेम स्वाभाविक ही है।

---

१. वही, पृ० ८०।

2. The Persian Sufies, Cyprian Rice O. P., Edition 1964, page 88.

३ | १४वीं और १५वीं शताब्दी के कश्मीरी संत-कवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा

लल्लद्यद :

लल्लद्यद ने अपने जीवन के विषय में वाख्यों में कुछ नहीं संकेत किया है। अतः लल्लद्यद पर जो कुछ सामग्री उपलब्ध है वह बहिर्साक्ष्य के आधार पर ही है। इस सामग्री को निम्न चार भागों में विभाजित किया जा सकता है--

१. अन्य संत-कवियों द्वारा लल्लद्यद का उल्लेख।

२. कश्मीर के इतिहास-ग्रन्थों में लल्लद्यद का उल्लेख।

३. लल्लद्यद पर उपलब्ध ग्रन्थ।

४. कश्मीरी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में लल्लद्यद का उल्लेख।

१. लल्लद्यद कश्मीरी संत-काव्योद्यान में प्रथम विकसित पुष्प की भाँति हमारे सम्मुख आती है। यद्यपि कश्मीरी साहित्य का प्रारम्भ लल्लद्यद से पूर्व शितिकण्ठ के 'महानय प्रकाश' से होता है, परन्तु 'महानय प्रकाश' की भाषा 'कश्मीरी' के उतनी निकट की कृति नहीं है जितने लल्लद्यद के वाख। कश्मीरी भाषा के विकास की दृष्टि से लल्लद्यद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि लल्लद्यद के समकालीन और परवर्ती प्रायः सभी संतों ने लल्लद्यद की प्रशंसा की है। लल्लद्यद के समकालीन संत नुंदर्योश ने लल्लद्यद का उल्लेख करके उसे पद्मपुर (पांपोर) ग्राम की माना है।[1] रूप-भवानी ने लल्लद्यद को अपना परम गुरु माना है।[2] परमानन्द ने लल्लद्यद के योग को

---

१. तस पद्मान पोरचि लले।
तमि गले अमृथ चव।
सों स्'त्य अवतार लोले।
तिथ्य म्ये वर दितम दीव।
नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५, पृ० ६९ (उर्दू)।

२. लल नाम लल परमा ग्वोरम।
शिव माधव नांह परं ब्रह्म सोहम्।
श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, २००७, वि० पृ० ६।

सराहा है। इस हमारी काया में चन्द्रमा भी विद्यमान है और सूर्य भी। लल्लद्यद ने भी 'हुह' को 'शीत' और 'हा ह' को 'उष्ण' कहा है।[1] वे योग-प्रक्रिया से अपनी काया में अनाहत नाद बिन्दु का ज्ञान प्राप्त करती थीं और ओम् शब्द का श्रवण करती थीं।[2] मुसलमान संत कवि शमस फकीर ने भी लल्लद्यद की प्रशंसा अपनी कविता में की है। उनके अनुसार लल्लद्यद ने यौगिक प्रक्रिया से आकाश और प्राण को एक किया और ईश्वर का साक्षात्कार किया।[3] संत कवि मिर्ज़काक ने भी अपने काव्य में लल्लद्यद का उल्लेख किया है और उसे पद्मपुर (वर्तमान पांपुर) की माना है। लल्लद्यद ने शिव के साथ साक्षात्कार करके अमृत का आस्वादन किया था।[4] संत रामानन्द ने भी अपने पदों में लल्लेश्वरी को ही परम गुरू माना है।[5] लछकाक संत ने भी अपने वाख्यों में लल्लद्यद का संकेत किया है।[6]

२. कश्मीर के इतिहास ग्रन्थों में भी लल्लद्यद का उल्लेख मिलता है। डा० जी० एम० डी० सूफी के ग्रन्थ 'कश्मीर' भाग द्वितीय में लल्लद्यद का उल्लेख पृष्ठ तीन सौ त्रियासी पर आया है जिसमें डा० सूफी ने लल्लद्यद के जीवन पर प्रकाश डाला है। यह पुस्तक पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर (पाकिस्तान) से सन् १९४८ में प्रकाशित हुई है। श्री मौहिब्बुल हसन के ग्रन्थ 'कश्मीर अण्डर दि सुलतानस' में दो सौ अठत्तीस पृष्ठ

---

१. देह ब्रह्माण्डस मन त प्राण इन्द्र रव।
ललि वोन हह तुरुन त हाह वुशुन।
परमानन्द (भाग ३) मास्टर जिन्दाकौल सं० १९५८, पृ० २५।

२. ललीश्वरी यी योग ग्रास धारान।
द्वादशान्त मण्डल मंज कुन्य जन्य।
अनाहत नाद-बिन्दु ओम परज़नावान।
वही, पृ० ८९।

३. कोर ललि इकवट आकाश प्राणस।
जाग मिलनाव भगवानस सूत्य।
शमस फ़कीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद (उर्दू में), प्र० सं० १९५९, पृ० ६८।

४. पद्मान पोरचि लले।
तमि गले अमृथ चव।
तमि शिव वुछ थलि थलि।
त्युथ वर म्ये दितम दीव॥
मिर्ज़काक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, १९६३, पृ० २८, (नार्गल प्रेस, श्रीनगर)।

५. शसणय ब सथ ग्वोरस पराए रूफ ग्वोरस।
ग्वोर लल्लीश्वरस भजनय राम रामै। (पाण्डुलिपि से)

६. दह दिशि च़े दय नाल्यी,
पद्मान पोरचि ललिये।
भक्त्यन रक्षपाली,
वोलय रोद्माल्यी॥ कविता नं० १८, मूल पाण्डुलिपि।

पर भी लल्लद्यद का उल्लेख करके लेखक ने उसे १४वीं शताब्दी की कश्मीर की एक प्रसिद्ध योगिनी बताया है। यह ग्रन्थ ईरान सोसाइटी कलकत्ता से सन् १९५९ में प्रकाशित हुआ है। श्री पी० एन० कौल बामज़ई के ग्रंथ 'ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर' में पृष्ठ चार सौ चुरानवे पर लल्लेश्वरी का उल्लेख आया है, जिसमें बामज़ई साहब ने लल्लद्यद के जीवन, उसके युग की परिस्थितियों और उसके काव्य पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। यह वृहत्काय ग्रन्थ मोट्रोपालिटेन बुक कं० (प्राइवेट) लिमिटेड, दिल्ली से सन् १९६२ में प्रकाशित हुआ है। उपर्युक्त ये तीनों ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा में हैं।

३. तृतीय वर्ग में वे ग्रन्थ और लघु ग्रन्थ आते हैं जो पूर्णतः लल्लद्यद पर ही लिखे गये हैं इनमें। सर्वप्रथम 'लल्लवाक्यानि' पुस्तक का उल्लेख करना आवश्यक है। इसमें राजानक भास्कराचार्य ने लल्लद्यद के साठ पदों का संकलन देवनागरी लिपि में किया है और उन पदों का संस्कृत पद्य में रूपान्तर किया है। यह संग्रह विश्वनाथ एण्ड सन्स, श्रीनगर से प्रकाशित है। इसमें प्रकाशन तिथि का संकेत नहीं है। श्री आनन्द कौल बामज़ई के अनुसार यह संग्रह आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व तैयार किया गया है।[1]

अंग्रेजी विद्वान श्री ग्रियर्सन महोदय ने अंग्रेजी ग्रन्थ 'लल्लवाक्यानि' में लल्लद्यद के एक सौ नव वाख्य रोमनलिपि में दिये हैं। इसमें लल्लद्यद के जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। इन एक सौ नव पदों में राजानक द्वारा संकलित साठ पद भी सम्मिलित हैं। यह पुस्तक सन् १९२० में रायल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित हुई है। इसके पश्चात् सन् १९२४ में विश्वविद्यालय प्रेस, कैम्ब्रिज, लन्दन से एक पुस्तक 'दि वर्ड आफ लल्ला दि प्राफेट्यस' नाम से अंग्रेजी में प्रकाशित हुई। इसमें ग्रन्थ-कर्त्ता सर आर० सी० ट्यम्पल ने लल्लद्यद के वाख्यों की धार्मिक पृष्ठभूमि का गहरा अध्ययन किया है और ग्रियर्सन महोदय द्वारा संकलित १०९ पदों का ही अध्ययन किया है। इसके पश्चात् पं० आनन्द कौल बामज़ई ने एक लघु ग्रन्थ 'लल्लयोगेश्वरी' में लल्लद्यद के और पचहत्तर वाख्यों का संकलन किया है, जो ग्रियर्सन महोदय के अतिरिक्त हैं। इस पुस्तक में श्री बामज़ई साहब ने इन पदों का अनुवाद अंग्रेजी में किया है और लल्लद्यद के जीवन पर भी संक्षिप्त प्रकाश डाला है। यह पुस्तक मर्कनटाइल प्रेस, लाहौर (पाकिस्तान) से प्रकाशित है। इसमें प्रकाशन तिथि का संकेत नहीं मिलता है। इस पुस्तक की सामग्री इण्डियन एनटिक्वेरी में प्रकाशित की गई थी।[2]

संवत् १९९६ में पं० सर्वानन्द चरागी ने लल्लद्यद के सौ वाख्यों का संकलन देवनागरी लिपि में किया है, और उनका अर्थ हिन्दी भाषा में दिया है। यह पुस्तक के स्टेन्डर्ड प्रेस, श्रीनगर से प्रकाशित है। पं० जियालाल कौल जलाली ने 'ललवाख' पुस्तिका में लल्लद्यद के अठत्तीस वाख दिये हैं और उनका हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। इसका प्रकाशन सन् १९५६ में हुआ है। ये वाख जलाली महोदय को श्रीराम-

---

1. Lalla Yogishwari, Pandit Anand Koul, Page 20.
2. Lalla Yogishwari, Pandit Anand Koul, Page 9-10.

चन्द्र मल्ला से प्राप्त हुए हैं जिन्होंने अलग से लल्लद्यद के वाख्यों का संकलन 'अमृत-वाणी' के नाम से किया है। इसमें लगभग एक सौ उन्नचास वाख्य हैं और यह न्यू कश्मीर प्रेस, श्रीनगर से सन् १९६१ में प्रकाशित है। इसमें संकलित अनेक वाख्य अन्य पुस्तकों में उपलब्ध नहीं हैं। कल्चर्ल अकादमी, श्रीनगर से प्रकाशित लल्लद्यद पुस्तक में एक सौ पैंनतीस वाख्य उर्दू लिपि में संकलित हैं।

४. कश्मीरी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में भी लल्लद्यद का उल्लेख मिलता है। पं० रघुनाथ दर रचित 'संतमाला', अब्दलु अहद आज़ाद की 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' और प्रो० महीउद्दीन हाजिनी के 'कशिर शायरी' में लल्लद्यद का उल्लेख आया है। ये तीनों ग्रंथ उर्दू भाषा में हैं और क्रमशः सन् १९६३ में नोबुल विज़िन्यस हाऊस, रेड क्रास रोड़, श्रीनगर, कल्चर्ल अकादमी श्रीनगर से सन् १९६२ और साहित्य अकादमी दिल्ली से सन् १९६० में प्रकाशित हुए हैं।

लल्लद्यद का जीवन-परिचय—लल्लद्यद लल्लेश्वरी, लल्लायोगेश्वरी तथा माता लल्ला के नाम से कश्मीरी जनता में प्रसिद्ध है। लल्लेश्वरी का जन्म कब हुआ था इस पर विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं और इनकी जन्म तथा मरण-तिथि पर भी अत्यधिक विवाद प्रचलित हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन[1] और सर आर० सी० ट्यमपल[2] लल्लद्यद का जन्मकाल १४वीं शताब्दी मानते हैं तथा उनको सैयद अली हमदानी की कश्मीर यात्रा के समय विद्यमान मानते हैं। डा० जी० एम० डी० सूफी के अनुसार लल्लद्यद का जन्म सन् १३३५ में उदयन देव के समय हुआ था।[3]

पं० जियालाल कौल जलाली के अनुसार लल्लद्यद का जन्म १४वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में भाद्रपद की पूर्णिमा को संयमपोर गांव में हुआ तथा पांपोर गांव में विवाह सम्पन्न हुआ था। जीवन की यात्रा समाप्त करके यह तेल अष्टमी (कश्मीर में हिन्दुओं द्वारा मनाया जाने वाला फाल्गुन शुक्ल अष्टमी के दिवस का पर्व) के दिन

---

1. "She probably lived in the fourteenth century of our era, being a contemporary of Sayid Ali Hamadani at the time of his visit to Kashmir."
   Lalla Vakyani, Sir George Grierson, 1920, Page 3.
2. "She certainly existed, and that she lived in the fourteenth century of the christian era, being a contemporary of Sayid Ali Hamadani at the time of the visit to Kashmir 1379-80 to 1382 to 86 A. D."
   The word of Lalla, the Prophetess, R. C. Temple, 1924, Page 1.
3. "Lalla Arifa was born in 735 A. H. (1335 A. C.) in the time of Udyanadeva."
   Kashir Vol. II. G. M. D. Sufi, 1949, Page 383.

दिवंगत हुईं ।[१] श्री जलाली जी ने मरण-तिथि की ओर संकेत नहीं किया है ।

श्री पी० एन० कौल बामज़ई के अनुसार लल्लद्यद का जन्म १४वीं शताब्दी का मध्यकाल था ।[२]

लल्लद्यद के जन्म और मरण की कोई निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं है । यद्यपि श्री जलाली जी ने प्रयत्न किया है परन्तु इस मत का कोई आधार नहीं मिलता । जब तक कोई प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक लल्लद्यद का जन्म १४वीं शताब्दी का मध्यकाल मानना ही उचित है ।

माता-पिता और पारिवारिक जीवन—प्रचलित मत के अनुसार लल्लद्यद के माता-पिता पांद्रेष्ठन (प्राचीन पुनराधिष्ठान) में निवास करते थे जो कश्मीर घाटी से साढ़े चार मील दक्षिण-पूर्व की ओर है । तत्कालीन प्रथानुसार लल्लद्यद का विवाह बाल्यावस्था में ही पांपोर नामक ग्राम में एक पंडित घराने में हुआ था । इसके पति का नाम स्वोन पंडित था । लल्लद्यद को अपनी सास का कुव्यवहार सहन करना पड़ता था । जनश्रुति है कि वह उसके चावलों के नीचे एक पत्थर रखती थी ताकि चावल अधिक मात्रा में दिखाई दें और लल्लद्यद भूखी रहे । यह तथ्य कहां तक सत्य है, कहा नहीं जा सकता जब तक प्रामाणिकता सिद्ध न हो, परन्तु यह बात कश्मीरी भाषा में एक मुहावरे 'ललि नील वठ चलि न जांह' के रूप में अभी भी सुरक्षित है । जनश्रुति है कि एक बार उसके ससुर को यह ज्ञात हुआ और स्वाभाविक था कि वह बहू के प्रति सहानुभूति प्रकट करें परन्तु इस पर भी उसकी सास क्रुद्ध हुई और उसने लल्लद्यद के पति को पत्नी के विरुद्ध भड़काया, परिणाम हुआ कि लल्लद्यद को अधिक-से-अधिक दुःख मिलने लगा । अन्त में सामाजिक और पारिवारिक कष्टों से तंग आकर उसने गृहस्थी त्याग दी, और वास्तविक आनन्द का अन्वेषण करने लगी । लल्लद्यद के पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित कई कथायें प्रचलित हैं, परन्तु प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है ।

गुरू—लल्लद्यद के परिवार का गुरु सिद्ध श्री कण्ठ था, जिसने लल्लद्यद में धर्म और ज्ञान के प्रति रुचि देखी ।[३] इनको स्यद मोल भी कहते हैं । यह सिद्ध श्री कण्ठ

---

१. ललवाख, पं० जियालाल कौल जलाली, सन् १९५६, पृ० १ ।

2. "She was born in about the middle of the 14th century of the christian era at the time of SultanAlau-ud-Din."
A History of Kashmir, P. N. Koul Bamzai, Ist Edition 1962, Page 495.

3. "It was this cleric who noted the child's precocious nature and her love for religious knowledge. He initialed her into the mysteries of Shiv Yoga."
Keys to Kashmir, Lalla Rookh publications, Edition 1957, Page 64.

पांपोर के ही पहुँचे हुए विद्वान योगी थे और वसुगुप्त के, जिन्होंने आधुनिक कश्मीर शैवमत का प्रादुर्भाव किया, वंशज माने जाते हैं। लल्लद्यद इन्हीं गुरु की कृपा से योग के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त कर गई। साधना से वह अपने गुरु से भी आगे बढ़ गई ऐसा विश्वास किया जाता है[1]—

गव चा़ठ ग्वोरस खसिथ
त्युथ वर दितम दीव।

(अर्थात् हे देव ! मुझे ऐसा वर दो जिससे शिष्य गुरु से आगे बढ़ जाये।)

एक पंडित परिवार में उत्पन्न होने के कारण अच्छे संस्कारों को लेकर गुरु की कृपा से लल्लद्यद ने वह रूप धारण किया जो आज हमारे सम्मुख है।

लल्लद्यद की जाति—हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान श्री परशुराम चतुर्वेदी ने लल्लद्यद को नीच जाति की माना है। उनके अनुसार "लल्ला व लाल कश्मीर की रहने वाली एक ढेढ़वा जाति की थी स्त्री जो सामाजिक दृष्टि से निम्न स्तर वाले परिवार की होकर भी बहुत उच्च विचार रखती थीं।[2] डा० गोविन्द त्रिगुणायत लल्लद्यद को लालदेद नाम देते हैं और उसे नीच जाति का मानते हैं। लालदेद नाम देना उच्चारण-भिन्नता का परिणाम है परन्तु जाति के विषय में उनका कथन है—"मध्यकालीन कश्मीरी संतों में सबसे अधिक ख्याति लालदेद की है। यह जाति की भंगिन थी किन्तु उसके आचार-विचार बहुत ऊंचे थे।"[3]

जहां तक मेरा अपना विचार है, लल्लद्यद निम्न परिवार या जाति की नहीं थी, उच्च वंशज थी। वह पंडित घराने में उत्पन्न हुई थी और एक सम्मानित परिवार में विवाहित थी। इस बात के प्रमाण हमें जनश्रुतियों और अन्य लेखकों के शोध-परक प्रबन्ध तथा ग्रन्थों में मिलते हैं। डा० सूफी के अनुसार लल्लद्यद हिन्दू थी।[4] आर० सी० ट्यमपल भी उसे शैव हिन्दू मानते हैं। लल्लद्यद पर जो सूफी प्रभाव है वह वास्तव में

---

1. "She found her guru in Sidh Sri Kanth, whom she ultimately excelled in spiritual attainments, "Gav Isatha guras Khasi thay Tyuth var ditain Diva."
   A History of Kashmir, P. N. Koul Bamzai, Ist Edition 1962 Page 49.

२. उत्तरी भारत की संत परम्परा, श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, प्र० सं० २००८ वि०, पृ० १०१।

३. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, प्र० सं० १९६१, पृ० ३६१।

4. "Though originally a Hindu, she was greatly influenced by Islamic sufistic thought."
   Kashir vol. I, G. M. D. Sufi, 1948, Page 383.

हिन्दुओं के उपनिषदों का आदर्शवाद ही है।[१] ग्रियर्सन की पुस्तक में भी इसी बात का संकेत मिलता है कि लल्लद्यद एक सम्मानित परिवार में विवाहित थी।[२]

इसके अतिरिक्त जनश्रुति के आधार पर भी हम यह मानने को तत्पर हैं कि वह उच्चवंश की थी। लल्लद्यद के वंशज आज भी पान्द्रेंठन और पांपोर ग्रामों में हैं।

अब रही लल्लद्यद को भंगी बताने की बात। इसके उत्तर में मेरा विचार है कि आज भी कश्मीर में भंगी का कार्य प्रायः पुरुष ही करते हैं यद्यपि अपवाद रूप में इनी-गिनी नारियां भी भाग लेती हैं परन्तु वे मुसलमान नारियां हैं और न होने के बराबर ही संख्या में कम हैं। हिन्दू नारियों का न यह क्षेत्र रहा है और न आज ही है। अतः उपर्युक्त हिन्दी विद्वानों का यह कहना कि लल्लद्यद भंगिन जाति की थी, भ्रमपूर्ण है। बाह्यसाक्ष्य के आधार पर हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वे उच्च जातीया थीं।

लल्लद्यद का युग—लल्लद्यद ने अपने जीवनकाल में कश्मीर पर लगभग छः सुल्तानों का शासन देखा—

सुल्तान अल्लाउद्दीन (कश्मीर का तीसरा मुसलमान शासक,
शासनकाल १३४३-१३५४ ई०)
सुल्तान शहाबुद्दीन (शासनकाल १३५४-१३७३ ई०)
सुल्तान कुतुबुद्दीन (शासनकाल १३७३-१३८९ ई०)
सुल्तान सिकन्दर (शासनकाल १३८९-१४१३ ई०)
सुल्तान अलीशाह (शासनकाल १४१३-१४२० ई०)
सुल्तान जैन-उलआबद्दीन (शासनकाल १४२०-१४७० ई०)

सुल्तान अल्लाउद्दीन ने अपने ग्यारह वर्ष के शासनकाल में अपने को एक योग्य और सुदृढ़ शासक सिद्ध किया। कुलछा और अचल के आक्रमणों से नष्ट-भ्रष्ट देश को सुधारने में उसने अधिक समय व्यतीत किया।[३] उसके शासन के द्वितीय वर्ष में कश्मीर में अकाल पड़ा परन्तु इतिहासकार जौनराज के अनुसार शासक ने रक्षा का प्रत्येक प्रयत्न किया। अल्लाउद्दीन की मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र सुल्तान शहाबुद्दीन

---

1. "Although Lalla as a Shaiva Hindu and her turn of thought and feeling was distinctly of her own religion, a perusal of the following pages will show that there is much of them of all this teaching of the Sufis, which is in fact almost Hindu Upnishadic Idealism."
The word of Lalla the Prophetess, R. C. Temple, 1924, Pages 6.

2. "She is said to have been originally a married woman of respectable family." Lalla vakyanim, Grierson, 1920, Page 1-2.

3. History of Kashmir, P. N. Kaul Bamzai, 1962, Page 292.

सन् १३५५ ई० में गद्दी पर बैठा, उसने शासन के उन्नीस वर्षों में कश्मीर के चहुँ ओर सब भागों पर अपना अधिपत्य जमाने का प्रयत्न किया, उसने अनेक आक्रमण किये और मुल्तान, काबुल, गज़नी, कन्धार, बलतिस्तान, लद्दाख, गिलगित और दर्द पर अधिकार करके किशतवाड़ और जम्मू को भी अपने शासन में मिला लिया।[1] यद्यपि इन्होंने "बेगार" और "बाज" का प्रचलन किया तथापि ये विद्वानों का आदर करते थे। उन्होंने कई स्कूल खोले जहां कुरान और हदीस की शिक्षा दी जाती थी। ये हिन्दुओं के प्रति भी उदार थे, जब इनका कोष रिक्त हुआ था और इनकी माता ने महात्मा-बुद्ध की पीतल की मूर्ति को गलाकर सिक्के बनाने की प्रार्थना की थी तो ये क्रुद्ध हुए थे और कहा था—जनता ने योग्यता और प्रशंसा प्राप्त करने के लिए मूर्तियों का निर्माण किया है और तुम उन्हें तोड़ने की आज्ञा देती हो, कई मूर्तियों के निर्माण से, कई अर्चना से और कई उनकी रक्षा से तथा कई उन्हीं मूर्तियों को तोड़कर प्रसिद्धि पाते हैं।[2]

यद्यपि इस समय तक कश्मीर लगभग ५० वर्ष से मुसलमान शासन के अधीन था परन्तु जनता या शासकों में धार्मिक असहिष्णुता का भाव नहीं था। शहाबुद्दीन के पश्चात् जब सुल्तान कुतुबुद्दीन के शासन के दसवें वर्ष अर्थात् सन् १३०३ ई० में सैयद अली हमदानी की तीसरी कश्मीर-यात्रा हुई तभी से मुसलमान शासकों की धार्मिक भावना में परिवर्तन आना आरम्भ हुआ। सैयद अली हमदानी की तीसरी यात्रा उस समय हुई जब तैमूर ने परशिया पर आक्रमण किया, ईराक को विजित कर उसने हमदान से अलवी सैयदों को निकाल दिया, तैमूर की क्रोधाग्नि से बचकर सैयद अली हमदानी सात सौ सैयदों के सहित कश्मीर आये जहां सुल्तान कुतुबुद्दीन ने उनका स्वागत किया।[3] इस समय तक मुसलमान शासकों की ओर से हिन्दू जनता के प्रति कोई कटु व्यवहार नहीं था, जनता का अधिकांश भाग हिन्दू और अल्पांश भाग मुसलमान था; वस्त्र, स्वभाव और रीतिरिवाज दोनों के समान थे। सुल्तान और उसकी मुसलमान जनता प्रतिदिन प्रातः अलाउद्दीनपुरा के एक मन्दिर में जाती थी। इस्लाम के विरुद्ध कुतुबुद्दीन ने दो विवाह किये थे, उसकी पत्नियां परस्पर बहनें थीं। अकाल के समय शासक और उसके मन्त्री यज्ञ करते थे और जनता में भोजन वितरित करते थे परन्तु सैयद अली हमदानी को यह व्यवहार अनुचित लगा। उसने कुतुबुद्दीन को इस्लाम के नियमों के अनुसार रहने को कहा। परिणामस्वरूप सुल्तान ने अपनी एक पत्नी को त्याग दिया और द्वितीय से पुनः विवाह किया।[4] वस्त्रों में भी परिवर्तन करके मुसलमान देशों में प्रचलित वस्त्रों को अपनाया गया, शासक को एक टोपी भी दी

---

1. Kashmir Under the Sultans, Mohibbul Hassan, 1959, Page 49-50.
2. Ibid, Page 52.
3. Ibid, Page 56.
4. Ibid, Page 56.

जो वह अपने मुकुट के नीचे सदैव पहनते थे। इस टोपी का प्रचलन परवर्ती सुलतानों में भी रहा और अन्त में फतेहशाह के शरीर के साथ ही उनकी आज्ञानुसार उसे भी दफ़न किया गया।[१]

सुल्तान कुतुबुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र सिकन्दर सन् १३८९ ई० में गद्दी पर बैठा, कश्मीर के इतिहास में सिकन्दर का वही स्थान है जो भारत के इतिहास में औरंगज़ेब का है।[२] सुल्तान सिकन्दर के शासन के नवें वर्ष सन् १३९८ में अमीर तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया परन्तु उष्णता के आधिक्य के कारण वापस मध्य एशिया की ओर चला गया, भिन्न-भिन्न प्रदेशों के राजदूत अमीर तैमूर का साथ देने के लिए सिन्धु नदी के तट पर आये। सुल्तान सिकन्दर ने भी अपने व्यक्तियों को वहां भेजा और इस प्रकार तैमूर के आक्रमण से अपने देश की रक्षा की। सुल्तान सिकन्दर के समय कश्मीर के अनेक सैयद और विद्वान सूफी पर्शिया से आये जिनको वहां से निकाल दिया गया था। सिकन्दर ने कश्मीर में उनका स्वागत किया और उनके लिए जागीरों आदि की व्यवस्था की।[३] सन् १३६३ ई० में सैयद अली हमदानी के पुत्र मुहम्मद हमदानी तीन सौ सैयद लेकर कश्मीर आये, उसी को सिकन्दर ने गुरु और पथ-प्रदर्शक मानकर स्वागत किया।[४] इस प्रकार सुल्तान सिकन्दर इस्लाम के प्रभाव में आ गये और उन्होंने इस्लाम के नियमों के आधार पर शासन आरम्भ किया। उन्होंने सर्वप्रथम शेख-उल-इस्लाम नामक विभाग की स्थापना की जिसका कार्य यह देखना था कि शासन इस्लाम के नियमों के विरुद्ध तो नहीं हो रहा है। सिकन्दर ने ही सती-प्रथा और मस्तक के तिलक को बन्द करवाया।[५] और हिन्दुओं पर चांदी के दो पाल कर लगाया।[६] जज़िया का संकेत कश्मीरी भाषा के एक मुहावरे "जीर जज्य लागन्य" के रूप में भी सुरक्षित है। सुल्तान सिकन्दर अभी भी मूर्ति-भंजक के नाम से कश्मीर में स्मरण किये जाते हैं। यद्यपि इतिहासकार को तथ्य छिपाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए फिर भी मोहिब्बुल हसन और डा० सूफी सुल्तान सिकन्दर के इन कुकृत्यों को हिन्दू सहभट्ठ (अन्त में सैफुद्दीन के नाम से प्रसिद्ध धर्मपरिवर्तक) की शिक्षा का प्रभाव मानते हैं। यह साधारण जनता की बुद्धि को संगत नहीं लगता है कि सिकन्दर बुतशिकन अपने शिक्षक के हाथ का खिलौना था। वास्तव में तथ्य यह है कि शिक्षक की शिक्षा भी सुल्तान की इच्छा के ही अनुकूल थी।

---

1. A History of Kashmir, P. N. Kaul Bamzai, 1962, Page 295.
2. Kashmir, J. P. Forguson, 1961, Page 31.
3. A History of Kashmir, P. N. Kaul Bamzai, 1962, Page 297.
4. Kashmir Under the Sultans, Mohibbul Hassan, 1959, Page 63.

५. वही, पृ० ६४-६५।

६. दो पाल का अर्थ २१-२३ तोले चाँदी है, साढ़े सात पाल एक सेर के बराबर होता है।

सहभट्ठ अपने सैनिकों के साथ मन्दिरों की यात्रा कर उनको नष्ट करते थे। इन्हीं के समय मार्तण्ड, विन्येश्वरी, सूरेश्वरी आदि मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया गया जिसके लिए सुल्तान को उत्तरदायी माना जाता है।[1] सिकन्दर ने अपना ध्यान जनता की ओर भी लगाया, हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन पर विवश किया गया, अनेक ब्राह्मणों की हत्या करवाई गई जिनके असंख्य जनेऊ एकत्रित किये गये थे। इन परिस्थितियों में वहां केवल तीन ही बातें संभव थीं—रलुन अर्थात् मुसलमान बनना, गलुन अर्थात् मृत्यु स्वीकार करना और चलुन अर्थात् वहां से भाग जाना। भागने के लिए यद्यपि एक विशेष आज्ञा लेनी होती थी परन्तु फिर भी अनेक ब्राह्मण वहां से भाग ही गये।

कश्मीरी हिन्दुओं में अधिकांश दक्षिण की ओर चले गये थे और उस समय कश्मीर में केवल ग्यारह परिवार ही रह गये थे। एक ओर सिकन्दर बुतशिकन ने हिन्दू मन्दिरों और मूर्तियों का खण्डन करवाया और द्वितीय ओर काठ की मस्जिदें बनवाईं। उन्होंने बिजबिहारा में जामामस्जिद और श्रीनगर में खानकाहमौला का निर्माण करवाया।[2] सिकन्दर की मृत्यु सन् १४१३ ई० में हुई और उनके पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र मीरखान, जिनको अलीशाह का नाम दिया गया, गद्दी पर बैठे, उन्होंने सात वर्ष तक शासन किया, उनके पश्चात् जैन-उल-आबद्दीन ने सन् १४२० ई० में शासनाधिकार अपने हाथ में ले लिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि लल्लद्यद ने आरम्भ से ही हिन्दूमत और इस्लाम का संघर्ष देखा। एक ओर हिन्दुओं के विश्वास और रीति-रिवाजों का खण्डन किया जाता था और दूसरी ओर से सैयद धार्मिक असहिष्णुता की ज्वाला प्रचण्ड बना रहे थे। इसका कारण यही है कि अपनी मातृभूमि से निकाले हुए सैयद कश्मीर घाटी को अपना घर बनाना चाहते थे अतः वे पूर्ण रूप से वहां मुसलमान शासन देखना चाहते थे। शासन-सत्ता उनके साथ थी अतः वे अपने कार्य में सफल रहे।[3]

लल्लद्यद की पद्यरचना—आधुनिक युग में किसी भी पाण्डुलिपि का पाठ पाठालोचन के सिद्धान्तों के आधार पर निर्धारित करते हैं, परन्तु यह पद्धति प्राचीन काल में नहीं थी। मुख्यतः प्रारम्भिक रूप में कृतियां मौखिक रूप में ही परम्परागत चलती थीं, यह परम्परागत मौखिक पाठ भोजपत्र पर लिखे वर्णन और पाण्डुलिपियों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। लल्लद्यद के वाख्यों के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं कि उनकी कोई निश्चित पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है। आरम्भ में यह भी मौखिक रूप में ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आये हैं। व्यक्तिगत रूप में लोगों ने प्रयास करके जिन वाख्यों का पाठ निर्धारित किया है उनमें भी एक ही मत पर दो व्यक्तियों का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है। यही कारण है कि इसके वाख्यों में कई अति प्राचीन शब्द हैं जिनका अब प्रचलन नहीं है और न कश्मीरी जनता को उनका अर्थ ही ज्ञात है। सर्वप्रथम लल्लद्यद

---

1. A History of Kashmir, P. N. Kaul Bamzai, 1962, Page 297.
2. Ibid, Page 297.
3. Daughters of Vitasta, P. N. Bazaz, 1959, Page 124.

के वाख्यों का संकलन राजानक भास्कराचार्य ने आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व किया है और तत्पश्चात् सर जार्ज ग्रियर्सन ने सन् १९१४ में महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम शास्त्री को ललवाखों की पाण्डुलिपि प्राप्त करने को कहा। अत्यधिक शोध के उपरान्त शास्त्री जी को एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त उन्हें गुशि (बारामुला से ३० मील की दूरी पर एक गांव) के एक ब्राह्मण धर्मदास से मौखिक रूप में लल्लद्यद के वाक्य[1] को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्हीं दो के आधार पर श्री शास्त्री जी ने वाखों की टीका आधी हिन्दी में और आधी संस्कृत में तैयार करके ग्रियर्सन महोदय को दी। जिस पर उनकी पुस्तक 'लल्लवाक्यानि' आधारित है। इसमें ग्रियर्सन महोदय ने १०९ वाख्य दिये हैं। इसके पश्चात् श्री आनन्दकौल बामजई, श्री चरागी, श्री जियालाल कौल जलाली और रामज्यू भल्ला ने अपनी पुस्तकों में क्रमशः पचत्तर, सौ, अठतीस और एक सौ उनच्चास वाख्यों का संकलन किया है।

इन पुस्तकों में पुनरावृत्ति अधिक है जैसे ग्रियर्सन महोदय ने राजानक भास्कराचार्य से संकलित साठ वाखों को भी अपनी पुस्तक में दिया है, श्री चरागी जी ने ग्रियर्सन-द्वारा संकलित एक सौ नव वाख्य भी दिये हैं। इसी प्रकार अन्य पुस्तकों में भी मिलते हैं। ग्रियर्सन के संकलन में भी अनेक दोष हैं जो उसके पश्चात् के संकलन-कर्त्ताओं ने भी अपनी पुस्तकों में वैसे ही अपनाये हैं। उदाहरणार्थ ग्रियर्सन के संकलन में पद संख्या ननानवे और सौ में जो पद हैं वे लल्लद्यद के नहीं हैं। ग्रियर्सन ने उन पदों का पाठ इस प्रकार दिया है—

(अ) **गाफिलो हम् कदम तुल**
वुन्य छय सुलत छाडुन यार।
पर कर पैदा परवाज़ तुल।
वुन्य छय सुल त छाडुन यार।[2]

(आ) **दमन बस्ति दितो दम,**
तिथय यिथ दमन खार।
शस्त्रस स्वोन गछिय हासिल।
वुन्य छय सुल त छांडुन यार।[3]

वास्तव में ये दो पद 'अजीज़ खान' के गीत के दो पद हैं, जो 'बहारे गुलशन कश्मीर' के तृतीय भाग में सन् १९२३ में प्रकाशित है। अजीज़खान के गीत और पद इस प्रकार हैं—

पकुन दूर छुय मंज़िल त
पकान गच्छ त काँसि मो प्रार।

---

१. वाक्य—वाख।

2. Lalla Vakayani, Grierson, 1920, Page 11.

3. Ibid, Pag 112.

प्राुण बोड छ्ुय मुश्किल त
वुन्यि छय सुल त छाँडुन यार।
हसद निशि छलतन दिल त।
जसद पाक कर अमि यार।
सपदख अद च वासिल।
वुनि छय सुल त छांडुन यार
खुदी त्राव बिल्कुल त
खुदी निशि गछ बेज़ार।
हार कौर खुदियि अज़ाज़िल
वुनि छय सुल त छांडुन यार।
अज़ीज़ खान त्राव प्यादल त
लज़ीज़ हावनय दीदार।
त्रावख नय त छुख ज़ाहिल।
वुनि छय सुल त छांडख यार।

इनको परख कर यह कहा जा सकता है कि लल्लद्यद के वाख्यों में ये दो पद अन्त में जोड़ दिये गये हैं।

इसी प्रकार रामज्यू भल्ला के संकलन में कई पद ऐसे हैं जो लल्लद्यद के वास्तविक पद न होकर कश्मीरी लोकगीतों के अधिक निकट हैं। उदाहरणार्थ:

(अ) **जिया मालि जियो अंगन अंगन जित ती जीव**
तिम कस गने राइस गने।[1]

(आ) **अतल पातल्य वयंगन तिलू यि कोर**
ति कौर अगूर अखंड।
असी न गजरा, तैसी न गजरा।[2]

ये पद लिये जा सकते हैं। इस प्रकार से लल्लद्यय के पदों के जितने भी संकलन उपलब्ध हैं उन सब के आधार पर और उपलब्ध मौखिक सामग्री के आधार पर मैंने लल्लद्यद के दो सौ तीन पदों का संकलन किया है और इस प्रबन्ध के दूसरे खण्ड में देने का प्रयत्न किया है। मैंने इन पदों को आध्यात्मिक विचारधारा के अनुसार निम्न भागों में विभाजित भी किया है।

लल्लद्यद की दार्शनिक विचार-धारा—कश्मीरी संतों में लल्लद्यद का नाम सर्वप्रथम आता है। लल्लद्यद तथा इनकी परम्परा के अन्य संत शंकर अद्वैत से प्रभावित हैं, कहीं-कहीं कश्मीर शैवमत का प्रभाव भी लक्षित होता है। इन संतों ने ज्ञान मार्ग को महत्त्व देकर ब्रह्म को निर्गुण निराकार माना है।

---

१. अमृतवाणी, रामज्यू भल्ला, १९६१, पृ० ४६।
२. वही ,, पृ० ४७।

ब्रह्म—लल्लद्यद के अनुसार ब्रह्म निर्गुण निराकार है। उसका न नाम है न रूप और न ही कोई गोत्र।[1] वह आत्मस्वरूप है, शून्य में निवास करने वाला है, ज्ञान का भण्डार है और सत् चित् आनन्दस्वरूप है।[2] परमात्मा के इस रूप को जो पहचानते हैं वही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अज्ञानी इस विषय-वासनाओं से पूर्ण संसार में शत् शत् बन्धन निर्माण करते हैं। ब्रह्म सर्वव्यापक है। वही गगन है, धरती है, दिवस तथा रात्रि है, ब्रह्म-प्राप्ति का साधन भी वही है और स्वयं साध्य भी वही है।[3] जीव और ब्रह्म का समीप का सम्बन्ध है ब्रह्म जीव में ही व्याप्त है। जिस क्षण जीव को यह अनुभव होता है कि ब्रह्म मेरे अन्दर व्याप्त है, वह स्वर्णमय और अमूल्य क्षण होता है।[4] ब्रह्म और जीव एक हैं, यह अनुभव करने से पूर्व जीव में 'स्व' और 'पर' का भाव विद्यमान रहता है। तू कौन है? मैं कौन हूँ, इस सन्देह से उसका मन दुःखी होता है परन्तु आत्मज्ञान से आत्मा और परमात्मा का एक रूप भासित होता है।[5] जिसके मन में अद्वैत की भावना हो, जिसने 'स्व' और 'पर' को एक मान लिया हो वही वास्तविक रूप में परमतत्त्व का दर्शन करता है।[6] जिस प्रकार

---

१. अनाहत स्वस्वरूप शून्यालय।
यस नाव ना वर्ण ना रूप ना गुथुर।
अहं निनाद बिन्द त यवोन।
सुय अश्वार प्यठ चढ्यस।
लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृ० ७।

२. चिदानन्दस ज्ञान प्रकाशस।
इमव च्यून तिम जीवन्ती मुक्ती।
विषमिस संसार निस पाशस
आबुच्छव गण्ड शत शत दितिय। वही, पृ० ३।

३. गगन चय भूतल चय।
चय द्यन पवन त राथ।
अर्घ चन्दुन पोष पोन्य चय।
चय छुख सोरुय त लागिजि़ क्याह॥ वही, पृ० १९।

४. लल ब ट्रायस लो लरे।
छांडान लूसुम द्यन क्योह राथ।
वुछुम पंडिय पननि गरे
सुय भ्ये रोटुमस न्यशतुर त साथ। वही, पृ० २।

५. नाथ ना पान ना पर जोनमु।
सदा इ बोदुम अकुय दीहं।
च ब ब चम्बुल ना जोनुग
च कुस ब कुस छुह सन्देहं॥ वही, पृ० ३।

६. पर त पान को सोमुय मौन।
येम्य ह्यूह मौन द्यन क्योह राथ।
येमिसय अदुय मन साम्पुन।
तमिय ड्यूढय सुर गुरु नाथ। वही, पृ० ३।

दर्पण को स्वच्छ करके उसमें पूर्ण प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार मन से विषयवासनाओं की मैल धुलने के पश्चात् सारतत्त्व ब्रह्म का अनुभव होता है।[1] जब जीव ज्ञान के द्वारा आत्मसाक्षात्कार करता है तो उसे ब्रह्म के सामीप्य का अनुभव होता है और यह पंचभौतिक शरीर ही ब्रह्म का निवास-स्थान अनुभव होता है।[2] जीव का मन परब्रह्म से मिलने को सदैव उत्कण्ठित रहता है। इसी कारण वह इस संसार-सागर से पार होना चाहता है। इसके पार पाने के लिए ईश्वर की कृपा ही एकमात्र साधन है।[3] लल्लद्यद ने इस निर्गुण ब्रह्म को अनेक नामों से पुकारा है। शिव, पंडित, केशव, सुरगुरुनाथ, कमलनाथ, जिन प्रकाशस्थान, नारायण आदि नाम उसी निर्गुण ब्रह्म के लिए आये हैं। इससे यह अभिप्राय नहीं कि लल्लद्यद अवतारवाद को मानती है। लल्लद्यद का ब्रह्म निर्गुण है जिसके प्रतीक रूप में उसने इन नामों का प्रयोग किया है।

जीव—वास्तव में जीव और ब्रह्म एक हैं परन्तु इनकी सत्ता भिन्न है। जीव में अज्ञान रहता है अतः वह अपने आपको नहीं पहचानता। परिणामस्वरूप वह भौतिक सुखों की ओर ध्यानमग्न रहता है, वह इससे अनभिज्ञ रहता है कि उसकी आत्मा ही ब्रह्म का रूप है। अन्तर इतना है कि जीव कर्मेन्द्रियों और मन के वशीभूत होता है जबकि ब्रह्म सब का स्वामी है।[4] वास्तव में जीव ब्रह्म से ही आता और ब्रह्म में ही समा जाता है।[5] मानव मन चंचल है। चैतन्य दूर-दूर की कल्पना करता है

---

१. मुकुरस जन मल चोलुम मनस।
अद म्य लबम जनस जान।
सु येलि ड्यूढम निशि पानस।
सोरुय सुय तय व नो केंह। वही, पृ० १४।

२. मानस लागिथ रूदुख म्य चह।
म्य च्यह छांडान लुस्तुम दोह।
ज्ञानस मन्ज येलि ड्यूठुख म्य चह।
म्य च्य त पानस दितुम छोह। वही, पृ० २०।

३. आम्यपन सदरस नावि छस लमान।
कति बोजि दय म्योन म्येति दियि तार।
आम्यान टाक्यन पोन्य जन शमान।
जुव कुम भ्रमान गर गछह।
लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, सं० १६२०, पृ० ११७।

४. इमय पेच्ये तिमय पेम्ये।
श्यामगला च्य बिन तोढुस छु।
इहोय भिन्नाभेद च्य त म्ये।
च षन स्वामी बे षेयि मुषिस,
लल्लेश्वरी वाक्यानि, राजानक भास्कराचार्य, पृ० ६।

५. अछान आय त गछुन गछे।
पकुन गछे द्यन क्योहो राथ।
योरय आय तूर्य गछुन गछे।
केंह न त केंह न त केंह न त क्याह्। लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, सं० १६२०, पृ० ४०।

परन्तु आत्मा निर्लिप्त है। जीव सांसारिक बन्धनों में बंधा रहता है, उसके लिए क्षुधा-तृषा की समस्या सदैव रहती है।[1]

आत्मज्ञान के अभाव के कारण जीव का मन क्रोध आदि विषय-विकारों से पूर्ण है परन्तु ज्ञानी के लिए यह विषय-विकार सारहीन हैं। संसार में जीव दो प्रकार के होते हैं—प्रवृत्तिपरक और निवृत्तिपरक। प्रवृत्तिपरक जीव सांसारिक विषयों के प्रति आसक्त होता है और निवृत्तिपरक इसका विपरीत। कई प्राणी अज्ञानी है और जागृतावस्था में ही सुषुप्तावस्था की भाँति रहते हैं, कई धर्म के बाह्याडम्बरों की ओर रत रहते हैं परन्तु जो प्रवृत्ति में रहकर निवृत्ति अर्थात् संसार में रहकर संसार से दूर रहता है, वही उच्चकोटि का प्राणी है।[2] वस्त्र और आहार का उपयोग केवल आवश्यकता के लिए ही करना चाहिए।[3]

सुनकर बहरा और देखकर अन्धा बनना यही तत्त्वज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।[4] जीव जन्म-मरण के बन्धन में सदैव रहता है, उसे यह नहीं ज्ञात है कि वह किस दिशा से या किस मार्ग से आया है, जीवन उसके लिए एक रिक्त स्थान है, शून्य है, उसका वास्तविक स्थान ब्रह्म है, जहाँ से वह आता है।[5] अनेकों कष्ट झेलकर जीव यहाँ आता है परन्तु अन्त में पुनः अपने परम स्थान पर ही पहुँचता है।[6] जीव का मन स्वच्छ नहीं होता है उसमें द्वैतभाव समाया रहता है यद्यपि वह बाह्याकृति से

---

१. जीवस ग्वोन छुय बोछि त्रेशि आसुन
आत्मस ग्वोन छुय न आसुन लीप। अमृतवाणी (भाग १) राजम्यू भल्ला, सं० १९६१, पृ० ३२।

२. केंह छिय न्यन्दर्य हती वुदीय।
केंचन वुद्यन न्यसर प्येय।
कह छिय स्नान करिथ अपुतिय।
केंह छिय छिय गृह बजिथ अक्रिय। लल्लेश्वरी वाक्यानि, राजानक भास्कराचार्य, पृ० १४।

३. यव तूर चलि तिम अम्बर ह्यति।
बोछि यव चलि तिय आहार अन।
चित नृप स्वविचारस प्यत।
चिता देहस वान क्याह वन। वही, पृ० १२।

४. मूढ़व दीशिथ त पशिथ लाग।
ज़ोर त कोल श्वतवोन जड़ रूपी आस।
युस यिय दपी तस त्युथ बोल।
सुय छुय तत्वविदस अभ्यास—वही, पृष्ठ ९।

५. आयस कमि दिशि त कमि वते।
गछ कमि वति कव ज़ान वथ।
अन्तहि दाय लगि तते।
छ्यम छनिस फोकस कोस सथ। लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२०, पृ० ६०।

६. जननी ज़ायेय रति तय कतिय।
करिथ वोदरथ बहु क्लेश।
फीरिथ द्वार भज़नि वातय तो तुय
शिव छुय कूठ तय चे़न वोपदश। वही, पृ० ७०।

अबोध दृष्टिगोचर होता है ।[1] जीव को अनेकों कष्ट उठाने पड़ते हैं—भौतिक भी और सामाजिक भी, अतः सन्तोष की प्रवृत्ति उसमें अवश्य होनी चाहिए ।[2] जीव जन्म पाकर वैभव और भोग भोगना चाहता है परन्तु सन्तोष सबसे बड़ी वस्तु है । सन्तोष से ही मन ब्रह्म का स्मरण करने लगता है ।[3] जीव इस काल-चक्र में कभी आता है और कभी जाता है । यह जन्म-मरण का चक्र उसी प्रकार बन्द नहीं होता जिस प्रकार सूर्य का उदय और अस्त ।[4] ब्रह्मज्ञान के लिए जीव को आत्मसाक्षात्कार की आवश्यकता है क्योंकि ब्रह्म सर्वत्र है, परन्तु वही ज्ञान भी है जिससे गुह्य को प्रकाश में लाया जाता है ।[5] जीव को अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं । ब्रह्म या शिव उसी में व्याप्त है ।[6]

जगत : लल्लद्यद के अनुसार संसार सारहीन है, नश्वर है, विषय-वासनाओं से भरा है । संसार के बन्धन से वही मुक्त हो सकता है जिसने ईश्वर के सत् चित् आनन्द रूप का ज्ञान प्राप्त किया हो ।[7] अज्ञानी पुरुष इसमें बार-बार जन्म लेते हैं । वे

---

१. बुथि क्याह् जान छुख बोन्द छुय कनी ।
अससलच कथ जांह सनिय नो ।
परान लेखान वुठ ओंगजि गजिय
अन्दरिम दुय जांह् चजिय नो । लल्लायोगेश्वरी, पं० आनन्द कौल बामज़ई, वाख सं० ९ ।

२. चालुन छु वुज़मल त त्रटय ।
चालुन छु मन्दिरन्यन घटकार ।
चालुन छु पान पननुन कडन ग्रटय ।
ह्यत मालि सन्तोष वति पानय । वही, वाख संख्या ७० ।

३. जन्म प्राविथ व्यबव छोंडुम ।
लूमन भुगन बोरम प्रय ।
सोमुय आहार स्यठा जोनुम ।
चोलुम द्वोरख वाव पोलुम अख । ललवाख, जियालाल कौल जलाली, १९५६, वाख २९ ।

४. असी आय तय असी आसव ।
असी दौर कर्य पतवथ ।
शिवस सोरी न ज्योन त मरुण ।
खस सोरी न अत गथ । अमृतवाणी (भाग १) रामजू भल्ला, १९६१, पृ० ३५ ।

५. गोर ति पानय योर ति पानय ।
पतवानय रूजिजि न जांह् ।
पानय गुपिथ पानय गन्यानय ।
पानी पानय मूद न जांह् । वही, पृ० ५१ ।

६. कव छुख दिवान अनिनय वछ ।
तुकय छुख त अन्दरय अछ ।
शिव छुय अतितय कुन मो गछ ।
सहज़ा कथि म्याने करतो पछ । वही, पृ० ४५ ।

७. चिदानन्दस ज्ञान प्रकाशस ।
इमव च्यून तिम जीवन्ती मुक्ती ।
विषमिस संसारनिस पाशख ।
अबुद्धव भण्ड शत शत दितिय । लल्लेश्वरी वाक्यानि, राजानक भास्कराचार्य, पृ० ३ ।

संसार को सत्य मानते हैं। मूर्ख के लिए संसार गर्म तवे की भांति है जिसके प्रखर ताप से उनका नाश होता है। परन्तु योगियों के लिए यह ज्ञान की मुद्रा है जो योगाभ्यास से पहचानी जाती है।[1] यह कालचक्र भी शनैः शनैः चलता जाता है जिस प्रकार गेहूं चक्की में पड़ जाता है और उसका अन्तिम ध्येय यही है उसी प्रकार प्राणी इस संसार-चक्र में पिसता रहता है।[2] मनुष्य की आत्मा कमलपत्र की नाईं निर्लिप्त होती है। सभी जीव परमतत्त्व को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु होते हैं परन्तु लाखों में से एक ही भगवद्भक्ति का मार्ग ग्रहण कर सकता है।[3] संसार में रात्रि और दिवस होते हैं, दिवस के पश्चात् रात्रि का आगमन होता है। जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रस लेता है वैसे ही परमतत्त्व के प्रकाश के आगे जीवात्मा का अस्तित्व विलीन हो जाता है। सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति से भी मन को सन्तोष नहीं प्राप्त होता है जो पुरुष सांसारिक इच्छाओं को वश में करते हैं वही उच्च बनते हैं, उन्हें ही आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है। आत्मा संसार में आकर जन्म धारण करती है। जन्म-जन्मान्तर यही क्रम चलता है। परन्तु ज्ञान के प्रकाश से उसका वास्तविक रूप प्रकाशित होता है, मृत्यु पर जो दुःख होता है उसका कारण मोह है, मोह ज्ञान से नष्ट होता है, इसी कारण ज्ञानी जन्ममरण पर सुख-दुःख का अनुभव नहीं करते हैं।[4] सांसारिक पीड़ाओं से मुक्ति दिलाने वाला वही एक परमेश्वर है।[5] लल्लद्यद ने अपने जीवन के आरम्भ में सांसारिक पीड़ा,

---

१. संसार नाम्य ताव तचय ।
मूढ़न किच तावन आय ।
ज्ञान मुद्रा छय यूगियन किचय ।
सु यूगकलि किन्य परजन आय ।
लल्लवाक्यानि (भाग १) सर्वानन्द चरागी, वि० १९९६, वाख ७१ ।

२. गट छुय फेरान ज़े रे जेरे ।
ओहकुय जानी ग्रटुक छल ।
ग्रट येलि फेरि तय जाव्युल नेरे ।
गू वाति पानय ग्रटबल ।
लल्लायोगेश्वरी, आनन्द कौल बामज़ई, वाख १६ ।

३. जगस अन्दर कात्याह पालिम ।
सारिय छि छांडानद यि संज़ वथ ।
लछि मंज अकिस दया ज़ानिम ।
मानिम यी दपिज़ि ईश्वर गथ ।
ललवाख, जियालाल कौल जलाली १९५६. वाख १६ ।

४, संसार आयस तपसे ।
बाध प्रकाश लोबुम सहज़ ।
मर्यम न कांह त मर न कांसि ।
मर नेछि त लस नेछि ।
लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृ० १५ ।

५. म्य अबिल कासितन भव रुज़ ।
सुहवा सुह वा सुह वा सुह ॥ वही, पृ० ४ ।

यातना और संघर्ष सहे परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान होने पर उसने संसार का त्याग किया और एकान्त में रहने लगी।

माया—लल्लद्यद ने माया की सत्ता को माना है। माया ही जीव को भटकाती है। कंचन और कामिनी इसके मुख्य रूप हैं। शैव सिद्धान्त के अनुसार माया-ही शिव को पुरुष-रूप में लाने के लिए पांच उपाधियों—कला, राग, विद्या, काल और नियति की सृष्टि करती है। लल्लद्यद के जितने भी पद संकलित या उपलब्ध हैं उनमें केवल दो स्थानों पर ही माया की ओर संकेत मिलता है अतः लल्लद्यद का माया-सम्बन्धी विचार निश्चित रूप से हम कहने में असमर्थ होते हैं। उपलब्ध सामग्री के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि शिव की शक्ति ही माया है, वही मातृरूप में जीव को जन्म देती है और पालन करती है, भार्या रूप में वही विलास करती है और वही मृत्यु रूप में जीवों का हनन करती है।[1] इस माया-रूप नारी के भी कई रूप हैं, कई नारियां विशाल हृदय वाली और सबको सुख तथा विश्राम देने वाली होती हैं परन्तु कई इतनी भयंकर कि नाश का कारण बनती हैं।[2] मनुष्य माया के पाश में ही जन्ममरण के चक्र में फंसा रहता है। माया की जड़ता के कारण ज्ञान भी जड़ बन गया, जल का घनत्व हिम है और वही संसार है। चैतन्य-चित् शक्तिरूपी सूर्य के उदित होने पर तीनों तत्काल एक हो जाते हैं। जगत जड़ता से मुक्त होकर शिव-रूप हो जाता है।[3]

साधना पक्ष

गुरु—सन्त साहित्य में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सन्त गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर मानते हैं। गुरु ही जीव को आत्मज्ञान कराकर उसे परमात्मा से मिला देता है। भक्त के लिए कुशाघास, पुष्प, तिल, दीपक आदि अर्चन-सामग्री का कोई महत्व

---

१. सोय माता रूपी पय दिये।
सोय भार्या रूपी करि विलास।
सोय माया रूपी जींव हरे।
शिव छुय कूठ तय चेन वोपदीश।
लल्लेश्वरी वाक्यानि, राजानक भास्कराचार्य, पृ० २५।

२. कँचन रन्य छय शिहिज वून्य।
नेरख न्यबर शुहुल कख।
कँचन रन्य छय बर प्यठ हून।
नेख न्यबर जंग खेयि।
लल्लद्यद. जियालाल कौल और नन्दलाल तालिब द्वारा सम्पादित।

३. तूरि सलिल खोट तय तूरि।
इम चि गय भिन्ना भिन्न विमर्शा।
चैतन्य रखवभाति सब समे।
शिवमय चराचर जग पश्या।
लल्लेश्वरी बाक्यानि, राजानक भास्कराचार्य, पृ० ७।

नहीं है, केवल सद्भाव से गुरु का उपदेश सुनना ही भगवद्भक्ति का साधन है।[1] गुरु ही परमतत्त्व की वास्तविक शिक्षा दे सकता है। उसी के पास साधना का रहस्य होता है। गुरु पथ-प्रदर्शक है, उसके बिना जीवात्मा इधर-उधर भटकती है। लल्लद्यद गुरु की समता गडरिये से देती है जो भेड़ों के झुण्ड पर निरीक्षण करता है।[2] जाति और वर्णभेद संसार में ही देखे जाते हैं। आत्मज्ञान और ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु का शब्द ही पर्याप्त है।[3] जो जीव गुरु की शिक्षा पर विश्वास करे और ज्ञान रूपी लगाम से चित् रूपी अश्व तथा इन्द्रियों को वश में करे, वही मुक्त हो सकता है।[4] गुरु की शिक्षा से ही लल्लद्यद को ज्ञान हुआ कि संसार भ्रम है, माया है, इसमें सार कुछ नहीं है। आत्मा प्रमुख है। इसी अन्तरात्मा का ज्ञान प्राप्त करना लल्लद्यद का उद्देश्य रहा है, इसके अतिरिक्त वे भौतिक आवरण को व्यर्थ मानती हैं।[5] लल्लद्यद को आत्मज्ञान हुआ, उसने अपने को परमतत्त्व में लय करके अपने अस्तित्व को समाप्त किया। लल्लद्यद भी गुरु को ब्रह्म का स्थान अर्थात् परमगुरु की पदवी देती है।[6] अजपा गायत्री स्मरण,

---

१. कुश पोष तेल दीफ जल न गछे।
युस सद्भाव ग्वर कथ़ मनि ह्यय।
शुम्भुग्रस स्वरि पननि यछे।
सोय दपिजि सहज क्रिय।
लल्वाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२०, पृ० ६४।

२. नाबद बरस ग्रत गंड ड्योल गोम।
द्यन कर होल गोम ह्येक कुंह न।
ग्वर सुन्दर वनुन रावन त्योल प्योम।
पहलि रोस ख्योल गोम ह्यक कुंह न। वही, पृ० ११८।

३. क्रयि हुन्द आगुर वति क्युत छुय।
अन्तः क्युत छ्य ग्वर सुन्द नाव।
अमृतवाणी (भाग १) रामज्यूभल्ला, सन् १९६१, पृ० २६।

४. ग्वर शब्दस युस यछ त पछ भरे।
गन्यानह वग रटि चित तोरगस।
इन्द्री शोंमरिथ आनन्द करे।
अदह कुस मारि तय मारन कस। वही, पृ० ३६।

५. ग्वरन बोननम कुनुय वचुन।
न्यबर दापनम अन्दरै अचुन।
सुय गव ललि म्ये करव त वचुन।
तवय म्ये ह्योतुम नगम नचुन। वही, पृ० १०७।

६. ही ग्वरा परमो ग्वरा।
सद्भाव भाव तम्य चह।
ज ज़नि उपनेय कन्दापुरा।
हूह गव तुरुन त हाह गव तोत। वही, पृ० ७४।

सोंह का ज्ञान और 'अहं' का नाश यह सब गुरु-कृपा का ही परिणाम है।[1] अन्तिम ध्येय प्राप्त करने के लिए भी गुरु की शरण में जाना एक साधन है।[2]

योग-साधना—लल्लद्यद का साधनापक्ष ज्ञानमार्गी और योगतत्त्व से पूर्ण है। उनके अनुसार यह शरीर लोहार की खाल है जिससे अन्दर का प्रकाश बाहर आता है और ब्रह्म से मिलन होता है।[3] यौगिक विचारधारा के अनुसार ही वे भी इसी शरीर में सूर्य और चन्द्रमा को विद्यमान मानती हैं।[4] मानव का चित् अश्व के समान है जो आकाश में भटकता है और एक पल में सहस्रों मीलों की कल्पना कर सकता है परन्तु चैतन्य रूपी लगाम से इसको वश में किया जाता है तभी प्राण और अपान भी अपने नियन्त्रण में आते हैं।[5] योगी अपनी योगक्रिया से ही ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।[6] सहज ज्ञान के लिए शम और दम की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि सहज विचार की।[7] मनुष्य को ब्रह्म-प्राप्ति के लिए विषय-विकारों को त्याग कर इन्द्रियों को वश में करना चाहिए। वह ब्रह्म जीवात्मा से दूर नहीं अपितु उसी को मिलकर

---

१. गायत्री अज़पा छल अकि तजिम।
सूहम् सतिच्चिय करमस थफ।
अहमस लोत पाठ्य जठरय वजिम।
ग्वर कथ पाजिम चजिम चख॥
ललवाख, जियालाल कौल जलाली, सन् १९५६, वा० १७।

२. क्वाल नय म्वोल कथ क्युत छुय।
तोत क्युत छुय शांतस्वभाव।
ऋयि हुन्द आगुर वति क्युत छूय।
अन्तः क्युत छुय ग्वर सुन्दर नाव॥ वही, वाखसंख्या १८।

३. दमादम कोरमस, दमन हाले।
प्रज़ल्योम दीफ त बनेयम जाथ।
अन्दर्यूम प्रकाश न्यबर छोटुम।
गटि रोटुम त करमस थक।
लल्वाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२०, पृ० २५।

४. भान गोल तय प्रकाश आव जूने।
चन्द्र गोल तय म्वत चित।
चित गोल तय कैंहति ना कुने।
गय भूर्भवः स्वः मीलिथ कोत। वही पृ० ३०।

५. चित तुरुग गगनि भ्रमवोन।
निमेष अकि छण्डि यूजन लछ।
चैतन्य वगि येमि रटिथ जोन।
प्राण अपान फुटरिथ पखच्य। वही, पृ० ४७।

६. योगी युगकलि पर्जान्यिस। वही, पृ० ३६।

७. सहज़स शम त दम नो गछे।
इछि प्रावख मुक्ति द्वार।
सलिलस लवण ज़न मीलिश त गछि।
तोति छुय दुर्लभ सहज़ विचार। वही, पृ० ५०।

एक हुआ है अतः इस सत्यता का आभास करना चाहिए।[1] ब्रह्म-प्राप्ति के लिए षटचक्र को वश में करके शरीर में स्थित ब्रह्मरन्ध्र से अमृत का पान करना भी आवश्यक है।[2] नाभिस्थान में हृदय का प्रकाश है और ब्रह्मस्थान में सहस्रार कमल से अमृत टपकने के कारण शीतलता होती है।[3] लल्लद्यद ने पूरक, कुम्भक और रेचक योग प्रक्रियाओं की ओर संकेत भी किया है।[4] जो जीव अहं को समाप्त करता है वही उस परम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करता है।[5] वही अभ्यास के द्वारा अपनी आत्मा में परमात्मा का भास पाता है। प्राणायाम को अपना कर जीव अपने अन्तःकरण में ही ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।[6] लल्लद्यद ने ब्रह्माण्ड में ब्रह्म का साक्षात्कार किया और शशिकल का अनुभव करके ज्ञान के अमृत से अपने को प्लावित किया।[7]

---

१. लूभ मारुन सहज विचारुन ।
 द्रोग जानुन कल्पन त्राव ।
 निशि छुय त दूर भव जानुन ।
 शून्यस शून्याह मीलिथ गव । वही, पृ० ५१ ।

२. चे वन चटिथ शशिकल वुजुम ।
 प्रकृथ होंज़म पवन सातीय ।
 लोलक्य नार सूत्य वालिज वुजुम ।
 शंकर लोबुम तमिय सुत्य ।। वही, पृ० ४६ ।

३. नाभिस्थानस चित जलवनी ।
 ब्रह्मस्थानस शिशिरुन मोख ।
 ब्रह्माण्डस छय नद वहवनी ।
 तवय तुरुन हूह हाह गव तोत । वही, पृ० ७४ ।

४. पूरक कुम्भक रीचक कोरुम ।
 पवनस त्रावय प्यठय किन्य वथ ।
 अनाहतस भस्म कोरुम ।
 केंह न मोतुम सुय छम गथ । लल्लवाख, जियालाल कौल जलाली, १९५६, संख्या ९ ।

५. अजपा गायत्री हमस जपिथ ।
 अहम त्राविथ सुय अद रठ ।
 येम्यी त्रोव अहं सु रूद पानय ।
 ब न आसुन सुय उपदेश ।
 अमृतवाणी (भाग १) रामज्यू भल्ला, सन् १९६१, पृ० ३९ ।

६. प्राणस सूतिय लय येलि करम ।
 ध्यानस थवनस न रोज़नस शय ।
 कायस अन्दर सोरुय वुछुम ।
 पायस पोवमु कडमस ग्राय ।
 ललवाख, जियालाल कौल जलाली, सन् १९५६, वाख संख्या २० ।

७. लल्लि ग्वर ब्रह्माण्ड प्येठ्य किन्य वुछुम ।
 शशिकल वाचम पादन तान्य ।
 ज्ञानकि अमर्यंत प्रकरथ बरम ।
 लूबय मोरुम अन्द वन्द तान्य । वही, वाख संख्या ४ ।

ओंकार—लल्लद्यद की साधना में ओंकार का अत्यधिक महत्त्व है। इनके अनुसार एक ही 'ओंकार' मन्त्र सहस्रों मन्त्रों के जप के समान है।[1] ओंकार ही आदि भी है और अन्त भी। ओम के द्वारा ही उसने अपने शरीर को स्वच्छ बनाकर परमपद की उपलब्धि की है।[2] ओम के जप से तथा ओम को हृदय में स्थान देकर मैंने अपनी साधना की जिसके फलस्वरूप मुझे प्रकाश प्राप्त हुआ।[3] क्षण-क्षण ओंकार जप में मन को लीन रखना चाहिए, वहां फिर एक ऐसी स्थिति आती है कि मन ही उस जप को पढ़ता है और वही उसको सुनता भी है। वहीं अहं का नाश होकर जीव सोहम् को प्राप्त कर प्रकाश स्थान पर पहुँचता है।[4] ओंकार से ही जीव शब्द रूप रस गन्ध से युक्त शरीर को पहचानता है कि यह आतमस्वरूप ही है, इस परमतत्त्व का ज्ञान ही जीव का उद्देश्य है।[5]

बाह्याडम्बरों का विरोध—अन्य सन्तों की भांति लल्लद्यद ने भी बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उनके अनुसार तन्त्र-मन्त्र सब व्यर्थ है क्योंकि आत्मा-परमात्मा एक हैं। शून्य शून्य के साथ मिल जाता है।[6] पूजा करना व्यर्थ है क्योंकि देवता भी पाषाण का है और देवालय भी पाषाण ही है। अतः मन को प्राणायाम से वश में

---

१. अकुय ओंकार युस नाभि दरे।
कम्बुय ब्रह्माण्डस सुम गरे।
अकुय मंत्र युस च्यतस करे।
तस सास मंत्र क्याह करे। लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, सं० १९२०, पृ० ५४।

२. ओमय आदि तय ओमय स्वरूप
ओमय थुरूम पनतु पान।
अनिथ त्राविथ न्यथय मोसुम।
तवय प्रावुम परमस्थान। लल्लायोगेश्वरी, आनन्द कौल बामज़ई, वाख सं०४५।

३. ओमय अकुय अछर पौरुम।
सुन हा मालि रोटुम वोन्दस मंजे।
सुय हा मालि कनि प्यठ गौरुम त चौरुम
आसस सास त सपनिस स्वन। वही, वाख संख्या ४६।

४. दम दम ओंकार मन परनोवुम।
पानय परान पानय बोज़ान।
सोहम पदस अहं गोलुम।
तेलि लाल्ल बो वाचस प्रकाशस्थान। वही, वाख संख्या-१३।

५. ओंकार शरीर कॆवल ज़ोनमु
शब्द रूप रस गंध सूत्तिय ह्यथ।
आत्म स्वरूप सु पानय ओसुम।
परम तत्त्व दोरुन शेरस प्यठ॥
ललवाख, जियालाल कौल जलाली, सन् १९५६, वा० सं० ३२।

६. तन्त्र गलि तय मन्त्र म्वचे।
मन्त्र गोल तय म्वतुय चित।
चित गोल तय कॆंह ति ना कुने।
शून्यस शून्याह मीविथ गव। लल्ल वाक्यानि, ग्रियर्सन, सन् १९२०, पृ० ३३।

करना चाहिए, पूजा के आडम्बर में मत पड़ो।[1] मन को माली और इच्छा को उसकी पत्नी बनाकर भाव-रूपी पुष्पों से अर्चना करनी चाहिए। शशिरस से ब्रह्म को स्नान कराकर अजपा जाप के मन्त्र से शंकर का साक्षात्कार करना चाहिए।[2] मन्त्र पढ़-पढ़ कर जीव की इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं परन्तु मन स्वच्छ नहीं होता है।[3] संसार में जाति-पांति का भेद व्यर्थ है, हिन्दू मुसलमान में द्वैतभाव नहीं करना चाहिए। जीव को आत्म साक्षात्कार करना चाहिए यही उस परमपद की प्राप्ति का कारण है।[4]

प्रेमतत्त्व—लल्लद्यद ने अपनी साधना में प्रेम को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने ब्रह्म का अन्वेषण किया। एक विरही आत्मा की भांति जब वह निकट पहुंचती गई तो सारे द्वार बन्द देखे परन्तु इससे उसको और उत्साह मिला और वहीं उसने अपना आसन जमाया।[5] लल्लद्यद ने अपने हृदय का मल भस्म किया, मन को वश में किया और अपने आंचल को ब्रह्म के समीप फैलाया।[6] रात्रि के अन्तिम प्रहर से उठ कर ही अपने प्रियतम ब्रह्म का स्मरण किया और उसे भी जाग्रत किया, ब्रह्म के मिलन

---

१. देव वटा देवर वटा
प्यठ ब्वोन छुय एकवटा।
पूज़ कस करख हतो बटा।
कर मनस त पवनस संगाट। वही, पृ० ३६।

२. मन पुश तय यछ पुशाजी।
भावकि कुसम लागिज्यस पूजे।
शशि-रस ग्वोड दिज्यस जलधानी।
छूपि मन्त्र शंकर वुजे। वही, पृ० ५६।

३. परान परान ज्यव ताल फोजम।
च़ यूगि क्रय च़जिन न जांह।
स्मरण फिरान न्योठ त ओंगजिफोजिम।
मनच घूलि च़जिम न ज़ाहै। लल्लोयगेश्वरी, आनन्दकौल बामज़ई, वाख सं० ४६।

४. शिव छुय थलि थलि रोज़ान।
मोज़ान ह्योंद त मुसलमान।
तुकय छुख त पनुनुय पान परज़ान।
सुह हा मालि छय साहिबस सूत्य ज़ानी ज़ान।
अमृतवाणी (भाग १) रामज्यू भल्ला, सन् १९६१, पृ० ४३।

५. लल्ल ब लूसस छांडान त गारान।
हल म्ये करिमस, श्सनि शतीय।
वुछुन ह्योतमस तोरी डीठिमस बरस।
म्य ति कल गनेय ज़िजोगमस ततीय।
लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, सन् १९२०, पृ० ६७।

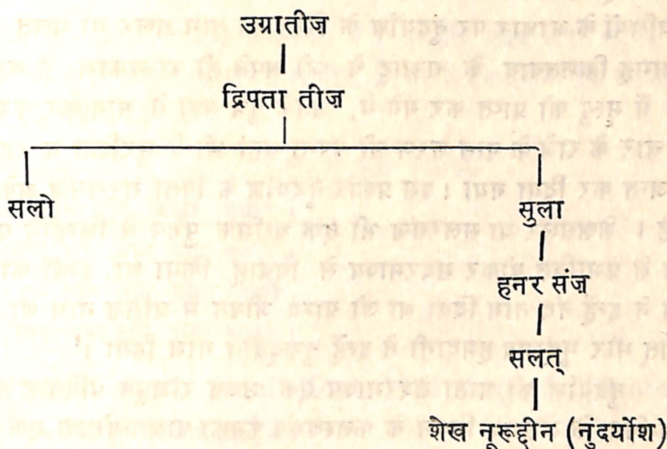
६. मल वान्दि जोलुम।
जिगर मोरूम।
तेलि लल्ल नाव द्राम।
येलि दल्य त्राविमस ततीय। वही, पृ० ६७।

से उसका शरीर भी पवित्र हो गया।[1] प्रेम की अग्नि से जीवात्मा को उदीयमान बनाना चाहिए। स्नेह के जल से जीवात्मा अपने मल स्वच्छ करके बर्फ के समान अपने को निर्मल बना सकती है।[2] लल्लद्यद अन्त में यह स्वीकार करती है कि प्रेम की अग्नि से अपने हृदय को तप्त बनाकर ही उसने शंकर को पाया है।

नुंदर्योश (नन्द ऋषि)

जीवन—नुंदर्योश का वास्तविक नाम नन्द ऋषि, नन्दबाबा या सहज़ानन्द था। कश्मीर के एक गांव विजबिहारा से दो मील दूर कैमुह नामक स्थान में सन् १३७७ में इनका जन्म हुआ था। नुंदर्योश की दो वंशावलियाँ उपलब्ध हैं जो श्री अमीन कामिल ने भी 'नुर नामा' पुस्तक में दी हैं। इन दो वंशावलियों में एक वंशावली श्री नसीब दीन गाजी से प्राप्त हुई है।[3] और दूसरी का संकेत 'रोज़ितुल रियाजात' पुस्तक में उपलब्ध होता है। इन दोनों वंशावलियों को इस प्रकार निम्न अंकित किया जाता है :

१. वंशावली (रोज़ितुल रियाज़ात-पुस्तक)



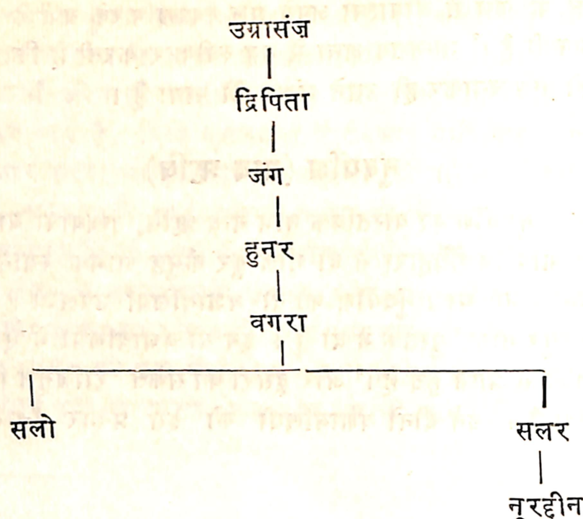
---

१. पोत जूनि, वथिथ मौत बोलनोवुम।
दग ललनांवम दय संजि प्रहे।
लाल लाल करिथ लाल वुज़नोवुम।
मीलिथ तस मन श्रोच्योम दीह। वही, पृ० ११६।

२. स्नेहकि सलिलय यौदवै मल कासख।
आसख शीन खोत प्रोण अन्न खोत साफ।
पानय मरख पानय आसक।
लागख अोन जोर त क्वोल।
अमृतवाणी (भाग १) रामाज्यू भल्ला, १९६१, पृ० ४१।

३. नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल (उर्दू में) सन् १९६५, पृ० ३०।

२. वंशावली संख्या—२



यही द्वितीय वंशावली श्री अमीन कामिल को नसीबदीन गाज़ी से प्राप्त है। दोनों वंशावलियों के आधार पर नुंदर्योश के पिता का नाम सलर या सलत् था। नुंदर्योश के प्रपितामह किशतवाड़ के सम्राट् थे जो अपने ही राज्यकाल में वहां के राजनैतिक संघर्ष में मृत्यु को प्राप्त कर गये थे, उनके पुत्र वहां से भाग कर कश्मीर आये और यहां चार के राजे के पास शरण ली परन्तु यहां भी वे सुरक्षित न रह सके और उनका वहीं अन्त कर दिया गया। इस प्रकार नुंदर्योश के पिता सरलसंज़ अकेले असहायावस्था में रहे। शेखसलर या सलरसंज़ भी एक धार्मिक पुरुष थे जिन्होंने एक सूफी यास्मन ऋषि से प्रभावित होकर सदरमाज्य से विवाह किया था, इन्हीं का पुत्र नुंदर्योश है। माता ने इन्हें नंद नाम दिया था जो ग्राम्य जीवन में प्रसिद्ध नाम था परन्तु कुछ समय पश्चात् मीर मुहम्मद हमदानी ने इन्हें नुरूद्दीन नाम दिया।[1]

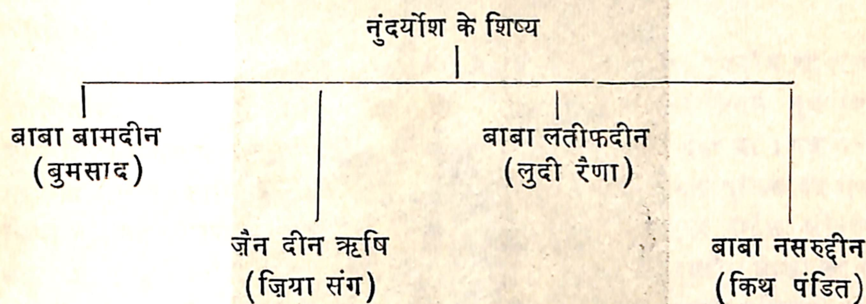
नुंदर्योश की माता सदरमाज्य एक उच्च राजपूत परिवार की नारी थी परंतु माता-पिता के असमय निधन के फलस्वरूप इनका पालन-पोषण एक सेविका ने किया था। सदरमाज्य विवाहित थी और उसके शिशु और गन्धर्व नामक दो पुत्र भी थे। पति का निधन भी अल्पायु में ही हो गया और वे अकेली रह गई। स्वभाव से वे धार्मिक थी अतः यास्मन ऋषि के प्रभाव में आकर उन्होंने सलरसंज़ से पुर्नविवाह किया।

बाल्यकाल से ही नुंदर्योश का स्वभाव साधुओं का-सा था। तो भी वे पारिवारिक जीवन से दूर रहना चाहते थे, यद्यपि उन्होंने वैवाहिक जीवन भी व्यतीत किया था।

---

1. "Later on Mir Mohamad Hamadani named him Nur-ud-Din" —Kashmir : its Cultural Heritage, Kaumudi, Ist Edition 1952, Page 63.

और उनके एक पुत्र और एक पुत्री भी थी। संसार के प्रति निवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और परिणाम-स्वरूप इन्होंने बीस वर्ष की आयु में ही गुफाओं में रहने का विचार प्रकट किया। कैमुह गांव के निकट ही शाहमार टैंग में एक गुफा का निर्माण किया गया तथा वे इसी में बारह वर्ष तक कठिन तपस्या करने लगे। परिणाम यह हुआ कि नुंदर्योश अति दुर्बल हो गये। इनकी प्रसिद्धि फैल गई और सहस्त्रों की संख्या में उनके शिष्य बन गये। इनके चार प्रमुख शिष्य ये थे —



अपने शिष्य बाबा नसरुद्दीन को सम्बोधित करके इन्होंने कई पदों की रचना की है।[1]

स्वयं नुंदर्योश लल्लद्यद से अति प्रभावित थे। इन्होंने स्वयं अपने काव्य में लल्लद्यद की प्रशंसा की है।[2] संत कवि शमस फकीर ने भी निर्देश किया कि लल्लद्यद नुंदर्योश को उपदेश देने गई थी।[3]

१, यथ वावस तन ननी सुवि दोहा नसरो।
तोन वुगरा त स्योन पनी सुति दोहा नसरो।
निशि रन्य त वुरनि कनि सुति दोहा नसरो।
वुर बता त गाड गन्या सुति दोहा नसरो।

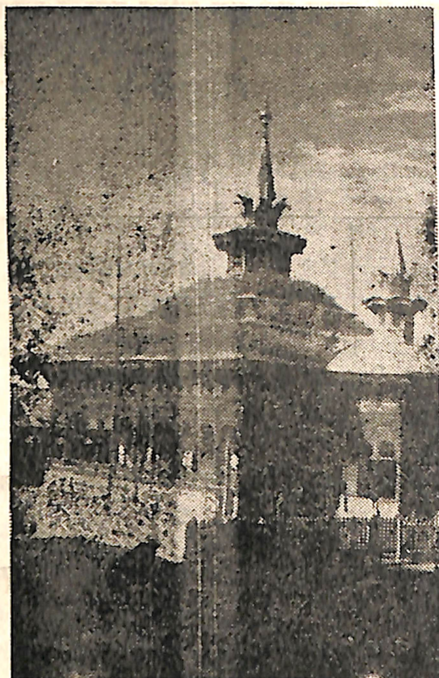
Kashmiri Lyrics, Prof. Jialal Koul, 1945, Page 10. (Rinemisray Lambert lane, Srinagar).

२. तप्त पद्मान पोरचि लले।
तमि गले अमृथ चव।
सों सूत्य अवतार लोले
तिथ्य म्ये वर दितम दीव,

नूर नामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५, पृ० ६९ (उर्दू में)।

३. वोपदीश करनि गयि नुंदरीशानस।
रिन्दव दोपहस आनि उरफान।
छयप छयपरिस गिन्दुन शाहहमदानस।
ज़ान मिलनाव भगवान स सूत्य।
शमस फकीर, प्रो० शमसउद्दीन अहमद (उर्दू में) सन् १९५६, पृ० ६८।

नुंदर्योश विद्वान नहीं थे परन्तु अनुभव और तपस्या के फलस्वरूप जो कुछ उन्होंने कहा वह कश्मीरी साहित्य की अमूल्य निधि है। इनका सत्कर्म और अनुशासन-



नुंदर्योश की समाधि का चित्र

पूर्ण जीवन में विश्वास था तथा सांसारिक इच्छाओं और धार्मिक बाह्याडम्बरों से वे बहुत दूर रहते थे। नुंदर्योश के वाख 'ऋषिनामा' और 'नूरनामा' में सुरक्षित हैं। ऋषिनामा में इनका जीवनचरित्र भी है तथा अन्य संतों और फकीरों के साथ इनके वार्तालाप भी हैं।

निधन-तिथि—नुंदर्योश की निधन-तिथि श्री पी० एन० कौल बामज़ई की 'ए हिस्ट्री आफ कश्मीर' नामक पुस्तक में नहीं दी गई है परन्तु इस बात की ओर संकेत अवश्य किया गया है कि नुंदर्योश का निधन जैन-उल आबद्दीन (बडश्ह) के समय हुआ था और नुंदर्योश की मृत्यु पर शोक प्रकट करने वालों में यहां के राजा ज़ैन-उल-आबद्दीन भी उपस्थित थे। डा० जी० एम० डी० सूफी के अनुसार सन् १४३८ में इनका निधन हुआ था।[1] यदि हम नुंदर्योश का जन्म सन् १३७७ और निधन सन्

1. "He reduced himself to water alone, and died at the age of 63 in the reign of sultan Zain-ul-abdin in 842 H. (1438 A. C.)"
Kashmir Vol. Ist, G. M. D. Sufi, 1948 Edition, Page 99.

१४३८ मानें तो यह मानना पड़ेगा कि मृत्यु के समय इनकी आयु ६१ वर्ष की थी। श्री अब्दुल अहद आज़ाद का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार नुंदर्योशका देहान्त ३२ वर्ष की आयु में हुआ था।[1] जो असंगत है। वास्तव में ये ६१ वर्ष तक जीवित रहे हैं, इनकी समाधि चार नामक गांव में है जहां आज भी सहस्रों की संख्या में जनता जाती है।

नुंदर्योश की रचनाएँ—गतवर्षों अर्थात् १९६४ तक नुंदर्योश की रचनाएं 'ऋषिनामा' और 'नूरनामा' पाण्डुलिपियों में ही सुरक्षित थीं जिनमें नुंदर्योश की मृत्यु के दीर्घकालोपरान्त उनकी रचनाओं का संकलन किया गया था। गत वर्ष श्री मुहम्मद अमीन कामिल ने 'नूरनामा-शेखनूरूद्दीन वली' नामक पुस्तक का संपादन किया है, यह पुस्तक अकादमी आफ जम्मू कश्मीर कल्चर एण्ड आर्टस, श्रीनगर से सन् ९६५ में प्रकाशित हुई है। इसमें नुंदर्योश के दो सौ अठतालीस वाखों का संकलन किया गया है, इसके अतिरिक्त इसमें संस्कृति और पंडिताई कविताएँ, सुदूसी मसला तथा प्रश्नोत्तर परम्परा में लिखी कविताएँ हैं।

१. वाख—नुंदर्योश के लिखे वाख भी लल्लद्यद के वाखों की परम्परा में आते हैं, पदों की पंक्ति-संख्या सर्वत्र एक नहीं है—कहीं पर चार, कहीं छह और कहीं आठ पंक्तियां हैं। इनमें उपदेशात्मकता अधिक है। पद नं० ४३, ९८, १३७, १६४, १७१, १७६, १७८, १९७, २०३, २१३, २१६, २२५, २३८, २४० और २४२ की समानता लल्लद्यद के पदों से इतनी है कि इन उपर्युक्त पदों को नुंदर्योश के पद मानना असंगत लगता है। ये मूल रूप से भाव, भाषा और शैली तथा मौखिक परम्परा की दृष्टि से लल्लद्यद के पद ही हैं। इनको किसी भी आधार पर नुंदर्योश की रचना नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए कुछ पदों को नीचे दिया जाता है—

(१) लल्लद्यद—**कंचन् रन्य छय शिहिज बून्य।**
नेरख न्यबर शुहुल कख
कंचन् रन्य छय बर प्यठ हून।
नेरख न्यबर ज़ंग खेयि।
कंचन् रन्य छय अदल त वदल।
कंचन् रन्य छय जदल छाय॥
(कल्चर्ल अकादमी से प्रकाशित लल्लद्यद)

नुंदर्योश—**कंचन रन्य छय शिहिज बून्यी।**
नेरख न्यबर शुहुल प्येयी।

---

१. शेख ने सात वर्ष रोपवन में व्यतीत किए और ३२ साल की उम्र में ८४२ में बफात पाई, उन्हें इस दुनियां से कूच करने का इलहाम पहले ही हुआ और दुनियां से नफरत और इसकी बेसबाती पर मुतहित अश्लोक और नज़में लिखीं।
कश्मीरी ज़बान और शायरी, भाग २, अब्दुल अहद आज़ाद, (उर्दू में) सन् १९६२, पृ० १८७।

कॆंचन रन्य छुय वर प्यठ हूनी ।
नेरख न्यबर त जग खोयी ।
कॆंचन रन्य वदल वुनी ।
कॆंचन रन्य छुय जदल छाय ।।
(क० अ० से प्रकाशित नूरनामा)

(२) लल्लद्यद—क्याह करअ पंचन दहन त कहान ।
वोखशन यथ लेजि करिथ यिम गय ।
सारिय समहन यथ रजिलमहन ।
अद क्याजि राविहे कहान गाव ।
(क० अ० से प्रकाशित लल्लद्यद)

नुंदर्योश—क्याह करअ पंचन दहन त कहान ।
सु पान कहान दिथय दाव ।
योदवै सारिय अकि वति पकहन ।
अद कति राविहे कहान गाव ।।
(क० अ० से प्रकाशित नूरनामा)

(३) लल्लद्यद—आयस वते गयस न वते ।
सुमन सोथे मंज, लूस्तुम दोह ।
चन्दस वुछुम त हार न अते ।
नाव तारस दिम क्याह बो ।
(ललवाक्यानि, ग्रियर्सन द्वारा संपादित, पृ० ११० ।)

नुंदर्योश—आयोस वते त गयोस वते ।
से मंज सोथे लूसुम दोह ।
वुछुम चन्दस हार न अते ।
अथ नाव तारस क्याह दिम बो ।
(नूरनामा, पृ० २३४ ।)

इन वाख्यों में कोई भिन्नता नहीं है। निष्पक्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि ये वाख्य नुंदर्योश के नहीं अपितु लल्लद्यद के हैं जो त्रुटि से नुंदर्योश के वाख्यों के संकलन में आ गए हैं ।

२. नुंदर्योश की कविताओं का द्वितीय खण्ड वे कविताएँ हैं जिनमें पंडिताऊपन अधिक है। उनमें संस्कृत की तत्सम और तद्भव शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग मिलता है । जैसे—

कन्दा अबोध अग्वोनन जानो निदा यिन्दन दह तोही ।
चरिथ अन्न जन्द जन वानो साद पजी सहजा क्रय ।
लोयी चित्र साद तेरा कन्द ही अलख कल पढ़ दिथ हाविही ।
तेल त पतर तेलरूफ त मानवी बदीह सार पजी सहजाक्रय ।

कोष पोष तिल दीफ पाक जी यस लसन तहिमुब कथयिनी।
सबब त तोर्यी पानची, साद पज़ी सहज़ा श्रय।[1]

३. सुदूसी मसला—नुंदर्योश की कुछ कविताएँ वर्णनात्मक अधिक हैं और भावात्मक कम। इन कविताओं में भी गति का अभाव नहीं है। जैसे—

मेन भायि पेशन वक्तचि छायि।
श्रावानस ढोठ त बदर त ढायि।
ओशदस साढ़ त्रे कफ खोर पायि।
कारतिक साढ चोर पार दोह हायि।
मन्जहोर साढ शे कफ खोर सायि,
पोहनि साढ आठ गंज़रन आयि।
सारदार मागस साढ़ दह पायि,
पागनस साढ आठ लोतान आयि॥[2]

४. चतुर्थ वर्ग उन कविताओं का है जो प्रश्नोत्तर पद्धति में लिखी गई हैं। इसमें पद्य में ही प्रश्न भी हैं और पद्य में ही उत्तर भी। इस वर्ग की कविताओं में नुंदर्योश का उस्तादिशेख, सदरमाज्य और ज़यद्यद के साथ वार्तालाप का उल्लेख है। यहाँ एक-एक उदाहरण देना अनुपयुक्त नहीं होगा—

प्रश्न—उस्तादि शेख—

नुन्द मति अलिफ निशि बे नोन द्राव।
'ते' परिथ 'से' पर त्राव बहच्
अन्द वन्द तामथ अछरै हावय।
परख नय सबख वोथ गर गच्छ।[3]

उत्तर नुंदर्योश इस प्रकार देते हैं—

ते गव तवकल द्रोन मंज़ करुनुय।
रोज़ि सु कुनुय तमि तौर फान।
दोरूद मुहम्मद साबस परुनुय।
कलिमस तहंदिस ओनुम ईमान।[4]

इसमें नुंदर्योश 'ब्रह्म एक है' के भाव को व्यक्त करते हैं। इन पंक्तियों का सम्बन्ध इससे पूर्व वाली पंक्तियों के साथ है जहाँ वे कहते हैं—

अवल अलिफ गव कुनुय छु अल्लाह।
अवल पते आखिर ज़वाल न तस।

---

१. नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५, पृ० २८५।
२. वही, पृ० २८७।
३. वही, पृ० २८९।
४. वही, पृ० २९०।

बे गव महमद रसूल अल्लाह ।

कयामच् शफात करि उमतस ।[१]

(अर्थात् 'अलिफ' प्रथम अक्षर ईश्वर है और द्वितीय अक्षर 'बे' मुहम्मद है अर्थात् जितने भी पैगम्बर और अवतार हम मानते हैं वे वास्तव में परमात्मा के ही अंश हैं। इनकी अलग सत्ता नहीं है।)

नुंदर्योश अपनी घर-गृहस्थी त्याग कर कन्दराओं में रहने लगे थे, इनकी माता सदरमा'ज्य को इसका अत्यधिक दुःख हुआ, समाज के हास्य को वे सहन न कर सकीं। अतः वे अपने पुत्र से घर आने के लिए प्रार्थना करने लगी—

नुंद कामा दपय न त ।

नुंद श्रद छिम गेलान क्रोनुय ।

नुंद दफतो क्याह गोय कीनश्र ।

नुंद कव युन त्रोवुथ स्योनुय ।।[२]

इस पर नुंदर्योश पसीजते नहीं। वे अन्त तक यही कहते हैं कि मैं तुम्हारे घर नहीं लौटूँगा। मुझे ईश्वर ने इसी कार्य के लिए बनाया है। मैं स्वादिष्ट भोजन आदि नहीं करूँगा क्योंकि उससे मेरा मन स्वच्छ नहीं रह सकता है—

माज्य ब नय गर च्योन यिमय ।

म्ये बिन खोदाय यी थव लोनुनुय ।

माज्य ब नय थजि बत ख्यमय ।

म्ये बिन न मन साफ सपनुय ।[३]

नुंदर्योश की पत्नी का नाम ज़यद्यद था, वे भी अच्छी कविता करती थीं। यहाँ वे अपने पति से प्रार्थना करती है कि क्या वे बचपन के प्रेम को भूल गये अब वे दीन नारी यहाँ कहाँ अपना आश्रय ढूंढेगी—

शेखो च् म्यने बोज़ तो ज़ा'री ।

त्रा'विथ सारी अंगय ।

कव मंठय श्रादनच या'री ।

दफत ख़्यन बत ब कस मंगय ।।[४]

इस प्रार्थना को सुनकर नुंदर्योश कहते हैं—अरी ज़यद्यद तुम उस परब्रह्म के साथ प्रेम करो, दूसरे जीवों से प्रेम करने से तुम्हें क्या मिलेगा। यह आश्रय नश्वर होता है अतः तुम ब्रह्म के आश्रय को ग्रहण करो। इसी कारण मैं तुमसे दूर हो गया हूं—

ज़य लय कर च् आखरतस ।

पर मस्तस क्याह मंगुनुय ।

---

१. नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५, पृ० २८९ ।

२. वही, पृ० २९१ ।

३. वही, पृ० २९१ ।

४. नूर नामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५, पृ० २९३ ।

तथि जायि कर पनन्यिस बनस ।
तन हू हत रूदस तव ।[1]

आगे की पंक्तियों में नुंदर्योश इसी प्रकार सांसारिक जीवों की नश्वरता आदि का भी वर्णन करते हैं ।

नंदर्योश का युग—नुंदर्योश कश्मीर के शासक जैन-उल-आबद्दीन के समकालीन थे । यह सुख और शान्ति का काल था फिर भी आन्दोलनों का अभाव नहीं था । सुल्तान शाहबुद्दीन और सुल्तान सिकन्दर प्राचीन सभ्यता और संस्कृति में आन्दोलन लाने में सफल हो चुके थे, नुंदर्योश ने भी समय का लाभ उठाया और कश्मीर में ऋषि परम्परा का आरम्भ करके जनता का ध्यान आध्यात्मिक उन्नति की ओर आकृष्ट किया । जैन-उल-आबद्दीन ने राजनैतिक क्षेत्र में एकता का प्रचार किया, हिन्दुओं और मुसलमानों को समभाव से मानकर प्रेमपूर्ण व्यवहार किया । नुंदर्योश ने प्रेम और भक्ति के आधार पर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक एकता का भी प्रचार किया । प्रथम का क्षेत्र सामाजिक और राजनैतिक था तथा द्वितीय का आध्यात्मिक और नैतिक । दोनों का उद्देश्य था—शान्ति और प्रेम के पथ पर अग्रसर होना । साहित्यिक दृष्टि से इस समय संस्कृत परम्परा अवनति की ओर जा रही थी । हिन्दू समाज में विश्रृंखलता आ चुकी थी । कश्मीरी साहित्य पर फारसी विचार और संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा था । इन परिस्थितियों के उपरान्त भी नुंदर्योश का ध्यान हिन्दू संस्कृति की ओर अधिक रहा यह उनके काव्य से स्पष्ट लक्षित है ।

नुंदर्योश की दार्शनिक विचारधारा (सिद्धांत पक्ष)

ब्रह्म—नुंदर्योश संत लल्लद्यद की परम्परा में ही आते हैं । नुंदर्योश और लल्लद्यद के वाखों में अत्यधिक समानता दृष्टिगोचर होती है । कहीं-कहीं ऐसा लगता है मानो लल्लद्यद के भाव को ही भिन्न शब्दों में नुंदर्योश ने व्यक्त किया है । अन्तर इतना है कि लल्लद्यद पर अद्वैत दर्शन की स्पष्ट छाप है और नुंदर्योश पर इस्लाम का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । मूल विचारधारा इनकी एक है । नुंदर्योश भी मानते हैं कि मनुष्य के आत्मसाक्षात्कार के समय अहं और द्वैत का नाश होता है और जीव और ब्रह्म एकभासित होते हैं । यही एक तत्त्व समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने लगता है, वह सत्य रूप बुद्धि और चिन्ता से परे है । उस स्थान तक पहुँचना अति कठिन है ।[2] ईश्वर एक है परन्तु उसके सहस्रों नाम हैं । बिना किसी वर्णभेद के उसका स्मरण

---

१. वही पृ० २९३ ।

२. कुनियर बोज़ख कुनि नो रोज़ख ।
अमि कुरिरन कोताह द्युत जलाव ।
अचल त फिकिर तोर कोत सोज़ख ।
कमि मालि च्यथ ह्योत सु दरियाव ।
नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, सन् १९६५, पृ० ३७ ।

प्रत्येक प्राणी कर सकता है ।[१] ब्रह्म सर्वातीत है, जीव उसकी प्राप्ति के साधनों से अनभिज्ञ है ।[२] ब्रह्म की कृपा जिस पर हो उसको कोई कठिनाई नहीं आ सकती है, उसकी दी हुई वस्तुएँ कोई उससे छीन नहीं सकता है ।[३] ब्रह्म सदैव रहने वाला है, वह पहले भी था और भविष्य में रहेगा । निम्न-से-निम्न प्राणी को पालना भी उसी का कार्य है, परन्तु जीव ऐसा है कि उसी ब्रह्म का स्मरण नहीं करता है ।[४] ब्रह्म ही जीव का कारण है ।[५] ब्रह्म निर्गुण है, जीव उसके नाम का स्मरण करता है और साक्षात्कार करने की इच्छा करता है ।[६] ब्रह्म सबसे उच्च अवतार स्वयं है, वही रहस्यों को जानने वाला है वही शुद्ध मन वाले जीव को अपने समीप लाता है ।[७] जीव के पंचभौतिक शरीर में दिशि दिशान्तरों में इसी ब्रह्म को सभी नमते हैं ।[८] जीव के पंचभौतिक शरीर में वही

---

१. अकुय खोदा नाव छुस लछा ।
जि़किर रोस काँह कछा मो ।
उमर व्यन्दुन अकोय पछाह ।
रीजि़क रोस कांह मछा मो । वही, पृ० ४२ ।

२. साहिब बुलन्द चे रोस कोंहनय ।
तोगुम न त करहस चे ताअ़ात । वही, पृ० ३६ ।

३. यस च़ दिख तस हेकि न निथ कुहनय ।
क्याह करयस गर त क्याह करयस साथ ।
यस च़ निख तस दिथ हेकि कुहनय ।
क्याह करयस काबिलियत क्याह करयस ज़ाथ । वही, पृ० ४० ।

४. खोदा ताला ओस त आसी ।
सु येति आस्त गछि न ।
निकिस ख्युन हार रूजीं आसी ।
अस्य तस च़ेतस सु आसि न । वही, पृ० ४४ ।

५. च़ छुख सकलन कारण म्ये ।
म्य चे पथ वन दितम व्रानअ । वही, पृ० ६१ ।

६. निरग्वोन च़ रू येति दितम ।
छुस ब चोनुय नाव सोरान ।
बग कैलास खारिथ नितम ।
छुहम च्यतख च़ मेहरबान । वही, पृ० ६२ ।

७. सु छु सकलन बोड पैगम्बर ।
च़े तस बोवुथ सिर आदान ।
सु च़े शोद्धि मन न्यूथ अन्दर ।
छुहम च्यतस च़ मेहरबान । वही पृ० ६४ ।

८. प्रथ दिशन त संगाटन ।
च़े छिय सकली लूख नमान ।
म्येति मुदथा करतम घाटन ।
छुहम च्यतस च़ मेहरबान । वही, पृ० ६७ ।

ब्रह्म व्याप्त है जिसकी सत्ता बाह्य प्रकृति में है अतः जीव सबकुछ त्याग कर उसी का साक्षात्कार करना चाहता है।[1]

नुंदर्योश ब्रह्म को अपना प्रियतम मानते हैं। उनके अनुसार जहां वह प्रियतम हैं वहीं मक्का (तीर्थस्थान) है।[2] जीव को सदैव सुमार्ग चलना चाहिए क्योंकि ब्रह्म ही उसकी चिन्ताएँ दूर कर सकता है और वही सर्वकाल में विद्यमान रहने वाला है।[3] ब्रह्म सृष्टिकर्ता है। उसी ने जीव का निर्माण मिट्टी से किया है। मिट्टी का ही यह समस्त वैभव बना दिया और जब जीव की मृत्यु होती है तो जीव इस मिट्टी के साथ ही मिलता है। अर्थात् नश्वर जीव का निर्माण करने वाला स्वयं ब्रह्म ही है।[4] जीव ने उस ब्रह्म का अन्वेषण किया, ऋषियों, मुल्लाओं और तपस्वियों से पूछा परन्तु कहीं उसके चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हुए। जब उसने अपनी इन्द्रियों को वश में किया तो उसे ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ और अपना अस्तित्व मिटता हुआ लगा।[5] नुंदर्योश भी ब्रह्म को सर्वव्यापक मानते हैं। ब्रह्म की सत्ता सर्वत्र है। समस्त ब्रह्माण्ड उसी का निवासस्थान है परन्तु वह सदैव

---

१. येति म्यचय़ तति म्यचय़।
म्यचॆ करतम गुलज़ार।
सारिय त्राविथ रोटुख म्य चय़।
म्य चय़ हावतम दीदार। वही, पृ० ७८।

२. ब छुस कुन सूत्य गोछुम यार।
यारस सूत्य बो दम दम पक।
सु नय डेशन गुल छिन खार।
येति म्योन यार त तति म्योन मक। वही, पृ० ६०।

३. सुय ओस त सुय हो आसी।
सुय सुय करिज़ येति।
सुय सारिय अन्देश कासी।
हो जुवो पायस प्यत। वही, पृ० १३५।

४. आदम वोपदोवुन यथ म्यचॆ।
म्यचि़ हुन्द सोरुय गरवेठ ह्यथ।
सारिय न्यामच वोपदान म्यचॆ।
रनान म्यचि़ व्यन बानन क्यथ।
जुव चलि नीरिथ मर मो च म्येचे।
म्यचि़ सूत्य म्यच गछि़ मीलिथ क्यथ। वही, पृ० १५४।

५. छाज्याम भवनन त मेयि दीशन।
नेभ त निशन ोभुमस न कुने
पृछाम मल बाबन तप रयॅशन।
तिम लगि बूज्य बूज्य रावने।
दब येलि द्युत मस फिकर अन्देशन।
अद सुय डयूठुम त ब न कुबे। वही, पृ० २४५।

रहस्य ही रहता है।[१]

जीव—अन्य संतों की भाँति नुंदर्योश ने भी जीव और ब्रह्म को एक माना है यद्यपि उनकी सत्ता भिन्न है। जीव संसार में आता है परन्तु वह सदैव ब्रह्म के समीप होता है और ब्रह्म उसके पास होता है। जीव को ब्रह्म के पास ही शान्ति का अनुभव होता है अन्यत्र उसको ढूंढना व्यर्थ है, वह जीव में ही व्याप्त है।[२] जीव का शरीर शनैः-शनैः समाप्त होता जाता है। सुख और दुःख सहन करके उसका जीवन व्यतीत होता है ।[३] संसार में जीव अत्यन्त प्रसन्न होता है, उसको अन्तिम समय का ध्यान ही नहीं है। वास्तव में वह नश्वर है, यहां के वैभव में मस्त रहना व्यर्थ ही है।[४] जीवों का पारस्परिक सम्बन्ध भी व्यर्थ है। अवसर पर सहायता करने वाला कोई नहीं है। इस रहस्य को पहले ही जानना चाहिए।[५] जीव भी कई प्रकार के होते हैं। कई अपने को ब्रह्म-प्राप्ति के साधनों में रत रखते हैं, कई कुमार्ग पर चलते हैं इसी कारण मृत्यु का समय किसी के लिए सुखदायक होता है और किसी के लिए दुःखदायक।[६] जीव की सत्ता सृष्टि के अन्य प्राणियों से उच्च मानी गई है परन्तु उसी ने अपने को अज्ञान के अन्धकार में रखा है, अन्तिम अवस्था को भूलकर वह गर्व में भटकता रहा

---

१. यस ग्रोस तति सुय छुय येती।
सुय छुय प्रथ शायि रटिथ मकान ।
सुय छुय प्याद त सुय छुय रथी।
सुय छुय सोंरुय त गुपिथ पान। वही, पृ० २४६।

२. सु म्ये निशे ब तस निशे।
म्ये तस निशे करार ग्राव।
नाहकं छोडुम म्ये पर दीशे।
पनने दीशे म्ये यार ग्राव। वही, पृ० २४८।

३. क्याह करग्र क्याह करग्र हनि हनि दीह गोम।
पाफ गम चरि त कति वोभर।
म्यूठ त मोदुर ख्ये ख्ये वेह प्योम।
दाह गोव पानस राह कस कर। वही, पृ० २०६।

४. कन्धौ हरणनि छाल छुख निवान।
छ्यनो चयतस मरननि गर।
म्यचि तल वसख कव छुख छिवान।
कथ किच् लज्जथ वोगन्य लंर। वही, पृ० १४४।

५. कन्थ कोरुथ म्योनुय म्योनुय।
कैंह ह्युतुथ न तंहजि वति।
च न कांसि हुन्द कांह नो चोतुय।
हो जुवो पायस प्यत। वही, पृ० १३७।

६. साहिबो कैंह गय चाने वेरे।
कैंह गयि ज़ेरे ग्रकि गमराह।
कैंचन कबर छय पोश ज़न शेरे।
कैंचन कबर छय सियाह चाह। वही, पृ० १३४।

अत: सदैव उसके सामने समस्याओं की उलझन के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है।[१]

जीव नश्वर है मृत्यु उसके पीछे सदैव छाया की भांति रहती है, इस रस का आस्वादन प्रत्येक जीव को करना पड़ता है।[२] अज्ञान के कारण वह अपनी बाल्यावस्था का अमूल्य समय व्यर्थ में ही व्यतीत करता है और अन्त में पश्चाताप करता है।[३] जीव की अवस्था ऐसी है कि वास्तविकता कहते-कहते वह घबराता है क्योंकि उसमें दृढ़ता का अभाव है। असत्य वाणी से उसे आनन्द आता है परन्तु वह जो रहस्य में रखना चाहता है, वह मुहम्मद को पहले ही ज्ञात होता है।[४] काया में आत्मा, प्राण, चितशक्ति और इन्द्रियाँ होती हैं परन्तु यह सब नश्वर हैं, मनुष्य की आत्मा और लोभ ये दो भिन्न वस्तुएं हैं, लोभ से जीव पर आवरण लगा रहता है अत: ईश्वर से ही प्रार्थना करनी चाहिए कि जीव के पापों का नाश हो।[५] यदि जीव संसार से मुख फेर लेता है तो यह भी उसकी असमर्थता ही है।[६] जीव को संसार में रह कर ब्रह्म से रत रहना चाहिए, जहां भी वह जाये वहाँ उसे ब्रह्म का होना चाहिए। उसके हृदय

---

१. आदम आसिथ लोगुथ खरो।
गिन्दान सूरुय दोह त राथ।
मरुन मशरिथ सपुनुख गरूर।
क्याह कर क्याह कर चोलय न जाथ। वही, पृ० १२५।

२. मौत छुय सह त कोतू चलिजें।
खेलि मंज़ कडिय चालिथ कांह।
मौत छुय शरबथ चन रोस न बलिज़ें।
सुलि कौन गयाख गारिथ कुंह।। वही, पृ० १२४।

३. आदन फ्यूरस डोरयन त डारन।
सार वानस गयम खारन सूत्य।
वोदय कोन रूदुस चोनवन्य प्यार।
च्यव लेखहनम सितरान सूत्य। वही, पृ ११६।

४. पज़र वनान पन जन नटख।
अपुज़ वनान लगि रस।
महमद त्राविथ इबलीस रटख।
सुछुय वुछान खटरव कस। वही, पृ० ८५।

५. जुव ति ओछुय पवन ति ओछुय।
च्यथ ति ओछुय-ओछुय सार।
यिमन पदन म्ये व्यचार गोछुय।
बार खोदाया पाप निवार।
जुव नेरि ब्रोंठ त लूभ नेरि पत।
गछन दोन ज़वत शून्य कार।
यि दिख ब्रोंठ नी पत।
बर खोदाया पाप निवार। वही, पृ० ५८-५६।

६. केवल्य कोत नेरख निह्यानी।
त्रा'विथ शुर्य मुर्य त गेह बार। वही, पृ० ५३।

से भी ब्रह्म प्रकट होगा।[1]

जगत्—नुंदर्योश ने संसार की सत्ता को माना है। यह जुआ है जिसमें सीधा पासा पड़ना कठिन है।[2] इस संसार में जीवों के लिए विष ही विष व्याप्त है।[3] यदि जीव को ज्ञात होता कि यह संसार भ्रम है तो वह अहंकार त्याग कर ब्रह्म का साक्षात्कार करता परन्तु ऐसा हुआ नहीं। जीव में लोभ ने अपना निवास-स्थान बनाया और उसे कोई पथ-प्रदर्शक भी नहीं मिला जो कुछ शिक्षा दे सकें,[4] संसार में प्राणी खिलाड़ियों की भांति क्रीड़ाशील होकर आते हैं।[5] नुंदर्योश के अनुसार ब्रह्म एक दिन आयेगा और इस संसार को नष्ट करेगा, उस समय पृथ्वी और आकाश एक हो जायेंगे परन्तु उसे दया नहीं आयेगी।[6] अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि संसार शून्याकार ही है।[7] संसार के वैभवशाली प्रांगण में ही मनुष्य भटकता है और उस भ्रमपूर्ण संसार को सत्य मानता है।[8] संसार का कालचक्र चलता जाता है। न यहां शीतकाल

---

१. कलय करख कलय वुज़िय।
फुलय लगी अल्लाह हू।
च योर गछख सु तौर रूजी।
दिलय वुजीं अल्लाह हू। वही, पृ० ४५।

२. साहिबो बरतल मौलुम सॉस।
रोगुम रोय त थावतम बने।
नरदाह छु दुनिया प्यवान न रास।
हावस रोज़ हा बोलगनय। वही, पृ० ७५।

३. भव मजे बव्योम विषस।
तव वारूम वन आदान।
बग प्रकट बरथम येंशस।
छुहम च्यतस च मेहरबान। वही, पृ० ६६।
यथ संसारस करि लूर पार।

४. ब यादे ज़ानहा दुनिया ब्रह्मा।
नमहा त ह्यमहा लागय ज़ान।
कोरथम छला त छुन थम तमाह।
पथ कोंछ लोभुम न सथ छम चा'न्य। वही, पृ० ७६।

५. दुनियाहस आये बाजी बाजी।
समिथ कखन बाजी बठ॥ वही, पृ० १३१।

६. साहिब दोह अकि दोरा करे।
पथ संसारस करि लूर पार।
ज़मीन त आसमान प्यन छरि छरे।
न गच्छयस इन्साफ न ग़ियस आर। वही, पृ० १४२।

७. न कांसि दिचाम न कांसि ज़ोनुम।
संसार ज़ोनमु भ्ये शून्यीकार। वही, पृ० १६०।

८. दुनियाह किस ततिस मतिस नारस।
डीशिथ अनारस करिम यथ।
शैतान निश लाजिम पछ यारस।
राविम तारस चोरस वथ।
नाहक बोरूम भ्रम संसारस।
ज्यथ कम बारस गयम लथ। वही, पृ० १६२।

रह सकता है और न ग्रीष्मऋतु, पक्षीगण भी ऋतुओं के अनुकूल ही अपना मधुर गान करते हैं, न यहां सुख रहने वाला है और न ही दुःख। यहां संगीत की ताल और लय भी शीघ्र समाप्त होने वाली है।[१]

साधना पक्ष

गुरु—नुंदर्योश के अनुसार गुरु वह बुद्धिमान मनुष्य होता है जिससे अमृत-रूपी वचन बूंद-बूंद में गिरते हैं।[२] इस संसार-रूपी वन के अन्धकार को पार करने के लिए एकमात्र साधन 'सोहम्' है।[३] मद और लोभ को वश में करना अतिआवश्यक है इसी से अपनी आत्मा का प्रकाश बाहर आता है और ब्रह्म का साक्षात्कार अपने ही मन में होता है।[४] नुंदर्योश ने भी शशिकल और षट्चक्र की ओर संकेत अपने वाखों में किया है।[५] सहज-रूपी जल का प्रयोग नुंदर्योश ने भी किया है।[६]

बाह्याडम्बरों का विरोध—नुंदर्योश के पदों में जाति-पांति का विरोध लक्षित होता है। वे हिन्दुओं और मुसलमानों को एक ही माता-पिता की सन्तान मानते हैं।[७] काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि नरक की अग्नि हैं, इनसे जीव को बचना चाहिए।[८] जो जीव स्वयं को महत्त्व न देकर बुरे मनुष्यों का संग छोड़ दे, रात्रि और

---

१. न रोजिवन्द त न सयतकोलुय।
न बोलि श्रावण पत कोस्तूर।
न रोजि़ सोख साव न हुयि होलुय।
न रोजि़ दोहय साज़ सन्तूर॥ वही, पृ० २५६।

२. दानिशमन्द घुय ग्रामृत ग्वोरू।
फ्योर फ्योर ग्रासी तस पशपान। वही, पृ० १७९।

३. कहल वन ज़ गयम गटे।
बोत ग्रपि सोहम् तार।
च वुछख ग्रन्द योदब कम रट्य।
बार खोदाया पाप निवार। वही, पृ० ५५।

४. खोरि रोस्तुय जहाज़ तोरुम।
मोरुम मद लूभ त मूह।
स्येदि वोन्द रहिथ साहिब गारुम।
ग्रद प्रज़नोवुम पनन्‌ रूह॥ वही, पृ० २४१।

५. शशकल व्रोपरम ग्राहदकिस पयस।
मीम रोस ग्रहमद रोगुम राश।
वे वन पयूरुस मोयस मोयस।
ग्रद् पोरम कल्यम त कोड़ुम वाश। वही, पृ० २४४।

६. सहज़ जल छोवुम तीर येरनोवुम।
बिहिथ साग्रल कोरुम ग्रकि ग्रानत। वही, २४७।

७. ग्रकिस मा'लिस मा'जि हन्द्यन।
तिमन दय त्रा'विथ त क्याय।
मुसलमान क्योहो ह्यन्द्यन।
कर बन्दन तोषि खोदाय। वही, पृ० ४८।

८. काम क्रूध लूभ मूह ग्रहंकार छुय।
दोज़खि नार छुय दिवान व्राय। वही, पृ० ८३।

दिवस अपने आपको सुधारने में व्यतीत करे और 'स्वयं' के साथ 'पर' को भी इस संसार-सागर के पार करे वही सच्चा जीव है।[१] वही सच्चा मुसलमान है जो दिन-भर के कार्य पर मनन करे और निवृत्त होकर कार्य करे, जिसने अपने मन को अहं-कार से मुक्त रखा हो, जो उचित-अनुचित सभी वचन सहन करता हो वही सच्चा मुसलमान है।[२] नुंदर्योश के अनुसार माला फेरना और जप करना व्यर्थ है क्योंकि इनसे जीव के मन की मैल नहीं धुल जाती है।[३] धार्मिक पुरुष केवल पुस्तकों का अध्ययन करते गये, परन्तु उनके अध्ययन से क्या लाभ जो अपने हृदय को पहचान नहीं सके।[४] केवल अध्ययन महत्व नहीं रखता जब तक उसको प्रयोग में न लाये, शारी-रिक कष्ट उठाना व्यर्थ है।[५] शारीरिक कष्ट से मन की मैल स्वच्छ नहीं होती है और न ही ब्रह्म का साक्षात्कार इन आडम्बरों से सम्भव है।[६]

---

१. पानस मो युस थविन हारे।
बेयिस सूत्य करि न मान मान।
वरज़न त्रविथ सरज़न गारे।
रातस दोहस वारि पान।
पर त पान यूस सोदरस तारे।
सुय हय दपिज़ि त मुसलमान। वही, पृ० ६६।

२. दुहिचि कामि युस करि ग्रौदाले।
तुज़ि रोस ग्रासि सकल कमवान।
च्यथ कसरि यव मदीय वाले।
चालि गोब बच्न ग्रवमान।
परस पर त पानस पाले।
सुय हय दपिज़ि त मुसलमान। वही, पृ० ६६।

३. परान परान ज्यव ताल फोजियो।
तस किछ़ क्रय कांह तज्य नो ज़ाथ।
तसबीह फिरान ग्रौंगजे गजियो।
बोय लदसय बोय च़जि नो जाथ॥ वही, पृ० १८७।

४. परान परान खाली पर गनय।
खर गय किताब बारी ह्यथ।
यिम दिल नीशन बारवबर गय।
तिम नर गयि तार तरिथ क्यथ। वही, पृ० १८८।

५. परान परान पालुन मोठुमो।
लेखान लेखान व्यूठुम दिल।
जिकिरे सूत्यन मोला टोठोमो।
फिकिरे सूत्यन रोछमो दिल॥ वही, पृ० १८९।

६. ग्रथ कुन्द पानस मो दिम रन्दो।
ग्रमि सूत्य वोन्द मल वोथिनो।
ग्रमि तसबीह ग्रासत जन्दो।
ग्रमि फन्द सु ग्रथि यियीनो। वही, पृ० १९१।

१६वीं और १७वीं शताब्दी के कश्मीरी संत और उनकी दार्शनिक विचारधारा

रोपभवनि (रूपभवानी)

रूपभवानी लल्लद्यद की संत-परम्परा में आती है। रूपभवानी के जीवन या साहित्य पर अभी प्रकाश नहीं पड़ा है, इनका काव्य अभी अन्धकार के गर्त में ही है। कुछ छुटपुट उल्लेख और संकेत अवश्य मिलते हैं। परन्तु तथ्यपूर्ण सामग्री का अभी अभाव है। रूपभवानी ने अपने वाख्यों में कहीं-कहीं अपनी ओर संकेत किया है। रूपभवानी के विषय में जो उपलब्ध सामग्री है उसको हम निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं—

अन्तःसाक्ष्य—

१—वाख्य

२—पं० बालदर को रूपभवानी का पत्र

बहिःसाक्ष्य—

१—शाह सादिक कलन्दर की रूपभवानी की मृत्यु पर पद्य-रचना

२—कश्मीर के ऐतिहासिक ग्रन्थ

३—परम्परा और लोक-गाथा

वाख्य—रूपभवानी ने अपने भक्तों को कश्मीरी भाषा में जो रहस्य के उपदेश दिये हैं वे ही इनका काव्य है। इनकी संख्या कितनी रही होगी, यह अनुसंधान का विषय हो सकता है। संवत् २००७ विक्रमी तक इनका कोई संकलन प्रकाशित नहीं हुआ था। संवत् २००७ में डा० एस० एन० शर्मा ने 'श्री रूपभवानी रहस्योपदेश' नामक पुस्तक में इन वाख्यों का संकलन किया। रूपभवानी ने अपने इन वाख्यों में लल्लद्यद और माधवज्यू दर (अपने पिता) को अपना गुरु माना है।[1]

---

१. (अ) युसुय ग्वोर पिता सुय छुम मोल
सुह इह प्रबल दीप प्रकाश।
सुह इह सर्व क्वलस उदार करवुन
सुह इह ईश्वर सुह छुह ग्वोर॥
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, शिवनाथ शर्मा, २००७ वि० पृ० २२

रूपभवानी के भाई पं० लालदर का पुत्र पं० बालदर २२ वर्ष की आयु तक रूपभवानी के पास ही रहता था और उसके पश्चात् उसको दिल्ली में एक पद पर नियुक्त किया गया। पं० बालदर ने जीवन के संघर्षों से ऊब कर फारसी भाषा के पद्य में एक पत्र रूपभवानी को लिखा था जिसका उत्तर भी रूपभवानी ने फारसी भाषा के पद्य में ही दिया। इस पत्र में रूपभवानी ने पं० बालदर को संत का चरित्र और आत्मा की सर्वव्यापकता समझाई है।[1] इस पत्र से यह स्पष्ट होता है कि रूपभवानी फारसी भाषा की विदुषी थी और फारसी में भी कविता कर सकती थी।

बहि:साक्ष्य—रूपभवानी का परिचय एक सूफ़ी संत शाह सादिक कलन्दर से हुआ था जो रूपभवानी से अत्यधिक प्रभावित हुए थे, उन्होंने रूपभवानी पर अनेक कविताएँ की थीं। इन दोनों के वार्तालापों की पृष्ठभूमि दार्शनिक होती थी, ऐसी मान्यता है। इसकी पुष्टि के लिए वार्तालाप का एक अंश देना अप्रासंगिक नहीं है। शाह सादिक कलन्दर ने एक बार कहा—'रोपि योर अय तरख तस्वन बनख' अर्थात् यदि तुम इस्लाम ग्रहण करोगी तो स्वर्ण बनोगी, इसका उत्तर रूपभवानी ने दिया—'शाह सादिका योर अय तरख त मौख्तअ बनखा' अर्थात् सादिक कलन्दर यदि तुम हिन्दू धर्म ग्रहण करोगे तो मोती बन जाओगे। रूपभवानी की मृत्यु पर शाह सादिक कलन्दर ने फारसी पद्य में रूपभवानी की प्रशंसा भी की है।[2]

लोकपरम्परा—श्री रूपभवानी के जीवन के साथ अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। जनश्रुति है कि खीर तब तक पितृगृह से भेंट किए हुए खीर के पात्र से समाप्त हुई नहीं जब तक ससुराल का समस्त परिवार और अन्य अतिथि सन्तुष्ट नहीं हुए। दूसरी घटना यह है कि मनिगाम में जब लालचन्द के घर में आग लग गई तो

(ब) लल नाम लल परमा ग्वरम।
शिव माधव नाहं परं ब्रह्म सौहम॥ वही, पृ० ६

(स) लल माधव शिव ईकावुम
व्यकावुम दीह म्य पानय॥ वही, पृ० ४३

(द) बाग चायस बागे आयस,
श्री सत ग्वरस माधवा शिवस।
सीवा दीवह साकारस निराकारस।
अन्तर किस सय सत व्रतस॥ वही, पृ० १६

१. परिशिष्ठ में देखिये ये दोनों पत्र।

२. आरिफे ज़ात आं अलकि अवतार कालिबि
अन्सरी ख्वाहिशे शिकस्त।
करद परवाज़े सोय अर्श अज़ीम बादले नेक
रहमतश पैवस्त॥ कश्मीरी जबान और शायरी (उर्दू में)
अब्दुल अहद आजाद, १९६२ ई०, पृ० २२३.

रूपभवानी के संकेत मात्र से ही आग बुझ गई और वहां से गाय और बछड़े बिना किसी कष्ट के बाहर निकल आए। तृतीय चमत्कारपूर्ण घटना यह है कि वासकुरा में एक अन्धा मुसलमान जब कुआ खोद चुका तब रूपभवानी की कृपा से उसके नेत्रों में पुनः ज्योति आ गई।

जनश्रुति के आधार पर ये दिव्य ज्योति-स्वरूप थीं। इसी कारण ये श्री अलख ईश्वरी के नाम से भी पुकारी जाती हैं। इस शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—

१—अलक + ईश्वरी—केशों से सज्जित महिला।

२—अलक्ष + ईश्वरी—ब्रह्म का स्वरूप (अदृश्य शक्ति)

रूपभवानी का जन्म : रूपभवानी का आविर्भाव-काल सत्रहवीं शताब्दी अर्थात औरंगजेब का राज्य-काल था। रूपभवानी का जन्म भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न माना है। डा० जी० एम० डी० सूफ़ी के अनुसार इनकी जन्मतिथि सन् १६२४ और मरणतिथि १७२० है।[१] श्री पी० एन० कौल बामज़ई ने सन् १६२५ इनकी जन्म-तिथि मानी है[२] और ९६ वर्ष की आयु में सन् १७२१ इनका प्रयाण-काल माना है। डा० शिवनाथ शर्मा रूपभवानी का आविर्भाव-काल संवत् १६७७ विक्रमी और मृत्यु संवत् १७७७ विक्रमी मानते हैं।[३] अब्दुल अहद आजाद ने भी सन् १६२५ में ही इनका जन्म माना है।[४]

डा० सूफ़ी और श्री बामज़ई के मत में एक वर्ष का अन्तर पड़ता है। अब्दुल अहद आज़ाद रूपभवानी का जन्म सन् १६२५ मानते हैं और श्री बामज़ई के साथ एक मत हैं तथा मरणतिथि संवत् १७७७ मानकर डा० शर्मा के साथ सहमत हैं। इन सभी मतों पर विचार करके रूपभवानी की आयु ९६ वर्ष या १०० वर्ष के बीच ठहरती है जो अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होती। इनका जन्मकाल सन् १६२४ और १६२५ के मध्य माना जा सकता है।

गुरु—अन्तर्साक्ष्य में पहले ही संकेत किया गया है कि रूपभवानी ने लल्लद्यद और अपने पिता माधवज्यू दर को अपना गुरु स्वीकार किया है और अपने वाख्यों में इस बात की ओर संकेत किया है। रूपभवानी ने घर में ही संस्कृत और फारसी की शिक्षा प्राप्त की थी।

१—"The dates of her birth and death are 1624 and 1720 A. D." Kashmir, G. M. D. Sufi, vol. ii, Edition 1948. Page 404.

२—"She was born in 1625 A. D." A History of Kashmir, P. N. Kaul Bamzai, Ist Edition 1962, Page 499.

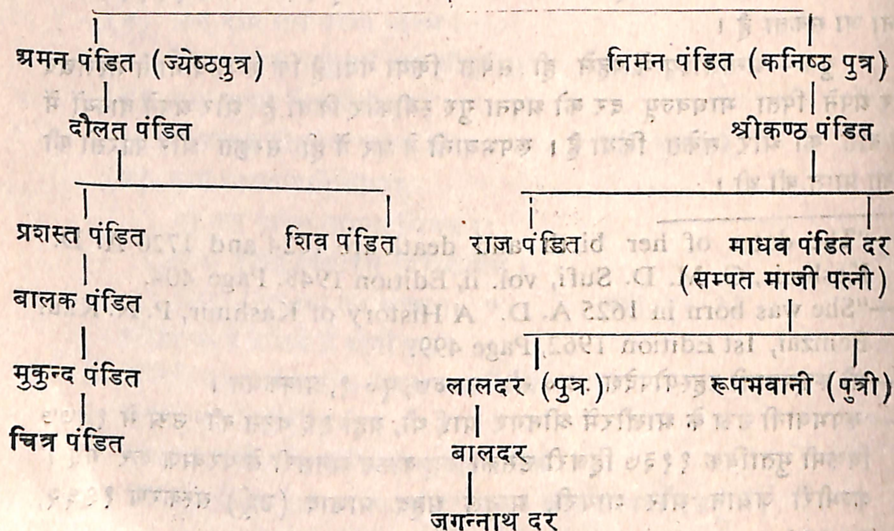
३—श्री रूपभवानी रहस्योपदेश : प्र० सं० २००७, पृ० १, प्राक्कथन।

४—'रूपभवानी उम्र के आखीरमें श्रीनगर आई थी, यहां ९६ बरस की उम्र में १७७७ विक्रमी मुताबिक ११३७ हिजरी उसकी रूह कफस अनसरी से परवाज़ कर गई।' कश्मीरी जबान और शायरी, अब्दुल अहद आज़ाद (उर्दू) संस्करण १९६२, पृ० २२३।

रूपभवानी की समाधि का चित्र



रूपभवानी की वंशावली



रूपभवानी का जन्म दर वंश में हुआ था, इसके पिता का नाम पं० माधव ज्यू दर और माता का नाम सम्पत माजी था। कश्मीरी पंडित, चाहे वे कश्मीर में रहते हों या अन्यत्र, अपने आप को विभिन्न गोत्रों के वंशज मानते हैं। गोत्रकारण विभिन्न ऋषि ब्राह्मण वंशों के संस्थापक समझे जाते हैं। कश्यप कृत गोत्र अध्याय से यह विदित होता है कि दर वंश में आने वाले सब परिवारों का गोत्र भरद्वाज है और वे बानमासी हैं।[1] यहाँ यह कहना आवश्यक है कि बानमासी वे कश्मीरी हैं जिनको 'बाहर से आये हुए' माना जाता है। ये लोग सिकन्दर बुतशकन के समय कश्मीर छोड़कर भारत के विभिन्न प्रदेशों, जैसे इलिचपुरा दक्षिण आदि में चले गये थे और कश्मीर में शान्ति स्थापित होने के समय पुनः कश्मीर लौट आये हैं। इसके विपरीत मलमासी वे हैं जिन्होंने देश त्याग न कर संघर्ष का सामना किया है।[2]

'तारीख अकवामि कश्मीरी' पृष्ठ उन्नानवें में इसके लेखक 'फौक' द्वारा निर्धारित यह निष्कर्ष युक्तियुक्त नहीं है कि दरवंश का गोत्र 'दर भरद्वाज' है और इस गोत्र के प्रथम अक्षर 'दर' शब्द के कारण ही ये दर कहलाये हैं। इसके स्पष्टीकरण के लिए यह कहा जा सकता है कि 'दर कापिष्ठल उपमन्यु' गोत्र से ये येछ वंश, 'दर-भरद्वाज' से जंगमवंश, 'दरवासव' शांडल्य गोत्र से सफाया और दरवार्षिगण्य से बख्शी, शाली आदि वंश सम्बन्धित हैं और इनमें से कोई परिवार दर नहीं कहलाता है यद्यपि इनके गोत्र का प्रथम अक्षर 'दर' शब्द ही है। दर वंश का गोत्र कश्यप कृत गोत्र अध्याय के अनुसार 'भरद्वाज' है, 'दरभरद्वाज' नहीं।

यद्यपि कश्मीरी पंडितों में वंशावली केवल दर वंश की ही अतिप्राचीन उपलब्ध है तो भी इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार इतना कहा जा सकता है कि दरवंश का एक पूर्वज सिकन्दर बुतशकन के राज्यकाल (१३८९-१४१३ ई०) तक में यहाँ के शासन की कट्टरता से तंग आकर अन्य कश्मीरी पंडितों के साथ देशत्याग करके भारत के दक्षिण प्रदेश में गया था। इसी पूर्वज की एक संतान-मीरुपंडित दक्षिण में गोलकण्डा के दुर्ग का एक सैनिक उच्चाधिकारी था। मुगल सम्राट जहाँगीर के दक्षिण पर आक्रमण करने के समय मीरुपण्डित भी उन्हीं की सेना के साथ दिल्ली आ गया था। मीरु पंडित को अपनी योग्यता और एक हितकारी मित्र हकीम अब्दुल फतेह शीराजी की सहायता से रिसाला के एक भाग का कमान अफसर बना दिया गया। सन् १६२६ में जब राजनैतिक अव्यवस्था के कारण जेहलम के समीप जहाँगीर अपने सैनिक उच्चा-धिकारी महाबत खाँ से बन्दी बना लिया गया तो जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ ने सम्राट को जिस सेनादल की सहायता से महाबत खाँ के बन्धन से मुक्त कराया—उस सेना दल के एक भाग का अफसर मीरुपंडित ही था। इस प्रशंसनीय कार्य से जहाँगीर ने प्रसन्न होकर मीरु पंडित को राज्य-सम्मान प्रदान किया। जब सम्राट सन् १६२६ में कश्मीर

---

1. Customary Law of Kashmir, N. K. Ganjoo, 1959 Page, 25.
२. वही, पृ० १९-२०।

आया उस समय मीरु पंडित भी नूरजहाँ के अंग-रक्षक के रूप में इनके साथ था। मी पंडित ने अपने देश को देखकर यहीं निवास करने की प्रबल इच्छा प्रकट की। जहाँगीर ने भी मीरुपंडित के सेवा-भाव, देश-प्रेम और वृद्धावस्था की ओर ध्यान देकर न-केवल यहाँ निवास करने की आज्ञा दी अपितु दो गाँव 'रोमू और इमज़ालवारी' भी जागीर के रूप में दिये। इसके पश्चात् मीरुपंडित ने अपनी संतान को दक्षिण से कश्मीर में बसने के लिए बुला लिया।

मीरु पंडित दर के दो पुत्र अमन पंडित और निमन पंडित नाम के थे। अमन पंडित ज्येष्ठ पुत्र कामराज प्रदेश का गवर्नर नियुक्त हुआ था। इसके वंशज आगे भी सरकारी उच्च पदों पर नियुक्त हुए और देश के राजनीतिक कार्यों में विशेष भाग लेते थे। मीरु पंडित के कनिष्ठ पुत्र निमन पंडित के वंशजों ने सम्भवतः राजनीतिक विषयों में भाग नहीं लिया और न ही वे सरकारी उच्चाधिकारी ही रहे हैं। यह बात इससे विदित है कि कश्मीर के इतिहास में निमन पंडित के वंशजों का उल्लेख नहीं मिलता। निमन पंडित का पुत्र श्रीकण्ठ पंडित दर था जिसके दो पुत्र राजपंडित दर और माधव पंडित दर थे। माधव पंडित दर से ही एक पुत्र श्री लालदर और पुत्री श्री रूपभवानी का जन्म हुआ है।

पारिवारिक जीवन—तत्कालीन प्रथानुसार लल्लद्यद की भाँति रूपभवानी का विवाह भी बाल्यकाल में ही सप्रू वंश में श्रीश्यामसुन्दर सप्रू के साथ हुआ था। इन्हें भी लल्लद्यद की भाँति अपनी सास का कुव्यवहार सहन करना पड़ा था। इनके पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित अनेक कथायें अभी भी दरवंश में प्रचलित हैं। यह मान्यता है कि रूपभवानी को अपनी बहनों की अपेक्षा भाभियों से अधिक सहानुभूति प्राप्त हुई थी अतः दरवंश में यह मान्यता है कि दरवंश की लड़कियों का पारिवारिक जीवन उतना सुखी नहीं रहेगा जितना भाभियों का, क्योंकि यह रूपभवानी का वरदान था जो आज भी एक कहावत 'दर कौरि बेजाह त् दर नोशि बजाह' के रूप में वहाँ प्रचलित है। दिवस व्यतीत हो गए। इनकी यातना को एक धक्का लगा और परिणाम हुआ गृह-त्याग, ये संत बनकर भ्रमण करती रहीं। इन्होंने जीवन का अधिकांश भाग चश्मा साहिबी, वास-कुण्ड (वासकुर) लार और मन्वगाम में व्यतीत किया, जहाँ इन्हें शान्ति प्राप्त हुई। इनकी अलकें तुलमुला ग्राम के कुछ ही दूर 'वासकुर' नामक स्थान पर सुरक्षित हैं और माघ मास में कृष्ण सप्तमी को दरवंशी इनका श्राद्ध मनाते हैं तथा वासकुर में भी भाद्रपद का श्राद्ध धूमधाम से मनाया जाता है।

रूपभवानी की रचनाएँ—इनकी रचनाओं में वाख्य और पं० बालदर के नाम फारसी का पत्र उपलब्ध है। वाख्य कश्मीरी भाषा में है। यह वाख्य परम्परानुसार मौखिक रूप से परम्परागत ही चलते थे, इनका पुस्तकाकार नहीं था। तत्पश्चात् शारदा और फारसी भाषा में इनको लिपिबद्ध किया गया। पाण्डुलिपियों की संख्या अधिक होने के कारण पाठभेद भी अधिक है। डा० शिवनाथ शर्मा ने श्री अलक्षईश्वरी साहिबा ट्रस्ट की सहायता से कई पाण्डुलिपियाँ देखीं और संवत् २००७ में 'श्री रूपभवानी रहस्यो-

पदेश :' नामक पुस्तक के रूप में इसका पाठ दिया है। यह पाठ डा० शर्मा ने चार पाण्डुलिपियों के आधार पर दिया है। वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित इसी कृति से मैंने रूपभवानी की विचारधारा को समझने के लिए आधार बनाया है। इसमें कुल १४६ वाख हैं, कई पदों की चार और कई पदों की छह पंक्तियाँ हैं। इसकी पद्यरचना में वह भावमयता नहीं जो ललवाख्यों की विशेषता है।[१] संस्कृत भाषा की विदुषी होने के कारण रूपभवानी की भाषा में संस्कृत शब्दों की भरमार है। इनके वाखों में रहस्यात्मकता है तथा कश्मीर शैवमत और वेदान्त का स्पष्ट प्रभाव लक्षित है। अनेक पद आध्यात्मिक अनुभूति और योग की शिक्षाओं से पूर्ण हैं। इनके अनुसार 'स्व' भाव का नाश ही वास्तविकता है।

इनके बालदर के पत्र से यह प्रतीत होता है कि ये फारसी की भी विदुषी थीं, वह पत्र फारसी भाषा के पद्य में है।

रूपभवानी का युग—रूपभवानी का आविर्भाव-काल वह है जब भारत पर औरंगजेब का शासन था, मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य मतावलम्बियों के लिए किसी प्रकार की सुविधा नहीं थी, यदि किसी धर्म का पालन होता था तो वह था इस्लाम धर्म। इस्लाम राज्य का आदर्श—था। प्रत्येक मतभेद का अन्त करके समस्त जनता को इस्लाम धर्म ग्रहण करवाना। भाँति-भाँति के कष्ट हिन्दुओं को दिये जाते थे। नवीन मन्दिर बनवाने की आज्ञा नहीं थी। हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया गया था।[२] जिससे शासन की आय में भी वृद्धि होती थी और कर देने में असमर्थ हिन्दू इस्लाम धर्म को ग्रहण करने में विवश होते थे। ९ अप्रैल सन् १६६९ ईसवी के आज्ञापत्र-द्वारा समस्त साम्राज्य के मन्दिरों को नष्ट करने का फरमान भी निकला था।[3] औरंगजेब इस्लाम धर्म के विस्तार के लिए प्रत्येक प्रयत्न कर रहा था, उसके शासन में धार्मिक सहिष्णुता एक महान् पाप समझा जाता था। इस्लाम धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों का इस शासन में रहने की आज्ञा नहीं थी। दिल्ली में संतों के अग्रणी सरमद—जिसने दाराशिकोह को शिष्य बनाकर उसे उपनिषद् और भगवद्गीता का अध्ययन कराया था—को औरंगजेब ने मौलवी-मुलाओं के विरोधी पक्षों से काफिर घोषित किया था। यद्यपि वह इस संत से घबराता भी था तथापि उसे गलियों में नग्न फिरने के कारण कत्ल का दण्ड दिया गया। हत्या से पूर्व औरंगजेब ने सरमद से नग्न फिरने का कारण पूछा तो संत ने उत्तर दिया कि जिस प्रभु ने तुझे (राजा को) सम्राट का मुकुट दिया उसी प्रभु ने मुझे (सरमद) को प्रेम की उन्मत्तता दी, उसी ने तुझे अवगुण छिपाने के

---

१. कश्मीरी भाषा और साहित्य, प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प, प्रथम सं० १९५६, पृ० ६
2. 'History of Aurangzeb, J. N. Sarkar, Edition 1928, Page 251.
3. The Religions Policy of the Mughal Emperors,
Shri Ram Sharma, Page 131, Edition 1962.

लिए परिधान प्रदान किये हैं अतः मुझ निरपराध को नग्नावस्था में ही रहने दो।[1] जब इस्लाम के धार्मिक राज्य के अध्यक्ष ने संत की स्वतन्त्र विचारधारा की कड़ी आलोचना की तो संत ने उत्तर में यह कहा—'सरमद प्रेमवाटिका में भ्रमण करता है यद्यपि संसार इसे घृणित ही समझे।' यहूदी मत से वह इस्लाम की ओर बढ़ा और इस्लाम से श्री राम और लक्ष्मण की पुष्पवाटिका में स्वतंत्र रूप से विचरने लगा।[2] यह अवस्था गुरु की थी, उसके शिष्य की अवस्था भी ऐसी ही रही। शाहजहाँ का जेष्ठ पुत्र दाराशिकोह जो धर्म के सम्बन्ध में स्वतन्त्र विचार रखता था और जिसको संसार के सभी धर्मों की वास्तविक सत्ता में विश्वास था, अपने कनिष्ठ भाई औरंगजेब-द्वारा इस्लाम का विरोधी घोषित किया गया। दाराशिकोह दोनों हिन्दू और मुसलमान संतों के साथ वाद-विवाद करते थे, उन्होंने फारसी में उपनिषदों का अनुवाद करके सीरि-उल-असराल फारसी ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म में प्रयुक्त शब्दावली का फारसी रूपान्तर किया तथा उनके साथ-साथ सूफीमत के समानार्थक शब्द भी दिये और मजमअ-उल-बहरीन नामक फारसी ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने मुसलमान संतों की दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा उनकी जीवनी का बड़े विस्तार से सफनात-उल-मौलिया नामक फारसी ग्रन्थ में वर्णन किया है। दाराशिकोह का परम अभिप्राय था—धार्मिक सामंजस्य, जिससे मतभेद की समस्या न रहे। इस प्रकार औरंगजेब की शासन-प्रणाली के लिए दाराशिकोह की विचारधारा एक व्यवधान थी, परिणाम यह हुआ कि दाराशिकोह को इस्लाम धर्म का विरोधी घोषित किया गया। इस अपराध में दारा पर जो इल्जाम लगाये गये वे थे—योगियों और संतों का आदर करना, वेदों का पढ़ना, अपनी अंगूठी पर हिन्दी में 'प्रभु' अक्षर अंकित करना, इत्यादि। इन्हीं कारणों से दाराशिकोह को बड़ी निर्दयता के साथ इस संसार से

---

१. अनकस कि तुरा तजे जहाँरानि दाद।
मराहम असबाब परशानि दाद।
पोशन्द लिबास हर के रा एव दीद।
बैया बरा लिबासे उरयानि दाद।
Sufies, Mystics and Yogis of India, Bankey Behari, Edition 1962, Page 107.

२. सरमद वा कूये इश्क बदना शुदी।
अज़ दीन यहूद सुये इस्लाम शुदी।
मालूम न शुद अज़ खुदा व अहमद।
बरगस्त ब सो ये लछमण वा राम शुदी।
—वही, पृ० १०७

समाप्त किया गया।[१] संतों की दिल्ली में यह स्थिति थी। इस प्रकार संत सरमद ने संत मंसूर की कथा को पुनर्जीवित किया। इसी समय रूपभवानी अपने सरल ढंग से कश्मीर में एक ऐसे धर्म का प्रचार करती थी जिसमें ब्रह्म से एकाकार के लिए सत्य-मार्ग पर चलने का सन्देश था जो मौलवी, मुल्ला और पण्डितों के बाह्याडम्बर से भिन्न था।

रूपभवानी की विचारधारा :

लल्लद्यद के पश्चात् नारी संत-परम्परा का पालन करने वालों में प्रथम स्थान रूपभवानी का है। ये शिक्षित कवयित्री थीं, इन्हें संस्कारवश ही अरबी-फारसी और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त था। इन्होंने जो पद्य-साहित्य की रचना की है उस पर आज तक दार्शनिक दृष्टि से विचार नहीं हुआ है। कश्मीर में दर वंश में रूपभवानी के वाख्यों का पाठ होता है मानो ये साहित्यिक कृति न होकर धार्मिक कृति हों। रूपभवानी के वचनों की पृष्ठभूमि शंकर का अद्वैत सिद्धान्त और योगसाधना है।

सिद्धान्तपक्ष : ब्रह्म : रूपभवानी ब्रह्म की सत्ता मानती हैं। उनका ब्रह्म निर्गुण है। उसका न रंग है, न वर्ण है और न गोत्र।[२] ब्रह्म आनन्दस्वरूप है।[३] उसके न पांव है, न शरीर है और न अन्य अंग, वह त्रिजगत में निवास करने वाला भी नहीं है। सहस्रों नामों से ब्रह्म का स्मरण करना निराधार है।[४] वह शुद्ध स्वरूप है जिसका बाह्य आकार नहीं है। वह ईश्वर स्वयं ही माता-पिता और भ्राता है, प्रत्येक स्थान में वह व्याप्त है परन्तु निराकार रूप है।[५] ब्रह्म वास्तव में निर्गण है परन्तु पंचभूतों का मिश्रण करके माया के

---

1. A History of Muslim Rule in India, Ishwari Prasad, Edition 1933, Pege 550.

२. नाव तरा वाव सवार
ना रंग ना वर्न न गुथर॥
श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, वि० सं० २००७, पृ० १६।

३. आनन्द रूपदं परं ब्रह्म सोहम्।—वही, पृ० ४६

४. पादू न बीजम चतुर्बुजाकारम्।
ना त्रि ज़ग चराचर अनन्त रूपम।
सहस्रनामन निराधारम।
शुद्ध स्वरूप परं ब्रह्म सोहम्।
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, वि० स० २००७, पृ० ४४-४५।

५. माता न पिता भ्राता पानय।
प्रथ थानय न कथ, नये।
निराकार रूप लॉगिथ पानय
सथ पानय ते कथ सन नये।—वही, पृ० ३५-३६

साथ लिप्त होकर वह सगुण बनता है।[1] ब्रह्म सांसारिक सम्बन्धों से ऊपर है, उसके सामने माता, पिता, बन्धु-बान्धव, गुरु-चेला की भावना व्यर्थ है। वह केवल एक है, इन सबसे परे अकेला परब्रह्म है।[2] वह परम तत्त्व बाह्य जगत् से अति दूर है। पृथ्वी और पाताल में भी नहीं है। वह शुद्ध, शान्त और निर्मल सर्व देवों का देव है, उसकी अन्तरात्मा शुद्ध है।[3] ब्रह्म अचिंत्य है, परम आकार वाला है और स्थिर है।[4] पृथ्वी, बीज, जल, वायु, आकाश आदि की ब्रह्म से भिन्न सत्ता नहीं है, इनमें शक्ति-स्वरूप ब्रह्म की ही व्यापकता है।[5] वह न सूक्ष्म है न विस्तृत। उसका न आदि है और न अन्त।[6] वह बुद्धि भी नहीं है और उस पर छाने वाला मोह भी नहीं है, न वह जाग्रत अवस्था में है, न स्वप्नावस्था में, वह सूक्ष्म है।[7] वह स्वयंभू है, पर ब्रह्म है जिसकी थाह पाना कठिन है जो ब्रह्म का ध्यान लगाकर अपनी आत्मा को पहचानता है, किसी की निन्दा न करे, ईश्वरका अन्वेषण करे, वही ब्रह्म के साथ साक्षात्कार कर सकता है।[8] ब्रह्म कुम्हार के रूप में स्वयं

---

१. मूर्थाह करिथ त अमूरथ पचीय।
खाख छय तय क्याह पचै।
पांछ महाभूत करिन फचै।
ह्यच माया तय करि न बुत'।—वही, पृ० ३७

२. माता न पिता भ्राता न बन्दु।
वार्ता स वेदम् एको केवलोहम।
ग्वोरु न चेला मन्त्रो न लीला।
तथ युस अकेला परं ब्रह्म सोहम।—वही, पृष्ठ ४४

३. न पृथ्वी न प्यठयी न पाताली।
न तली न पारी नापारी व्यापारी जयथ।
अन्तरा शुद्धम् सुशान्तम
निर्मलम् सर्व तथा दीवो दीव। —वही, पृ० ३४

४. अचिंत्य रूप चरमाकारम्
थ्यर केवलोअहम परं ब्रह्म सोहम्। —वही पृ० ४४

५. शक्ति स्वरूपम् परं ब्रह्म सोहम्। —वही, पृष्ठ ४३

६. सूक्ष्मो न विस्तार न एरं व्यापारम्
न अन्तदारम् परं ब्रह्म सोहम्।—वही, पृष्ठ ४३

७. स्वप्न न जाग्रथ तथा शुद्ध बोदम
सूक्ष्मो स्वयम्बृ परं ब्रह्म सोहम—वही, पृष्ठ ५४

८. युस मनि ह्यये ध्यान त पानस तोले।
कुहं न गेलि त कंसि न बोले।
जागि हरस त लाग्यस बेले।
पानय पानस सूत्य मेले।—वही, पृष्ठ १७

जीव-रूपी पात्रों का निर्माण करता है और उन्हें नष्ट करता है। अतः कौन मरता है और किसको दुःख होता है, वह स्वयं ही पात्रों का निर्माण करता है और नष्ट करता है। अतः कौन नष्ट होता है ?[१] प्रत्येक स्थान पर ब्रह्म की व्यापकता है, ध्यान से उसके रूप को पहचाना जाता है। वह स्वयं दीपक, प्रकाश, तेज और भास्कर है। आत्मज्ञान से जीव को ब्रह्म का भास अपनी अन्तरात्मा में होता है।[२] जीव ब्रह्म को दिशि-दिशान्तरों में खोजता है परन्तु अन्त में शून्य में उसको निवास करते हुए पाता है।[३] ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर कृष्ण, राम और शिव जिस ब्रह्म के प्रतीक हैं उसका न कोई रूप है न स्पर्श है न सुगन्धि है, उसमें द्वैत भावना नहीं है। वह अकेला है।[४] वह कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं है। जीव उसे खोजने का प्रयत्न करता है परन्तु सफलता नहीं मिलती। चैतन्य पुरुष ही उसका अन्वेषण कर सकते हैं, जो एक क्षण में आधार का नाश करने वाला है।[५]

जीव—रूपभवानी ब्रह्म और जीव को अभिन्न मानती है। ब्रह्म निर्गुण है, वह पंच महाभूतों और माया का निर्माण करता है। ईश्वर ने प्रण लेकर जीव को संसार में भेज दिया, यहाँ वह मनुष्य रूप में आया। यहां आकर ब्रह्म का स्मरण करता है और अन्य जीवों से प्रेम करता है, वही तो ब्रह्म के सेवक हैं, वे ही सच्चे अर्थ में मानव हैं। अन्य तो पशु हैं जो अपने वास्तविक रूप को भूल गये हैं।[६] ईश्वर ने ही जीव में लोभ,

---

१. बान पुटरि त पानय थुरे।
कुसू मारि त कस लगि द्रख।
पानय नहावे पानय पूरे
कुसू सोरि त कस यियि टोख।—वही, पृष्ठ २५

२. येति कुनि कुछ्यन तति पानय।
सर्वंद्यानय रटुमस रूफ।
दीप प्रकाश तीज ख पानय।
म्य जान्यीव सुजि म्याने छुह॥ —वही, पृष्ठ ३१-३२

३. दिशान त दीशन हैरान गयस।
निशान म्य अनुमस शुन्यालय।—वही, पृष्ठ ३३

४. रूपं न रस न स्पर्श गन्द न देहो।
दुयी दयस न छुस केवलोहम।—वही, पृष्ठ ४५

५. छु न कुने छु ना कुने।
वुछह और त योर न कुने।
दियि फश तेले मूल न कुने।
छिवय चीतन् त स्वरि तोन कुने।—वही, पृ० ३३-३४

६. इश्वरि वाद हथ योत कजाव
येति आव त ओस मनुष्य रूफ
युसुह देत्र स्वरि मनस त बाव प्रथ जुवस।

क्रोध, मद, मोह और अहंकार भर कर संसार में भेजा है। मानों अतिथि रूप में आया था और साथ केवल अपने कर्मों का फल लेकर गया है।[१] यहां वह जन्म लेता है, सुख-दु:ख झेलता है और अन्त में संघर्ष करके चला जाता है।[२] जीव कहां से आता है और कहां चला जाता है, यह ज्ञात नहीं है। ईश्वर ही सत्यतत्व है जिसने पंचभूतों को मिलाकर जीव का निर्माण किया है।[3] जो जीव समस्त भोग भोग कर निराहारी रहे, निन्द्रावस्था में भी जाग्रत रहे, सर्व कर्म करके भी निष्क्रिय रहे वही उच्चकोटि का जीव है।[४] जीव को ब्रह्म के सामने झुकना पड़ता है, वह ब्रह्म शून्य रूप में ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।[५] संसार में जीवों का भाग्य भिन्न-भिन्न है परन्तु उनका निर्माता ब्रह्म एक है।[६]

तिम ज़ह सीव कस मालि अथे आय।
तिमय छि मनुष्य न त केंह द्राय गुपन।
यिमन आदन सुह पान मशिथ गव।—वही, पृष्ठ ४१-४२।

१. छुननस लूब कूद काम मूह मद अहंकार।
चाव संसारस त अमल कर्यस।
पतोह असाल अमल होरने गाव।
पोछ आयाव त कोछ क्या निये —वहीं, पृष्ठ ४१।

२. यिवान पान' त' ज़्यवान पान।
खिन पान' त' निवान टख
नाना प्रकार निन्दान पान।
रिन्दान पान त' ह्यवान पथ।—वही, पृष्ठ २६।

३. रहे निशाना ईश्वर सुन्द नावा।
कति आयाव त कोत सन गव।
समरिथ त सादिथ तम्य कजाव।
दीव ह्यथ मुखी त सीव करहस।—वही, पृष्ठ ४१

४. सारी वूग आहारे निराहार।
न निन्दरे आसि न हुसिआर।
रहिथ सोरे कर्म न्यथ बेकार।—वही, पृष्ठ २७-२८।

५. ना नमुस न कदाचित नमुन।
निथ मनु येम्य सदा सर्वदा।
आकाश रूफ ज़गि अन्दर रमुन।
तथ्य-नमुस तथा सुह नमुन।—वही, पृष्ठ ३०

६. और ति जीवा योर ति जीवा।
जीवस जीवा रस ख्यवान।
युसु छ्युह नाना रंग रुवुन।
छुह प्रथ कुने वातवुन।
च्योन म्योन लोन व्योन तय
न त रान सोनुय अकुय तय।—वही, पृष्ठ ३४।

जीव नदी के एक अंश की भांति है। अंश रूप में आकर वह मिट्टी से उत्पन्न हुआ, इसी मिट्टी को भोग कर इसे स्वादिष्ट पदार्थ खिलाता है। इसी मिट्टी में ही काया विलीन हुई।[1] मिट्टी के शरीर में वायु और अग्नि पड़ कर भिन्न-भिन्न नाम और वर्ण बनते हैं परन्तु अन्त में यह पंचभौतिक शरीर चोर की भान्ति निकल भागता है।[2]

जगत—रूपभवानी के अनुसार जगत अस्थिर है, नश्वर है।[3] अतः जो अपनी वासना को समाप्त करता है वही सच्चा मनुष्य है। सृष्टि न स्थावर है और न जंगम। चार वर्ण भी नहीं है। यह सारा जगत चराचर परम आकार वाला भी नहीं है।[4]

जगत के अस्तित्व के विषय में रूपभवानी एक और स्थान पर कहती हैं कि मैंने सब तत्त्वों को जानकर ईश्वर को प्राप्त किया और समस्त अंगों को घाल दिया, फिर भी जगत बना रहा, जब कभी भयभीत नहीं हुई तो उसी से निर्मित शुद्ध शिव प्रकट हुआ, और उसके साथ मेरा एकाकार हुआ।[5] तब मुझे आभास हुआ कि मैंने कुछ खोया नहीं, मैं सम्पन्न हूँ।

---

१. दरियाव अन्दर अंशाह आव।
ज़ाव म्यच्य ते ज़ायस म्यच।
म्यच्यय बूग त न्यामच ख्याव।
म्यचिय म्यचि बन्योव म्यचह।
पतोह अपिथ म्यचिय गव। —वही, पृष्ठ ४०।

२. आयाव वर ह्यथ येति स्वर रहुसना।
समुरुन म्यचे पोन्य त वाव।
अग्न आव त वाह वाह रंग प्यव।
नचन त्रचान सपुनुस नाव।
आज्ञा आयि त चोल हा चूर जन।
वाव ओस व्वदन्यत क्यथ सन प्यव।—वही, पृष्ठ ४०-४१

३. मोउ युस ज़ाले नारय।
दोउ नौव इह संसारय।—वही, पृष्ठ २७।

४. थावर न जंगम नह चतुवर्णम।
जग न चराचर तथ परमाकरम।
सथ ना असतु अछिन्नदारम।
सूक्ष्मो समाछि पर ब्रह्म सोहम, —वही, पृष्ठ ४३-४४

५. तत्व प्रसंदिथ दय प्रोवुम।
अंग गालिथ ज़ग मा स्वये।
ना खोच नाल्वन् करि जे।
प्रजि न्यर्मल श्वच्छ शिवयं।
व्वह छयस स वु किहें रोवुम नये।—वही, पृष्ठ ४६।

माया—रूपभवानी के काव्य में माया का अत्यन्त ही धुंधला वर्णन उपलब्ध होता है। अतः हम निश्चित रूप से उनका माया-सम्बन्धी दृष्टिकोण नहीं बता सकते। एक स्थान पर निर्गुण ब्रह्म से सगुण ब्रह्म के निर्माण में माया का प्रसंग आया है कि ब्रह्म तो निर्गुण है परन्तु वह सगुण दिखाई पड़ता है क्योंकि पंचमहाभूतों का मिश्रण करके तथा माया को मिलाकर वह सगुण बनता है।[१] द्वितीय स्थान पर कवयित्री कहती हैं कि माया से मन को मुक्त रखना चाहिए।[२] तभी आत्मज्ञान हो सकता है। इतना स्पष्ट है कि रूपभवानी माया का अस्तित्व मानती हैं और उसे मोक्ष-प्राप्ति में बाधक मानती हैं।

साधना पक्ष—रूपभवानी साधना मार्ग में ज्ञान को महत्त्व देती हैं और वह ज्ञान गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। रूपभवानी के जो पिता हैं वे ही उनके गुरु हैं। वही समस्त कुल का उद्धार करने वाले हैं, वही ईश्वर भी हैं और गुरु भी।[३] रूपभवानी वर्णन करती हैं कि जब वह संसार-रूपी बगीचे में आई तो चारों ओर अग्नि और जल को देखा और मैं लल्लेश्वरी, माधव और शिव की शरण में निराकार रूप की सेवा करती हुई परमतत्त्व में लय हो गई।[४] अतः गुरु की पूजा का बड़ा महत्व है, यह अनन्त देव-पूजन के समान है।[५] गुरु के पथ-प्रदर्शन से ही पवन को वश में करके उसे सहस्रार

---

१. मूर्थाह करिथ त अमूरथ पचीय।
खाख छ्य तय क्याह पचे।
पांछ महाभूत करिन पाचे।
ह्यच माया तय करि ना बुत।—वही, पृ० ३७।

२. वाव रठ द्वाद्वशीतिख संगटे।
मायायि तृष्णायि मारे मन।
ब्रांथ त्राव नाथ छुय पनने गरे।
साय रठ सुय त ज्ञान दीह।—वही, पृ० ३६-३७।

३. युसुह ग्वोर पिता सुय छुय मोल।
सुह इह प्रबल दीप प्रकाश।
सुह इह सर्व क्वलस उदार करवुन।
सुह इह ईश्वर सुह छुह ग्वर।—वही, पृ० २१-२२

४. बाग चायस बागे आयस।
परमा सरस नारस त नरस।
शरने आयस लल्लीश्वरस।
श्री सत ग्वरस माधवा शिवस।
सीवा दीवस साकारस निराकारस।
अन्तरकिस सत सय व्रतस।—वही, पृ० १९।

५. सर्वत्र जगद्ग्वोस सेवा अनन्त पूजनी एक।—वही, पृष्ठ ६।

तक पहुँचाया जा सकता है।[1] जीव परमात्मा को भूल जाता है परन्तु गुरु के पथ-प्रदर्शन से साक्षात्कार होकर जीव का मन आनन्दमग्न होता है।[2]

इसके अतिरिक्त इनके वाख्यों अथवा पदों में हिन्दी की कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं जिनमें उन्होंने गुरु का उल्लेख करके कहा है कि गुरु-कृपा से जीव जीव न रह कर ब्रह्म-रूप हो जाता है।[3]

ज्ञानतत्त्व—रूपभवानी के अनुसार ज्ञान से जीव उस अवस्था को पहुँच जाता है जहाँ उसे अपने अस्तित्व का होना न-होना समान लगता है अर्थात् वह समभाव की स्थिति में आता है।[4] जितना-जितना ध्यान गम्भीर बनता जाता है उतना-उतना ही ज्ञान भी वृद्धि प्राप्त करता है।[5] ज्ञान-द्वारा परमतत्त्व का साक्षात्कार होता है।[6] यही मुक्ति का साधन है।[7] ज्ञान-प्राप्ति के लिए इन्द्रिय-निग्रह आवश्यक है, चंचल पाँच इन्द्रियों को मार कर ज्ञान का प्रकाश होता है।[8] कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके ही अन्य अंगों का विकास होता है। मन का वशीकरण आवश्यक है। जो मन में

---

१. ग्वोर म्वोखि द्याना द्यायिरे।
   चरणा हृदय कमल।
   तुल पवन मूल शून्या।
   ऊर्ध्वमुखी भगन मण्डल।—वही, पृ० १२।
२. आव वुफे वाव रूपी ग्वोर।
   ग्वोर ईश्वर आव अविनाशी।
   पान मशे त द्याना तोशे।
   स्वमन परमानन्द वोत तथ राशी।—वही, पृ० २२-२३।
३. अपने घर आया आप सांई।
   जो कुछ मैं था सो अब नाहीं।
   यह बोध आया गुरु की बड़ाई।
   जिन गुरु ने दिया सत का तत्व बताई।—वही, पृ० १८।
४. ज्ञान रूप त शून्या आसन।
   आसुन न आसुन सूतिय छुह।—वही, पृ० १८।
५. यवय द्यान बकचिश करे।
   तवय ज्ञान आदरे पान।—वही, पृ० १०।
६. बथरि ज्ञान त पान तलाडे।
   शून्यस शून्या सूत्य मिलावे—वहीं, पृ० १०
७. रंगिथ वर्य द्रायिस संग कुय।
   म्वक्त म्वरवच ज्ञान कुय।—वही, पृ० २६
८. सारिथ गटु त्राविथ ग्वाशस चायस।
   मारिथ सारीय इम व्यान्य पांछ यिन्द्रय।—वही, पृ० १३।

ध्यान करके अपने आपको तोले, उसकी कोई निन्दा नहीं करता, न वह किसी की बुराई करता है। वह ईश्वर को ढूंढ कर स्वयं उससे एकाकार होता है।[1] जिन वस्त्रों से शीतलता दूर हो वही वस्त्र पहनने चाहिएँ, जिससे क्षुधा तृप्त हो वही अन्न खाना चाहिए, सन्तोष से समस्त शारीरिक पीड़ा नष्ट होती है और जीवात्मा प्रकाशमान बनती है। तृप्ति में आनन्द का वास है।[2] रूपभवानी साधना में बाह्याडम्बरों को कोई महत्त्व नहीं देती। उनका कथन है कि जप, पूजा और पाठ व्यर्थ है, पाठ स्वयं भक्त के मन में होना चाहिए, वाणी और आत्मा एक हो, वही जप है, उसी से परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है।[3] रूपभवानी ने योगसाधना का समर्थन किया है। षट्चक्र की कल्पना, कुण्डलिनी-जागरण आदि वर्णन इनके काव्य में मिलते हैं। गुरु-कृपा से मूलाधार चक्र पर ध्यान लगाकर देद्दीप्यमान कुण्डलिनी जाग जाती है।[4] योग में भी राजयोग सर्वोच्च है। वही पिता और दाता है, वही सारी आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाला है।[5] जीव के अन्तर्नेत्र प्राणायाम से खुलते हैं और उसे अपने अतिरिक्त कुछ दृष्टिगोचर

---

१. युस मनि ह्यये द्यान त पानस तौले।
कुंह ने गेलि त कांसि न गेले।
ज़ागि ह्रस त लाग्यस बेले।
पानय पानस सूत्य मेले।—वही, पृ० १७।

२. यव तूउ चलिए तिमय वल अम्बर
यव बोछि चलिय आसख तृफत।
तिमय आहार बुल्यत युक्त यूग कर
रूग गलिय त आसख म्वखत्
तेलिय निष्कल तुष्टीय विशेषा।
खेल मीलिथ तय आनन्द च्युनु।—वही, पृ० १८

३. नव पाठ जानस तव पाठ पउ
सुह पाठ पानय मने वौत।
जपान आतम त दपान वानी।
पीव मदु रस बरिथ तो छिव।—वही, पृ० १४

४. शुद्ध मुक्त मूलाधारी कुण्डलिनि मण्डली गौरी।
स्यद अर्थ सूक्ष्म सुषुप्तीचक्र विरक्त शान्तादारी।—वही, पृ० २।

५. पवित्र नेत्र पश्यत मुखी अन्तर।
वाहो बहु अनाडी असंख्य काम कर्त।
यिहुय राज यूगी दाता पिता सुय।
सर्व क़ांख्य सु अर्थ पूरनी।
अन्तर्मुखी निर्वान रहस्य तती परमानती।—वही, पृ० ३-४।

नहीं होता। वहाँ 'स्व' और 'पर' एक हो जाते हैं।[१] प्राणायाम से सहस्रार की अमृत धारा का स्वाद मिलता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों को वश में करना आवश्यक है।[२] अनाहत रव से मन को केन्द्रित करके आनन्द की प्राप्ति होती है।[३] षट्चक्रों को वश में करने से सहस्रार तक पहुँच कर यह भास होता है कि आत्मा और परमात्मा एक हैं।[४] इस यौगिक प्रक्रिया से अन्त में यह भास होता है कि चहुँ ओर अपना ही अस्तित्व है, ध्यान में भी वही रूप है। मन में ज्ञान के प्रकाश से यह विश्वास हुआ कि परमतत्त्व मेरे ही अन्तर में विद्यमान है।[५] माया और तृष्णा से आत्मा को मुक्त रखना चाहिए। ईश्वर हमारे अन्तर में ही विद्यमान है।

इस प्रकार रूपभवानी के उपलब्ध काव्य का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन करने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि वह हिन्दू दर्शन से प्रभावित थी। शंकर के अद्वैत का समर्थन करके उसने योग-मार्ग को महत्त्व दिया है। श्री पी० एन० कौल बामजई रूपभवानी पर इस्लाम के सूफीमत का प्रभाव मानते हैं,[६] जो उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् भ्रमपूर्ण लगता है। रूपभवानी के वाख्यों में वह भावमयता नहीं जो लल्लद्यद के वाख्यों की विशेषता है।

---

१. आसे व्वये न आये पान।
नासे ग्रास करे पवन।
रस कासे ना किह फासे,
ना सीर कांह आं सीर व्वय।—वही, पृ० ८।

२. आकाश सुह मदुर व छूम दाड।
तवय तार रोटुमस पय।
दीपा शशि ख रूप औतारे।
बहु आकार न त निराकार।—वही, पृ० ३६

३. अनाहत शब्द मना गंडिथ।
मान मंडिथ रिशीयस।—वही, पृ० ३६

४. दिशान त दीशन हैरान गयिस।
निशान म्य औनुयस, शुन्यालय
छल लदु चर्कस त कल आयि मशान्।
यिमन शन मानि द्वशान बय।—वही, पृ० ३३

५. येति कुनि वुछयन तति पानय।
सर्वद्यानय राटुमस रूफ।
दीफ प्रकाश तीज ख पानय।
म्य जान्यौव सुह जि म्याने छुह।—वही, पृ० ३१-३२।

६. They reveal the influence of both Kashmir Shaivism and Islamic sufism."
A History of Kashmir, Ist Edition 1962, Page 499.

१८वीं और १९वीं शताब्दी के कश्मीरी संतकवि और उनकी दार्शनिक विचार-धारा

मिर्ज़काक

जीवन : मिर्ज़काक ने स्वयं अपने जीवन के विषय में कुछ नहीं लिखा है। श्री सर्वानन्द कौल प्रेमी ने एक पुस्तिका मिर्ज़काक पर प्रकाशित की है और मिर्ज़काक के जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इसमें मिर्ज़काक की केवल तीन-चार कविताओं का ही संग्रह किया गया है। मूल पाण्डुलिपियां देखने पर ज्ञात होता है कि श्री सर्वानन्द जी ने बीच-बीच में कहीं-कहीं दो-दो चार-चार पंक्तियां लेकर अपनी इस पुस्तिका का संग्रह किया है।

मिर्ज़काक के वंशज हांग्लगुण्ड ग्राम में निवास करते हैं जो अनन्तनाग से १३ मील दूर तथा कुकरनाग के निकट है। वहाँ जाने का मुझे स्वयं अवसर प्राप्त हुआ है और मिर्ज़काक के वंशजों से जो कुछ मुझे मौखिक रूप में उपलब्ध हुआ है उसका मैंने यहां उपयोग किया है, वहाँ तीन पाण्डुलिपियां मैंने देखीं।

मिर्ज़काक का जन्म संवत् १८०५ अर्थात् सन् १७४८ में हुआ है।[1] यही मत मिर्ज़काक के वंशजों में प्रचलित है और इस मत की पुष्टि वहां उनके कुल-गुरु से भी हुई है।

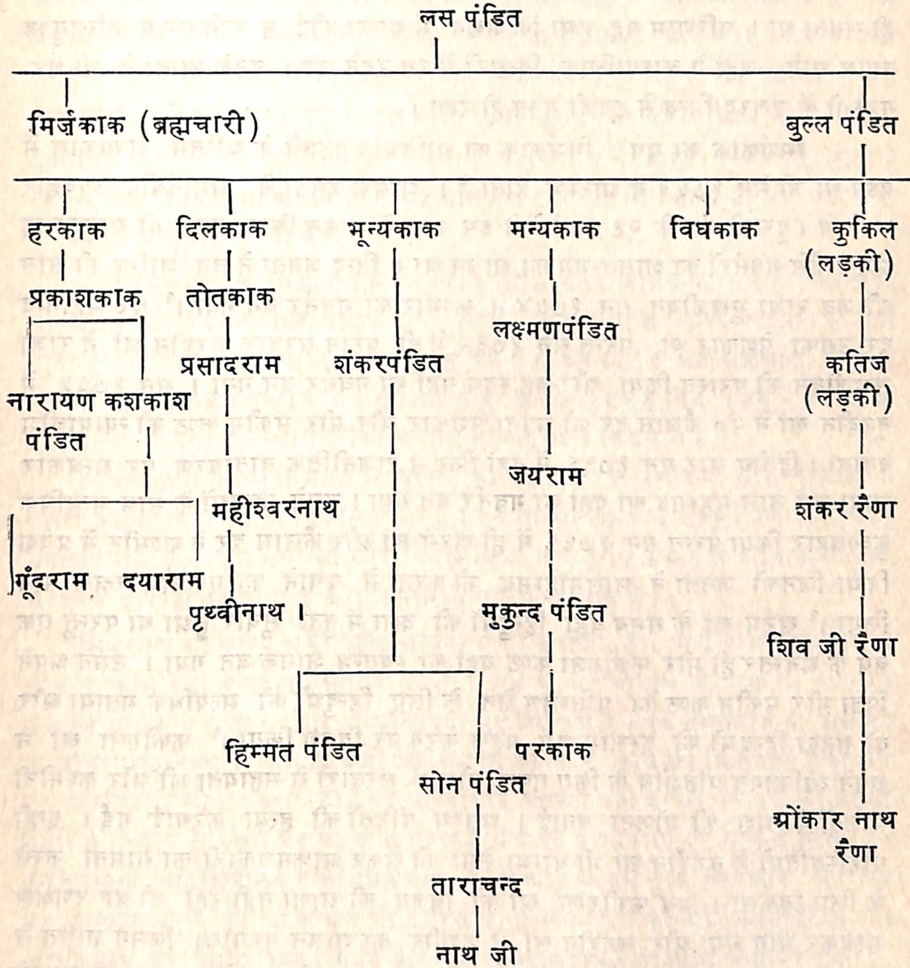
इनके जन्म-स्थान के विषय में मतभेद है। एक मत के अनुसार ये हांग्लगुण्ड में उत्पन्न हुए हैं और द्वितीय मत के अनुसार ये अछन जिला पुलवामा में उत्पन्न हुए थे। इन दोनों में से प्रथम मत मुझे संगत लगता है क्योंकि हांग्लगुण्ड में ही मिर्ज़काक पले हैं, बड़े हुए हैं और अपनी शिष्य-मण्डली के साथ रहे हैं आज भी वहीं उनका दिवस जेष्ठ कृष्णपक्ष द्वितीया को मनाया जाता है। वहीं इनकी आध्यात्मिक प्रतिभा निखरी है। हांग्लगुण्ड से ही मुझे श्री शिव जी रैणा से मिर्ज़काक की शिष्य-परम्परा और वंश-वृक्ष प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है :

---

१. वाख मिर्ज़काक, सर्वानन्द कौल प्रेमी कश्मीरी (उर्दू में) प्र० सं० १९६३, पृ० ५।

शिष्य-परम्परा : मिर्ज़काक→निदानकाक→ज़यकाक→परकाक→दीनानाथ
इस शिष्य-परम्परा का समय ज्ञात नहीं हो सका।

मिर्ज़काक का जन्म लस पंडित के घर में हुआ था। इनका वंशवृक्ष इस प्रकार है :



मिर्ज़काक के माता-पिता की मृत्यु बाल्यकाल में ही हुई थी। अछन से इनका सम्बन्ध इस कारण है क्योंकि अछन में रहने वाली मासी (मौसी) ने मिर्ज़काक को गोद लिया था, जहां उन्होंने जीवन का आरम्भिक समय व्यतीत किया है। पंडित रघुनाथ दर का मत इससे भिन्न है। उनका विचार है कि मिर्ज़काक का बड़ा भाई मौन पंडित अपनी मासी के यहां मुतबन्ना हुआ था, इस बिना पर आप भी इसी के साथ रहने[1] लगे, जो संगत

---

१. संतमाला, पं० रघुनाथ दर (उर्दू में) प्र० सं० १९६३, पृ० ७९।

नहीं बैठता क्योंकि अछन में इनकी मौसी की मृत्यु पर ये हांग्लगुण्ड अपने जेष्ठ भ्राता के पास आते हैं।

मिर्ज़काक पढ़े-लिखे नहीं थे, अपितु कर्मक्षेत्र में रत रहते थे। प्रातः से सायं तक कृषि करते थे, कड़ी धूप में और कठिन शीत में। इनका मन आध्यात्मिक तत्त्वों की ओर ही लगता था। परिणाम यह हुआ कि अछन में अपना कोई न रहने पर ये हांग्लगुण्ड वापस आये जहां ये आध्यात्मिक विचारों में रत रहने लगे। इनके भ्राता ने भी घर-गृहस्थी के उत्तरदायित्व से इनको मुक्त ही रखा।

मिर्ज़काक का युग : मिर्ज़काक का आविर्भाव पठानों के अन्तिम राज्यकाल में हुआ था जो सन् १७५३ से आरम्भ होता है। शासक जनता से अमानवीय व्यवहार करते थे। दुरानी वंश के २६ गवर्नरों ने इस काल में शासन किया, इनमें भी अब्दुलशाह अशक जैसे गवर्नरों का शासन भय का शासन था। हिन्दू जनता ने तब शान्ति की सांस ली जब राजा सुखजीवन सन् १७५४ में कश्मीर का गवर्नर बन गया।[1] पं० महानन्द दर उसका पेशकार था, परन्तु सन् १७६२ में ही पठान सरदार नूरद्दीन खां ने राजा सुखजीवन को परास्त किया और वह स्वयं यहाँ का गवर्नर बन गया। सन् १७६५ में नूरद्दीन खां ने पं० कैलास दर को अपना पेशकार और मीर मुकीम कण्ठ को न्यायाधीश बनाया। द्वितीय बार सन् १७६६ में यहां फिर से राजनीतिक वातावरण पर अन्धकार छाया जब लाल मुहम्मद खां यहां का गवर्नर बन गया। उसने हिन्दुओं के साथ अत्यधिक कुव्यवहार किया परन्तु सन् १७६६ में ही खुरम खां और कैलास दर ने कश्मीर में प्रवेश किया जिनको जनता ने लालमोहम्मद की क्रूरता से बचाने का एकमात्र रक्षक मान लिया।[2] खुरम खां के समय यहां हिन्दुओं की दशा में कुछ सुधार हुआ था परन्तु एक वर्ष के अनन्तर ही मीर फकीरुला कण्ठ यहां का स्वतन्त्र शासक बन गया। उसने अपने पिता मीर मुकीम कण्ठ का प्रतिशोध लेने के लिए हिन्दुओं को अत्यधिक सताया और दो सहस्र हिन्दुओं को इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर विवश किया।[3] फकीरुला खां ने अपने व्यक्तिगत प्रतिशोध के लिए तुच्छ 'बोम्बा' सरदारों से सहायता ली और कश्मीरी पंडितों के नाश की योजना बनाई। असंख्य पंडितों की हत्या करवाई गई। इन्हीं परिस्थितियों में नूरुद्दीन खां भी बोम्बा सेना को लेकर आक्रमणकारी का सामना करने के लिए निकला। जब फकीरुला खां को विजय की आशा नहीं रही तो वह रणक्षेत्र छोड़कर भाग गया और नुरुद्दीन खां ने कश्मीर का शासन सम्भाला जिसने शान्ति से काम लेना आरम्भ किया परन्तु स्वतन्त्र रहने की कामना से उसने अफगान शासन को वार्षिक कर देना अस्वीकार किया, परिणामस्वरूप मोहम्मद खां को कश्मीर का सूबेदार नियुक्त किया गया। परन्तु नुरुद्दीन खां ने उसे यह कार्य सौंपने की अस्वीकृति दी। अतः संघर्ष पुनः आरम्भ हुआ।

---

१. A History of Kashmiri Pandits, Jia Lal Kilam, 1955, Page 145.

२. Ibid, Page 164.

३. A History of Kashmiri Pandits, Jia Lal Kilam, 1955, Page 167.

चामत्कारिक घटनाएं : इसी पठान शासन में मिर्ज़काक का आविर्भाव हुआ था। पठान कृषि पर कड़ा नियन्त्रण रखते थे, बेगार का प्रचलन अत्यधिक था। एक बार मिर्ज़काक को भी पठानों ने बेगार के लिए बुलाया और लगभग डेढ़ मन चावल गाँव से श्रीनगर तक लाने की आज्ञा दी। इसी से सम्बन्धित एक चामत्कारिक घटना भी प्रचलित है कि देवी के रूप में एक कन्या मिर्ज़काक के निकट आई और उसने चावलों की रसीद दी। तत्पश्चात् वे चावल और वह कन्या अदृश्य हो गई। जब पठानों ने यह दृश्य देखा तो वे चकित हो गये। उस समय से वह मिर्ज़काक की आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित हुए। ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाएं प्रत्येक संत के साथ सम्बन्धित होती हैं जिनसे तथ्य निकालना कठिन है। यह बात स्पष्ट है कि मिर्ज़काक को भी पठानों के राज्यकाल में बेगार करनी पड़ी।

मिर्ज़काक एक सिद्ध संत थे जिनकी प्रसिद्धि इनके जीवन-काल में ही फैल चुकी थी, अनेक शिष्य इनके पास आकर रहने लगे थे। इनकी प्राप्त शिष्य-परम्परा से ज्ञात होता है कि ये कई महानुभावों के परमगुरु रहे हैं। श्रीनगर के संत लछकाक के परम गुरु भी यही रहे हैं। इन्होंने ८६ वर्ष की आयु अर्थात १९९१ वि० (सन् १८३४) में इस संसार से प्रयाण किया। इनकी समाधि हांग्लगुण्ड में विद्यमान है।

मिर्ज़काक ने कश्मीरी भाषा में 'वाखों' की रचना करके लल्लद्यद और नुंदर्योश के वाखों की परम्परा का ही विकास किया है। इन वाख्यों का कोई सम्पूर्ण प्रकाशित संग्रह उपलब्ध नहीं है। इस बात की ओर निर्देश किया गया है कि सर्वानन्द कौल के संकलन में केवल चार ही कविताएं हैं और उनमें भी क्रम का अभाव है।

मिर्ज़काक का काव्य अभी पाण्डुलिपियों में ही सुरक्षित है। मुझे हांग्लगुण्ड ग्राम में तीन पाण्डुलिपियां देखने का अवसर मिला। एक पं० दीनानाथ के पास थी और दो पं० जियालाल के पास। तीनों पाण्डुलिपियां उर्दू लिपि में हैं। पं० दीनानाथ के पास की पाण्डुलिपि के विषय में बताया गया कि वह मिर्ज़काक के हाथ की लिखी हुई है अर्थात् १८वीं शताब्दी की है। इस प्रकार यह पाण्डुलिपि लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व की प्रतीत होती है। ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होता है कि यह पाण्डुलिपि दो हाथ से लिखी हुई है जिसमें छः सौ छियानवे पृष्ठ मिर्ज़काक के हैं और चव्वन पृष्ठ मिर्ज़काक के शिष्य पं० परकाक के हैं, क्योंकि कागज़ भी दो रंग का है कश्मीरी सफेद और कश्मीरी पीला। काली मसि का प्रयोग किया गया है। इस पाण्डुलिपि की पंक्तियों में साम्य नहीं है, कहीं-कहीं दस या बारह और कहीं तेरह पंक्तियां एक पृष्ठ पर हैं। एक पद दो पंक्तियों वाला है और पद के चार भाग हैं। लिखाई कहीं मोटी है और कहीं पतली। इस पाण्डुलिपि की लम्बाई साढ़े छः इंच ($6\frac{1}{2}''$), चौड़ाई पांच इंच ($5''$), ऊंचाई पौने दो इंच ($1\frac{3}{4}''$) है।

दो पाण्डुलिपियां पं० जियालाल के पास हैं जिनमें एक परकाक की और द्वितीय कण्ठकाक की लिखी हुई है। परकाक की लिखी हुई प्रति में कुल तीन सौ चौवन पृष्ठ हैं, इसकी स्याही काली है, पंक्तियां दस से सोलह तक हैं। यह भी कश्मीरी कागज़ पर

लिखी हुई प्रति है। इसकी लम्बाई साढ़े ग्यारह इंच ($11\frac{1}{2}''$) चौड़ाई छः इंच ($6''$) और ऊंचाई सवा इंच ($1\frac{1}{4}''$) है। इस प्रति में मिर्ज़ाकाक की कविताओं के साथ-साथ लल्लद्यद के पदों का संकलन भी किया गया है। यह प्रति बुरी दशा में है और कागज के कीड़ों ने इसे प्राचीन बना दिया है।

द्वितीय पाण्डुलिपि जो पं० कण्ठकाक की लिखी हुई है उसमें कुल एक सौ अठावन पृष्ठ हैं जिनमें एक सौ छियालीस पृष्ठ कश्मीरी कागज़ पर काली सियाही से लिखे हुए हैं और बारह पृष्ठ साधारण कागज पर कहीं उर्दू और कहीं शारदा लिपि में लिखे हुए हैं। मुख्य कृति के साथ इन बारह पृष्ठों का सम्बन्ध नहीं है, यह बाद में इसके साथ जोड़े गये हैं। इन जुड़े हुए पृष्ठों में एक स्थान पर लाल सियाही का प्रयोग भी किया गया है। इस पाण्डुलिपि की लम्बाई पौने आठ इंच, चौड़ाई छः इंच और ऊंचाई आधा इंच है। प्रति के देखने से प्रतीत होता है कि यह अति प्राचीन नहीं है। इसको सुरक्षित रखा गया है। इसमें प्रत्येक पृष्ठ में दस पंक्तियां हैं। यह उर्दू लिपि में लिखी गई है।

मिर्ज़ाकाक की विचारधारा :-मिर्ज़ाकाक के अनुसार ब्रह्म निर्गुण है, गुणातीत है। इन्होंने उसे सगुण स्वीकार नहीं किया है। इसी कारण वे ब्रह्म के नाम को महत्त्व देते हैं।[1] जीव का लक्ष्य ब्रह्म है ओंकार-रूपी कमान से जीवन-रूपी तीर का निशाना ब्रह्म है।[2] ब्रह्म भी भक्त का अन्वेषण करता है और सहस्रों में से किसी एक को ही अपनी साधना के लिए चुनता है।[3] मिर्ज़ाकाक ने उस निर्गुण ब्रह्म को राम भी कहा है और श्यामसुन्दर भी, उसका निवास-स्थान समस्त ब्रह्माण्ड को माना है और भीतर और

---

१. परुण गव अन्य सु गोन,
गुण सोथ रूद न मंजूर,
अतीत गुण ओं पौरुष,
भजन नाम राम रामै।
—मिर्ज़ाकाक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, १९६३, कविता सं० १, पद १।

२. ओं गव कमानय,
ज़ीवय ज़ान तीरय,
निशान ब्रह्मय
भजन नाम राम रामै।
—वही, पद २, कविता १।

३. भक्त्यस दय छु छाराम,
बल्विथ तौर पत लारान,
लछि मंज़ तस छु चारान,
भजन नाम राम रामै।।—वही कविता १, पद ५।

बाहर उसी की सत्ता का आभास पाया है।[1] ब्रह्म की अखण्ड सत्ता ही ब्रह्माण्ड है, जीव की कल्पना से भी उसका साम्राज्य विस्तृत है। जो इस रहस्य को जान लेता है वही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।[2] ब्रह्म और जीव भिन्न नहीं हैं। जीवात्मा में परमात्मा व्याप्त है, वही जीव के हृदय की ध्वनि है, जिसका अन्वेषण किया जाता है वह अपने ही अन्दर विद्यमान है।[3]

मिर्जकाक ने शब्दब्रह्म की सत्ता को ही माना है।[4] उसका स्थान आकाश है और वह प्रकाशस्वरूप है, वही जीव के शरीर का निर्माता भी है।[5] समस्त संसार ब्रह्म का देवालय है, यह ब्रह्माण्ड शिवमय है, जीव के प्राण में भी वही व्याप्त है।[6] ब्रह्म एक है

---

१. तस नाव शाम सोन्दर,
घर छुस ज़गि अन्दर,
न्यवर नाव वुछि जि अन्दर,
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता १ पद ९।

२. दयो सोरुय चोनुय,
व्यचारय यूत म्योनुय,
येमि जोन तमि मोनुय,
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद १४।

३. आसवुन यथ छु लरे।
बोलवुन पान हरे।
युस छाडहन सुय गरे।
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता, १, पद १८।

४. शब्द ब्रह्म पान ईश्वर।
तवय बालिका परमीश्वर।
लक्षनन दीप सु ईश्वर।
सत कथ राम रामै।—वही, कविता १, पद २३।

५. ब्रह्म जान परम आकाश।
तथ नाँव सु प्रकाश।
वुशत करि गर सुन्द पि नकाश।
शरीरय राम रामै।—वही, कविता १, पद २७।

६. छु म्ये सोरुय, शिवमयै।
गछि नय भव दिवलयै।
छुमप्र ाण दय पान आय।
रब साहब प्रभु जी।।—वही, कविता २, पद १।

उसी के भिन्न रूप और मुख हैं।[1] जैसे रहस्य आवरण के पीछे छिपा रहता है वैसे ही प्रभु भी जीव की आत्मा में गुप्त रूप से रहता है।[2] जिसके शरीर से द्वैत भाव का नाश हो गया हो, जो 'स्व' और 'पर' में कोई भिन्नता न रखता हो जिसने अन्तर और बाह्य को एक में लय कर लिया हो, वही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।[3] जैसे सूर्य के प्रकाश से किरणें विकीर्ण होती हैं वैसे ही ब्रह्म से जीवों का निर्माण होता है, ज्ञान-रूपी प्रकाश से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म जीवात्मा के समीप ही है, वह स्वयं जीव का प्रियतम है और जीव अपने को उसका दास मानता है।[4] जिस प्रकार पुष्पों में सुगन्धि वास करती है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म भी गुणों से पूर्ण होता है। शिव के साथ नाद-बिन्दु और प्रकाश के साथ अन्धकार होता है।[5] सरिता से ही समुद्र की शोभा है। चार वेदों का सार ओंकार शिव और शक्ति एक है ब्रह्म एक है[6] परन्तु जीव अज्ञान के कारण उसे नहीं पहचानता, वह द्वैतभाव से पूर्ण रहता है परन्तु ज्ञान से यह भिन्नता मिट जाती है

---

१. सु छु कुनुय मोख छयोनुय
वन क्याह वन रबसय।
सुय न्यथ अनिथ चरिय।
रब साहब प्रभु जी ।।—वही, कविता २, पद ३।

२. छांजामय ओस गरि दय।
सिर छु परदय सारिनय।
नाव ब नाव रोज़ि हृदय।
रब साहब प्रभु जी ।।—वही, कविता २, पद ४।

३. यस चलि दुय त ईश्वर ज़ानि।
ह्युवुय मानि पर त पान।
अन्दर न्यबर युस कुनुय जानि
रब साहब प्रभु जी ।।—वही, कविता २, पद १३।

४. सु प्रकाशे द्रायि ज़ुचाह सु छु सिरियस गाश।
निशि पानस बूज़ म्ये भाषा निर्णय ज्ञान छु गाश।
खोद ब खोदय यार छु पानय खास तसुन्दुय' बदास।
तोशि ह्यम अकि व्यन पोशे सोन पोशे सुय ।।—वही, कविता ४, पद १।

५. द्राव सत ग्वोन रोशन,
बिन्दु शिव समरण द्राय रोशन।
गटि निशि गाश गव रोशन।
पोशन बोय चे सूत्य सूत्थी।—मिर्ज़काक की पाण्डुलिपि।

६. नदी निशि द्राव सोदुर रोशन, ओं निशि चोर वीर गयि रोश
शक्ति कोदरथ शिव गव रोशन, जानि जानानस सूत्य सूत्यी ।।
—वही, पाण्डुलिपि।

और सोहम् पद की प्राप्ति होती है।[1] मिर्ज़काक ने प्राण को ही ब्रह्म माना है, वही प्राण ब्रह्मा के रूप में सृष्टिकर्ता है, विष्णु रूप में पालन करता है और रुद्र रूप में वही संहार-कर्ता भी है।[2] सबों के रहस्यों को जानने वाला प्राण ही है, वह चर और अचर के साथ मिला हुआ है, प्राण ही नारायण से उत्पन्न हुआ है और यही जीवों के नेत्रों का प्रकाश है, यही प्राण स्वयं राम है, इसी प्राण का रहस्य जानना चाहिए।[3] जीव प्राण है अतः वह स्वयं ब्रह्म है, इसका कोई नाम क्यों न हो; सब पर इसी का अधिकार है।[4] प्राण ही ब्रह्मा विष्णु और शिव है, वही अग्नि और मृत्यु-रूप है, वही साधारण जनता है और वही देवता है।[5]

जीव—मिर्ज़काक जीव और ब्रह्म को एक मानते हैं परंतु उनकी सत्ता भिन्न मानते हैं। ब्रह्म स्थिर और जीव अस्थिर है। ब्रह्म निर्माण करता है औरजीव की उत्पत्ति होती है। जीव का शरीर पंचभौतिक है।[6] जीव का शरीर कच्चा होता है जबकि ब्रह्म पक्की अवस्था में होता है, जब आत्मा भी उसी अवस्था में पहुंच जाती है तो आत्मा

---

१. अकुय आसिथ दोन हुन्द भ्रम गोम,
कुनुय दम गोव जाति सफात।
तहकीक करिथ कुनुय शम गोम।
निराण ज़ोनुम सूहंम् सू ।।—वही, पाण्डुलिपि।

२. प्राण ब्रह्म लागिथ पैंद छुम सुय करान।
प्राण विष्णु लागिथ रछान दम ब दम रामराम।
प्राणय लोदर लागिथ सोरुय छुम गालान।
प्राण हस्तोनेस्त प्राण बूद नाबूद दम ब दम रामै ।।—वही, पाण्डुलिपि।

३. सारिक़ुय पय छु प्राण मीलिथ राम राम।
प्राणय द्राव निशि नारायण प्रेकाश पर अछिव आराम
प्राण जानय प्राण दम ब दम रामय ।।—वही, पाण्डुलिपि।

४. चय छुख पानय बय छुस प्राणय।
प्राण प्राणय थव नाव केंह।
सोरुय हख छुय नाहक शख छुय
राधा कृष्ण गूविन्द गू ।।—वही, पाण्डुलिपि।

५. प्राणय ब्रह्मा प्राणय विष्णु प्राणय अग्नि रूफ कालय सुय
प्राणय बस्ती सन्मोख दिवता, राधाकृष्ण गूविन्द गू।—वही, पाण्डुलिपि।

६. आव गाहे आदम हवा,
आत्मा शक्त शिव चय,
छुस पंचन भूतन हुथ जामे,
रब साहब प्रभु जी।—वही कविता ३, पद २।

परमात्मा एक हो जाते हैं। उनमें द्वैतभाव नहीं रह जाता। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है।[१] जीव जब विद्या प्राप्त करता है तो उसे अहंकार आता है, जब वह धनवान बनता है तो अज्ञा रूपी अंधकार के कारण उसे कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु ब्रह्म इन दोनों अवस्थाओं से जीव को तार देता है।[२] जीव और ब्रह्म एक थे, फिर जीव उससे अलग हुआ और संसार में आया। ब्रह्म उसका प्रियतम कहलाया और जैसे पुष्पों में सुगन्धि का वास होता है वैसे ही ब्रह्म जीव की आत्मा में व्याप्त है।[३] संसार से प्रयाण करने के समय वह पुनः ब्रह्म में लीन हो जाता है।[४] मानवशरीर कुसुम है परन्तु उसकी सुगन्धि और वर्ण परमात्मा है, जीव यदि ज्योति है तो ब्रह्म परम ज्योति है।[५] जीव तेज से ही उत्पन्न होता है और अग्नि से ही नष्ट होता है।[६] सोहम् शब्द ही केवल सत्य है। जीव का प्राण ही ज्ञान-विज्ञान और अज्ञान है, वह मस्त रहने वाला है, वही साक्षात्कार का साधन है और वह स्वयं ही ब्रह्म है।[७] मनुष्य के मन में शिव व्याप्त है। अतः जीव को सदैव शिव नाम का स्मरण करना चाहिए। धर्म का विचार करना ही जीव का स्वभाव है। यही विचार

---

१. शरीर खाम पोख्त सुये।
बुजुम पुथ जायि सुये।
पोख्तकार सय चलि दुये
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद ३०।

२. अलिमस अहंकारय,
लक्ष्मी अधंकारय,
अभि गछिथ छुय तारय।
भजन नाम राम रामै ॥ —वही, कविता १, पद ३२।

३. इकवट आय ब स्योन दय,
बय जीव तय सु जानि जानान,
जानस पथ जानान रोशन
पोशन बोय चे सूत्य सूत्यी ॥—मूल पाण्डुलिपि।

४. तौर गच्छव इकवटन, जानि जानानस सूत्य सूत्यी। —मूल पाण्डुलिपि।

५. तन गुल खर जीव आत्मन,
मुशक तय रंग गव परमात्मा,
ज्योति जीव परम ज्योत न्यथ आजीव,
जानि जानानस सूत्य सूत्यी ॥ —वहीं, पाण्डुलिपि।

६. ओगनुय ज़ेवान ओगनुय स्येवान,
म ज़ान निराण सूहम् सू ॥ —वही, पाण्डुलिपि।

७. प्राण छुम अज्ञान प्राण छुम ज्ञान।
प्राणय छुम विज्ञान दम बदम रामै।
प्राण छुम मस्तानय, प्राण छुम परज़ानै।
प्राण छुम पा'न्य पानय, खोदाये राम रामै ॥ —वही, पाण्डुलिपि।

ब्रह्म है जो आत्मा में वास करता है।[1] ब्रह्म और जीव सदैव परस्पर एक-दूसरे को देख सकते हैं परन्तु जीव के ज्ञान-नेत्र खुले होने चाहिएँ तभी वह परमानन्द प्राप्त कर सकता है।[2] जीव की आत्मा सत्य है उसमें शब्द-ब्रह्म को पाना चाहिए।[3] यही वास्तविक ज्ञान है जीव का लक्ष्य ब्रह्म है, उसको प्रणय-रूपी कमान से स्वयं तीर बनकर ब्रह्म को लक्ष्य करना चाहिए।[4]

जगत—मिर्ज़काक जगत की सत्ता मानते हैं परन्तु इसको मिथ्या कहते हैं।[5] यहाँ मिर्जकाक ने शंकर के 'ब्रह्म सत्यं जगतमिथ्या' सिद्धान्त को अपनाया है। इस जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म करता है। बीज पर ही यह समस्त संसार आधारित है।[6] ब्रह्म जीव और जगत् दोनों में विद्यमान है, यह संसार देवालय है, ब्रह्माण्ड ही शिवमय है।[7] जगत् में ब्रह्म स्वयं ही शोभायमान है।[8] ब्रह्म सृष्टि-कर्ता है। अग्नि से जल, जल से पृथ्वी और पृथ्वी से अन्न उसने स्वयं उत्पन्न किया।[9] जगत् का स्वभाव क्षण प्रतिक्षण शनैः शनैः समाप्त होना है।[10]

---

१. मनस शिव छुत व मनि शिव नाव छुय।
मनुष्य भाव छुय धर्म व्यचार।
गव व्यचार हरे त सुय ज्ञान गरे। वही, पाण्डुलिपि।

२. चय म्ये वुछान ब दय चे वुछान,
दीफ आसि दीफ दर्शुन आनन्द तय। —वही, पाण्डुलिपि।

३. दोप आतम सथ है, तोत च् कथय दय, शब्द गथ जाजुन आव।—वही, पाण्डुलिपि।

४. उों गव कमानय,
जीवय जान तीरय,
निशान ब्रह्मय,
भजन नाम राम रामै।। वही, कविता १, पद २।

५. सत्यम ब्रह्म ज़गथ मिथ्या
दपान छुय राम रामै। —वही, कविता १, पद २८।

६. बिना बीज़ बोयि न ज़गय,
वोपदी नाम राम रामै। —वही, कविता १, पद ३३।

७. छु म्ये सौरुय शिव मये,
गछि नय भव दिवलये। —वही, कविता ३, पद १।

८. ज़गि निशि पानय दय रोशन.
पोशन बोय चे सूत्य सूत्यी।। —मूल पाण्डुलिपि।

९. अन्न निशि द्राव जल सु रोशन,
जल निशि द्रायि ज़मीन रोशन,
ज़मीन निशि द्राव अन्न दय रोशन
जानि जानानस सूत्य सूत्यी।। —वही, पाण्डुलिपि।

१०. ज़गतुक स्वभाव ख्यन ख्यन सौरुय।
तवय ब तय शरीर छुम ठहरिथ।—वही, पाण्डुलिपि।

माया—मिर्ज़काक की जितनी कविताएँ मुझे उपलब्ध हो सकीं उनमें माया का संकेत एक ही स्थान पर आया है। माया के बल से सांसारिक सुख-वैभव की प्राप्ति होती है, परन्तु वह क्षणिक है, उससे अलक्ष्य निरंजन ब्रह्म को प्राप्त करने में बाधा पड़ती है।[१]

इसका अर्थ यह नहीं कि मिर्ज़काक के काव्य में माया का अस्पष्ट और धुंधला वर्णन है। यह संभव है, उन्होंने अन्य कविताओं में माया के विषय में अपने विचार प्रकट किये हों परन्तु अभी तक उनकी सारी पाण्डुलिपि ठीक तरह से पढ़ी नहीं गई। वह फारसी लिपि में है जो कई स्थलों पर अस्पष्ट है।

साधना पक्ष—मिर्ज़काक ने साधना में गुरु, प्रणव और योग को अत्यधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार गुरु ब्रह्म का ही अवतार है और वह उपदेश से अज्ञान का नाश करके ज्ञान का प्रकाश दिखाता है।[२] जिस प्रकार बिना बीज के उत्पत्ति असंभव है उसी प्रकार बिना गुरु के ज्ञान असंभव है।[३] जीव को गुरु का ध्यान करना चाहिए। सतगुरु आचार-विचार की शिक्षा देता है। शिष्य गुरु की कृपा से ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।[४] गुरु-शब्द मधुर फल और मिश्री की भान्ति है। यदि किसी को इस बात पर विश्वास नहीं है तो गुरु से गन्ना-रूपी 'सोहम्' शब्द मांगना चाहिए।[५] गुरु पथ-प्रदर्शक है वह ज्ञानकी ज्योति लेकर जीवों का मार्ग-दशन करता है।[६] यदि जीव गुरु का कथन माने

१. महामाया परम सोख पाया,
अलख निरंजन सुय परिज्यन। —वही, पाण्डुलिपि।

२. ग्वौर आम रूप अवतार,
कौरनम वोपदीशिय,
गौलुन अज्ञान बौवुन ज्ञान,
मुफतस नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद २१।

३. बिना ग्वौर मेलि न ज्ञानय,
बिना तफ बनि न राज्य
बिना बीज बोय न जगय,
वौपदी नाम राम रामै।—वही, कविता, १, पद ३३।

४. ग्वौर ध्यान पजि करुन च्यत भय।
खसवुन गव आचार सथ ग्यौरय,
फीरिथ चाठ गछि तस कुन कर सरय।—पाण्डुलिपि।

५. ग्वौर कथ छय नाबद त टंगय,
योद ने रांची त प्रयि प्रये,
गछिथ ग्वोरस मंगि नयशक्कर हम सू।—पाण्डुलिपि।

६. पंडिथ गव मशालची,
बेयिस गाश पान दुगाश,
वाख वनिथ गव सु शुरू
पोज्य पाठ्य सु राम रामै।—वही, कविता २, पद ३४।

और उसी के अनुसार कार्य करे तो वह अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकता है और इस संसार-सागर से बिना मल्लाह और पतवार के पार हो सकता है।[1]

ओंकार—मिर्ज़काक ने अपने काव्य में ओंकार को अत्यधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार ओंकार ही आदि पुरुष है जो देवताओं का देवता है।[2] ओंकार ही प्रकाश है जिससे ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है।[3] ओं ही भूत, भविष्य और वर्तमान है। यही प्रमाण है, यही उपदेश है।[4] जो क्षण-क्षण ओंकार का स्मरण करता है उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहता है।[5] जीव तीर के समान है, वह ओंकार-रूपी कमान से ब्रह्म रूपी लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।[6] जिस प्रकार नदी से उसके स्रोत समुद्र की शोभा है उसी प्रकार प्रणव से चारों वेदों का महत्व बढ़ जाता है।[7] ओंकार ही ब्रह्म-वर्णन का सार है।[8]

सत्संग—मिर्ज़काक सत्संगति को भी महत्व देते हैं, उनके अनुसार क्षण-क्षण सत्संगति में ही व्यतीत करना चाहिए।[9] आदि पुरुष ब्रह्म को जो देवताओं का देवता है,

---

१. ग्वौर सुन्द दवुन पालुन छु जानय,
पननु पान शम मारुण जान।
अद जोरि रोस्तुय तरहम पानय।।—पाण्डुलिपि।

२. ओं गव आदि पौरुष,
नाथन हुन्द सु वाथय।—वही, कविता १, पद ३।

३. ओं चौंग अर्थ बूजुम,
दफ जोगुम म्ये पुरुष।—वही, कविता १, पद ११।

४. ओं गव भूथ भविष्यत।
ओं गव वर्तमानय।
ओं रूद प्रमाणय।
उपदेश राम रामै।—वही, कविता १, पद १०।

५. तस नौ बीम जामैय,
युस दमा दम सरि औमय।—वही, पद १२।

६. ओं गव कमानय,
जीवय जान तीरय,
निशान ब्रह्मय,
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद २।

७. नदी निशि द्राव सौदुर रोशन,
ओं निशि चौर वीद गयि रोशन।—वही, पाण्डुलिपि।

८. ओं निशि द्राव वखुन सु रोशन,
जानि जानानस सूत्थ सूत्यी।—पाण्डुलिपि।

९. दम दम सत संग गछि करुन।
सु गव सु ब पाठ व्यापी ज़ानि पानय।—पाण्डुलिपि।

संत जन ही जान सकते हैं।[1] भक्त का महत्त्व इतना होता है कि ब्रह्म स्वयं सच्चे भक्तों का अन्वेषण करता है। लाखों में किसी एक को ब्रह्म भक्त बना देता है।[2]

योगमार्ग—मिर्ज़काक साधना में ज्ञान और योग को महत्व देते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म-प्राप्ति के लिए ज्ञान और ध्यान आवश्यक हैं। गुरु के उपदेश से अज्ञान का नाश होकर ज्ञान-प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। यही ज्ञान जीवन और ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है। ब्रह्म-ध्यान करना जीव के लिए आवश्यक है, जीव को सत्य तत्व का प्रकाश कर रहस्य को प्रकट करने का प्रयत्न करना चाहिए, यह बिना ध्यान के असंभव है।[3] योग-मार्गों में राजयोग उत्तम माना गया है। इसी का शब्द मेरे कानों में भी पड़ गया है। इसमें मन को केन्द्रित किया जाता है और ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।[4] कर्म-रूपी दूध से योग-रूपी दही और साधुसंग रूपी मक्खन निकलता है, इसी से ज्ञान-रूपी घी और विज्ञान-रूपी सुगन्धि विकीर्ण होती है।[5]

मिर्ज़काक के 'वाख्य' या पद पूरे उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि उनके हाथ की पाण्डु-लिपि हांग्लगुण्ड में विद्यमान है परन्तु उसको पढ़ने वाला कोई नहीं है, वह उर्दू लिपि में कश्मीरी लिखी हुई है। परन्तु मात्राओं के बिना है। उसमें जेर, ज़बर आदि जो उर्दू की

---

१. ओं गव आदि पोरुष,
नथन हुन्द सु नाथय,
तस जानि कुस ज़ानि संतय।
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद ३।

२, भक्त्यस दय छु छारान,
ब्लक्यि तौर पत लारान,
लछि मंज तस छु चारान,
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद ५।

३. वनह पज़ि पौज़ुय,
पाश मा गछि सीरस,
ध्यान रौस ध्यान छु व्यचुन।
भजन नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद २५।

४. राजयूग छु म्य वनान,
शब्द पज्य पाठय गव म्ये कनन,
और यौर निशि मन अन,
सोता स्यद नाम राम रामै।—वही, कविता १, पद २२।

५ कर्म शीर तय यूग जगराथ,
साध संग थन्य मदंसय,
ज्ञान ग्यवय मुशक विज्ञान,
रब साहब प्रभु जी।—वही, कविता २, पद ६।

मात्राएँ होती हैं उनका प्रयोग नहीं किया गया है, अतः उनका सारा साहित्य जनता क्या शोधविद्यार्थियों के लिए भी रहस्य ही है। उनके काव्य का भावपक्ष अतिप्रबल है, शंकर के अद्वैत की उस पर स्पष्ट झलक मिलती है।

मुसलमानों के प्रभाव-स्वरूप उन्होंने शहर, मौजूद, वजूद, शरारत, हकीकत, तरीकत, हरकत, बरकत आदि शब्दावली का प्रयोग भी किया हैं। पाठालोचन के सिद्धान्तों के आधार पर मिर्ज़काक की कविता का पाठ भी शोध के लिए एक विषय बन सकता है।

संत परमानन्द

परमानन्द का युग—परमानन्द का आविर्भाव-काल १८वीं शताब्दी का अन्तिम-चरण है। भारत में मुगलों के समृद्ध एवं ऐश्वर्यशाली साम्राज्य का ह्रास ईसा की १८वीं शताब्दी के मध्यकाल में ही हुआ और इस काल तक कश्मीर में भी मुगलों का शासन था। मुगल साम्राज्य के पश्चात् अफगानों का शासन सन् १७५२ से लेकर सन् १८१९ तक रहा।[1] अफगानिस्तान के सम्राट अहमदशाह दुरानी के समय ही राज्य का केन्द्र दिल्ली न रहकर काबुल बन गया। यह निर्दयी सम्राट् था और अपने स्वामी की हत्या का कारण भी था। इसके शासन में मानव सभ्यता और संस्कृति नाममात्र भी नहीं थी। अफगान शासन ६७ वर्ष तक रहा। अफगान गवर्नर भी अपनी निर्दयी भावनाओं से परिचित थे, वे जानते थे कि उनका शासन अधिक काल तक नहीं रह सकता। अतः उनका मन-धन संकलन की ओर अत्यधिक लगा रहता था। राजनैतिक क्रूरता और हत्याकाण्ड असद खाँ के शासन में जनता के लिए असह्य बन गया। हिन्दू पंडित जिन्हें काफिर माना जाता था और शिया मुसलमान इस क्रूरता के शिकार बने।

हिन्दुओं के लिए दण्ड-विधान कठोर था, मृत्यु तथा अंगच्छेद का दण्ड सामान्य था, उन पर जज़िया भी लगाया जाता था। असद खां के पश्चात् मदाद खां ने शासनसूत्र संभाला परन्तु उसने अपने पूर्वजों से भी अधिक क्रूर व्यवहार किया। अतामुहम्मद खां के समय पारिवारिक सम्मान की रक्षा भी असम्भव बन गई। उस समय पठान हिन्दू नारियों को प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहा करते थे। अतः हिन्दू माता-पिता अपनी कन्याओं को अपहरण से बचाने के लिए स्वयं उनका अंगच्छेद करते थे जिससे उनकी सुन्दरता पठान शासकों के आकर्षण का कारण नहीं बनती थी।[2] इस प्रकार

---

१. "The period of Afghan rule over Kashmir is a short one of almost seventy years from 1752 to 1819."

—Kasmhir, J. P. Ferguson, Ist Edition 1961, Page 39.

२. "Women rather than torture were his reigning passion and beautiful Hindu girls had their features defaced by their parents rather than that they should attract the attention of the agents of his insatiable ruler"

· Kashmir, J. P. Ferguson, Edition 1961, Page 40.

पठान शासन अत्याचार, अन्याय और उत्पीड़न का शासन था। जनता में आतंक था, सतीत्व को कलुषित किया जाता था, अतः विवशता के कार जनता के सामने इस समस्या के दो ही समाधान थे—धर्मपरिवर्तन और देशत्याग।

पठानों के निर्दय शासन से बचने के लिए कश्मीरी जनता ने शासन-परिवर्तन की प्रबल इच्छा प्रकट की और उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह को कश्मीर पर राज्य करने की प्रार्थना की। सन् १८१४ में सिख सेना ने पीर पंचाल के मार्ग पर आक्रमण किया, परन्तु रणजीतसिंह उस समय के पठान गवर्नर अज़ीमखां से परास्त हो गये। इस प्रकार की सफलता प्राप्त करके अज़ीमखां ने हिन्दुओं से अधिक निर्दयता से व्यवहार किया। अज़ीम खां के वापस काबुल जाने पर सन् १८१६ में उसका भाई जबार खां यहां का शासक बना।[1] जबार खां ने भी धार्मिक कट्टरता की परम्परा ही चलाई यद्यपि उसका शासनकाल केवल चार महीने तक ही रहा। बीरबल दर नामक एक कश्मीरी पंडित श्रीनगर से लाहौर गये और उन्होंने रणजीतसिंह के सामने पुनः कश्मीर पर शासन करने का प्रस्ताव रखा और परिणाम यह हुआ कि महाराजा रणजीतसिंह ने जम्मू के राजा गुलाब सिंह के साथ मिलकर कश्मीर पर चढ़ाई की और सन् १८१९ में पठान शासन का अन्त हुआ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सिखों के शासनकाल में कश्मीर की दशा में कुछ सुधार आ गया। पठानों के क्रूर शासन की समाप्ति पर यहां की निर्धन जनता ने जो काबुल के सरदारों से तंग आ गई थी—विश्राम की सांस ली। सिखों का शासन पठानों के शासन से अच्छा था। यद्यपि सिख-शासन के समय कश्मीरी जनता के जीवन का स्तर उच्च नहीं हो पाया परन्तु यह पठान शासन की कट्टरता का ही कुपरिणाम था। सिखों का शासन केवल २७ वर्ष तक ही रहा और उस समय भी उनका जीवन संघर्षमय था। अतः वे भी लोगों की दुःखी दशा की ओर अधिक ध्यान न दे सके। यह काल अब मुसलमानों के दुःख का काल था। मस्जिदों को बन्द किया जाता था, प्रार्थना पर प्रतिबन्ध लगाये जाते थे और गौहत्या के लिए कठोर दण्ड-विधान था। सिख नेताओं ने जान लिया कि कश्मीरी जनता का अधिकांश भाग पठानों के क्रूर शासन से दब गया है अतः उदार शासन की आवश्यकता है। पंजाब और सीमा प्रदेशों में मुसलमानों का विरोध होने के कारण उन्होंने कश्मीर में मुसलमानों के विरोध पर प्रतिबन्ध लगाये। परिणामत दीवान मोतीराम ने जामा मस्जिद को बन्द किया, क्योंकि उसने सोचा कि यही वह स्थान है जहां मुस्लिम नेता और उनके अनुयायी मिलकर सिख शासन के विरुद्ध प्रयत्न कर सकते हैं। कमाण्डर फूलासिंह ने जेहलम नदी के एक किनारे पर से दूसरे किनारे पर स्थित शाहहामद मस्जिद को समाप्त करना चाहा क्योंकि यह एक हिन्दू मन्दिर के स्थान पर बनी थी। परन्तु उस समय के एक प्रभावशाली कर्मचारी बीरबलदर के व्यवधान से यह कार्य पूर्ण न हो सका। जब सिखों से खानकाह की ध्वंसता को बचाने के लिए

---

1. "A History of Kashmir, P. N. Koul Bamzai, Edition 1962, Page 421.

मुसलमान सैयद हसनशाह के नेतृत्व में बीरबल दर के पास गये तो उसने अपने प्रभाव से यह ऐतिहासिक स्मारक नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाया।

सिख शासन भी सन्तोषप्रद नहीं था, सिख विजयी थे, उनके पास पूर्ण सैनिक शक्ति थी। अतः वे विजय का लाभ उठाने के अभिलाषी थे। मंगलमय शासन उनका दृष्टिकोण नहीं था। वे भी कश्मीरी जनता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। यदि एक हिन्दू या मुसलयान की हत्या सिखों के द्वारा होती थी तो उनके परिवारों को क्रमशः चार रुपये और दो रुपये दिये जाते थे।

बेगार का प्रचलन सिख-शासन में भी अत्यधिक था। मूरकेफट लिखते हैं कि जब वे कश्मीर छोड़ रहे थे तो कई कश्मीरियों को, जिनकी घनिष्ठता उसके साथ थी, दुःखी किया गया। उनके हाथ-पैर बांधकर उनका जनता में प्रदर्शन किया जाता था।[1] जनता पर अधिक कर लगाये गये थे। जनता पर भूचाल, अकाल और महामारी ने भी अपना प्रकोप दिखाया। कई लोगों ने देशत्याग करके विश्राम पा लिया।

जन्मकाल—परमानन्द की जन्म-तिथि के विषय मे मतभेद नहीं है, सभी विद्वानों का एक मत है। इनका जन्म अनन्तनाग के समीप एक ग्राम मट्टन में सन् १७९१ में हुआ था।[2] इनका वास्तविक नाम नन्दराम था परन्तु काव्य-जगत् में ये 'परमानन्द' उपमान से ही विख्यात हैं। इनके पिता का नाम कृष्ण पंडित तथा माता का नाम सरस्वती देवी था। कृष्ण पंडित मट्टन के पटवारी थे और फारसी भाषा के निष्णात पंडित थे।

गुरु—परमानन्द के गुरु उनके पिता कृष्ण पंडित थे। इसका संकेत कवि ने स्वयं अपनी कविताओं में किया है।[3]

गृहस्थ जीवन—परमानन्द का विवाह बाल्यकाल में ही मालद्यद नामक नारी से हुआ था परन्तु इनके दोनों पुत्र वासराम और महानन्द पंडित अल्पायु में ही संसार से सिधार गए थे। परमानन्द गार्हस्थिक जीवन से अत्यधिक दुःखी थे। इसका प्रकटीकरण उन्होंने अपनी कविताओं में यत्र-तत्र किया है। वे स्वयं कहते हैं कि इस संसार में मैं निराश हूं, अकेला हूं, पुत्र-विहीन हूँ। मेरे नेत्रों का प्रकाश ही समाप्त हो गया है।[4] इस कठोर आघात के पश्चात् परमानन्द ने अपनी पुत्री के लड़के को गोद लिया जिसके वंशज अभी भी मट्टन में विद्यमान हैं।

शिक्षा और अन्य प्रभाव—सभ्यता और शिक्षा से दूर रहने के कारण ग्रामों की दशा

---

१. "Kashmir, J. P. Ferguson 1961, Page 50.

२. Parmanand Sakti Sura vol. 1 Part I. Zinda Koul, Edition 1941, Page 51.

३. सत ग्वोरत बब म्योन श्री कृष्ण दीव।
त्रैलूक्य छ दीहते सु छुस जीव। —वही, पृ० ५१

४. कुन त कीवल त सार सूरमच आश।
निपतुर न नत्रन न रूदमुत गाश।—वही, पृ० ५२।

शोचनीय थी अतः शिक्षा की असुविधाओं के कारण परमानन्द उच्चकोटि की शिक्षा से लाभान्वित न हो सके। उन्होंने गांव में ही एक मुल्ला के पास मकतब में शिक्षा प्राप्त की थी और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् वे उसी ग्राम में पटवारी पद पर नियुक्त हुए।

यद्यपि इन्हें अल्पशिक्षा ही प्राप्त थी तो भी अन्य स्रोतों से इन्होंने प्रभाव ग्रहण किया था। इन्होंने युवराज दाराशिकोह के निरीक्षण में 'उपनिरवत्' अर्थात् उपनिषद् लिखे, जिससे ज्ञात होता है कि ये फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने मट्टन के गुरुद्वारे में श्री गुरुग्रन्थ साहब का श्रवण किया था और श्री कृष्ण परमहंस के दार्शनिक व्याख्यानों से भी वे अनभिज्ञ नहीं रहे। पं० आत्मा राम से इन्होंने षटचक्र और कुण्डलिनी का अभ्यास सीखा था।[1]

जनश्रुति के आधार पर यह भी स्वीकार किया जाता है कि अपने समय के बड़े-बड़े पंडितों और मुसलमान संतों से भी इनका परिचय था जिनमें वाहब साहब और महमूदमामी विशेष माने जाते हैं।

प्रयाण-तिथि—परमानन्द की प्रयाण-तिथि भी निश्चित है। इन्होंने ८८ वर्ष की आयु में सन् १८७९ में इस असार संसार से प्रयाण किया। इन्होंने पटवारी-पद से त्याग-पत्र दिया था और उसके पश्चात् १५ वर्ष तक ये जीवित रहे।

शिष्य-परम्परा—परमानन्द की प्रसिद्धि उनके जीवन-काल में ही हुई थी। इनके पास अनेकानेक शिष्य आते थे जिनमें नागाम के पं० लक्ष्मण जी का नाम सर्वप्रथम आता है। वे भी उच्च कोटि के कवि थे और 'बुलबुल' उपनाम से कविता करते थे। उन्होंने कश्मीरी भाषा में नलदमयन्ती नामक सुन्दर आख्यान-काव्य की रचना की है। पं० परमानन्द जी के राधास्वयंवर में जो मोहिनी वृत्तान्त है वह लक्ष्मण जी का ही बताया जाता है। द्वितीय शिष्य लछीराम मुलासी थे जिन्होंने परमानन्द के निरीक्षण में ही काव्य रचना की है। शिष्य-मण्डली में सहजराम, कशकाक, नारायण मुर्चगर, सालेह गनाई तथा बिजबिहाडा के निदान काक का नाम भी आता है।

ग्रन्थ-रचना—अन्य कश्मीरी संतों की अपेक्षा परमानन्द ने अधिक मात्रा में काव्य-रचना की है। इन्होंने ऐसी अनेक कविताएं भी लिखी हैं जो इन्हें कबीर और लल्लद्यद की परम्परा में लाती हैं—ये रहस्यवादी कविताएं हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने सगुण-कृष्ण-भक्ति की कविताएं भी की हैं। अतः हम इन्हें दोनों वर्गों में ला सकते हैं।

परमानन्द की रहस्यवादी कविताओं पर शंकर वेदान्त और प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रभाव पड़ा है। इनकी कविताएं मास्टर ज़िन्दाकौल ने 'परमानन्द सूक्तिसार' नामक पुस्तक में प्रकाशित की हैं। यह पुस्तक तीन भागों में प्रकाशित है। प्रथम भाग सन् १९४१, द्वितीय सन् १९४२ और तृतीय भाग सन् १९५८ में प्रकाशित हुआ है। प्रथम और द्वितीय भाग दुर्गा प्रेस श्रीनगर तथा तृतीय भाग फाइन आर्ट प्रेस श्रीनगर से प्रका-

---

1. Parmanand Sukti Sara, vol. I, Part I. Edition 1941, Page 30

शित है। इसमें मास्टर जी ने इन कविताओं का अंग्रेजी भाषा में अर्थ भी दिया है।

परमानन्द जी की कविता को पांच प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है—

१. प्रार्थनापरक कविताएं।
२. अमरनाथ-यात्रा की कविता।
३. वर्णनात्मक कविताएं।
४. साधनात्मक कविताएं।
५. हिन्दी-कश्मीरी कविताएं।

१. प्रार्थनापरक कविताओं में कवि ने देवी, गणेश, शिव, विष्णु आदि से अपनी विवशता व्यक्त की है और अपने को उनकी दया का पात्र ठहराया है। ऐसे गीत छोटे-छोटे हैं और चार पंक्तियों वाले पदों के हैं। इन कविताओं में व्यक्तिगत स्पर्श अधिक है।

२. **अमरनाथ-यात्रा की कविता**—इसमें योग के प्रसंग अत्यधिक हैं। इस सम्पूर्ण कविता का योगपरक अर्थ भी निकलता है।

३. **वर्णनात्मक कवितायें**—इस वर्ग के अन्तर्गत सुदामाचरित, राधास्वयंवर, शिवलग्न आदि कविताएँ आती हैं। इनमें क्रमशः सुदामा और कृष्ण, राधा-गोपिकाएँ और कृष्ण तथा शिव और पार्वती का प्रेम वर्णित है। ये कविताएँ जीव का ब्रह्म और ब्रह्म का जीव के प्रति प्रेम व्यक्त करती हैं। इन कविताओं को 'लीला' कवितायें भी कहते हैं। इनमें संगीततत्त्व की प्रधानता है। कश्मीर के नर-नारी इन कविताओं को प्रायः गाते रहते हैं।

४. **साधनात्मक कवितायें**—ये आध्यात्मिक जीवन-सम्बन्धी कविताएँ हैं। ये विशेष रूप से दर्शन के जटिल तत्वों से ओतप्रोत हैं, इनमें ज्ञान, इन्द्रिय-निग्रह, वैराग्य, विवेक, भक्ति, अपरोक्ष-दर्शन, सहज-विचार, तत्त्वमसि, और समरसता के सिद्धान्तों का कलात्मक ढंग से प्रतिपादन किया है। इनमें वेदान्त दर्शन का प्रतिबिम्ब है। ये कविताएँ परमानन्द की जीवन-भर की साधना और आत्मबोध का परिणाम हैं। ये साधानात्मक रहस्यवादी कविताएं हैं। इन्हीं कविताओं के आधार पर मैंने परमानन्द को कबीर और लल्लद्यद की संत-परम्परा में रखा है। इन्हीं में कवि योग-साधना और ज्ञान के गुह्य रहस्यों का प्रतिपादन करते हैं।

४. **हिन्दी-कश्मीरी कविताएँ**—परमानन्द ने अनेक कविताएँ ऐसी लिखी हैं जिनमें हिन्दी और कश्मीरी भाषा का मिश्रण है। इसको परमानन्द स्वयं 'भाखा' नाम देते हैं। इन कविताओं में भी भक्ति-भावना, वेदान्त-दर्शन और प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का प्रतिबिम्ब है। इन कविताओं को उपदेशात्मक गीत भी कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कवि लीलागान करने में भी सिद्धहस्त हैं। बाह्य वर्णन करते समय कवि सदैव रहस्य तत्त्व की ओर संकेत करते हैं। कवि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रीति से पाठक को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाते हैं।

कवि ने अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से किया है। भाषा में संस्कृत शब्दों का आधिक्य है। उन संस्कृत शब्दों का इस रूप में कवि ने प्रयोग किया है कि वे कश्मीरी भाषा के ही शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। कवि में कल्पना-शक्ति अधिक है। डा० जी० एम० डी० सूफी परमानन्द को रहस्यवादी कविता करने में लल्लद्यद के पश्चात् द्वितीय स्थान प्रदान करते हैं।[1] इनकी कविता दार्शनिकता और रहस्य से पूर्ण होने के कारण ही मैं इनको पूर्ववर्ती संतों लल्लद्यद, नुंदर्योश और रूपभवानी की परम्परा में रखती हूँ।

परमानन्द की दार्शनिक विचार-धारा—

कवि परमानन्द के जीवन-वृत्त के समय हमने यह स्पष्ट किया है कि ये सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की कविताओं के रचयिता थे। मुख्य रूप में ये सगुण-कृष्णभक्त कवि थे परन्तु साधनात्मक कविता-वर्ग में इनकी वे कविताएँ आती हैं जो वेदान्त दर्शन से ओतप्रोत हैं, उनमें अपरोक्ष-दर्शन, सहजविचार, तत त्व असि, अनिर्वचनीय ब्रह्म, माया, योग, षट्चक्र, शमदम, जीवनमुक्ति आदि का वर्णन है। हम इनकी यही कविताएँ लेकर इनको निर्गुण संतों की श्रेणी में यहाँ लेते हैं।

ब्रह्म—परमानन्द का ब्रह्म यद्यपि सगुण कृष्ण है फिर भी इन्होंने निर्गुण ब्रह्म की ओर अपनी कविता में संकेत किया है। परमानन्द के अनुसार निर्गुण ईश्वर निरंजन और निराकार है परन्तु आधार रूप है।[2] निश्चलता, गति और लय से पूर्ण होकर भी निर्गुण रूप है, इसे ही वेदों ने सर्वशक्तिमान् कहा है।[3] वह ईश्वर पवित्र, निराकार, और निर्लिप्त है वह भेद-अभेद की सीमा से परे माना गया है।[4] वह ब्रह्म सर्वव्यापक है वह प्रत्येक घर में विद्यमान है और उसी के साथ सारी सृष्टि सम्बन्धित है।[5] प्रत्येक साकार रूप में वही

---

१. Kashmir, G. M. D. Sufi, Vol. II, Edition 1947, Page 407-408.

२. निर्गुण निरंजन त निराकार।
सारिसय रुस्तुय त् सर्वाधार।
—परमानन्द सूक्तिसार (भाग २) मास्टर जिन्दा कौल, संस्करण १९४२ पृ० १०५।

३. त्रैगुणमय निर्णुणकुय रूप।
कुल गव कुल वीद वोनुमुत भूप ॥—वही, पृ० १०६।

४. सुय क्या छु निर्गूण त् निर्लेप नेरान।
निर्मल निराकार आसानो।
भेद-अभेद विन वीद छिस वखनान।—वही, पृ० ३०

५. छनअ कांह जाया म्ये रोस्त आसान।
जानुन पननु छुनअ आसानो।
सारिनय हंन्दि घरि सारिनय हंदि सान॥—वही, पृ० ६८।

व्याप्त है परन्तु वह आदि और अन्त में निराकार ही है।[1] वह देशकाल की सीमा से परे है उसका आसन शेषनाग है। वह इच्छा और अनिच्छा का आदि और अंत है, उसकी समता किसी से नहीं की जा सकती।[2] वह ज्योति-स्वरूप है, साधु और सन्तों की आशा का केन्द्र है, वह अविद्या माया और अज्ञान को नष्ट करने वाला ज्ञान रूपी चन्द्रमा है।[3] वेदों में ईश्वर को वेदान्त अर्थात् ज्ञान का अन्त कहा गया है, वह दयासागर शन्तिपूर्ण और सत् चित् आनन्द स्वरूप है।[4] वह सभी का आश्रय है, अद्वय है, अरूप और अवर्णनीय है।[5] ईश्वर एक है सृष्टिकर्त्ता है। यद्यपि परमानन्द ने उसे गोपाल, गोविन्द, कृष्ण आदि नाम दिये हैं।[6] ब्रह्मा, शिव और केशव एक ही ईश्वर के भिन्न नाम है।[7] शिव नाम भी इसी को दिया है, वही ज्ञान-स्वरूप और आनन्दमय है। वही नवनिधियों और अष्ट सिधियों का स्वामी है। अमृत का आस्वादन किये हुए जीवों के लिए वह दयासागर है।[8] ईश्वर प्रकाशरूप है परन्तु वास्तव में वह सनातन सत्य है। वह देवताओं के

---

१. साकार रूप सुय सर्वकार आसान।
   निर्विकार आदि अंत रोज़ानो।—वही, पृ० ३०
२. दीश-काल रस्ति शीष-नाम-मसनंदो
   ईश-अनीश दूर अंत आदन।
   हिशर कुय न कुनि वे मानदो।—वही, पृ० ३५।
३. प्रकाश रूप आकाश पैवंदो।
   आश गाश चोन सिधन त् साधन।
   सिरियश्र मुकट घटश्र कासवनि यंदो—वही, पृ० ३४।
४. वीदव वखुनुख वेदांतये।
   दया सागर नित शाँतये।
   सत् चित आनंद अमृत घनय।।—वही, पृ० ११९।
५. सर्वाश्रये सर्वामये।
   अद्वय अच्यय अरूप अभये।
   अच्युत अमृत अलक्षणय।।—वही, पृ० १२५।
६. दृष्टा चय छुख त च्ये रोस्त दृश्य ने।
   गोविन्द गोपाल मुकुंद कृष्णो।
   सृष्टिकार त स्वदर्शनय।।—वही, पृ० १२८।
७. परमानन्द ओस पूज़ विस्तारान।
   ब्रह्मा ति गव केशवय।
   योहय शिव छुय त योहय नाराण।।—वही, भाग ३, सं० १९५८, पृ० ८।
८. सत चित आनंद विज्ञान रखो।
   रसपूर्ण परम सदा सिवो।
   दीने चान्य नव निध त अष्ट सिधो।
   जीवन हृदि करुणा निधौ।
   गलि गलि अमृत यिमव चवौ।—वही, पृ० १६३।

देव और प्राणियों के प्राण हैं।[१] शिव और शक्ति में भी भेद नहीं है, वही ब्रह्म है, वही शक्ति है, उसके नाम और रूप असंख्य हैं।[२] कोई ब्रह्म को शिव मानता है तो कोई शक्ति। वह अजन्मा है, प्रकाश-स्वरूप है, दिन के लिए सूर्य और रात्रि के लिए चन्द्रमा है।[३] जो इस सत् चित आनन्द रूप ईश्वर को जानता है वह कभी नहीं मरता है।[४] क्योंकि आत्मज्ञान से द्वैतभाव का नाश होता है।[५] वेदों में जो कल्पना ब्रह्म की की गई है वही परमानन्द ने भी स्वीकार की है, अतः वे उसे अनन्त, अनादि और सर्वात्मा मानते हैं। इसी कारण साधु-संत भी उसका आदि-अंत नहीं पा सकते।

जीव—परमानन्द जीव और ब्रह्म की सत्ता भिन्न मानते हैं परन्तु ब्रह्म प्रत्येक जीव के साथ है, जो जीव अनेकता और द्वैतभाव से ऊपर उठा हो वही उसको प्राप्त कर सकता है।[६] संसार एक नाटक है। वास्तव में मनुष्य को परम-आत्मा से एक होना चाहिए। वही सत्य तत्व है।[७] ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध भास्कर और उसकी किरणों के समान है, जैसे सूर्य की रश्मियां चहुँ ओर विकीर्ण होती हैं वैसे ही ब्रह्म के अंश जीव हैं परन्तु

१. प्रकाश मोख छुख आकाश भासान।
तत सत प्रकाश नित आसानो।
दीवन हंदि दीव प्राणियन हंदि प्राण।
—परमानन्द सूक्तिसार, भाग १, मास्टर जिन्दाकौल, सं० १९४१, पृ० ७२।

२. शिव शक्त अक त नाम रूप म्योन।—वही, भाग ३, पृ० ५९

३. शक्त वान्हस त शिवय।
ज़ाव कस त आव कवय।
निश त दिन शिशि तखय॥—वही, भाग ३, पृ० ६०।

४. सत चित आनन्द मये।
वाति तत्र मुयि मुयि।
वाजअतित यस न मुये।
मनि दुय कासवुनुय।
आसित आस वुनुय।
आसित आस वुनुय।
नाअसित भास वुनुय॥—वही, भाग २, पृ० ६०-६१

५. अनन्द वीदव वौनुमत छुख अनादये।
न द्वितीयोस्ति श्रुच़ हंदे प्रसादये।
सर्वात्मामय अति सर्वत उपाधये।—वही, भाग २, पृ० ७३।

६. सुय युस रुजिय सारिनय सूत्य
पानअ रूज़िथ तस लमहन कूत्य
लभि सुय युस रोजि मशरित ग्रंद—वही, भाग १, पृ० १३२।

७. पानस छु पानय मेलुनुय।
गिंदुना छु गुंदुन त गेलुनुय।—वही, भाग २, पृ० १७३।

अज्ञान के कारण इन दो में भेद दृष्टिगोचर होता है।[1] प्रत्येक जन्म में जीव ईश्वर का दास है, मनुष्य ब्रह्म की ही छाया में सर्वत्र रहता है।[2] जैसे वृक्ष में फल लगते हैं, फलों में बीज व्याप्त रहते हैं और पुनः वे फल बीज रूप में समा जाते हैं उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से आते हैं और पुनः ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं।[3] ईश्वर मायातीत है, वह जड़ और चेतन में व्याप्त है।[4] वास्तव में माया से हमें भिन्न तत्व दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे स्वप्न में स्वप्नकर्ता से भिन्न कोई और नहीं होता। फिर भी मनुष्य स्वप्न में रोता है, हंसता है वैसे ही माया ब्रह्म से भिन्न सत्ता या तत्व नहीं है। अज्ञान के कारण हमें यह भिन्न प्रतीत होती है।[5] परमानन्द पुनर्जन्म और कर्मवाद को स्वीकार करते हैं, उनके अनुसार जीव अपने कर्मों के फल भोगता है और कर्मों से ही नये जन्म का बीजारम्भ करता है। वह सत्यमार्ग को खोकर इधर-उधर भटकता है।[6] ईश्वर सत् चित् और आनन्द रूप है, सर्वगुण-सम्पन्न है और जीव गुणरहित है, वह सांसारिक सुखों के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता है क्योंकि उसमें आत्मप्रकाश नहीं है।[7] अहंकार के फलस्वरूप जीव उच्चावस्था से निम्नावस्था की ओर आता है और मन मोहग्रस्त हो जाता है।[8] जीव जब से जन्म

---

१. सुर्यय चौपार्य किर्णन वुछाना
सूर्यय छु पान किर्णव सानो।
कुकेरनन छय अविद्या नीशान।—वही, भाग २, पृ० ९६।

२. जन्म ज़न्म दास तसंजय छस बु आसान।
मेय रोस्त सुति छुनअ रोज़ानो।
पुरुषस छाया सत्य सूत्य पकान।।—वही, भाग २, पृ० ३१।

३. येमि कुलि मंज़ फल केंह नेरान।
सुय कुल फलस मंज़ आसानो।
तमि कुलि मंज़ मियि सुय फल फोलान।।—वही, भाग २, पृ० ३३३

४. मायातीतो छायि मतअ रोज़तम।
चराचर छुख न आर्चर बोज़तम।।—वही, भाग २, पृ० २२

५ ब्रह्म और माया दो नाही भासता।
स्वप्न विषे वेख है कोई वासता
क्यों रौंदा किस कारण हासता।।—वही, भाग १, पृ० ११३।

६. कर्मलोन नोव, प्रोण छुम लोननावान।
ब न आसित ववनावानो।
षव उलुमुत छुस पत त ब्रोंठ करान।—वही, भाग २, पृ० ८८।

७. त्रेगुणमय चय सर्वगुण आसान।
गुण रोस्त बुन केंह ज़ानानो।
इन्द्रिय सुख छुसन निर्द्र वूज़ान।।—वही, भाग २, पृ० ८८।

८. अहंकार बोड घटकार वालान।
आकाश पाताल पावानो।
मोहन छु मोह मूल मालवान दूकान।।—वही, भाग २, पृ० ८८

धारण करता है शारीरिक पीड़ाओं से ही ग्रस्त रहता है।[१] संसार में जितने भी सम्बन्ध हैं वे सभी व्यर्थ हैं, माता-पिता, भाई-बन्धु, संतान आदि पर आशा नहीं करनी चाहिए क्योंकि ये सभी काल के निर्दयी हाथों से मुक्त नहीं रह सकते।[२] यहाँ परमानन्द के दुःखी पारिवारिक जीवन की ओर भी संकेत मिलता है। जीव जैसी अवस्था में हो ईश्वर का ही है और ईश्वर ही उसकी रक्षा करता है, यही भाव परमानन्द ने भी व्यक्त किया है।[3] जीव का दुःख उसका अज्ञान है 'वह अपनी इच्छाओं का वर्णन करता है, उसमें बोलने की शक्ति नहीं है, ईश्वर ही उसे यह शक्ति प्रदान करता है।[४] जीव चेतन, बुद्धिवाला परन्तु मोहग्रस्त है। जन्म-जन्मान्तर में यह मोह छाया की भान्ति जीव के साथ लगा रहता है।[५] अतः उसे सत्यतत्व को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए परन्तु अपने अस्तित्व को मिटाकर नहीं।[६] जीव संसार में आता है और जाता है। यह आना और जाना मन की कल्पना है। सभी तीर्थ और पवित्र स्थान मनुष्य की आत्मा में ही स्थित हैं।[७] अतः जिसने सहजावस्था को प्राप्त किया हो उसे न किसी के मरने का दुःख है न उसके मरने से किसी को दुःख होना चाहिये अर्थात् वह सांसारिक राग-द्वेष से ऊपर है। वह इन्द्रियों को वश में करके विषय-विकारों को समाप्त करता है और मन और

---

१. ज़्यत क्या अर्ज़ुम त ह्यत क्या आस।
कफ वात वित तृष्णा त पिपास।।—वही, भाग २, पृ० ९७।

२. क्यूंच काल जब माज थर त सूरिम।
तिम गछित यिम दपुम भाय बंध छिम।
तिमति अपजीं त् अज़ैंम संतान।
चूंरन तिमन ति दिचनम सन तान।—वही, भाग २, पृ० ९८।

३. चौनुय ओन त चय अथ रटनस।
चाह ति चोनुय युद यिम फटनस।—वही, भाग २, पृ० ९८।

४. आर्तिस छु मुर्खुत मुच आसान।
वननस छु पननी सच आसान।
नत छुन वननुक सामर्थ में।
तिय वोन म्ये यिय वननोवुथस चे।—वही, भाग २, पृ० १०१

५. जीव युप्त मोह भ्रम चित आभास
प्रतिबिंब ज़न्म जन्मुक अध्यास।—वही, भाग २, पृ० १०६

६. पान र्राजत परमात्मा प्राव।
गलि युस पान तस ज्ञान क्या दाव।—वही, भाग २, पृ० १०४।

७. युन गछुन छुय चिन्मात्रा।
ज्ञानियस यी वुछुन यात्रा।
पननी छे वननी वारता।—वही, भाग ३, पृ० ५७।

बुद्धि का समन्वय करता है।[1] इस अवस्था के पश्चात्' सोहम' शब्द के ध्यान से ही जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है।[2]

जगत्—ईश्वर-रूपी हंस इस समस्त ब्रह्माण्ड-रूपी अण्डे की रक्षा नव औषधियों से करता है। ईश्वर एक है और अनेक होना चाहता है। इसी इच्छा से समस्त संसार का निर्माण हुआ है।[3] इस संसार-रूपी युद्धभूमि का राजा मन है। जो इसे विजय करता है वह इच्छाओं से इस असीम संसार को मापना चाहता है, उसकी विजय वापस लौटने में है अर्थात् जब मन संसार से निवृत्त होगा, वही उसकी विजय होगी।[4] संसार वास्तव में भ्रम है। सत् विचार से संसार-सागर को पार करना कोई कठिन कार्य नहीं है।[5] संसार भ्रम होने के कारण ही ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।[6] इससे पार पाने के लिए एक मात्र साधन ज्ञान है। जो मनुष्य ज्ञान की नौका से संसार-सागर को पार करता है वही वायु-सा स्वतन्त्र और दिवाकर-सा प्रकाशमान बन जाता है।[7] संसार में मनुष्य को मृत्यु का भय सदैव रहता है, इसी भय से वह नष्ट होता जाता है। यहाँ से मुक्ति पाना बड़ा

---

१. तस कुस मारि तम्र सु कस मरे।
यस प्रावि भरे सहज भाव।
पानस इन्द्रिय आयित करे, अंदर न्यबर सुर्यस ताव।
मन बोध शमुरित चित सुमरे। —वही, भाग ३, पृ० ३५।

२. मोह बांधवानस तोर्य मुचरिजे।
सोहम् कूजे मोकलव्यजे पान।
जमना जमनायि अपोर तर्यजे। —वही, भाग ३, पृ २६।

३. राज हंसस यस ब्रह्मांड अडय।
अखण्ड परिव तल छु हयत नव खंडय।
तसंदे बचतन् छि बचि बचनय।—वही, भाग २, पृ० १३३।

४. जग छु संग्रामा त मन छुय राज तमिकुय जेववुन।
वासना निर्वासिना ह्यत क्यत अप्रमाण मेनवुन।
छुन पत फेरन विन वन हान केंछा जय मनस। —वही, भाग ३, पृ० ७०

५. अमर पानो भ्रम संसार छुय।
आदि दीव बननुक चेय आधिकार छुय।
हाख रोस्तुय भवसर तार छुय।
सत विचार सत विचार। —वही, भाग ३, पृ० ८६।

६. भ्रम वुछत संसार, जान्यिजि क्या। —वही भाग २, पृ० १६७।

७. भ्राज़ि कौन प्रज़ि मंज़ युस युथ प्रावे।
संसार सागर तोरमुत नावे।
वाव ज़न पकवुन त सूर्य चमकनय।—वही, भाग २, पृ० १५६।

कठिन है।[1] संसार के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है। यह उस ब्रह्म का निकेतन है।[2] संसार के जितने भी सम्बन्ध है सभी व्यर्थ यहां न कोई अपना हुआ है। और न कोई साथ देने वाला ही है।[3] यह संसार मृगतृष्णा है।[4] यहां से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। इस मुक्ति का साधन है अपने को ईश्वर के अर्पण करना और सांसारिक वस्तुओं का त्याग। इसी में मोक्ष निहित है।[5] परमानन्द भी ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि हमें इस संसार-जाल से मुक्त करो।[6]

माया :—परमानन्द के अनुसार ब्रह्म और माया दो भिन्न तत्व नहीं दिखाई देते। माया की सत्ता उसी प्रकार भासित होती है जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न देखता है। उस स्वप्नावस्था में वह हंसता है, रोता है यद्यपि उसके अतिरिक्त वहां कोई नहीं होता।[7] माया का भास अज्ञान के कारण होता है। ईश्वर भी मायासहित है और सर्वत्र विद्यमान है। वह शरीर में है परन्तु शरीर से भिन्न। जैसे सूर्य के प्रकाश से ही छाया का भी भास होता है वैसे ही ईश्वर की सत्यता का भास माया से होता है। यदि प्रकाश न हो तो छाया नहीं होती, यदि ईश्वर की सत्यता न हो तो माया का अस्तित्व नहीं होता है।[8]

---

१. संसार ज़ाल नत कुस मोकलाविहे।
यम भय दम अकि पानय गलि है।
विमान प्राविथ तोति क्या सनय।—वही, भाग २, पृ० १४०।

२. संसार छुय द्वारा तमि संज़य।
तसुंदुय नगर तय तसंज़य नंज़य।
खानदान पान म्योन म्योन बसनय।—वही, भाग २, पृ० १२६।

३. नहीं हुआ है जगत् किसी का
होवे भी नाही।
साथ कोई नहीं आवे।
पात होवे दह, क्या चाचा क्या माम।—वही, भाग २, पृ० ८५।

४. मृगतृष्णा मुख जन को आखा।—वही, भाग १, पृ० ११४।

५. पान पुशराव तस पान पुशिरावान।
तस युस तस रोस्त छारानो।
जगतुक त्याग कर त ईश्वर तोषान।—वही, भाग २, पृ० ४४।

६. मोकलाव असियेमि संसार ज़ालय।—वही, भाग १, पृ० १२७।

७. ब्रह्म और माया दो नहीं भासत
स्वप्न विषे वैख है कोई वासता
क्यों रौंदा किस कारण हासता।—वही, भाग १, पृ० ११३।

८. मायायि सूतिग च शायि शायि आसान।
कायायि मंज त म्योन रोज़ानो।
सूर्य के आसन छाया छि भासान।—वही, भाग १, पृ० ७१।

माया शक्ति-शालिनी है। छाया के समान वह सूर्य के प्रकाश को आच्छादित करती है।[१] परन्तु ईश्वर पर उसका कोई वश नहीं चलता, वह मायातीत है।[२] जीव भी जब तक मोह और अज्ञान से पूर्ण होता है तब तक वह वास्तविकता को नहीं प्राप्त कर सकता। वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात जीव भी माया के वश में नहीं आता।[३] माया अवर्णनीय है। इसके रहस्य को पाना कठिन है क्योंकि विष्णु स्वयं ही माया-रूप है।[४] मद और मोह माया के ही अंग हैं।[५] जो इस काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का त्याग करता है वही संसार की माया को वश में कर सकता है।[६] विषय-विकारों की उत्पत्ति और विकास का श्रेय माया को ही है, अविद्या माया से ही मोह बढ़ता है और विश्वास समाप्त हो जाता है।[७] अतः अपने अन्तर के शिव का ध्यान करना आवश्यक है, शरीर में ही परमात्मा स्थित है, वह चित्रकार की माया का ही फल है कि हमें ये दो भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं।[८]

साधना-पक्ष—परमानन्द ने साधनापक्ष में गुरु, योग, भक्ति, प्रेम और ज्ञान को महत्त्व दिया है। परमानन्द के अनुसार आनन्द की प्राप्ति का एक मात्र साधन गुरु है, गुरुदीक्षा स्वीकार करना ही 'सोहम' है अर्थात् गुरु की शिक्षा से ममत्व की भावना का लय होता है और मैं वही (ब्रह्म) हूँ, का ज्ञान होता है।[९] मोह-रूपी अंधकार में विचार-रूपी चन्द्रमा है जिससे गुरु-शब्द-रूपी प्रकाश विकीर्ण होता है और उस प्रकाश में जीव

१. माया छि सूर्यस छायायिय छावान ।। —वही, भाग १, पृ० १५३।

२. मायातीतो छवि मत रोज़तम।
चराचर छुख त अर्चर बोज़तम ।। —वही, भाग २, पृ० २२।

३. म्ये सदरस वेषि मोह तेष शेहलान।
ज्ञान अमृत चत छि रोज़ाना।
तृप्त गामत्य मायायि छिनअ गहलान। —वही, भाग २, पृ० ५५।

४. विष्णु माया छन वननस यीवान।
लूक तन मन छिस छारानो।
विष्णय छु माया नैरि येलि ज़ानान। —वही, भाग २, पृ० ८७।

५. मद मोह मायायि हंदे वालान। —वही, पृ० ८९।

६. ज़गतच माया गलि पानस सान।
काम क्रोध लोभ मोह त्रावानो। —वही, भाग २, पृ० ९१।

७. यछि चानि छन तस पछ बड़ान।
अविद्या मनि छस मोह कडान ।। —वही, भाग २, पृ० १६६।

८. शिव शिव ध्यान निश मो च डल।
चम छय प्रकृत पुरुषस म बल।
कौर यि चित्रकार मायायि छल। —वही, भाग ३, पृ० ५७।

९. परमानन्द प्राव सोख तय सावय।
गोरु मोख मानुन छुय सोहंम ।।—वही, भाग २, पृ० १२२।

का हृदय प्रकाशित होता है।[1] जीव को तन और मन से सतगुरु का ध्यान करना चाहिए।[2] जो जीव गुरु के चरणों पर अपना मस्तक रखेगा वह इस आवागमन के चक्र से मुक्त हो जायेगा।[3]

योग—निर्गुण संतों की भान्ति परमानन्द ने भी योग को महत्त्व दिया है और षट्चक्र, नाद, बिन्दु, कुण्डलिनी शक्ति आदि का वर्णन किया है। कश्मीर के भिन्न भिन्न स्थानों से समता देकर परमानन्द ने षट्चक्रों का वर्णन रूपक में किया है।[4] और अनाहत नाद तथा स्वप्नावस्था और तुरीयावस्थाओं का वर्णन किया है।[5] अग्नि की उष्णता चन्द्रमा तक पहुंचती है और वहां के बर्फ को पिघला कर पृथ्वी पर वर्षा होती है और यहां फल-फूल विकसित होने लगते हैं।[6] यहां योग की प्रक्रिया का वर्णन है जिसमें श्वासों को वश में करके, कुण्डलिनी को जाग्रत करके चन्द्रमा (सहस्रार) तक पहुँचाया जाता है जहां से अमृत बूंद-बूंद में टपकता है। परमानन्द ने कुण्डलिनी शक्ति को माता और पंच प्राणों को उसकी सन्तान माना है।[7] नाद-बिंदु का वर्णन भी परमानन्द ने किया है।[8] इस योग से द्वैतभाव मिट जाता है और एकाकार होता है। अपनत्व को समाप्त किये बिना

---

१. मोह गचि संच हृन्दि विचार चन्द्रो।
   ग्वर शब्द प्रकाश पूरि पूरि हाव।
   प्रजलाव निश्चय म्योन हृदि मन्दरो।—वही, भाग ३, पृ० २३।
२. सोर्यज़े तन मन सतगुरु ध्यान। —वही, भाग ३, पृ० २६।
३. सत गुरु पादन शेर पुशरे।
   मारिथ दुवारअ सुमा ज़ाव। —वही, भाग ३, पृ० ३६।
४. ग्वड़ गणमत यारुक गणीश।
   दूर मो ज़ान रूज़िथ चे निश।
   मूलाधार द्वारुक महेश।
   ब्रह्मा युस सृष्टि करतार।
   स्वाधिष्ठान शुरायार।
   शठदल शन्मुख ज़न कुमार। —वही, भाग ३, पृ० ४८-४६-५०।
५. तति फोरुवन अनाहत नाद।
   स्वप्न अन्त तू सुशुम्नायि आद।
   तुर्या न तुर्यातीत समाध। —वही, भाग ३, पृ० ५६।
६. चन्द्र मंडलसओस तचर खसान।
   शशि कलि शीन विणलावानो।
   पृथिवियि वर्षण रत्य फल उपदान।—वही, भाग २, पृ० ४६।
७. माज्य कुण्डलिनी त शुर्य छिस पांच प्राणा।।—वही, भाग १, पृ० ६६।
८. नाद बिंदु योग ध्यान सुमरानो।—वही, भाग २, पृ० ७१।

आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता।[1] इस आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि के लिए इन्द्रिय-निग्रह भी आवश्यक है। जब जीव इन्द्रियों को वश में करके मन को केन्द्रित करता और धूलि की भांति अपनी इच्छाओं को छोड़ता है तभी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।[2] नवदल कमल के स्थान पर पहुँचने से सभी चिन्ताएं नष्ट होती हैं और जीवन-यात्रा सफल होती है।[3] योग के अतिरिक्त परमानन्द ने कर्ममार्ग को भी महत्त्व दिया है। उनके अनुसार कर्म की भूमि को कर्तव्य का बल देकर सन्तोष के बीज से आनन्द-रूपी फल की प्राप्ति होती है।[4] साधना के क्षेत्र में ज्ञान की भी आवश्यकता है, इसके बिना मनुष्य काल का ग्रास बन जाता है।[5]

बाह्याडम्बरों का विरोध :—अन्य संतों की भांति परमानन्द ने भी बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। जाति, वंश, कुल या स्तर पर मनुष्य को अभिमानी नहीं होना चाहिए। समस्त संसार परमतत्व से व्याप्त है। वह कर्मों का सुमार्ग जानता है और अपरिवर्तनीय है।[6] तंत्र-मंत्र का महत्व कुछ नहीं है। यह संसार बिना पुल के सागर की भांति है और इससे पार होने का एकमात्र साधन नामस्मरण है।[7]

ओंकार—साधना-पक्ष में परमानन्द ने ओंकार जप को केन्द्रबिन्दु माना है और

---

१. यी गव योग संयोग प्राप्त।
यव सूत्य द्वन बनि योग प्राप्त।
रावनय फल मा प्राववो।—वही, भाग २, पृ० १७३।

२. दिवरिस धारणायि दारि त्रोपर्यजे।
सारि कामनायि लछ जन त डुवान।
जानित देव देवरि उर्जयजे।—वही, भाग ३, पृ० २७।

३. तृप्त नव द्वार वात नव दल।
वातित चलिय जन्म चि वदल।
दीह यात्रा गयि यी सफल।—वही, भाग ३, पृ० ५७-५८।

४. कर्म भूमिकायि दिजि धर्मुक बल।
सन्तोष ब्यालि भवि आनन्द फल।—वही, भाग ३, पृ० ४०।

५. ज्ञान रोस्त पान कालस पान अपर।—वही, भाग ३, पृ० ६।

६. ना हो कुल गोत्र का मानी।
ना वर्ण और आश्रम।
प्रभु जिस का सब स्वरूप उसी का।
सब कर्मों का क्रम।
ना पावत परिणाम।—वही, भाग २, पृ० ८४।

७. ज्ञानय न मंतर तंतर त पाठय।
भवसागर कति सुम तय शाठय।
तार दिम नाव सुमरनय।—वही, भाग २, पृ०, १२७।

हृदय-मन्दिर में मन का दीपक जलाकर प्रणव-उपासना की शिक्षा दी है। जिससे 'मैं ब्रह्म हूँ' की भावना जाग्रत हो जाती है।[१] इसी ओम शब्द से गायत्री भी ईश्वर का जप करती है। इसके अतिरिक्त शम की साधना और ध्यान भी ईश्वर-प्राप्ति के अन्य साधन हैं।[२] प्राणयोग और ओमकार नाद से जीव अपने को निम्नावस्था से ऊँचा उठा सकता है और गुरु-शब्द से अपने भाग्य का परिवर्तन करता है।[३] वेद-शास्त्रों का अध्ययन श्रुतियों का स्मरण और कर्म की निष्ठा तब तक व्यर्थ है जब तक न ओंकार का महत्व जाना जाये।[४] ओम शब्द के जप से मन केन्द्रित होता है, कुम्भक-प्रक्रिया से योग की साधना निष्पन्न होती और मनन से आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है।[५] ओम शब्द ही आदि और अन्त है। यही जप का सार है। यही आत्म-ध्यान और मंत्रों का सार है।[६]

शमस फकीर

इनका नाम भी संत-परम्परा में आता है। इनका आविर्भावकाल १९वीं शताब्दी है। ये श्रीनगर के चिंक्राल मुहल्ला के निवासी थे। इनका जन्म सन् १८४३ में एक शाल बनाने वाले के घर में हुआ था।[७] इनका वास्तविक नाम मुहम्मद सिद्दीक भट्ट था। ये

---

१. सोहम जप जप जपौ ओमकार।
प्रणव उपासना करो निशि दिन का
मन का दीवा बाल।—वही, भाग १, पृ० ८४।

२. ओम शब्द गायत्री शक्त चेय ज़पान।
होम यज्ञ जप तप जग सानो।
शम दम यम नैम ध्यान धारणायि दान।—वही, भाग १, पृ० ७२।

३. प्राणापन योग सूत्य स्वर साग।
गुरु शब्द पाठ ललाट शोमर्यज़े।—वही, भाग २, पृ० २७।

४. वीद शस्तर त पुराण यच्च पर्य पर्य।
कर्म क्रम अभिमान सूत्य सच कर्य कर्य।
मानि युस बोज़ि बूज्य बूज्य श्रुचं पर्य पर्य।
तार छन तस तार तरि ओ त लो लो।—वही, भाग ३, पृ० ३१।

५. ओम के शब्दय धारणाथि धारुन।
कुम्भक योग अभ्यासीये।
शम्भू स्मृत पान विचारुन।—वही, भाग ३, पृ० ३९।

६. आदि अंत शब्द न मंज ओंकार छुय।
ज़पनय मंज़ अज़पा ज़प सार छुय।
ध्यान मंज़ आत्मुक ध्यान शोमिधार छुय।
धारणा धार धारणा धार।—वही, भाग ३, पृ० ८६।

७. शमस फकीर (उर्दू में), प्रो० शमसुद्दीन अहमद, प्रथम संस्करण १९५९, पृ० ५।

निर्धन परिवार में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने किसी शिक्षालय में शिक्षा नहीं प्राप्त की थी अपितु अपने पिता के पास ही धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण की थी। शमस फकीर के घर के वातावरण को ही हम उनकी आध्यात्मिक रुचि का उत्तरदायी मान सकते हैं। दस-बारह वर्ष की आयु में शमस फकीर को एक 'शाल बाफी' के कारखाने में भेजा गया जहाँ शमस साहब का परिचय अन्य सन्तों से हुआ। वहाँ का वातावरण भिन्न था। इसी कारखाने में कवि न्यामसाहब भी काम करते थे और वे भी चिक्राल मुहल्ला के ही निवासी थे। परिणाम-स्वरूप इन दोनों की घनिष्ठता बढ़ गई। न्याम साहब शमस फकीर से अधिक प्रेम करने लगे। न्याम साहब की रुचि भी कविता और आध्यात्मिकता में थी। इसी वातावरण से शमस फकीर का कवि-हृदय प्रभावित हुआ। इसके अतिरिक्त कवि स्वच्छकाल से भी इनका परिचय हुआ। श्रीनगर में और श्रीनगर से बाहर जो संत या सूफी फकीर थे उनसे इनका परिचय हुआ। मुहम्मद जामालुद्दीन ने भी चार वर्ष तक इनकी आध्यात्मिक रुचि तीव्र से तीव्रतर कर दी। शमस साहब का मन अन्य वस्तुओं में नहीं लगने लगा।

कमालुद्दीन साहब ने शमस फकीर को सांसारिक जीवन की ओर आकृष्ट करना चाहा परन्तु यह प्रयत्न निष्फल हुआ। शमस फकीर के हृदय में आध्यात्मिक रंग इतना गहरा था कि उतरने का नाम भी नहीं लेता था। अन्त में इनको २४-२५ वर्ष की आयु में अमृतसर भेजा गया जहाँ ये सन् १८६३-६८ में पहुँचे। और वहाँ मजकूरा साहिब मजजूब के पास रहने लगे। यह कहा जाता है कि बारह वर्ष तक उन्होंने साधना की और अन्त में उनकी मनोकामना पूर्ण हुई।[1]

कुछ समय पश्चात् शमस साहिब श्रीनगर पुनः लौट गए और अनन्तनाग में मुसमी अज़ीज़ भट्ट के निवासस्थान पर विश्राम करने लगे। इन्हीं अज़ीज भट्ट की पुत्री 'आइशा' से इनका विवाह हुआ। तत्पश्चात् वे अपनी पत्नी को भी अपने घर चिक्राल-मुहल्ला ले आये। घर आकर भी इनका मन नहीं लगा। अतः गुफा में रहने के लिए ये घर से निकल पड़े। शमस साहब छह महीने तक काज़ीबाग की एक गुफा में रहे।[2] इस समय बड़गाम ग्राम के गुलाम गोरु इनके सेवक रहे। इनकी प्रसिद्धि फैली और संतों में इनकी गणना होने लगी। तब से इन्होंने बड़गाम में ही कलशीपौरा नामक स्थान को अपने निवास के लिए उपयुक्त समझा।

शमस साहब की वेशभूषा भी संतों की-सी थी। वे ग्रीष्मऋतु में 'कश्मीर' नामक कपड़े और शीतकाल में 'पट्टू' का 'फिरन अथवा लम्बा चोगा पहनते थे जिसे कश्मीरी

---

१. कहा जाता है कि १२ साल तक शमस फकीर दरज़ेब पर जाँ बु
बसाई करते रहे फिर कहीं जाकर उमीद बर आई।
—शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद (उर्दू में) प्र० सं० १९५९, पृ० ८।

२. काज़ीबाग श्रीनगर में ही दामोदर की तलहटी में स्थित है और श्रीनगर से १०-११ मील दूर है।

भाषा में 'मुनुल' कहते हैं। ये घास के बने जूते पाँव में पहनते थे। यह साधारण वेशभूषा इनके गम्भीर व्यक्तित्व का आभास देती है।

इनके जीवन-काल में ही इनके शिष्यों की संख्या बढ़ती गई। श्रीनगर और बड़गाम में हैदरपौरा स्थान में शमसफकीर के शिष्यों की संख्या आज भी अत्यधिक है। सन् १९०४ अर्थात् १३२२ हिजरी में इनका देहान्त हुआ और इन्हें अपने घर के ही आँगन में दफना दिया गया।

शमस फकीर का युग—शमस फकीर के युग से पूर्व ही कश्मी से मुसलमानों का शासन समाप्त हो चुका था। चार सौ छियानवे वर्षों के पश्चात् फिर से हिन्दुओं को शासनाधिकार प्राप्त हुए थे।[1] कश्मीर में प्रथम सिख गवर्नर दीवान मोती राम सन् १८१९ में नियुक्त हुआ था। इसके शिक्षक पं० बीरबल दर थे। सन् १८३१ में रणजीतसिंह के पुत्र शेरसिंह ने कश्मीर के गवर्नर का पद ग्रहण किया। उससे पूर्व यहाँ भीमसिंह गवर्नर थे। सन् १८३९ में महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हुई तत्पश्चात् पंजाब का शासक शेरसिंह बन गया। सन् १८२० में गुलाबसिंह को जम्मू का शासक बनाया गया था अतः इस समय उन्हें बड़ी भारी सेना लेकर कश्मीर भेजा गया, जब वातावरण शांत हुआ तो शासक द्वारा शैख मुहीउद्दीन को कश्मीर का गवर्नर बनाया गया।

सन् १८४३ में जेहलम घाटी में 'बम्बास' जाति द्वारा संघर्ष हुआ, उनके नेता ज़बरदस्तखान को श्रीनगर की जेल में डाल दिया गया था, प्रतिशोध लेने के लिए बम्बास जाति के ही शेर अहमद ने काहोरी नामक स्थान पर सात सहस्र सिख सैनिकों को समाप्त किया। आरम्भ में गुलाबसिंह भी लोकप्रिय शासक नहीं थे परन्तु अंग्रेजों की सहायता से उन्होंने सन् १८४६ में कश्मीर पर शासनाधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया।[2]

गुलाबसिंह कई दृष्टिकोणों से पूर्ण सनातन धर्मी थे। उन्होंने जम्मू में अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया और संस्कृत भाषा और साहित्य का प्रचार करने के लिए जनता का उत्साह-वर्धन किया। सन् १८५७ में ६५ वर्ष की आयु में महाराजा गुलाबसिंह की मृत्यु हुई। सन् १८४६ से ही कश्मीर पर डोगरा शासन आरम्भ हुआ था। कश्मीरी पंडितों को शासन के उच्च पदों पर नियुक्त किया गया था। इसी वातावरण में शमस फकीर का आविर्भाव हुआ है।

---

1. "Thus Kashmir after a long period of 496 years passed again from the Mohammadans to Hindus."
   The Kashmiri Pandits. Pt. Anand Koul, Ist Edition, Page 65.
2. Kashmir. G. M. D. Sufi, Ist Edition 1948, Page 777.

शमस फकीर की रचनाएँ—शमस फकीर की कविताएं दो भागों में प्रकाशित हैं : प्रथम में अट्ठाईस तथा द्वितीय में बत्तीस गीत हैं। इन दोनों भागों में पदों की संख्या १०८२ मानी जाती है। कलशीपोरा ग्राम के असदमीर साहब ने शमस फकीर की कविताओं को गुप्त रखा था परन्तु अब उनकी मृत्यु हुई है तब इनकी रचनाएं प्रकाश में आ गई हैं। स्वोन म्वोत नामक एक संत का कथन है कि शमस फकीर के जीवन-काल में ही इनकी रचनाएँ भागों में विभाजित की गई थीं : एक में इनकी संस्कृत शब्दावली से पूर्ण गीत थे और दो दूसरे में कश्मीरी गीत। ये दोनों भाग कलशीपोरा नामक स्थान में शमस फकीर की मृत्यु के पश्चात् भी उनके घर में थे।[1] इन पाण्डुलिपियों की नकल वहीं अहमदडार नामक एक मनुष्य के पास भी थी। नकल की प्रतियों का क्या हुआ, यह ज्ञात नहीं है। संस्कृत से प्रभावित गीतों की पाण्डुलिपि एक ब्राह्मण ने ढाई सौ रुपयों में तथा गीतों की प्रति बारामुला ग्राम के किसी जैलदार साहब ने पांच सौ रुपयों में क्रय की थी।

शमस फकीर की कविता उच्चकोटि की आध्यात्मिक अनुभूति से परिपूरित है। बाह्याडम्बरों में उनका विश्वास नहीं था, वे माला फेरने के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार माला फेरने से वास्तविक मणियाँ खो जाती हैं और कृत्रिम मोती रक्षित रहते हैं। यह कहाँ की बुद्धिमानी है ? पवित्रता के लिए अपने मन को वश में करना उन्होंने स्वीकार किया है। मन की सहस्रों इच्छाओं को कुचल डालने में ही जीवन की वास्तविकता है। वे आध्यात्मिक प्रकाश में लय होना चाहते हैं। उन्होंने गीतों की रचना की है। उनकी भावनाओं में एक प्रकार की मस्ती है, दीवानापन है परन्तु कहीं-कहीं विचारों में उलझन भी है। लोग इनकी कविताओं को सुन कर झूम उठते हैं।[2]

शमस फकीर की कविता में विचारों की ऊँचाई है। जन्म-मरण के चक्र को मिटाकर वे मुक्तावस्था में विचरण करना चाहते हैं। इनके अनुसार प्रेम-मार्ग पर वही आगे बढ़ सकता है जो 'स्व' को मिटाये।

इनकी कविताओं में ओज और गति है, भावुकता और वास्तविकता है। कई कविताओं में सादगी और लय अत्यधिक है। इन्होंने संस्कृत और फारसी शब्दों का भी

---

१. स्वोन म्वोत साहब के बयान के मुताबिक शमस साहब का कलाम उनकी ज़िन्दगी में दो बयाज़ में मुरतब हो चुका है, एक बयाज़ में उनकी संस्कृत आमीज़ गजलें हैं, यह दोनों बयाज़ शमस साहब की वफात के बाद भी इनके घर पर कलशीपोरा में मौजूद थीं।

—शमस फकीर : प्रो० शमसुद्दीन अहमद (उर्दू में) प्र० सं० १९५९, पृ० ११।

२. शमस फकीर का कलाम गज़लियात पर मुशतमिल है, तख़्ख़ल और जज़्बात में एक गौना दीवानापन है। बाज़ ख्यालात और मुज़ामीन उलझे हुए हैं या फिर शायद हमारी ही समझ में नहीं आते। लोग इन पर झूमते हैं।

—कश्मीरी ज़बान और शायरी (उर्दू में): अब्दुल अहद आजाद, प्र० सं० १९६३, पृ० ३४२।

प्रयोग किया है।

शमस फकीर की दार्शनिक विचारधारा—

ब्रह्म—संत कवि शमस फकीर की विचारधारा, जो उनके काव्य में व्यक्त हुई है, कश्मीरी और हिन्दी के अन्य संत कवियों की विचारधारा के समान है। इन्होंने भी ब्रह्म को चाहे वह रहीम हो, रमज़ान हो या और कोई, सर्वव्यापक और सर्वत्र माना है, ब्रह्माण्ड का कोई कण उसके अस्तित्व के बिना नहीं है।[1] वह अथाह है। अज्ञानी इसकी थाह नहीं पा सकते हैं। इस रहस्य को समझना सरल नहीं है, ज्ञानी ही इसको समझ सकते हैं।[2] ब्रह्म सृष्टिकर्त्ता है। इस कुलाल-रूपी ब्रह्म ने विभिन्न रंगों के अनन्त पात्र-रूपी जीवों का निर्माण किया है। उनमें कई कच्चे (अज्ञानी) और कई पक्के (ज्ञानी) हैं। ब्रह्म एक है। उसका नाम क्या है? उसके रहस्य को जीव नहीं जानता।[3]

वह बीज के रूप में सब में व्याप्त है।[4] कण-कण में वह समाया है, वह अन्धेरे और प्रकाश से मिला हुआ है।[5] ब्रह्म सत्य है उसी से संसार की उत्पत्ति हुई है, वह वाणी से परे है। मस्त प्रेमी उस ब्रह्म के साथ सदैव रहते हैं। वह ब्रह्म यहां भी है और वहां भी है।[6] आध्यात्मिक रहस्य को वे मनुष्य नहीं जान सकते हैं जो बाह्याडम्बर का पालन करते हों। शेख मन्सूर ने ही ब्रह्म को पहचान लिया था, उसने सूफियों की मारिफत अवस्था में पहुँचने से पूर्व की अनलहक (अहंब्रह्मास्मि) कहा था।[7] ब्रह्म-रूपी सूर्य

---

१. म्ये वुछ हर शायि सु यार।
छुनअ कांह सोय ति खअली।—कविता १५, पृ० ५२।

२. सौदुर छुय सनि खौत सौन,
महीथ कव ज़ानि ओन।
सहल छा मानि बोज़ुन, तिबोज़न गाटल्यी।—कविता १५, पृ० ५४।

३. अनि कालन बान' थुरि स्यठाह।
रंग रंग तथ अन्थ क्याह।
सअरिय छि पौख्त ब व्रास ओम।
अनि कुनिरन क्याह च्युत जलाव।
तस कुनिसय क्याह छु नामा।—कविता १४, पृ० ५०।

४. मगज़ि वहदत छाव कामिलो।—वही, कविता १२, पृ० ४६।

५. ज़रह जरातकिन छुन तीलिथ, गटि नाशस सूत्थ मीलिथ।
ज़ूनि गिन्दान खूने जिगर चोम॥—वही, कविता ४, पृ० २८।

६. सत निश दरियाव पैद गव तथ ला निहायतस छन ज़्यव।
आरिफ छु तथ सूत्य हर दमे, येति सुय कुमै तति सुय छुमै॥
—वही, कविता १३, पृ० ४८।

७. आबिद त जाहिद छि अथ निथ ज्यनय।
कहिद छु अन्युक शेख मन्सूर।
अनातम्य दोपनम मर्यफत चनय।
बो क्या वनय यी गवज़हूर॥—वही, कविता ११, पृ० ४४।

के सामने जीव के मन का सन्देह-रूपी अन्धकार नष्ट होता है और ब्रह्म का प्रकाश व्याप्त हो जाता है।[1] 'हयात, ममात और जगत' नाम किसको दिया जाये, उसका न शरीर है, न रूप है। वह अकेला सत्य तत्त्व है। उसका उद्‌भव क्या है? और उसको कौन-सी वस्तुएं व्यक्त करती हैं, यह हम नहीं कह सकते।[2] जीव को यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिए कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसी भावसे जीव का विषय-विकारों से मैला मन-रूपी दर्पण प्रकाश वाला बन जाता है।[3]

जीव—शमस फकीर जीव को ब्रह्म के साथ ही शून्यावस्था में वास करनेवाला मानते हैं और जीव को ब्रह्म से अलग हुआ मानते हैं क्योंकि जीव संसार में अन्य असंख्य जीवों के साथ रहता है।[4] संसार में जीव उत्साह से रहता है। जीव ब्रह्म का अंश है। जैसे नदी से छोटे-छोटे झरने निकलते हैं और नदी-जल के कणों में व्याप्त रहते हैं वैसे ही ब्रह्म जीवों में व्याप्त है परन्तु साधारण जीव इस रहस्य से अपरिचित है।[5] जीव की अलग से कोई सत्ता नहीं है। देव, दानव, मनुष्य और फरिश्ते का अन्तर कुछ नहीं है।[6]

---

१. आफताब बे मिकदारह तलय।
शक त शुबह रूदुम न कुलय।
लानिहायत जहूर छाव्योम।।—वही, कविता ४, पृ० २८।

२. क्याह छु ह्यात क्याह छु ममात, कथ चीजस कर ब नाव जात।
छुस न जिस्म न जवहरै तिम गछिथ छि तिहन्दे गरै।
आव वजूद शहूद पत्थर सर गछिय तिहुन्द कुन्यर।—वही, कविता २, पृ० २४।

३. लाइ ल्लाह इल्लाह सर चय करतन नफी इस बातै।
लय कर खय चली दिलि आईनस सपदख बीनादार।।
—वही, कविता ३, पृ० २४।

४. शिन्याह गछिथय ओस म्योन ओलुय।
अमि अशक नारन ज़ोलुये।
गनिरस ओवनम रोनि मज़ोलुय।
ओन्य ओन्य बोज़ाना चास।
—काशिर शायिरी, महीउद्दीन हाजिनी, १९६० पृ० १०३।

५. दरियावस छय जोयि नेरान, दरयाव कतरस मन्ज़ छु इरने
तमिची खबर केंह छुय न आमन।
—शमस फकीर, कविता ६, पृ० ३२।

६. बो छुस केंह नय खुद पानय, बों केंह नय कस वनय पानय।
वुछुम ओरह केंह न योर केंह नय।
न छुस मलक न छुस जिनयात। न छुस इन्सान आदम जात।।
—वही, कविता ७, पृ० ३६।

ब्रह्म आदि, अनादि और अनन्त है, वह पूर्व और पश्चिम में व्याप्त है, वह स्वतन्त्र है। सिकन्दर भी है और सुलेमान भी।[१] जो जीव अपने 'स्व' और 'अहं' को मिटा कर ब्रह्म के सामने नतमस्तक होगा वही उसका साक्षात्कार प्राप्त कर सकता है, उसी के लिए आध्यात्मिक द्वार खुल जाते हैं।[२] ब्रह्म संसार की सीमा से परे है और जीव जन्म-मरण के चक्र में फँसा है।[३] जीवों को शमस फकीर ने भिन्न कोटियों में विभाजित किया है। एक कोटि के जीव प्रेम में मस्त रहते हैं, द्वितीय कोटि के जीव धर्म के बाह्याडम्बरों में रत रहते हैं और तृतीय कोटि के जीव अज्ञानी होते हैं।[४] जो जीव जीवित ही स्वयं को मृतक समझते हैं, 'स्व' और 'अहं' का त्याग करते हैं वे स्वाभिमानी-प्रेमी ब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं।[५] जहाँ सत् के स्रोत से निर्मल अमृत निर्झरणी प्रवाहित होती है वहीं जीव की सत्ता ब्रह्म-सत्ता में लय हो जाती है।[६] यह स्थान शून्य से भी परे है।

संसार—शमस फकीर के अनुसार संसार व्यर्थ है, झूठ है, अस्थिर कौवों की बारात की भाँति है।[७] सांसारिक बन्धन सभी व्यर्थ हैं, झूठे हैं, यहाँ कठिनाई पड़ने पर कोई साथ नहीं देता है।[८] अतः संसार से निवृत्त होकर अपनी इच्छाओं को वश में करना

---

१. ब खोद शमस ब खोद सिकन्दर।
ब खोद सरमद त खोद खावर।
ब बोड आजाद सुलेमानय॥—वही, कविता ७, पृ० ३६।

२. बो हा सिर शमस फकीर वनय।
सर त्राव पत्थर दर मखमूर।
सूय अचि यस तति बर मुचरनय।
वो क्याह वनय ई नव ज़हूर॥ —वही, कविता ११, पृ० ४४।

३. फर्ज दाइम करतन सरयतिम गछिथ तिहन्दै गरै।
युन त गछुन मो मोशरै, तिम गछिथ छि तिहन्दै गरै॥—वही, कविता २, पृ० २२

४. केंचन पेमच अशकन्य तबर।
केंह वाज़खान छी बेखबर।
पीर्यन खसिथ पर्य पर्य किताब॥—वही, कविता ५, पृ० ३०

५. ज़िन्द मर पान छुय सहलो।
रिन्द छुय आशक ज़िन्द मूमती।
दोपनम मरिथ थोद तुल कलो।—वही, कविता १२, पृ० ४६

६. सथ दरियाव द्राय निर्मलो, तथ मंजिलह राक्मि स्य ब्रांती। शिन्या छु तति पायन तलो।—वही, कविता १२, पृ० ४६

७. हज़रति हअदियन आदी दोपुनम।
दुनिया छु काव येनिवोलुये।
—काशिर शायिरी, महीउद्दीन हाजिनी, १९६०, पृ० १०३

८. यार बोय अशिनाव नो छु कांह
तिम छि सअरिय बेवफा।—शमस फकीर कविता १४, पृ० ५०

चाहिए।[1] चिन्ता और 'ज़िकिर' को वश में करने से इस संसार-सागर को पार किया जाता है।[2] तभी परमतत्त्व का ज्ञान प्राप्त होता है। वह स्थान वीरों का है जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और मन को वश में किया हो, वहाँ संसारी कायर जीव नहीं पहुँच सकते।[3]

माया—शमस फकीर की जितनी कविताएँ उपलब्ध हैं उनमें माया का संकेत केवल एक स्थान पर ही आया है जिससे यह संकेत मिलता है कि जीव माया के पाश से संसार में बंध जाता है।[4]

साधना-पक्ष—गुरु : ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए या आध्यात्मिक रहस्य जानने के लिए शमस फकीर गुरु को आवश्यक मानते हैं। गुरु को सदैव साथ रखकर उससे पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए क्योंकि जीव आध्यात्मिक सरिता का कोलाहल तो सुनता है परन्तु बिना ज्ञान के इसे पार नहीं कर सकता।[5] ईश्वर का रहस्य गुरु ही बता सकता है, वही इस रहस्य का मालिक है। जीव को जब गुरु का मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त होता है तो वह 'स्व' में ही परमात्मा का साक्षात्कार करने लगता है। गुरु जब आध्यात्मिक वास्तविकता का रहस्य कि ब्रह्म आत्मा में व्याप्त है—बताता है तब से जीव अपने श्वासों के ज़ीरों-बम (आरोह-अवरोह) में उसका अन्वेषण करता है।[6]

इच्छाओं का वर्गीकरण—मनुष्य इच्छाओं का दास है। इच्छापूर्ति में उसे आनन्द आता है परन्तु वह आनन्द क्षणिक है—सांसारिक है। वास्तव में इच्छा-शक्ति ही मनुष्य

---

१. तरकि दुनिया कर दुनियादारो, बुनियाद गयि छिवलये।
—वही, कविता ३, पृ० २६

२. फिकिर त ज़िकिर दिल वस वस चौलुम।
तार लोगुम दरयावसय।—वही, कविता १, पृ० १८

३. ज़िकिरअ अज़कार निशि असरार बूज़िम।
तन मन कन थाविमसय।
गेर दिथ तथ शायि शेर छि आसान।
तौर छिन वातान शाल।।—वही, कविता १, पृ० १८

४. दर्शन रायो मायो वोलेहस।
वायुन छु ज़िकिर इन्ति काल।।—वही, कविता १, पृ० १८

५. बोज़ दरियायि मसीतुक शोर,
बेपय नौ तरख अपोर,
सूत्य सूत्य ह्यन रह बरै।—वही, कविता २, पृ० २४

६. शमस फकीर मुशताक पनन्यन दमनय।
पीरन बोवनय सिर इसरार।
सिरे पिन्हान रोट ज़ीरों बमनय।—वही, कविता ८, पृ० ४०

को निचोड़ डालती है और अन्त में नष्ट करती है।[1] इन्द्रियों को वश में करने से इहलोक और परलोक में मनुष्य सफल होता है। वही सृष्टि का रहस्य प्रकट करके स्वयं ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।[2] स्वयं जीव शक्तिशाली बनता है।[3]

बाह्याडम्बरों का विरोध—ब्रह्म-प्राप्ति के लिए बाह्याडम्बर का त्याग, इन्द्रिय-निग्रह और विषय-विकारों का वशीकरण आवश्यक है, तभी 'शरीयत' अवस्था का पालन होता है और ब्रह्म का मिलन होता है।[4] रात-दिन माला फेरना व्यर्थ है, उससे वास्तविक मोती खो जाते हैं और जीव कृत्रिम मोती के पीछे पड़ते हैं अर्थात् धर्म के वास्तविक रूप का पालन करना चाहिए।[5]

योग—शमस फकीर के काव्य में भी यौगिक शब्दावली उपलब्ध होती है जिससे यह ज्ञात होता है कि शमस फकीर भी योगसाधना के पक्ष में हैं। छह द्वारों को बन्द कर शशिकल की ध्वनि का श्रवण करना चाहिए, यह ज्ञानियों का काम है।[6] ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए ज्ञान और हठयोग-द्वारा अपने प्राणों को वश में करना आवश्यक है।[7] मनुष्य को कर्मयोगी बनकर बुद्धि से कार्य लेना चाहिए क्योंकि मनुष्य जो बोता है वही फल पाता है। दोनों ऋतुओं में एक प्रकार का बीज बोना व्यर्थ है, अपने-अपने समय पर ही सब कार्य शोभा देते हैं। इसी कारण प्रेमी भी शीत और ग्रीष्म से नहीं घबराता।

---

१. ज़िकिर अनफास निश मन म्ये शाद गोम।
ज़िकिर हबस नफस छुय यसय।
ज़िकिर फरज़ि दअइम कअइम सपदुम।
सपदुम दज़िथ पेयम सअरिथ ख्याल।—वही, कविता १, पृ० १८

२. कनन थव कन सही रठ मन।
वह्य सपदी च्य दोन आलमन।
बनख आरिफे यज़दानय।।—वही, कविता ७, पृ० ३४

३. चठ नफसस सारी कलो, खट कशफ त करामोचय।
शाह सपदख बनख अहलो।—वही, कविता १२, पृ० ४६

४. जुनार ज़ालतन शार्यत पालतन शरारत त्राव चख दुय।
हक शनास सपदख शक त्राव बोंठ पख बावनय सीरि इसरार।।
—वही, कविता ३, पृ० २४

५. हा ज़ाहिद क्याह छुख च करान।
राथ दोह गोय तसबिह फिरान।
मोख्यत रावी फोतस रछिथ ज़ोम।।—वही, कविता ४, पृ० २८

६. शे पाश त्रोपरिथ शशिकल वुज़ुम।
इशराह तमिकुय छुय हुशियारन।।—वही, कविता ६, पृ० ३२

७. ज़ानवन्य ज़ानकर प्राणस ज्ञानस।
ज़ान मिलनाव भगवानस सूत्य।।—वही, कविता १६, पृ० ६८

अपने कर्ममार्ग पर रत रहता है : यद्यपि इस संसार में मानव-जीवन दुःखपूर्ण है।[1]

प्रेमतत्त्व—शमस फकीर ने आध्यात्मिक मिलन के लिए प्रेमतत्त्व को महत्त्वपूर्ण माना है और ब्रह्म को कहीं प्रेमी[2] और कहीं प्रेमिका[3] का रूप भी दिया है। साहस और प्रेम आध्यात्मिक मिलन की सीढ़ी हैं। प्रेम की स्निग्धता से सारे बन्धन टूट जाते हैं और आध्यात्मिक द्वार खुल जाता है।[4] प्रेमी प्रेम की मदिरा पीकर मदिरालय में ही रहता है।[5] इस प्रेमाग्नि से शरीर तप्त होता है और ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश नेत्रों के सामने आता है। प्रेमी मर कर भी अमर रहते हैं।[6] प्रेमी की उत्कट लालसा ब्रह्म के साक्षात्कार की होती है।[7] कवि ईश्वर-रूपी प्रेमी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करता है। प्रेम के लिए सौन्दर्य एक आकर्षण है तभी ईश्वर को भी 'ज्योति स्वरूप' या 'नूर' माना जाता है।

शमस फकीर ने कविता संख्या नव और दस में ईश्वर को नारी-रूप में लेकर उसके शारीरिक सौन्दर्य का निरूपण किया जो उन पर सूफीमत का प्रभाव सिद्ध करता है। प्रेम में तभी सफलता प्राप्त होती है जब ब्रह्म-स्मरण से मन को स्वच्छ करके अपनी

---

१. यी ववख सोंत त ती ववख हरदस।
फिकिरि सूत्य कर ज़िकिरि हंज मूलमाय।
कथ खोचि आशक गर्मस त सर्दस ।
दर्द किस पर्दस तल छम जाय।।
—काशिर शायिरी, महीउद्दीन हाजिनी, १९६०, पृ० १०५

२. (अ) बालयारो न्यूथमों दिले, दोन लालन ह्यथ कमती।
—शमस फकीर, कविता १२, पृ० ४६
(आ) मज़ि मोत मान्ज़ लागिथ द्राव नमनय, कमनय कमनय हाविदीदार।
—वही, कविता ८, पृ० ३८

३. अय माशोक नाज़नीय गाह तु बर मन बाज़ ब बीन।।—वही, कविता ९, पृ० ४०

४. ज़िकिर अरर निश बर मुचरन आम।
हंकलि गोम ठस ठसय
उलफत सूत्यन कुलफ मुचरन आम।
जुल्फस मंज़ वुछुम खाल।।—वही, कविता १, पृ० १८

५. दरस वन म्य च्यव अशकुन शराब।
मस्तान मस गोस दर खराब ।
गोशे जिगर सोख्त नकिश आब।।—वही, कविता ५, पृ० ३०

६. अम्य अशक नारन जोलनम बदन।
वरतवि आफ़ताव प्यव शचमन।
मरिथ मरतब जिन्दय रिन्दन।।—वही, कविता ६, पृ० ३२

७. दियिना दर्शुन यियिना बमनय, ललि म्ये लोसम रूज़िथ बेदार।
नालमति रटहन त रोय छुमनह समनय।।—वही, कविता ८, पृ० ३८

आत्मा में ही ब्रह्म का भास होता है, इस प्रेम पद में ब्रह्म के दर्शन स्वयं में ही होते हैं।[१] इसमें 'स्व' को समाप्त करना पड़ता है।[२]

कृष्ण राज़दान

कृष्ण राज़दान का जीवन—कृष्ण राज़दान जिला अनन्तनाग के वनपुह नामक ग्राम में उत्पन्न हुए हैं। इनका जन्म सन् १८५० है। ये गृहस्थ होते हुए भी त्यागी साधु थे। ये प्रवृत्ति में निवृत्तिपरक रुचि वाले थे, इन्होंने आध्यात्मिक शिक्षा पं० मुकन्दराम तिकू से प्राप्त की थी। इनके शिष्यों में श्री कण्ठ कौल शराबी[३] और श्री वासुदेव राज़दान प्रसिद्ध थे। कृष्ण राज़दान की रुचि संगीत में अत्यधिक थी जिसका आभास इनकी कविताओं में मिलता है। कृष्ण राज़दान की मृत्यु पचहत्तर वर्ष की आयु में अर्थात् सन् १९२५ में हुई। श्री रघुनाथ दर और अब्दुल अहद आज़ाद का कृष्ण राज़दान की मृत्यु पर मतभेद है। श्री रघुनाथ दर[४] के अनुसार संवत् १९८४ वि० में इनका देहान्त हुआ और श्री अब्दुल अहद आज़ाद[५] संवत् १९८२ विक्रमी में मानते हैं।

कृष्णराज़दान की रचनाएँ—कृष्णराज़दान कश्मीरी भाषा के प्रमुख कवियों में से हैं। कवि परमानन्द के साथ-साथ इनका भी नाम आता है। इनकी प्रसिद्ध दो रचनाएँ 'शिवपरिणय' और 'शिवलग्न' हैं जो रायल ऐशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित हैं। इनकी कविताओं में भावुकता है। इनकी कविताओं में सबसे अधिक संगीततत्त्व है। इनके गीतों में लय और ताल उपयुक्त होने के कारण कश्मीरी नारियाँ इन्हें विवाहादि उत्सवों पर गाती हैं।

कृष्णराज़दान के काव्य की भाषा कश्मीरी हिन्दुओं की भाषा है, अरबी, फारसी शब्दों की बहुतायत इनके काव्य में नहीं है। संस्कृत शब्दों का बाहुल्य और मुहावरों का आधिक्य इनकी कविता की विशेषता है। इनके भाव कविताओं में स्पष्ट और सीधे हैं। कृष्णराज़दान की कृति शिवपरिणय को जार्ज ग्रियर्सन ने एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल से सन् १९२३ में प्रकाशित किया है। महामहोपाध्याय मुकुन्दराम शास्त्री ने कृष्णराज़दान की कविताओं का संस्कृत रूपान्तर किया है जो मूल पाठ के साथ ही

---

१. ज़िकिर हरतन सूत्य दरपन सपदुम।
हर छुम नाली नाल।
ज़िकिर हिन्दारस अशक दरबारस।
दर्शन दारितल छुसय॥—वही, कविता १, पृ० १८

२. फना फिलरसूल निश तना सौख्य प्योम अनत।—वही, कविता १

३. शराबी कश्मीरी पंडितों की एक जाति का नाम है।

४. संत माला, श्री रघुनाथदर (उर्दू में), सं० १९६३, पृ० १०९।

५. कश्मीरी ज़बान और शायरी (उर्दू में) : अब्दुल अहद, आज़ाद, द्वितीय भाग सन् १९६२, पृ० ४२२।

प्रकाशित है ।

कृष्णराज़दान का युग—कृष्णराज़दान के जन्म से पूर्व ही कश्मीर पर डोगरा शासन् सन १८४६ में स्थापित हो चुका था। कश्मीरी हिन्दू उच्च पदों पर कार्य करते थे। गुलाबसिंह सदैव जनता की प्रार्थना सुनते थे परन्तु धन के प्रति उनकी विशेष रुचि थी जिसका कारण यह था कि उन्होंने कश्मीर घाटी को पचहत्तर लाख रुपये में क्रय किया था। गुलाबसिंह हिन्दू संस्कृति और धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धालु थे। कश्मीर में गौहत्या को उन्होंने ही निषिद्ध ठहराया और धर्मार्थ-विभाग की स्थापना की। इनके शासन में जम्मू और कश्मीर में अनेक मन्दिरों का निर्माण किया गया। गुलाबसिंह के पश्चात् कश्मीर का शासन राजा रणबीरसिंह के हाथ में पूर्ण रूप से आया। इनके राज्यकाल में लोगों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ। शासन-पद्धति और खेतीबाड़ी के कर में सुधार किये गये। व्यापार की उन्नति हुई, यातायात के लिए सड़कों का निर्माण किया गया, उद्योग-धन्धों और शिक्षा को प्रोत्साहन मिला। डा० बूल्हर इन्हीं के राज्यकाल में सन्१८७५ में कश्मीर में संस्कृत पाण्डुलिपियों का अन्वेषण करने आये थे।[1] जम्मू का रघुनाथ मन्दिर रणबीर-सिंह की धर्म और शिक्षा की रुचि का प्रतीक है। सन् १८७९ के अकाल से यहाँ की जनता को भीषण कष्ट भोगना पड़ा। रणबीरसिंह ने मुसलमानों को भी धार्मिक स्वतंत्रता दी थी। सन् १८७२ में शिया और सुन्नी मुसलमानों में संघर्ष इन्हीं के समय में हुआ।[2]

रणबीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् शासन-सूत्र प्रतापसिंह के हाथ में आया, इस युग में बेगार को समाप्त किया गया। व्यापार, शिक्षा और स्वस्थ जीवन की ओर ध्यान दिया गया। गृहउद्योग की उन्नति हुई। इस प्रकार कृष्णराज़दान के जीवन-काल में कश्मीर का शासन-सूत्र क्रमशः गुलाबसिंह, रणबीरसिंह और प्रतापसिंह के हाथ में रहा।

कृष्णराज़दान के दार्शनिक विचार—कवि कृष्ण राज़दान की कविता में निर्गुण और सगुण दोनों विचार-धाराओं का आधिक्य होने के कारण हम इन्हें दोनों वर्ग के कवियों में लेते हैं। कभी कवि मनमोहन कृष्ण का गुणगान करते हैं और कभी निर्गुण परब्रह्म का। यहाँ हम केवल उनकी निर्गुण-सम्बन्धी विचारधारा का ही उल्लेख करेंगे।

सिद्धान्त पक्ष—कृष्णराज़दान ईश्वर को निराकार मानते हैं, जो जाना नहीं जा सकता परन्तु कवि उसके प्रति नतमस्तक होते हैं।[3] ईश्वर आनन्दस्वरूप है, शिव और केशव उसी के दो रूप हैं। वास्तव में ईश्वर एक है, अद्वय है।[4] कभी कवि उसे निर्गुण

---

१. A History of Kashmir, P. N. Koul Bamzai, 1962, page 615.

२. वही, पृ० ६२२।

३. च्ये कुस ज़ानिय चह छुख किथु हिहु निराकार।
चह् कुख यिथु तिथु तिथिय व्यय्यनय नमस्कार।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, संस्करण सन् १९२३, पृ० २२८।

४. है शिव केशव ग्वोफि अदंरय।
द्वय आकार छुख अद्वय रूफ।—वही, पृ० २६४।

निराकार मानते हैं और कभी जटाधारी शिव नाम देते हैं।[1] कभी उसके अंगों को कपूर से समता देते हैं और कभी अवर्ण मानते हैं।[2] वही कण-कण में व्याप्त है।[3] वही ओंकार-नाद है।[4] उसका न आदि है और न अन्त।[5] वह स्वच्छन्द है।[6] वही आत्मा में वास करने वाला है और वही योग और ज्ञान भी है।[7] वह ब्रह्म ज्योति-स्वरूप हैं और हमारी आत्मा का प्रकाश है। वही नेत्रों की ज्योति है और सत् चित् रूप है।[8] वही प्रत्येक वस्तु का बीज है, कारण है।[9] वही प्रभाकर की आभा है।[10] वह अद्वैत रूप है, एक है, उसकी ज्योति नित्य है, शाश्वत है।[11] उसका एक ही नाम है। शिव और शक्ति उसी के दो रूप हैं[12]। परन्तु वह द्वैतभाव से रहित है।[13] जीव और जगत् पहले ब्रह्म में ही समाहित थे परन्तु जीव जगत् में आकर ब्रह्म से अधिक दूर आ गया है।[14] ईश्वर अविनाशी है, नित्य है, जगत् का कल्याण है, शिव है, ओंकार है परन्तु निराकार है जिसे प्रेम-पुष्पों की ही

---

१. गराह वनान छुसय निर्वन निराकार।
गराह वनान छुसय शंभो जटादार।।—वही, पृ० २२६।

२. गराह वनान् छुसय छुय न च्य काहं रंग्।
गराह वनान छुसय कोफूर छिय अंग।।—वही, पृ० २२८।

३. गराह वनान छुसय पानय चह् हन् हन्।
—शिव परिणय, कृष्णराजदान, सं० सन् १९२३, पृ० २२८।

४. गराह् वनान् छुसय ओंकार कुय व्यंद।—वही पृ० २२८।

५. गराह वनान् छुस नयग्वोड् न च्हय अंद।—वही, पृ० २२८।

६. गराह वनान् छुसय अगोर है स्वच्छन्द।—वही, पृ० २२८।

७. गराह वनान छुसय छुख आत्मा प्रान।
गराह वनान् छुसय छुख योग त जान्।—वही, पृ० २२८।

८. सुह ज्योति रूफ हृदयस मंज़ स्वप्रकाश।
छुहसुरु ज्योति रूफ न्यथ सच्चिदाकाश
सुह ज्योति रूफ छुय नेत्रन अन्दर गाश।—वही, पृ० ३३२।

९. सुह ज्योति रूफ छुय प्रथ चीज़ कुय बीज़।—वही पृ० ३३२।

१०. सुह् ज्योति रूफ छुय सुर्यस अन्दर तीज़।—वही, पृ० ३३२।

११. अद्वैत रूफ छुख कुनुय आसनुनु।
अकि ज्योति रूफ सूत्य न्याथ बासवुनु।—वही, पृ० १६४।

१२. द्वय लक्षतन छुख शिव शक्ति रूफ।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, सं० सन् १९२३, पृ० १६६।

१३. दुयी त्राविथ् छुख प्रजलवुन दीफ।—वही, पृ०१६६।

१४. ओसुख कुनय् त सापेनुस स्यठाह्।
नज़दीख वोतिथ गोमय् दूर।—वही, पृ० १०६।

भेंट दे सकते हैं।[1] ब्रह्म अजर और अमर है उसके साक्षात्कार से जीव को अपना ज्ञान नहीं रहता है क्योंकि परमात्मा ही चराचर जगत् में व्याप्त है।[2] वह माया से निर्लिप्त है अत्यन्त दूर हैं और दूरस्थ प्रदेश से ही संसार का दृश्य देखता है।[3] वही निराकार ईश्वर इन तीन भुवनों का सार है, वही कण-कण में व्याप्त है परन्तु माया के कारण वह दृष्टिगोचर नहीं होता है।[4] उस सत् चित् आनन्द-स्वरूप ब्रह्म का निवासस्थान जीव का हृदय ही है।

जीवन—कृष्णराज़दान जीव और ब्रह्म की सत्ता भिन्न मानते हैं। मूल में ईश्वर तत्त्व ही था परन्तु वही अनेक हो गया और यह जगत्, प्रकृति, जीव उसी के रूप हैं। जीव भी प्रथमतः उसी में समाहित था परन्तु संसार में आकर वह ब्रह्म से अत्यन्त दूर आ गया है।[5] उसमें भिन्न-भिन्न दुर्गुण आते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह और अज्ञान उत्पन्न होता है। ममता के इस बन्धन को गुरु ही काटकर जीव को मुक्ति-पथ पर अग्रसर करता है।[6] अज्ञान के कारण जीव की बाल्यावस्था क्षोभ और मोह में व्यतीत

---

१. अविनाश न्यथ छुख लसवुन बसवुन।
जगतुक कल्यान असेनुय च्योन
जय शिव ओंकार हे निराकारय।
लोल पोश ब्वह लागय चा़रि चा़रिय।—वही, पृ० ७२।

२. हे अमरय, हे अज़रय्।
वुछिथ च्य ज़रय् रूदुम् न होश।
च़राच़रय छुख आश्चरय।—वही, पृ० २६६।

३. सदा मायाय अन्द कनि छुख चह् रूज़िथ।
तमाशाह छुख वुछान वनि क्याह अथ्।—वही, पृ० १३८।

४. श्री निराकारय त्रिबुवन सारय्।
प्रारय पनने यारय बल।
त्रिबुवन सारो हगि हनि मन्ज़ छुख।
मायाय सूत्य छुख न यिवान द्रेठ।
सत् चित् आनन्द केवल गोविन्द।
ज्याय च्याज हृदययुक पंपोशडल।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान।

५. औसुख कुनुय त सांपेनुस स्यठाह।
नज़दीख वोतिथ गोमय दूर।—वही, पृ० १०६।

६. छय काम कूद लूब मुह अन्धकार।
ममताय सूत्य विस्तारय् म्यौन
समताय सूत्य इमि मजम्वकलावतम।
सद् ग्वर हावतम गरि मंज़ गाश।—वही, पृ० ४।

होती है और उसका यौवन लोभ में। अंत में वृद्धावस्था आती है और उसे मान की इच्छा होती है।[1] जीव के जीवन का क्रम बाल्यावस्था से आरम्भ होकर यौवनावस्था के द्वार को पार कर वृद्धत्व को पहुंच जाता है। यह जीव भक्ति से हीन है, पापी है, चैतन्य होकर जड़ बन गया है, निष्क्रिय है। दया-धर्म की ओर इसकी रुचि नहीं है, अहंकार के कारण गुणहीन बन गया है, मोह के कारण 'स्व' के अतिरिक्त और की कल्पना नहीं करता।[2] जीव इन्द्रियों के अधीन होकर अपवित्र बन गया है। सत्यतत्त्व को भूल कर शारीरिक सुख की ही चिन्ता में पड़ा हुआ है और इसका लोभ बढ़ता जाता है, इसमें मद की भावना का आधिक्य है। न इसकी बुद्धि शुद्ध है और न वासना ही।[3] सदैव उसके मन में अशान्ति, अतृप्ति और क्रोध रहता है। भोजन की ओर ध्यान सदैव लगा रहता है।[4] ब्रह्म को जीव की अन्तः और बाह्य प्रकृति का ज्ञान रहता है और जीव को अपनी सृष्टि के विषय में भी ज्ञान नहीं है।[5] जीव का मन चंचल है। वह कल्पना-लोकों का

---

१. ल्वकचार अन्दि गौम गरके क्षूबय।
ज्यवान छुस रछतम लूबय निश।
वुज्यर छुह नज़िदीख् मत मन्दछावतम
सद् ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, सं० सन् १९२३, पृ० ८-९।

२. सदाशिव स्वामियां छुस बक्ति ह्यूनुय।
बन्योमुत पाप शैलाह् जड़ त च्यूनुय।
दया दर्मस् कुनुय केंह छुम न मैलेय्।
क्वचैलेय् छु स क्वचैलेय् छस क्वचैलय्।
अहंकार न बनावेमुत ग्वनौ रस्तुय।—वही, पृ० २२२-२२४।

३. मलि नि वैस्त्र वलिथ छिम छुस न श्रूचुय्
पकय इन्द्रिय स्वखेच् छ्यम च्यथ पूंवगान ब्वह्।
मशान सथ् छुम दिहुक स्वख छुस मंगान् वह ब्वह।
शमान छुस न लमान् छुस लूब सेय् कुन्
छुनान् तृष्णा तवय छ्यम क्षूबसेय् कुन्।
स्ठाह छुम मद त छ्यम न वासना श्वद।
गेछख वयथ पौठि स्यद् म्य छ्यम न तिछय ब्वद।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, सं० सन् १९२३, पृ० २२४।

४. थविथ् व्रथ छ्यम ख्यनेच् आसान मनस कल।
खसान छुम कूद असान आसान् पतय लल्।—वही, पृ० २२४।

५. खबर च्यय्, छ्यम ब्वह छुस अन्तर्बहिः किथु।
चह छुखयिथु यिथु नमस्कारह च्य तिथु छुय।
म्वद्योमुत छुस स्यठाह छुस मूर्ख नादान।
तक्य जानय ब्वह छुस छुम मासुक पान्।
खबर छ्यम न छ्यम क्यथ पैठि ब्वत्यथ ॥—वही, पृष्ठ २२६

निर्माण तो करता है परन्तु भाग्यवादी बनता है। सदैव वह सच और झूठ के द्वन्द्व में पड़ा रहता है।[1] उसके नेत्रों से काम की ज्योति प्रकाशित होती है।

जीव गुरु के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करता है और ब्रह्म को आत्मस्वरूप ही मानता है।[2]

जगत्—जगत् के सम्बन्ध में कवि ने अत्यल्प कहा है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उनके मत में संसार वास्तविक नहीं है। वह मिथ्या है, असार है, नश्वर है जो जीव के साथ भी छल करता है।[3] संसार में कोई वस्तु सत्य नहीं है केवल परमशिव ही सत्य है।[4] संसार एक माया-जाल है जिसके बन्धन में प्रत्येक जीव बंधा रहता है।[5] गुरु ही जीव को ज्ञान प्रदान करता है और जीव संसार के अभावों को अनुभव नहीं करता।[6] संसार मिथ्या है, भ्रम है अविद्या का आभास है। यहाँ साधु-सत्संग और सत्य-रूपी नौका से ही पार पाया जा सकता है।[7] परमतत्त्व प्रत्येक स्थान में व्याप्त है अतः उसी का नामस्मरण करना चाहिए।

---

१. अन्दरि किनि छाल मारन् छुस व्वपोरुय्।
न्यबरि किनी छुस वनान प्रारब्ध छुह सोरुय।
असथ वौनी वनान छुस छुम डलान् मन्।
अपजु पजु बूज़ि बूज़िय छुस थवान कन।
न्यबर तज़र अन्दर सोरुय म्वच्यर छुम।
ख्वचर छुम् तय ख्वचट छुम तय ख्वचर छुम।
तिछय कामेच म्य छ्यम नेत्रन अन्दर जयाय।—वही, पृ० २२६।

२. मने म्योन बिन्दावन् त लोलो।
आत्म रूप नारायण त् लोलो।
—शिव परिणय, कृष्णजदान, सं० सन् १९२३, पृ० ३१०।

३. असोर संसार छलरावान् सोरु रोजिकस तय।
पूज़ाय लगाय परमशिवस पंपोश दस्तय।।—वही, पृ० ६६।

४. संसारस मंज़ केंह न शा रोज़ि।
रोज़ि कुन परम शिव श्री अगूर।—वही, पृ० १०६।

५. वलिन असि संसारकिय माया ज़ालन्—वही, पृ० १४०।

६. संसारस मंज़ पुर्श मत पावतम।
सद् ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।—वही, पृ० १२।

७. संसार छुह कमिस हुमिस त इमिस।
अमिच् गांगल छयह अविद्या।
इथ् भ्रम दीशस मन्ज़ कुस दरे।
छयरा छुह श्यराह श्री हर नाव।
कुस साद संगुक संवाद बूज़िथ।
बिहिथ सतच शिकार्य क्यथ।
असार सरस अपोर तरे।
छ्यरा छु श्यराह श्री हर नाव।।—वही, पृ० ८४-८६।

माया—कवि माया का अस्तित्व मानते हैं। जीव भी अज्ञान के कारण माया से लिप्त रहता है, यह संसार भी माया का बन्धन है जिससे मुक्ति केवल गुरु की कृपा से ही सम्भव है।[1] केवल ईश्वर ही माया से निर्लिप्त है और तटस्थ रहकर वह संसार का दृश्य देखता है।[2] जीव माया के आवरण में रहने के कारण ही परमतत्त्व का आभास प्राप्त नहीं कर सकता।[3] माया ही जीव और ब्रह्म के एकाकार में बंधन है।[4] और इसी में जीव अपने को अर्पण करता है।

साधना-पक्ष—कृष्णराज़दान ने भक्ति के साथ-साथ ज्ञान को भी अपने काव्य में महत्त्व दिया है। इनका साधना-मार्ग भी ज्ञान पर आधारित है और इस ज्ञान की प्राप्ति गुरु के द्वारा ही हो सकती है। कवि के अनुसार गुरु का बड़ा महत्त्व है वही परम-तत्त्व का साक्षात्कार कराकर अमृतपान करा देता है अज्ञानी जीव को साधना पक्ष पर अग्रसर करना गुरु का ही कार्य है।[5] वही ब्रह्मानन्द का पान करा सकता है।[6] वही जीव के ज्ञान-नेत्र खोलकर उसका मन कमल की भाँति प्रफुल्लित करता है और जीव और ब्रह्म में अद्वैत भाव प्रकट करता है।[7] वही जीव को कुकर्म से दूर सन्तोष, सतसंग और धर्म के

---

१. वलुनस संसारच मायाय।
स्वकलय च्यानिय व्वपाय सूत्य।
दयाय हैन्ज्य नज़राह त्रावतम।
सद् ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।।—वही, पृ० ८।

२. सदा मायाय अन्दकनि छुख चह रुजिथ।
तमाशाह छुख वुछान बनि क्याह अथ।—वही, पृ० १३८।

३. त्रिभुवन सारो हनि हनि मंज छुख
मायाय सूत्य छुख न यिवान ब्रेठ।—वही, पृ० ६४।

४. मायाय वजनस व्वह ज़ातमाय।
अर्पन् कर बालय पान्।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, सं० सन् १६२३

५. शिवनाथ आनन्द अमृथ चावतम्।
सद ग्वर हाव तम गटि मंज़ गाश।
इति छुख छारथ कथ व्वह मकानस।
गोमुत छुस अज्ञानस मंज़।
अनु छुस हावतम ज़ाज हेज वथ कुछ नावतम।
सद् ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।—वही, पृ० ६।

६. ब्रह्मानन्दस प्यठ वार थावतम्
सद्ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।—वही, पृ० १०।

७. ज्ञानकि निथ्रेय् वार मुचरावतम्।
पंपोश ज़न क्वल्लनावतम मन्।
अद्वैत भाव सत्य पानस छावतम्।
सद्ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।—वही, पृ० १०।

पथ से परमगति को पहुँचाता है।[1] गुरु संत पुरुष से मेल कराता है और संत पुरुष परमात्मा से।[2] शैवागमों और शास्त्रों का अध्ययन करना व्यर्थ है, ईश्वर का नाम ही सत्य है। अतः ध्यान करके अपने ही हृदय में परमतत्त्व का अन्वेषण करना चाहिए। शिव और सद्गुरु वास्तव में एक हैं।[3]

ब्रह्म-प्राप्ति के लिए इन्द्रिय-निग्रह आवश्यक है, जीव इन्द्रियों के अधीन है और शारीरिक सुखों में ही अपना मन लगाता है परन्तु सत् गुरु ही उसका मन केन्द्रित कर उसे ज्ञानमार्ग पर अग्रसर करता है।[4] जीव का हृदय आनन्द-स्वरूप परब्रह्म का ही निकेतन है। उसी हृदय से योग की साधना करके एकाकार होता है।[5] इस राजयोग को अपनाने से ईश्वर-धन की प्राप्ति होती है। इसके विरुद्ध जीव इन्द्रिय-वश होकर साक्षात्कार से वंचित रहते हैं।[6] भक्ति में श्रवण, मनन और निर्दिधासन आवश्यक है परन्तु योगी

---

१. संतोश विचार सत्संग दर्मय्
खटनय आयवम क्वकर्मय् सूत्य।
अनिच्छाय परम गथ प्रावनावतम्
सद् ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।
—शिवपरिणय, कृष्णराज़दान, सं० सन् १९२३, पृ० ८।

२. सज्जन प्वरश यिम अस्य प्रकृति पर।
चिरकालि प्रोवुख ईश्वर स्थान।
तिमनय मन्ज़ बाग आसन म्य दावतम्।
सद्ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।।—वही, पृ० ८।

३. सुय शिव शंकर छुह सद्ग्वर आसवुन।
ध्यान सूत्य बासवुन हृदयस मन्ज़।
तसन्दि रोस्तु कुस शिव शास्त्र परे
छ्यार छुह श्यराह श्री हर नाव।।—वही, पृ० ८६।

४. इन्द्रिय यिम ओसि द्रायेम फटिथस
ह्यस ह्यथ रटिथय खटिथय पाठि।
सारि स्वम्बरावतम् कुनुय बनाव तम।
सद्ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।—वही, पृ० १०।

५. अन्दरय् युस छुय आनन्द मन्दिरय्।
तथि मंज करयो योग पूजा।
—शिवपरिणय, कृष्णराज़दान, सं० सन् १९२३, पृ० ८।

६. राज़योग राज यह पकि च्यय् हिवु सूत्य।
दय दन वालि तस वति मेलन कूति्।
इन्द्रिय चूरन् कति हरि शंभो।
वाव यावुन छुह होश पोशथर्य शंभो।—वही, पृ० ३१६।

ध्यान-द्वारा ही साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं।[1] कवि स्वयं को बाह्याडम्बरों से वंचित सिद्ध करते हैं। वे अर्चन, तत्वज्ञान, यज्ञ, भक्ति, संध्या और स्नान नहीं जानते। उन्होंने न वेदाध्ययन किया है और न नामस्मरण। वे शास्त्र और पुराणों के अध्ययन तथा तपस्या से वंचित हैं।[2] वे ईश्वर के नाम तत्त्व को ही सार मानते हैं और नाम-स्मरण से मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं।[4] ध्यान की निर्मल सरिता में भरा हुआ योग-जल ही जीव की काया को स्वच्छ बना सकता है।[3] ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए लोभ और मोह को नष्ट करना आवश्यक है तभी 'स्व' और 'पर' एक हो सकते हैं।[5] सत्य की महिमा अकथनीय है। कवि भी कहते हैं कि अपनी बुद्धि और मन को सदैव सत्य की ओर प्रेरित करो, सत् शब्द का श्रवण करो और सत् के ही आनन्दफल का भक्षण करो।[6] अपने मन को निर्मल करना परमावश्यक है, मन से ही 'स्व' और 'पर' भावना समाप्त होकर कण-कण में

---

१. बोज़ुन श्रवन् त करुनु मनन।
निर्दिद्यासन् छुह अंख वक्ती भाव।
साक्षात्कार वुछु त योगी छिह ध्यनन।
वनन छि राधा कृष्ण आव।—वही, पृ० २६०।

२. न ज़ानय् योग पूजा नय त्वता द्यान
न ज़ानय यज्ञ बवच् न संध्या श्रान।
न ज़ानय वीद पुरुनु स्वरुनु न नावय्।
न ज़ानय तपक् न ज़ानय बक्ति बावय।
न छुम परुमुत शास्तर नय पुरानेय्।—वही, पृ० २२४।

३. सुय सुचरावे ज्ञान दर्वाज़।
सुय करनावुन छुह राजयोग।
तसन्दि रस्तु कुस अचि स्वक्त लरे
छ्यरा छुह श्यराह श्री हर नाव
—शिव परिणय कृष्णराजदान, सन् १६२३, पृ० ८६

४. द्योनच् नादियाह निर्मल करिथेय।
योग पानि सूतिन बरिथय छ्यह।
ब्वय् तन् नावय् चय मननाव्तम।
सद् ग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।—वही, पृ० १०

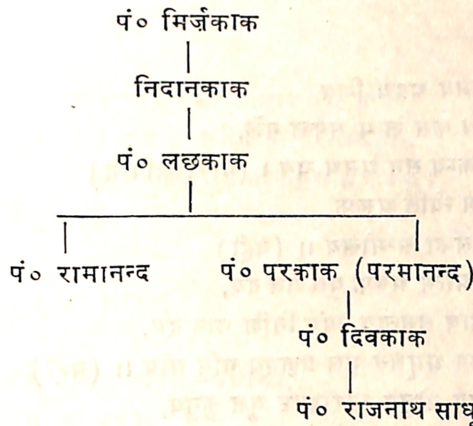
५. कर्मफल व्वपदोवु दर्म श्रद्धाय।
लूब प्यलि गेलु त मुह पानय चलु।
पर त् पान् यकसान बोज़न आय्।
जै जै भगवथ मायाय।—वही, पृ० ३१०।

६. ब्वद् थव सतसेय् सूत्य सनिदान।
सत सय मनथव सत सय् कन थव।
सत् किस कुलिस वसि आनन्द फल।—वही, पृ० ६६

ब्रह्म का आभास होता है।[1] परमात्मा का साक्षात्कार होने पर जीव का मोह और अज्ञानांधकार एकक्षण में नष्ट होता है।[2] जैसे दिवाकर के आगे अंधकार नहीं टिक सकता है वैसे ही परमात्मा के तेज के आगे माया-मोहादि मिट जाते हैं। जीव का अस्तित्व मिट कर परमतत्त्व में ही मिल जाता है। यही मुक्ति भारतीय दर्शन के अनुसार जीवन का परम उद्देश्य है।

संतलछकाक और संत रामानन्द—

संतलछकाक की जन्मभूमि क्रंडिग्राम है। ये बाल्यकाल से ही आध्यात्मिकता की ओर आकृष्ट थे। इन्होंने प्रचलित शिक्षा भी प्राप्त की थी। इनके गुरु का नाम पं० रोपज्यूदर था जो मिर्ज़काक की शिष्यपरम्परा में आते हैं। रोपज्यूदर के विषय में भी जनता को कुछ ज्ञात नहीं है। लछकाक उच्चकोटि के संतकवि थे जिन्होंने पवित्र जीवन-यापन किया था। पं० रामानन्द, परकाक और गोविन्दज्यू र्योश आपके शिष्य हैं। संत लछकाक की गुरु और शिष्य-परम्परा मुझे पं० राजनाथ साधू, श्रीनगर से प्राप्त हुई है जो इस प्रकार है—



संत लछकाक और संत रामानन्द की पाण्डुलिपि में कुल पाँच सौ तीस पृष्ठ हैं जिनमें लछकाक की रचना एक सौ इकसठ पृष्ठों में, उनकी संस्कृत रचना इक्कीस पृष्ठों में

---

१. तिथुय तफ साद च्य यिथु निर्मल गछिय् मन्।
दुयी त्रावख वुछख पानय सुह हन् हन्॥
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, सं० सन् १९२३, पृ० १७४।

२. मोक्षदायख प्रावनावि साक्षात्कार।
क्षन मात्रस मन्ज गलि भुंग्र अंधकार।
सूर्यस् निश गट कति दरि शंभो।
वाव यावुन छुह होश थर्य शंभो।—वही, पृ० ३१४-३१६।

तथा लल्लद्यद के वाखों की व्याख्या दो सौ बाईस पृष्ठों में है। संत रामानन्द की रचना एक सौ छब्बीस पृष्ठों पर है। यह पाण्डुलिपि काली और जामनी स्याही से कश्मीरी कागज़ पर है। पंक्तियाँ १३ से १५ तक प्राप्त होती हैं।

संत लछकाक की दार्शनिक विचारधारा

संत लछकाक ने ब्रह्म को अद्वय माना है और उसे शिव की संज्ञा दी है।[१] ब्रह्म अरूप है, स्वतः प्रकाश है,[२] वही पुरुषोत्तम है, नाद-बिंदु रूप है, अमृतस्वरूप है, प्रकृति उसी की मूल शक्ति है।[३] अन्न-रूप ब्रह्म वास्तव में एक है निराकार है, वही प्रत्येक वस्तु का आधार है।[४] वह ज्योति-स्वरूप है, आत्मा में व्याप्त है। बाहर और भीतर उसी की सत्ता है, माया-रूपी छाया से वह अगोचर होता है परन्तु गुरु के द्वारा माया का आवरण हटाने पर उसकी ज्योति विकीर्ण होती है।[५] वही दिशा-दिशान्तरों में व्याप्त है और शब्द-रूप है, आकाश उसी का विस्तार है।[६] वह इन्द्रियातीत है, उसे कौन जान सकता है? उसका न कोई रूप है न रंग है और न कोई गोत्र परन्तु वही अनेक रूप धारण करता है।[७] वह नित्य-प्रकाश है, आनन्दरूप है, उसके पास शिव-शक्ति, ज्ञान-विज्ञान का कोई

---

१. तति छु पानय अद्वय शिव,
त्युथ कस जन्म सफल गछे,
त्युथ बेयि कम्य सन अमृथ चव। (पाण्डुलिपि से)

२. स्वतः प्रकाश न्येति अरूफ,
सोदुर म्ये लंका सन्मोखय॥ (वही)

३. पोरुषूत्तम आत्मै अरूफ युस गव दय,
ज़नत स्वभाव तसुन्दुय व्यंद निशि नाद दय,
शक्ति स्वरूप अमृथय मूल प्रकृथय गयि सोय॥ (वही)

४. अन्न रूप दय नोनुय न्यराकार युस कुनुय,
सु चे गोवुय माल्यो लोग शहरस मनय॥ (वही)

५. अन्दर न्यबर आत्मैय फेरवुन दीह फोनुसुय।
रत्नदीफ छुय साक्षी छायि माया दीफ सुय॥
छाय कासान ग्वोर दाय अद प्रकाश पानसय॥ (वही)

६. दिगम्बर दय पानसुय लछनावै आवैय,
शब्द आकाश साक्षात् वन किन्ये द्रावै,
नाव रोस्तुय नाम लगज़ान दय प्रथ नावय॥ (वही)

७. रंग लरि छुय रंग रोस्त दय प्रथ वान सुय रंगरय,
नानारंग धारण सुय नारंग तस ना गुथुरय,
ज़ानि कुस तस न्यराकारस स्वर्गीय न्यथरय॥ (वही)

अन्तर नहीं है। वह कहने वाला भी स्वयं है और श्रवण करने वाला भी स्वयं है।[1] वह 'ख' स्वरूप है, निराकार और निरंजन है, शून्य है, अरूप है, उसी का साक्षात्कार करना चाहिए।[2] वही जड़ और चेतन में व्याप्त है, वह अमर और तत्त्व प्रकाश है, उसका कोई नाम नहीं है।[3]

जीव—संत लछकाक ने जीव और ब्रह्म का अंश-अंशी सम्बन्ध माना है। उनके अनुसार भी ईश्वर अग्नि है और जीव उसकी एक किरण जिससे अज्ञान रूपी-घास भस्म हो जाती है।[4] जब-जब जीव ईश्वर के ध्यान में लीन होता है तो वह ईश्वर ही बन जाता है।[5] वास्तव में जीव निर्गुण ब्रह्म का ही अंश है परन्तु संसार में रहकर वह आकार धारण करता है, सत, रज और तम तीन गुणों से पूर्ण होकर पंचभौतिक शरीर धारण करता है। जब माया का आवरण हट जाता है तो पुनः ब्रह्म के साथ जीव एक हो जाता है।[6] ब्रह्म ही जीव है और जीव ही ब्रह्म है।[7] जीव का संसार में वास्तविक सम्बन्ध किसी से नहीं है। न वह किसी का सहायक है न उसके कोई सहायक हैं। न वह सुषुप्तावस्था में है न जाग्रतावस्था में, न वह किसी का स्वामी है न किसी का दास।[8] वेदों और

---

१. स्वतः प्रकाश न्येत्य छुम बासान च्यतस अचुतानन्द सुय ज़ानी,
शिव शक्ति दपिथ ब्यन ना तति सुय ज्ञान-विज्ञान परमस्थान।
युसुय वज़वुन सुय बोज़वुनुय ज़ना कुनुय सुय नारायण ॥ (वही)

२. शुन्या लयख स्वरूप नाराणास,
न्याराकार युस निरंजन,
तथ शुन्य सथ शुन्य सरूफ अरूफ शुन्य,
शुन्यी च्यथ चैतन्य ज़ाननन ॥ (वही)

३. लछि नाव दय नाना रूफ द्राव ज़गम त स्थावरय,
रूफ ना तस ना परमात्मा सु अमरय,
तत्त्व प्रकाश साक्षात्कार अन्दर न्यबर अचरय ॥ (वही)

४. ईश्वर अग्न अंश त्यम्बर अज्ञान काठस सन्दरिजे ॥ (वही)

५. जीव येलि गछि ईश्वरस लीन सुय जीव अद ईश्वर ॥ (वही)

६. आसिथ अरूप स्वरूप गयस गच्छान प्रणव गोम।
त्रेयि निशि पांचि पांचि दीह गोम दीहुक भ्रमय सन्दी प्योम।
भ्रम यान्य चोल तान्य त्रेयि ति गयस ज़ानी ज़ान अद पानय गोम ॥ (वही)

७. सुय ब तय बति सुय राज़यूग गव सुय ॥ (वही)

८. न काहं छुम तय न कांसि हुन्द छुस,
न कांसि रोछुस न कांसि ज़ास।
न छुस वुदुय न लव शौंगिथ,
न छुस स्वामी न लव दास ॥ (वही)

पुराणों का भी यही सार है कि जीव और ब्रह्म में कोई तात्त्विक भेद नहीं है।[१] जीव उसी ब्रह्म का नामस्मरण करता है जो उसकी आत्मा में व्याप्त है।[२] वास्तविक जीव वही है जो नित्य-अनित्य का भेद जानकर सदैव अनित्य की ओर विमुख रहता है और नित्य-ब्रह्म का ध्यान करता है। जीव का शरीर नश्वर है, माया है।[३] उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि भाव होते हैं। अत: उसकी मुक्ति नहीं होती है।[४] वह संसार में अबोध बालक के रूप में आता है।[५] विषय-वासनाओं से अत्यधिक आनन्द उसे प्राप्त होता है परन्तु यह परमसुख नहीं है।[६] जीव संसार में मृत्यु को प्राप्त करता है चाहे किसी भी रूप-आकार वाला और किसी भी जाति का हो, काल के प्रहार से कोई नहीं बच सकता है।[७] अत: जीव को विषय-सुखों के पीछे नहीं भटकना चाहिए, इसका परिणाम दुख होता है। काल-रूपी सिन्धु से वही पार हो सकते हैं जो गुरु के पथ-प्रदर्शन पर चल कर अपने चंचल मन को वश में करते हैं। वे ही जीव आत्म-साक्षात्कार करते हैं।[८] शरीर-रूपी पिंजरे में ब्रह्मरूपी हंस ही बोलता है, उसकी वाणी अत्यन्त सुन्दर है, रस वाली है, जीव उसी रस का पान करके आनन्दावस्था में पहुंच जाता है।[९] वास्तव में जीव और ब्रह्म में एक ही तेज व्याप्त है, जीव ही ब्रह्म है, तभी यह कहा जाता है कि मैं ही तुम हूँ।[१०]

संसार—संत लछकाक ने संसार को स्वप्नवत माना है। संसार भ्रम है। कवि ने वेदान्त-वाक्यों का संसार के लिए उसी रूप में प्रयोग किया है कि ब्रह्म ही सत्य है,

---

१. सु दय ब दय छु दय लो,
वीद पोराण मन्दिथ दाव योहय परम पदय लो ।। (वही)

२. पानस मंजय छुय पानय नारायण,
नाराण नाराण वोच्चारान ।। (वही)

३. भ्रम काया माया छय पजि पोज़ टाठिय बोज़ा ।। (वही)

४. काम क्रूध लूभ मुह स्यंदय गति खोतुय गतुलुय।
यीर सोरी जीव धारी अग्मि गति कुस मोकलुय ।। (वही)

५. आदि प्रबोध बालुका गिन्दवुन छुस कन्दि लो ।। (वही)

६. विसय सोख ना परम सोखय, सोदुर म्ये लंका सन्मोखय ।। (वही)

७. कालन्यि चन्जि गच्छान खंजि,
सोन्दर त गन्दर गच्छान हो ।। (वही)

८. कव छुख व्यषय सोखस भ्रमान, पत बेह फल नेरान दोख।
कालन्यि स्येन्दि तिमय तरान, स्यद यस ग्वोर चरण परम सोख।
महा चंचल मन लय करान, स्वोरान, सु दीव अन्तर्मोख ।। (वही)

९. राज़हंसय बोलवुन छु सु अन्दर पंजरस,
क्याह छु सौन्दर बोलवुन बालि कोताह छुम रस।
ब सु मस चथ छिवेयस पार्य लजिस ईश्वरस ।। (वही)

१०. ततत्व असे पदय जीव ईश्वर ब्रह्म ।। (वही)

जगत् मिथ्या है।[1] यही पुराणों का सार है।[2] धर्म की सिद्धि का तात्पर्य यही है कि जगत् मिथ्या है, स्वधर्म के परिणाम-स्वरूप जीव चारों ओर ब्रह्म की सत्ता का भास करता है। स्वयं जीव भ्रम है, ब्रह्म सत्य है।[3]

साधनापक्ष—संत लछकाक ने अन्य सन्तों की भांति ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए गुरु का महत्त्व स्वीकार किया है। गुरु के उपदेश से ही जीव आत्मसाक्षात्कार कर सकता है और अपना वास्तविक रूप पहचान लेता है। तब उसे भास होता है कि जीव ही शिव है, ब्रह्म है।[4] जीव के लिए ब्रह्म रहस्यमय रहता है परन्तु गुरु की कृपा से ही ब्रह्म का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है।[5] जो जीव गुरु के सतवचनों का पालन कर मन के विषय-विकारों को वश में करता है वही इस संसार-रूपी सागर से पार हो जाता है।[6]

योग— संसार से पार होने का एक और साधन योग है। योग-प्रक्रिया से ब्रह्म का ध्यान कर आनन्दामृत का पान किया जाता है।[7] मन का वशीकरण जीव के लिए अत्यावश्यक है। विषय-विकारों से प्राप्त भौतिक सुख मानव को मृदु लगते हैं, मन को वश में करके ब्रह्म का स्मरण करना चाहिए।[8] योगीजन वासना और प्राण को एक कर अजपा जाप करते हैं, अपने आत्मप्रकाश से सूर्य से भी अधिक तेज उन्हें होता है।[9] संत

---

१. वुशत संसार स्वप्नय भूत शरीर भ्रमय ।। (वही)

२. ब्रह्म सत्यं जगतमिथ्या साक्षी पोराण पोस्तक ।। (वही)

३. जगत् मिथ्या ब्रह्म सत्यं स्यद गव धर्म।
स्वधर्म फल द्राव सर्वं खलुविद ब्रह्म ।। (वही)

४. श्री ग्वोर शब्दय येलि बोसुम चन्द्रम गलिथ च्यथ ओसुम,
आत्म सन्धी वोन्दि कोसुम सोदुर म्ये लंका सन्मोखय।
यियम वोदय ग्वोर वचुन स्वयं स्वस्ते छुम नचुन।
इकं स्यदं शिव मोचुन सोदर म्ये लंका सन्मोखय ।। (वही)

५. ओस हरी हरय छायि रूज़िथ दय, परम ग्वोरन द्युत स्वर परमरूफबो न्येरि दय ।।

६. येम्य ग्वोर वचुन पाल्य, मन की भ्रम तम्य टाल्यी।
तोर भवसरस निर्मली वोलय रोद्रमाल्यी ।। (वही)

७. यूग लयि सु वति सोर्यज़े,
सहज़ अमथ चे गलि गले,
यम भयि भवसर तरिज़े ।। (वही)

८. मोदुर व्येह छि मनकीय व्यषय,
हा मित्र रूफी शथर जान,
युथ नो फसख लसख नो अद,
मन लय करुन दीव स्वोरुन ज़ान ।। (वही)

९. वासनायि प्राणस संगम करिथ ज़पनय ज़पुन छुय युगियन।
सो प्रकाशि लय तम्य लयि सु तीज़ ना बाहन सिरियन ।। (वही)

लछकाक ने यौगिक शब्दावली— जैसे गायत्री, सावित्री, सरस्वती, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि का प्रयोग अपने काव्य में किया है।[1] लछकाक ने मन को वीर सम्राट माना है और इन्द्रियों को वीरपुरुष, जिन्हें वश में करना अत्यन्त कठिन है।[2] ओंकार को इन्होंने बड़ा महत्त्व दिया है, आत्मानन्द की प्राप्ति ओंकार से ही होती है, वही नाद-बिन्दु और आकाश-पाताल है, वही दृश्य और दृष्टा है।[3] जीव ओंकार ही था, अब भी है और आगे भी रहेगा। तीन गुणों से पूर्व शरीर भी ओंकार ही था, नाद-बिन्दु वाला शरीर ही ओंकार है।[4] ब्रह्म और मोक्ष भी ओंकार ही है।[5]

सत्संगति—ब्रह्म-प्राप्ति के लिए सत्संगति भी आवश्यक है। जो योग की साधना करके सत्संगति को अपनायेगा, वही संसार-सागर से पार हो जाता है।[6] संत पुरुषों का नहीं होता है, वे निष्काम भाव से कर्मरत हैं, सिद्ध पुरुष अपनी-अपनी काया को ब्रह्म-आश्रय में डालते हैं। साधु सत्कर्म वाले होते हैं।[7] सत्संगति का अर्थ सज्जन पुरुष ही जानते हैं जिन्हें आत्मप्रकाश प्राप्त है, जो भौतिक सुख को प्रतिबिम्बवत मानते हैं।[8] सत्संग से उपदेश ग्रहण करना चाहिए क्योंकि भाव-रूपी बीज के लिए श्रवण और मनन अंकुर हैं, इन्हीं से फल की प्राप्ति होती है।[9] लछकाक ने सहज को अत्यधिक महत्त्व दिया

---

१. गायत्री सावित्री सरस्वती इडा पिंगला सुषुम्ना,
नेत्र संगम राम पद छुय तथ प्रावि निर्वासिना ।। (वही)

२. यिन्द्रय व्यषय महावीरय मन राज् महावीरय हो
— — — —
कुस सन यिथ्यन वीरन मारि मन वीर राजन रटे काहं ।। (वही)

३. नेज़बूद्धानन्द ज़ान नाद ब्यन्द अ वम गव सुय ।
सोम बान तारा सुय आकाश पाताल गव सुय ।
दृष्ट दृष्टा दृष्टमान सुय सर्वानन्द गव सुय ।। (वही)

४. ओसिथ ति वोमय छस तय आस ति वोमय
क्षण भार त्रे ग्वोणी सतरज़ तमय दीह गोमवोमय ।
त्रेपरा सर्वमय नाद ब्यन्द जुव छुम अक्षरय वोमय । (वही)

५. तत्व निर्वाण आत्मशिव ब्यन्द वोमय । (वही)

६. सत्संग नावि तरिथ गय ।। (वही)

७. संतन क्रयि ना तिम छि अक्रिय स्यद्धन दीह छुय दीव आश्रय ।
साधन साध ज़ान सथ क्रयि सोदुर म्ये लंका सन्मोखय ।। (वही)

८. कथ रोत ना सत्संग सत्संग ज़ानि सज्जन ।
आत्म प्रकाश ज़ानवुन्द दीह छ़ाया वर्ज़न ।

९. साध ज़नय तोषिनय सत्संग कर श्रवण ।
भाव ब्यालिस अंकुरुय श्रवणस छुय मनन ।
निध्यासन दियि फल साखि भावै भूगतन ।। (वही)

है। सहज ही बीज है, यही आत्मा का तेज है, यही अविनाशी ब्रह्म है—समस्त प्रकाश, शम और दम यही है।[1] अन्य संतों की भांति लछकाक ने भी बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उनके अनुसार पुराणों का अध्ययन व्यर्थ है। अजपा जाप करना चाहिए, योग ही ब्रह्मप्राप्ति का एकमात्र साधन है।[2]

संत रामानन्द की दार्शनिक विचारधारा

ब्रह्म—संत रामानन्द ब्रह्म को निराकार मानते हैं। उसका न नाम है न रूप है, उसी अरूप को जानकर परमगति प्राप्त होती है।[3] उसका कोई वर्ण और गोत्र नहीं है।[4] अन्य संतों की भाँति संत रामानन्द ने ब्रह्म को उन्हीं नामों से पुकारा जिनसे सगुण भक्त पुकारते हैं परन्तु इनसे प्रयुक्त नाम राम, कृष्ण और शिव निर्गुण ब्रह्म के प्रतीक हैं। रामानन्द अलक्ष राम के प्रेम में मस्त हैं, उसी रस का आस्वादन करते हैं,[5] उनका शिव निर्लिप्त है, उसका स्थान जीव का मन है, भक्ति, श्रद्धा, इच्छा और विश्वास से उसका साक्षात्कार किया जाता है। ज्ञान-रूपी प्रकाश से जीव उसका सामीप्य प्राप्त करता है।[6] ब्रह्म ज्योति-स्वरूप है।[7] उसी का प्रकाश मानव-आत्मा में भी विकीर्ण है। अतः आत्म-ज्ञान आवश्यक है ब्रह्म सर्वव्यापक है।[8]

जीव—संत रामानन्द भी अद्वैत दर्शन के अनुसार ही जीव और ब्रह्म को एक मानते हैं, उनके अनुसार ब्रह्म के मुख से जो वेद निकला उसका अर्थ यही है कि 'मैं तुम

---

१. सहज बीज़ आतम तीज़ च्यनमय अविनाशी छुय।
रठ गढि कति सहज़ दृष्टि सोरुय प्रकाशिय छुय।
सहज़ शम सहज़य सम सहज़य परम गाशिय छुय।। (वही)

२. ज्येवि पोराण परुणुय काव टाव टाव करुनुय।
ज्येवि रोस्तुय ब्रह्मयूग ज़ानत गव दय सोरुनुय।
न्येतय संध्या गयि सोय ज़पनय ज़फ ज़पुनुय।। (वही)

३. न्येतय स्थिति कर सुस्वरूप, नांद रूफ खसि ना यथ।
अरूफ सुय चंय ज़ानतो जान्य प्रावख परमगथ।। (पाण्डुलिपि)

४. ब्रह्म सुय ब छुसय अवरण यस दोपहय।
न गुथुर नाव आश्रय, भजनय राम रामै।। (वही)

५. अलक्ष राम दय टोठ्योम सु रसय मस चौम।
अमृत नाव आहार पुनः यव मौक ल्योम।।

६. ओं नमू ओं नमू मोर मन्दिर जुव शिव हर दीफ अलीफ सुय गव।
भक्ति श्रद्धायि यछि़ पछि़ नेरि न्यूरुय दुरिनव।
जान्य गाशस सो प्रकाशस निशि पानस चेतनतव।

७. करु व्यचार आतमशिव चमकान स्वयं ज्योत।

८. चूरिम पाद नाद तोर्या यस सर्वव्यापक ब्रह्मस

हूँ' 'जीव ही ब्रह्म है और 'मैं ही ब्रह्म हूँ' जीव और ब्रह्म में ऐक्य भाव है।[१] ब्रह्म जीव की आत्मा में ही विद्यमान है। अतः जीव को अन्तर्मुख होना चाहिए, आत्मसाक्षात्कार ही ब्रह्म-ज्ञान है।[२] जिस प्रकार दर्पण को स्वच्छ करके वास्तविक प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार जीव की आत्मा में ब्रह्म विद्यमान है परन्तु विषय-विकारों की मैल से साधक को दृष्टिगोचर नहीं होता है।[३] शिव ही जीव है और जीव ही शिव है, इनमें अन्तर इतना है कि शिव बन्धन-मुक्त होता है और जीव बन्धन में आबद्ध होता है।[४] वास्तव में ब्रह्म और जीव एक है।[५] वेदान्त का सार भी यही है। शरीर और आत्मा में अन्तर है जिसको सिद्ध पुरुष ही जान सकते हैं।[६]

माया—संत रामानन्द ने माया का अस्तित्व माना है, उनके अनुसार माया भ्रम है, यह संसार भी माया है, मन की विचार तरंगें भी माया हैं। इनको भूल जाना चाहिए।[७] जो धन का मोह त्याग देगा वही वास्तव में माया की असत्यता को जानता है। उसी को 'हरमुख' स्थान पर ब्रह्म का दर्शन प्राप्त होता है।[८]

संसार—सत रामानन्द के अनुसार स्वर्ग से तात्पर्य विष्णुभवन से है।[९] उसी से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है।[१०] जीव इस संसार को वास्तविक मानते हैं, परन्तु

---

१. ब्रह्मा सन्दि मौख निशि श्रुतिसार महावाक्य द्राव।
तत्त्वं असे जीव ईश्वर ब्रह्म जान्य किन्य ऐक्य भाव।
अहं ब्रह्मास्मि आत्म साक्षी निराधार यस नाव।

२. छुय व्यषण निशि पानस मव रोज़ बहिर्मोख।
अन्तर्मोख क्षण-क्षण रोज़ योद टोठ्यी ग्वोर मौख।
निश्चय गछि निशि पानस गलि सोरुय सोख दोख।।

३. दीह ना तस अद दीवालय फश दिन दर्पणस यिथ चलि खय।
जीव रूफ तीज़ तथ मंज़ प्रतिबिम्ब, ही येशि पोत्रव सोरिवो औं।

४. जीवय शिव तय शिव जीवय, दीवियि वखनान छुय शिवय।
पाश बौद्ध जीव पाशमांख्त परम, ही येंशि पोत्रव सोरिवो औं।

५. सु आ'सिथ पानय ब आ'सिथ ब्रह्म, ही येंशि पौत्रव सोरिवो औं।।

६. ब अरय छुस वनान वीदान्त सिद्धांथय।
दीह त आत्म पृथक जानि युस सुय शाक्तय।
द्वयी कास निशि पानस ज़ान सु चय शिवनाथय।।

७. विश्वमाया नानाता मनुक तरंग मशिराव।
भरनि बल नेरवुन युस पैंसा त्रावुनुय।

८. मायायि निशि गछुन दृष्टान्त सुय वोनुय।
हर मोख दर्शुनुय अद सन्मोख नोनुय।

९. वैकुण्ठ गव विष्णभवन यस निशि सोर विश्व द्राव।।

१०. संसार सौरुय माया भ्रम, माया काया मुंहुनय जाल।
सुय युस मानिथ तस्य छुय काल।।

संसार माया है, भ्रम है, नश्वर है, यह जीव का शरीर और माया मोह का ही जाल है। जो इसमें उलझता है वह मृत्यु के प्रहार से नहीं बच सकता है। यह अज्ञान का अंधकार उसे इस वस्तु की सत्यता को भासित कराता है।[१] सांसारिक बन्धन मनुष्य को पाशबद्ध करते हैं बन्धु-बान्धवों की ममता और माया ही उसे भटकाती है।[२] जीव के लिए यह जानना आवश्यक है कि संसार माया है, भ्रम है, यहाँ यमराज से कोई नहीं बच सकता है।[३] यह मिथ्या है,[४] इससे पार होने के लिए ब्रह्म का नामस्मरण ही एक-मात्र साधन है।[५]

साधनापक्ष—संत रामानन्द ने साधना-क्षेत्र में योग, ज्ञान और प्रेमतत्त्व को विशेष महत्त्व दिया है। सर्वप्रथम वैराग्य को अपनाना चाहिए। उसके पश्चात् मन का वशीकरण, वासना का त्याग और शम दम आवश्यक है।[६] इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का अभ्यास करके ब्रह्म-साक्षात्कार होता है और जीव अमर बन जाता है।[७] जब साधक पाँच ज्ञानेन्द्रियों को वश में करता है और षट्चक्र-प्रक्रिया अपनाता है तभी वह संसार-सागर से पार हो जाता है।[८] जीव के लिए ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। मोह-माया अज्ञान का ही परिणाम है। जब तक मनुष्य को आत्मज्ञान नहीं होता है, विवेक नहीं होता है तब तक वह सांसारिक बन्धन में उलझा रहता है, आत्मज्ञान से अज्ञानांधकार समाप्त होकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है।[९] भक्त को गुरु के चरणों में अपना-आप अर्पण करना

---

१. सुय युस मानिथ तस्य छुय काल।
   गाश आसिथ गोस गटि हुन्द भ्रम, ही येंशि पोत्रव सोरिवा ओं।
२. आशा पाशि बन्धन ममता बन्धु भ्राता माता पिता।
   गृहस्थ गृहणी भार्या छम, ही येंशि पोत्रव सोरिवो ओं।
३. व्यचार करिवो कसू पचि यम, संसार सोरुय माया भ्रम।
४. जगथ मिथ्या नाव प्यव दीहस।
५. तवय हल बल करु छाटे तीरथ गछ़ख भवस्यन्दे
   छांट दयि नाव-स्वर विजि विज़े, सु अमर मरि वुछो वुछो
६. ग्वोड आदि वैराग्य छुम कारण अभ्यास यूग रठ यन्द्रिय तमन
   वासनायि क्षय त्याग सुय शम दम ही येंशि पोत्रव सोरिवा ओं।
७. इडा पिंगला मेलव सुषुम्ना च़ स्वोर।
   अमरावती संगम सुय गव अमर।
८. पांछ ज्ञानियन्द्रिय रटन्यि व्रथ पांचिम सदरन्यी।
   पन ग्रासख येलि आसख सोय षेयम धरन्यी।
   सत्यं भव स्येन्दि तार छुय सदवाणी करन्यी।।
९ मूह गट अज्ञानय विवीक गाश आतम ज़ानय।
   गट गाश पत्य च़ानय फश दिन त्रोव भानय।

चाहिए।[1] वही अमृत-कुण्ड है[2] वास्तविक गुरु वही है जो सत्य तत्त्व को जानता हो, जिसके मन में मतवादों की भावना न हो, उसी गुरु से ब्रह्म-विद्या का उपदेश ग्रहण करना चाहिए।[3] गुरु के कथन पर विश्वास करना चाहिए और ब्रह्म-स्मरण रात-दिन करके अमृत का आस्वादन करना चाहिए।[4] ब्रह्म-प्राप्ति के लिए प्रेम भी आवश्यक है। जीव को प्रेम से शिव का स्मरण और ओंकार का जाप करना चाहिए।[5] जिस जीव के हृदय में ब्रह्म-प्रेम हो उसे हिंसक पशु क्या कर सकते हैं अर्थात् वह अमर और निश्चल बन जाता है।

संत रामानन्द ने ओंकार को भी महत्त्व दिया है। ओंकार शब्द सदा रहने वाला है। यही था, आज भी है और आगे भी रहेगा। इसी का जाप, स्मरण और अध्ययन करना चाहिए।[6] गुरु भी ओंकार जाप का ही उपदेश देते हैं।[7]

अन्य संतों की भाँति संत रामानन्द ने भी बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उनके अनुसार व्रत रखना, पूजापाठ करना, गुफाओं में तपस्या करना, स्थान-संध्या आदि सब व्यर्थ है।[8] कर्मकाण्ड भी आडम्बर है।[9] अतः इन आडम्बरों को महत्व न देकर साधु-संगति में रहना चाहिए जिसमें वेद का सार बताया जाता है कि चित्त को समाधिस्थ करके जीव अमर बन जाता है।[10]

---

१. ग्वोर मोख दय यस टोठ्यठ पुनः तस मव ज़ान।

२. भक्त अर्पण ग्वोर च़रणन छुम अमृथ सोदाम।

३. सथ ग्वोर सुय यस सथ भासे न त युथ न ग्वोर मतवादी आसे।
सथ ब्रह्म विद्य ग्वोर मोख ह्यम, ही येंशि पोत्रव सोरिवो ओं।

४. सु वोन ग्वोरन स्वरून गछे परुन गछे द्यन क्योहो राथ
सु रस चथ अमर गछु ज्ञान ज्यूति हन्दि अज्ञान कास।

५. लोलय शिव सन्दि ओमय ध्याव जपुन।
ख्यन ख्यन राथ तय दिन मन सावंनस न थकुन।।

६. परू वूम सोरू वूमय सोरवुन स्वर वूमय।
वूम आसि त वूम ओस छुम येति यर वूमय।

७. जीवसय प्रावुन छुय शिवय, शिवात्म ईक अर्द्धथय
स्वर ग्वोर वखनान वोमा वोम, ही येंशि पोत्रव सोरिबा ओं।

८. कैंचव व्रथ दरी चंचल गयि चरी,
मन्दय ति फाक दरी तिथ्य पाठ्य राम रामै।
व्येयि पाठ्य छिय केंह ज़न पूज़ा पाठ करन।
शुर्य ति गिन्दान दारि दजन यिथ कन्य राम रामै।
कह छिय ग्वोफन अन्दर कुनि नेरान न्यबर।
वुछ तथ शाल त गगर किथ्य छिय राम रामै।

९. भाचि बठ वुछत बॉडय पाथर कर्म काण्डय।

१०. वीद सत्संगय ह्योव वनुन।
यथ स्थानस प्यठ ती गव युन
च्यथ स्थान समाधि निष्ठ बनुन, सु अमर मरि व्छो वछो।

१४वीं और १५वीं शताब्दी के हिन्दी संतकवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा

संत नामदेव—ज्ञानेश्वर-कालीन नामदेव के अतिरिक्त महाराष्ट्र में पाँच नामदेव संत और हुए हैं। कुलमिलाकर ढाई सहस्र अभंग नामदेव के नाम से प्राप्त होते हैं जो श्री आवटे महोदय ने 'सकल संत गाथा' नामक पुस्तक में संकलित किये हैं। इन अभंगों में संत नामदेव के अभंग हैं और शेष पाँच सौ-छः सौ विष्णुदास नामा के हैं। संत नामदेव और विष्णुदास नामा दो भिन्न व्यक्ति हैं जिनमें लगभग दो शताब्दियों का अन्तर है। विष्णुदास नामा ब्राह्मण जाति के हैं जिनका समय श्री भावे के अनुसार सन् १६७८ ईसवी है।[१] 'नामदेव गाथा' के कई अभंगों में कबीर, मीरा, नरसी मेहता आदि का उल्लेख आया है। ये सभी संत नामदेव के परवर्ती हैं। अतः नामदेव द्वारा इनका उल्लेख असम्भव है। ये अभंग भी किसी अन्य नामदेव के ही हो सकते हैं।

एक महानुभाव मार्गी नामदेव और हैं जिन्होंने महाभारत पर ओवीबद्ध ग्रन्थ लिखा है। ये भी अपने को 'विष्णुदास नामा' ही कहते हैं परन्तु संत नामदेव से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक महानुभावी 'नेमदेव' को भी संत नामदेव के साथ सम्बद्ध किया जाता है परन्तु ये वारकरी नामदेव से भिन्न हैं। इन्होंने महानुभावपन्थ में दीक्षा ग्रहण की थी। सिक्खों के धार्मिक ग्रन्थ 'गुरु-ग्रन्थ' साहिब में इकसठ पद नामदेव के उपलब्ध होते हैं। महाराष्ट्र में यह भी मान्यता है कि इन पदों के रचयिता नामदेव और संत नामदेव भिन्न हैं। इस मान्यता के अनुसार इन पदों के रचयिता नामदेव महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर-कालीन नामदेव की पंजाब-यात्रा के समय कोई शिष्य रहे होंगे जिन्होंने गुरु के नाम से हिन्दी में पद-रचना की होगी। उपर्युक्त मान्यता निराधार है क्योंकि मराठी अभंगों और गुरु-ग्रन्थ-साहिब के हिन्दी पदों में नामदेव के जीवन की घटनाएँ, पदावली, कथा-संदर्भ तथा भाव-धारा समान होने के कारण ये दोनों एक ही नामदेव की रचनाएँ सिद्ध होती हैं। डा० प्रभाकर माचवे ने महाराष्ट्र के नामदेव के अतिरिक्त केवल और दो

---

१. Mysticism In Maharashtra, Prof. R D. Ranade, Edition 1933, page 288.

नामदेव ही माने हैं।[1] जबकि उनकी संख्या पाँच तक पहुँचती है। आचार्य विनयमोहन शर्मा ने विश्वभारती पत्रिका खण्ड ६ के द्वितीय अंक में संत नामदेव के अतिरिक्त अन्य पाँच नामदेवों का उल्लेख किया और पंजाब और महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वरकालीन नामदेव को अभिन्न माना है। निष्कर्ष यह निकलता है कि पंजाब के ये नामदेव ज्ञानेश्वरकालीन नामदेव ही हैं। इन्होंने ही पंजाब यात्रा की है और 'गुरु-ग्रन्थ-साहिब' में इकसठ पद इन्हीं के संकलित हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—संत नामदेव का युग खिलजी शासकों का युग था। प्रथम खिलजी शासक जलालुद्दीन सन् १२१० ईसवी में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा परन्तु अल्प कालोपरान्त ही उसका वध करवाकर अलाउद्दीन खिलजी ने राज्य अपने हाथ में ले लिया। उत्तर भारत में मुसलमान शासन शताब्दियों से भारतीय जीवन पर प्रभाव डाल रहा था परन्तु वह विंध्याचल और नर्मदा नदी को लाँघ न सका। देवगिरि तक मुसलमानी राज्य फैल चुका था, उत्तर भारत में इस साम्राज्य का पूर्ण अधिकार था। महाराष्ट्र में नाथपंथी बाह्याडम्बरों का विरोध करते थे और निर्गुण निरंजन की योग-परक साधना को प्रमुख मानते थे। शनैः शनैः यह नाथ-मत महाराष्ट्र में वारकरी मत में विलीन होता गया और इसके साथ-साथ ईसा की तेरहवीं शताब्दी में चक्रधर-द्वारा महानुभाव-पंथ का प्रादुर्भाव हो गया। इसमें भी वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध किया गया और ज्ञान और भक्ति को ईश्वर-प्राप्ति का साधन माना गया। इस मत में बहुदेवो-पासना का विरोध है। यद्यपि चक्रधर जातिगत भेद-भाव को नहीं मानते थे तथापि कई वर्षों तक यह मत ब्राह्मणों में ही फैलता रहा। नाथपंथी ब्रह्म की सर्वव्यापकता घोषित कर मन्दिरों में जाना निषिद्ध मानते थे और पुरोहित-वर्ग वर्ण-व्यवस्था का पक्ष ले रहा था। वर्णव्यवस्था में शूद्र-जाति के मनुष्यों को मन्दिर-प्रवेश निषिद्ध था। सुदूर दक्षिण के आलवार संतों की भक्ति का प्रभाव क्रमशः उत्तर की ओर अग्रसर होने से महाराष्ट्र में भी उसका संचार हुआ। अतः भागवत् मत से प्रभावित वारकरी सम्प्रदाय महाराष्ट्र में प्रचलित हुआ। नामदेव इसी मत के एक प्रमुख प्रचारक और स्तम्भ माने जाते हैं। वारकरी का शब्दार्थ है यात्रा करने वाला। इस पंथ में पंढरपुर की यात्रा की जाती है और पंढरपुर-स्थित विट्ठल की मूर्ति की उपासना की जाती है।

जन्मकाल—संत नामदेव के जन्मकाल के सम्बन्ध में अधिक मतभेद नहीं है। फिर भी कई विद्वानों का मत भिन्न होने से समस्या उत्पन्न होती है। हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहासकार फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी[2] इनका समय ईसवी १२७८, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[3] ईसवी १२७२, और आचार्य[4] हजारीप्रसाद द्विवेदी सन् १२६७ ईसवी

---

१. हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत-काव्य, २०१९ वि०, पृ० ३५२।
२. हिंदुई साहित्य का इतिहास (अनुवादक लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), सन् १९५३ ई०, पृ० १२९।
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००६ वि०, पृ० ६६।
४. हिन्दी साहित्य, सन् १९६४ ईसवी, पृ० ७४।

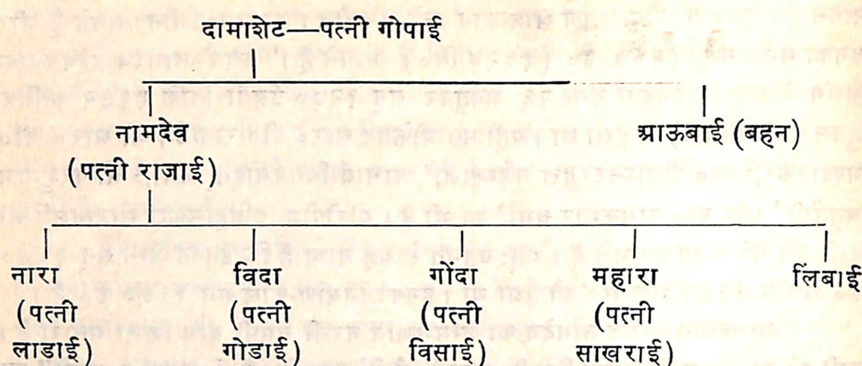
मानते हैं। डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव इन्हें त्रिलोचन का समकालीन मानते हैं और इनका समय सन् १२६७ ई० (१३२४ वि०) मानते हैं।[१] स्वयं नामदेव-रचित एक अभंग के अनुसार इनका जन्म २६ अक्तूबर सन् १२७० ईसवी (शके ११९२ कार्तिक शुक्ल पक्ष रविवार)को हुआ था। यही मत प्रोफेसर आर० डी० रानाडे[२], श्री आर० जी० भण्डारकर,[३] डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल,[४] आचार्य विनयमोहन शर्मा,[५] श्री परशुराम चतुर्वेदी,[६] और डा० रामकुमार वर्मा[७] का भी है। योरोपीय इतिहासकार मैग्डानेल[८] भी इसी मत को मान्य समझते हैं। अतः बहुमत से यह मान्य है कि इनका जन्म सन् १२७० ई० अर्थात् ११९२ शक सं० को हुआ था। इनका निर्वाण-काल सन् १३५० ई० है।

जन्मस्थान—संत नामदेव का जन्म-स्थान नरसी बमनी ग्राम ज़िला सतारा है। इसी को डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'नरसी बैनी' नाम देते हैं।[९] गार्सा द तासी[१०] का मत—कि ये ग्वालियर में पाए गए एक बालक थे—नितान्त भ्रामक और निराधार है जिसके समाधान के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता।

माता-पिता तथा परिवार—हिन्दी, मराठी तथा अंग्रेजी के लगभग सभी विद्वान यही मानते हैं कि नामदेव की माता का नाम 'गोपाई' और पिता का नाम 'दामाशेट' था। इनकी जाति दर्ज़ी थी जिसको मराठी में 'शिंपी' कहते हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने इनके पिता का नाम 'दमशेती' कहा है।[११] महाराष्ट्रीय विद्वानों के अनुसार संत नामदेव की माता का नाम गोपाई और पिता दामाशेट कहलाते थे। डा० रामकुमार ने अंग्रेजी पुस्तक में रोमन लिपि के गलत पढ़ने के कारण पिता का नाम दमशेती लिखा है।[१२] नामदेव की 'आऊबाई' नामक एक बहन भी थी। संत नामदेव का विवाह नव वर्ष की अल्पावस्था में ही गोविन्द शेट की पुत्री राजाबाई के साथ हुआ था। और इनके चार पुत्र और एक पुत्री थी। इनका वंश-वृक्ष आचार्य विनयमोहन शर्मा ने इस प्रकार दिया है :

---

१. रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, सं० १९५७ ई०, पृ० ९५
२. Mysticism In Maharashtra, Edition 1933, page 185.
३. Vaishnavism Shaivism and Minor Religious Systems, Edition 1929 page 127.
४. हिन्दी-काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, २००७ वि०, पृ० ९६।
५. हिन्दी को मराठी संतों की देन, १९५७ ईसवी, पृ० १०६।
६. उत्तरी भारत की संत परम्परा, २००८ वि०, पृ० ११०।
७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९५८, पृ० २१७।
८. India's Past, Edition 1956, page 129.
९. हिन्दी साहित्य, सन् १९६४ ई०, पृ० ७४।
१०. हिंदुई साहित्य का इतिहास, सन् १९५३ ई०, पृ० १२९।
११. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण १९५८, पृ० २१७
१२. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, प्र० सं० १९५७, पृ० ९८।



नामदेव में विट्ठल-भक्ति संस्कारवश ही थी। इनके पिता विट्ठल के भक्त थे और प्रतिवर्ष पंढरपुर की यात्रा करते थे। किम्वदन्ती है कि एक बार इनकी माँ ने इन्हें विट्ठल-मन्दिर में दूध का नैवेद्य चढ़ाने को भेजा, परन्तु जब बालक नामदेव ने देखा कि मूर्ति ज्यों-की-त्यों है और दूध पीने का कोई प्रयास नहीं करती, तब इनके मन में बड़ा क्षोभ हुआ और ये रो पड़े। कहा जाता है कि अंत में उस मूर्ति ने इनके हाथ से कटोरे का दूध पी लिया। यद्यपि इसका वर्णन इनके एक पद—दूध कटोरे गड़वै पानी—में मिलता है परन्तु ऐसी बातों में तथ्य की मात्रा कितनी है, कहा नहीं जा सकता। भक्तों का माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिए भी ऐसी संस्कारी घटनाएँ उनके जीवन के अंतर्गत हो जाती हैं।

युवावस्था—संत नामदेव के विषय में यह भी प्रचलित है कि ये कुछ दिनों के लिए डकैती भी करने लग गये थे और उसी पर अपनी आजीविका चलाया करते थे। एक दिन जब उनके दल ने एक मानव-समूह को मार डाला था तब नामदेव को एक मन्दिर के निकट एक स्त्री मिली जो अपने क्षुधार्त्त बालक को डाँट रही थी। नामदेव ने उसे ऐसा करने से मना करना चाहा। तब उस स्त्री ने अपने पति के डाकुओं-द्वारा मारे जाने का दुःखद वृत्तान्त सुनाया, जिसे सुनकर नामदेव को अपने कृत्य पर उत्कट घृणा हो आई और वे घोर पश्चात्ताप करने लगे। वे वहीं पर आत्महत्या करने को तत्पर हुए थे परन्तु लोगों के मना करने पर वे पंढरपुर की ओर चले गये।

गुरु—संत नामदेव के गुरु बिसोवा खेचर नामक नाथपंथी थे। कहा जाता है कि गुरु न मिलने के कारण पहले इन्हें बड़ी ग्लानि हुई थी। एक बार ज्ञानदेव इन्हें साथ लेकर तीर्थस्थानों की यात्रा करने को निकले। मार्ग में नामदेव विठोबा (भगवान) के वियोग में बड़े व्याकुल रहते थे। ज्ञानदेव ने इन्हें ईश्वर की सर्वव्यापकता समझाई। परन्तु इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। एक बार ज्ञानदेव की बहन मुक्ताबाई के कहने पर 'संत-परीक्षा' हुई और एक कुम्हार ने घड़ा पीटने का पिटना लेकर सबके सिर पर जमाना आरम्भ किया। चोट पर चोट खाकर भी संत अविचलित थे, अकेले नामदेव बिगड़ उठे और कुम्हार ने सिद्ध किया कि नामदेव को छोड़कर अन्य सब घड़े पक्के हैं। डा० भागीरथ मिश्र ने इसी कथा को अन्य रूप में प्रस्तुत किया है कि ज्ञानेश्वर और नामदेव

दोनों एक-दूसरे की भक्ति के विषय में सुन चुके थे। एक बार आलंदी में नामदेव की ज्ञानेश्वर से भेंट हुई। ज्ञानेश्वर और निवृत्तिनाथ नामदेव के चरणों पर गिर पड़े। परन्तु नामदेव भक्ति के अहंकार में वैसे ही खड़े रहे। यह देखकर मुक्ताबाई ने नामदेव को फटकारा। तदनन्तर संतों में ज्येष्ठ गोरोबा काका से संत नामदेव की परीक्षा करवाई गई जिसमें नामदेव कच्चे घड़े ठहराये गये। यहीं से इन्हें ग्लानि हुई और ये गुरु ढूंढ़ने निकले इन दोनों कहानियों का रूप भिन्न होने पर भी उनका भाव एक ही है।

संत नामदेव की भेंट बिसोवा खेचर से नागनाथ के मन्दिर में हुई। बिसोवा खेचर शिवलिंग के ऊपर अपना कुष्टयुक्त पैर रखकर लेटे हुए थे। यह देखकर नामदेव को क्रोध आया और उन्होंने बिसोवा खेचर को वहाँ से पैर हटाने को कहा। बिसोवा खेचर ने कहा, 'मैं बीमार हूँ, मेरे पैर को उठाकर ज़रा वहाँ रखो जहाँ शिवलिंग न हो।' नामदेव ने उनका पैर दूसरी ओर किया तो वहाँ भी शिवलिंग प्रकट हुआ। इस पर नामदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ, इस चमत्कार को देखकर नामदेव ने बिसोवा खेचर से क्षमा माँगी और उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया।

उपर्युक्त दोनों कथाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि संत नामदेव ने सर्वव्यापक निर्गुण ब्रह्म की ओर आने की प्रेरणा ज्ञानदेव से प्राप्त की परन्तु गुरु बिसोवा खेचर को ही स्वीकार किया।

अन्य चामत्कारिक घटनाएँ—कहा जा चुका है कि प्रायः प्रत्येक संत के साथ कुछ चामत्कारिक घटनाएँ सम्बद्ध होती हैं। संत नामदेव के साथ भी मन्दिर के पूर्वी द्वार का पश्चिम की ओर हो जाना और मरी हुई गाय का जिलाना इत्यादि घटनाएँ सम्बन्धित हैं। कहा जाता है कि एक बार संतनामदेव आलावंती स्थान पर एक मन्दिर के द्वार के सामने कीर्तन करने लगे। वहाँ के पंडों ने इन्हें शूद्र जानकर वहाँ से भगा दिया जिससे इन्हें अपनी जाति की नीचता पर बड़ा दुःख हुआ और ये मन्दिर के पिछवाड़े पश्चिम की ओर जाकर अपना कीर्तन करने लगे। कुछ ही समय-उपरान्त मन्दिर का द्वार भी पश्चिम की ओर हो गया।

यह भी किंवदन्ती है कि संत नामदेव के चमत्कारों का समाचार सुल्तान फीरोज़ शाह तक पहुँचा और उन्होंने नामदेव को एक मरी हुई गाय पुनः जिलाने की आज्ञा दी। संत नामदेव ने हरि से प्रार्थना की और गाय पुनः जीवित हो गई। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह सुल्तान कौन-सा सुल्तान था? यह दिल्ली का सुल्तान फीरोज़शाह खिलजी (राज्यकाल १२८२-१२९६ ई० तक) नहीं हो सकता क्योंकि नामदेव और इस सुल्तान का समय मेल नहीं खाता। यह फीरोज सुल्तान फीरोज़ भी नहीं हो सकता जिसने १३५१-१३८८ ई० तक दिल्ली में शासन किया क्योंकि संत नामदेव के दिल्ली आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। विनयमोहन शर्मा के अनुसार यह सुल्तान फीरोज़-शाह सुल्तान बहमनी हो सकता है जो दक्षिण में ही रहा।

गार्सां द तासी ने एक और घटना का वर्णन भी किया है।[1] कि एक धनाढ्य

१. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, सं० १९५३, पृष्ठ १३४।

व्यापारी ने नामदेव से कुछ माँगने को कहा और नामदेव ने तुलसी-पत्र पर राम-नाम अक्षर अंकित करके उसके बराबर कोई वस्तु माँगी। परन्तु धनाढ्य की समस्त सम्पत्ति रखने पर भी पत्ती वाला पलड़ा ऊपर नहीं उठा।

इस प्रकार की घटनाओं में श्रद्धाभाव अधिक और तथ्य कम होते हैं। अतः इन पर पूर्ण रूप से विश्वास करना मूर्खता है।

नामदेव की यात्राएँ—संत नामदेव ने संत ज्ञानेश्वर के साथ तीर्थ-स्थानों की यात्राएँ भी की हैं। पंढरपुर में भेंट होने के पश्चात् ये मंगलवेढा, आरणमेड़ी, तेरगाँव, दिल्ली और जगन्नाथपुरी की यात्रा करके पुनः पंढरपुर लौटे। तीर्थयात्रा से लौट आने के कुछ दिवसोपरान्त संत ज्ञानेश्वर ने महाप्रयाण किया, तभी से संत नामदेव का मन दक्षिण से उचट गया। अतः ये द्वितीय तीर्थयात्रा को चल पड़े और इन्होंने पंजाब प्रान्त में अधिक समय व्यतीत किया। हरिद्वार में कुछ समय रहकर ये जिला गुरदासपुर के घोमान नामक ग्राम में आये और बहुत समय तक वहीं रहे। वहाँ अभी भी एक प्राचीन मन्दिर में संतनामदेव की चरणपादुका का पूजन किया जाता है। पंजाब में संत नामदेव के अनेक शिष्य बने जिनमें विष्णुस्वामी, बहारे दास, जालतेसुनार और लब्धा प्रमुख हैं। ये उनके साथ ही पंढरपुर भी गये और विट्ठल की भक्ति करते रहे।

नामदेव की भक्ति—संत नामदेव बाल्यकाल से ही साधु-सेवा और सत्संग में रत रहते थे। जन श्रुति यह है कि इनके मुख से आरम्भ से ही विट्ठल-विट्ठल की ध्वनि निकला करती थी। नामदेव ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को मानते थे। वे पंढरपुर में विट्ठल की प्रतिमा की पूजा करते थे और विट्ठल को सर्वव्यापी भी मानते थे। धर्म के बाह्याडम्बरों का इन्होंने विरोध किया है। हिन्दी और मराठी निर्गुण संत-कवियों की परम्परा में संत नामदेव का प्रमुख स्थान है। यद्यपि कबीर और नामदेव से पूर्व सिद्धों और नाथों ने निर्गुणमत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया था फिर भी उत्तरभारत में इस मत की परम्परा को चलाने का श्रेय संत नामदेव को ही है। डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल[1] और आचाय रामचन्द्रशुक्ल[2] जैसे प्रसिद्ध लेखक नामदेव को न मानकर कबीर को ही संतमत का प्रवर्त्तक मानते हैं। आचार्य विनयमोहन शर्मा के दृढ़ मत, जो तथ्यों पर आधारित है—के अनुसार उत्तरभारत में निर्गुण-भक्ति मत के प्रथम प्रचारक और प्रवर्त्तक तथा कबीर आदि संतों के पथ-प्रदर्शक संत नामदेव ही हैं।[3] संत नामदेव में वे सब विशेषताएँ हैं जो परवर्ती संत-मत में मिलती हैं। संत नामदेव ने जब उत्तर भारत की यात्रा आरम्भ की उस समय उन्होंने बिसोवा खेचर से दीक्षा प्राप्त की थी, दीक्षा से पूर्व नामदेव की भक्ति बिठोवा की मूर्ति में ही केन्द्रित थी, परन्तु दीक्षा के उपरान्त उनके अन्तर्नेत्र खुल गये और विट्ठल का प्रयोग उन्होंने 'ई मैं वीठलु ऊभै

---

१. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, सं० २००७ वि०, पृष्ठ ६२।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००६ वि०, पृष्ठ ७०।
३. हिन्दी को मराठी संतों की देन, प्र० सं० १९५७ ई०, पृष्ठ १२८।

वीठलु वीठलु बिनु संसार नहीं' कहकर व्यापक ब्रह्म के अर्थ में करना आरम्भ किया।

संत नामदेव से पूर्व सिद्धों और नाथों ने भी निर्गुण ब्रह्म का प्रचार किया था परन्तु दोनों की साधना भिन्न थी, माध्यम भिन्न था। सिद्ध और नाथ शुष्क ज्ञान और योग को विशेष मानते थे परन्तु नामदेव ने ज्ञान और योग के साथ भक्ति का भी समन्वय किया, अतः आचार्य जी का कथन कि 'उत्तर भारतीयों को सर्वप्रथम निर्गुण-भक्ति का मधुर रस पान कराने का श्रेय इसी महाराष्ट्रीय संत कवि को है[1] अक्षरक्षः सत्य है। संत नामदेव हिन्दी साहित्य में निर्गुण संत-परम्परा के अग्रणी हैं।

नामदेव की अभंग और पद-रचना—महाराष्ट्र में मान्यता है कि संत नामदेव ने कई सहस्र अभंगों की रचना की है परन्तु अभी तक लगभग ३००० अभंग ही उपलब्ध हुए हैं जो संत 'नामदेव की गाथा' नामक ग्रन्थ में संगृहीत हैं।[2] अभंगों की संख्या अधिक होने के कारण यह समस्या उत्पन्न होती है कि ये एक ही नामदेव के पद हैं या एक से अधिक के। यह बात निश्चित है कि यह सभी अभंग महाराष्ट्र के वारकरी सत नामदेव के नहीं हैं। अनुमान है कि उन्होंने पाँच-छः सौ अभंग ही रचे होंगे। अभंगों के अतिरिक्त इन्होंने कई हिन्दी पदों की रचना भी की है। इकसठ पद सिख सम्प्रदाय के 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' में प्राप्त हैं। इन पदों की भाषा हिन्दी है और गुरु-ग्रन्थ साहब में गुरुमुखी लिपि में संकलित हैं। मूल पाण्डुलिपि प्राप्त न होने के कारण पदों की भाषा में परिवर्तन-परिवर्धन स्वाभाविक ही है। विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों से प्राप्त कुल २३४ हिन्दी-पद डा० भगीरथ मिश्र और श्रीराजनारायण मौर्य ने 'संत नामदेव की हिन्दी पदावली' नामक पुस्तक में संकलित किये हैं। इसमें इन्होंने पाठालोचन के सिद्धान्तों पर पाण्डुलिपियों का परीक्षण किया है और मूलपाठ देने का प्रयत्न किया है। इनका यह कार्य सराहनीय है।

नामदेव के हिन्दी पदों की भाषा के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उसमें मराठी, पंजाबी, अरबी, फारसी, खड़ीबोली और ब्रजभाषा के शब्दों का मिश्रण है। मराठी-प्रभाव इनकी कृतियों में अधिक होना स्वाभाविक ही है। आध्यात्मिक स्वर प्रधान होने के कारण इन पदों में शान्त, वात्सल्य और करुण रस की प्रधानता है। कबीर आदि परवर्ती संतों के समान ही इन्होंने भी खसम, निरंजन, वीठुला, कुण्डलिनि, नाद आदि विशेष शब्दावली का प्रयोग किया है। संत-नामदेव मराठी साहित्य के आद्य आत्मचरितकार और हिन्दी में गीतशैली के प्रथम गायक हैं अतः हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओं के योगदान में संत नामदेव का प्रमुख स्थान है।

संत नामदेव की दार्शनिक विचारधारा : सिद्धान्त पक्ष

ब्रह्म—संत नामदेव के अनुसार ब्रह्म एक है, सर्वव्यापक है और पूर्ण है, वही

१. हिन्दी को मराठी संतों की देन, प्र० सं० १९५७, पृष्ठ १२०।
२. मराठी का भक्ति-साहित्य, प्रो० भी० गो० देशपाण्डे, संस्करण १९५६, पृष्ठ ७५।

गोविन्द है और उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की सत्ता नहीं है।[1] समस्त संसार में ब्रह्म ही समाया हुआ है। जैसे सूत के एक धागे में सहस्रों मणियाँ गूंथी जाती हैं वैसे ही परमात्मा संसार की प्रत्येक वस्तु में समाया हुआ है।[2] संत नामदेव ब्रह्म को निराकार मानते हैं।[3] उसका न रूप है न रेखा और न वर्ण, वह ऐसा परमतत्त्व है।[4] वही निर्गुण है, निरंजन है, वही अमर फलदाता है।[5] वही प्रत्येक शरीर में व्याप्त है, इसलिए ममता और अहंभाव को त्यागना आवश्यक है।[6] इस ब्रह्म को संत नामदेव राम नाम से पुकारते हैं और इसे अपनी अगम अपार पूंजी मानते हैं।[7] वह निर्गुण समस्त गुणों का भण्डार है।[8] वही दसों दिशाओं में व्याप्त है।[9] वही स्थावर, जंगम कीड़ों, और पतंगों में व्याप्त है।[10] ब्रह्म अवर्णनीय है, उसका वर्णन मसि-कागज़ से नहीं किया जा सकता है। वही माता है, वही पिता है और वही सब का जीवनदाता है।[11] वही अगम अगाध भिन्न-भिन्न वेशों में प्रकट होता है।[12] वही बीठुला है जिसको नामदेव ने माता-पिता और कुटुम्बी माना है।[13] ब्रह्म अविचल है, अभय है, अलक्ष्य है।[14] उन्हीं को नामदेव नतमस्तक हुए हैं। जिस प्रकार क्षुधित को अन्न और तृषित को जल प्रिय होता है उसी प्रकार नामदेव के लिए ब्रह्म है। इस ब्रह्म को नामदेव ने कबीर की भाँति प्रियतम माना है और स्वयं को उसकी

---

१. एक अनेक सु व्यापक पूरक जित देखौ तित सोई।
   सब गोबिन्दु है सब गोबिन्दु है गोबिन्दु बिनु नहीं कोई॥
   —संत सुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, सं० १९५३, पृष्ठ ४५।
२. सूतू एक मनि सत सहस्र जैसे ओतिपोति प्रभु सोई।—वही, पृष्ठ ४५।
३. अखंड मंडल निराकार मैं, दास नामदेव गावै।
   —संत नामदेव की हिन्दी पदावली, भगीरथ मिश्र, सं० १९६४, पृष्ठ ३३, पद ७४।
४. कहै नामदेव परमतत है ऐसा जाके रूप न रेष वरण कहौ कैसा।
   —वही, पृष्ठ ३४, पद ७६।
५. निराकार नामा तेरी बेली, अनंत अमर फल देली।—वही पृष्ठ ४४, पद ९७।
६. छांडि दे रे मन हमिता ममिता
   सब घट राम रह्यौ रमि रमता।—वही, पृष्ठ ५६, पद १२३।
७. यहु पूंजी है अगम अपार।—वही, पृष्ठ ५८, पद १२८।
८. तूं निर्गुण हौंगुणभरी।—वही, पृष्ठ ६६, पद १४१।
९. दह दिसि राम रह्या भूपूरि—वही, पृष्ठ २, पद २।
१०. थावर जगम कीट पतंगा सब घटि राम समाना।—वही, पृष्ठ ३, पद ६।
११. राम माता राम पिता राम सबै जीवन दाता।—वही, पृष्ठ ७, पद ९।
१२. सरवै भूत नाना पेषू जत्र जाऊं तत्र तूं ही देषू—वही, पृष्ठ ५, पद १२।
१३. माइ तू मेरे बाप तूं
   कुटुम्बी मेरा बीठला।—वही, पृष्ठ १५ पद ३४।
१४. अविचल अभै नाराइन देव। नामदेव प्रणवै अलष अभेव।
   —वही, पृष्ठ १८, पद ४४।

प्रियतमा ।[1] नामदेव के पदों में विरह की तीव्रता है। जैसे बछड़ा गाय के बिना और मीन जल के बिना तड़पती है वैसे ही नामदेव भी रामनाम के बिना तड़पते हैं।[2] उनके मन में प्रिय के मिलन की तीव्र उत्कंठा है।

जीव—नामदेव के अनुसार ब्रह्म ही जीव में व्याप्त है। जीव एक ही मिट्टी के विविध पात्र हैं। वास्तव में स्थावर और जंगम सभी में वही राम व्याप्त है।[3] जीव ब्रह्म की गति को नहीं जानता है। अतः वह उसके लिए अवर्णनीय है।[4] जीव इस संसार में आता है और ईश्वर-भक्ति को भुलाता है, वह अज्ञानी है, अपराधी है, और कुसंगति में पड़कर कुत्सित कर्म करता है।[5] जीव की अपनी कोई भिन्न सत्ता नहीं है वही एक होकर अनेक हो गया है।[6] जीव अज्ञान की निद्रावस्था में है, वह यह नहीं विचारता है कि मनुष्य को यहाँ से चार दिवस व्यतीत करके प्रयाण करना है।[7] नामदेव के अनुसार जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध जल और तरंग का है।[8] जीव का शरीर नश्वर है फिर भी वह अहंकार में डूबा है। मनुष्य अपना समय अहंकार में व्यतीत करके दुर्गति को प्राप्त करते हैं। अपनी क्षणभंगुरता में गर्व करना मूर्खता है।[9] मानव-शरीर नाशवान है, असत्य है।

---

१. मैं बौरी मेरा राम भतार।
रचि रचि ताकौं करौं सिंगार,
—संत सुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, सं० १९५३ ई०, पृष्ठ ४८।

२. मोहि लागत तालाबेली।
बछरा बिनु गाइ अकेली।
पानी बिनु ज्यू मीन तलफै।
ऐसे राम नाम बिनु नामा कलपै।—वही, पृष्ठ ५१।

३. थावर जंगम कीट पतंगा, सब घटि राम समाना।
संत नामदेव का हिन्दी पदावली, भगीरथ मिश्र, संस्करण १९६४, पृष्ठ ३, पद ६।

४. तेरी तेरी गति तू ही जानै, अल्प जीव गति कहा बषानै।—वही, पृष्ठ ६, पद १४।

५. मैं अपराधी बाप मैं अपराधी। सांचिली तुम्हचीं भगति न साधी।
घणो अग्यान अग्या भंगी। कीयै काम कुसंगा संगी।—वही, पृष्ठ ७, पद १५।

६. मैं नहीं मैं नहीं मैं नहीं माधो तू है मैं नहीं है।
तू एक अनेक है बिस्तरयो मेरी चरम न साई हो।—वही, पृष्ठ २२, पद ५३।

७. जागि रे जीव कहा भुलाना।
आगे पीछे जाना ही जाना।
दिवस चारि का गोवलि बासा।—वही, पृष्ठ ५६, पद १२२।

८. आपन देव बहुरा आपन आप लगावै पूजा।
जल ते तरंग तरंग ते है जल कहन सुनन को दूजा।
—संत सुधासार (वृहत्), श्री बियोगी हरि, सं० १९५३, पृ० ४७।

९. काहे रे नर गरव करत है बिनसि जाइ झूठी देही।—वही पृष्ठ ५२।

जगत—संत नामदेव के अनुसार जगत् एक हाट है जहाँ मनुष्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हैं। मूर्ख मनुष्य अपना मूलधन ही गँवा देते हैं।[१] मनुष्य संसार के प्रति आकृष्ट हैं अतः वे परमपद से दूर हो जाते हैं।[२] समस्त संसार माया और मोह में भूला-भटका है।[३] हरिनाम सत्य है बाकी समस्त संसार असत्य है।[४] संसार को नष्ट होने में देर नहीं लगती है। यह काल के ग्रास में एक क्षण में आता है। इस कारण हे। मन-रूपी पक्षी संसार के जाल में मत फँसो, यह माया-जाल है।[५]

माया—नामदेव ने माया को प्रबल शक्ति माना है, इसी ने अनेक पुरुषों को भ्रम में डाला है। माया के कारण ब्रह्म दिखाई नहीं देता है परन्तु ब्रह्म के सामने माया भी अदृश्य हो जाती है।[६] यह दो वस्तुएँ साथ-साथ नहीं हो सकती है। इसी माया के मोह में समस्त जगत् भटकता है।[७] संसार में मनुष्य अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है।[८] जीवन-मरण में कोई साथ नहीं देता। असत्यता के कारण माया छूट जाती है और मनुष्य अकेला ही मृत्यु प्राप्त करता है।

साधना-पक्ष—संत नामदेव की साधना में नाम-स्मरण, गुरु, योग और सत्संगति को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। हरि के नाम-स्मरण से सब पीड़ाएँ समाप्त होती हैं, यही कालचक्र से मनुष्य को मुक्त कराता है, यही जीवन का सार है, यही संसार-सागर से पार

---

१. यह संसार हाट का लेखा।
सब कोई बनिजहि आया॥
जिन जस लाघा तिन तस पाया।
मूर्ख मूल गंवाया॥

—संत सुधासार, वृहत्, श्री वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ५३।

२. जिहि जिहि मारण संसार जाइला, सो पंथ दूरैं वंचिला।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, भगीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृष्ठ ७, पद १६।

३. माया मोह करि जगत भुलाया।—वही, पृष्ठ २०, पद ४८।

४. सार तुम्हारा नांव है झूठा सब संसार।—वही, पृष्ठ २१, पद ५१।

५. रे मन पंछीया न परसि पिंजरे
संसार माया जाल रे।—वही, पृष्ठ ३३, पद ७५।

६- बीहौं बीहौं तेरी सबल माया
आगे इनि अनेक भरमाया।
माया अंतर ब्रह्म न दीसै।
ब्रह्म के अंतर माया नहीं दीसै।—वही, पृष्ठ १६, पद ३९।

७. माया मोह करि जगत् भुलाया।—वही, पृष्ठ २०, पद ४८।

८. अकेले आना अकेले जाना, सब झुठी माया पसरी जू॥

—वही, पृष्ठ ८६, पद १९२।

होने का एकमात्र साधन है।[१] राम नाम का जप और श्रवण करना चाहिए, यही मोह में डूबने से बचाता है। ब्रह्म अवर्णनीय है, मसि-कागज से उसके गुणों का वर्णन करना असंभव है।[२] उस वर्णन करने वाले और श्रोता को धिक्कार है जो रामनाम का स्मरण नहीं करता है।[३] जब तक जीव रामनाम का जप नहीं करता तब तक उसे सुख की उपलब्धि नहीं होती है, उसमें ममत्व और परत्व की भावना आती है और इसी अहं-भाव के फलस्वरूप वह जन्म-मरण के चक्र में संसार में आता-जाता हैं।[४] स्वयं नामदेव योग, युक्ति और मोक्ष नहीं चाहते। वे केवल हरिनाम को हृदय में रखना चाहते हैं।[५] नामस्मरण के बिना जीव की वही दशा होती है जो नीर बिना मीन की होती है।[६] तीनों लोकों में हरि व्याप्त है अतः उसका नाम-स्मरण ही परमतत्त्व है।[७] रामनाम के बिना मानवजीवन व्यर्थ है।[८]

गुरु—जीव का ध्यान परमतत्त्व की ओर आकृष्ट करने वाला गुरु है। गुरु ही जीव का जन्म सफल बनाता है, सांसारिक दुःखों, क्लेशों और पीड़ाओं से मानव को मुक्त कराकर उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कराता है। वही ज्ञान का अंजन देकर परमज्योति के दर्शन कराता है।[९] गुरु ही जीव को यौगिक क्रियाओं में पारंगत कराता है। गुरु के

---

१. हरि नांव सकल भुवन ततसारा।
हरिनाँव नामदेव उतरे पारा।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, भगीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृष्ठ १, पद १।

२. राँमनाव जपिबौ श्रवनि सुनिबौ।
सलिल मोह मैं बहि नहीं जाइबौ।
अकथ कथ्यो न जाइ। कागद लिख्यौ न माई।—वही, पृष्ठ ४, पद ९

३. धृग ते वकता धृग ते सुरता
प्राननाथ कौ नाव न लेता।—वही, पृष्ठ ५, पद १०।

४. जो लग राम नामै हित न भयौ।
तौ लग मेरी मेरी करता जनम गयौ।—वही, पृष्ठ १०, पद २२।

५. जोग जुगुती कछू मुकति न भाषूं
हरि नांव हरि नांव हरिदै राषूं।—वही, पृष्ठ १६, पद ३८।

६. पाँणीयाँ बिन मीन तलफैं। ऐसे रांम नांम बिन बापुरौ नामा।
—वही, पृष्ठ २५, पद ५९।

७. राम नाम जपि लोई। परमतत है सोई।
तीनौ रे त्रिलोक व्यापै दूजौ नहिं कोई॥—वही, पृष्ठ ३९, पद ८९।

८. राम नाम बिनु जीवनु मन हीना।
नामदेई सिमरनु करि जाना।
जग जीवन सीऊ सीऊ सामाना।—वही, पृष्ठ ९७, पद २०४।

९. सफल जनमु मोकउ गुर कीना।
दुख बिसारि सुख अंतरि लीना।
गिआन अंजनु मोकउ गुर दीना।—वही, पृष्ठ ९७, पद २०४।

मिलने से मनुष्य संसार-सागर से पार उतरता है।[1] गुरु ही ईश्वर से भेंट कराता है। ब्रह्म-ज्ञान के लिए गुरु-कृपा अत्यावश्यक है। बिना गुरु के जीव का इस क्षणिक संसार में कोई भी ठिकाना नहीं है। भारतीय-दर्शन में इसी कारण गुरु की महत्ता बताई गई है। गुरु की कृपा से जीवित ही मुक्ति प्राप्त होती है। गुरु के अतिरिक्त और किसी के निकट नहीं जाना चाहिए। नामदेव इसी गुरु की ही शरण में हैं।[2] गुरु-दीक्षा से द्वैतभाव मिट जाता है।[3] वही अलक्ष्य ब्रह्म के दर्शन कराता है।[4]

साधुसंगति—परमतत्त्व की ओर मन आकृष्ट करने में साधुसंगति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधुसंगति आवश्यक है, इससे मूर्ख जन वंचित हैं। वे काम क्रोध और तृष्णा में ही अपना जन्म व्यर्थ व्यतीत करते हैं।[5] वास्तव में वह क्षण धन्य है जब जीव साधुसंगति में रत ईश्वर की भक्ति करता है।[6] नामदेव सप्रेम राम को प्रणाम करते हैं और सत्संगति में अपना समय व्यतीत करते हैं और संतों से भेंट करते हैं।[7] संत से ही लेना-देना करना चाहिए, सत्संगति बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है, इसी से परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। संत नामदेव भी असाधुओं की संगति को बुरा मानते हैं।[8]

योग—संत नामदेव के पदों में कहीं-कहीं योगपरक शब्दावली मिलती है। दस द्वार, पंच कोश आदि शब्दों का बाहुल्य है। नामदेव के अनुसार मूर्ख लोग भ्रम में भटकते हैं, वे न 'अनहदनाद' सुनते हैं, न अन्तरगति से ही परिचित हैं। जब मनुष्य इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी को वश में करता है तभी वह सहस्रार से अमृतस्राव का अनुभव

---

१. जिह गुरु मिलै तिह पारि ऊतारै।—वही, पृष्ठ १०१, पद २१५।

२. बिनु गुरुदेउ अवर नहीं जाई।
नामदेव गुर की सरणाई॥—वही, पृष्ठ १०४, पद २१६।

३. गुर परसादी दुबिधा जाए।
संतसुधासार (वृहत्) श्री वियोगीहरि, १६५३ ई०, पृष्ठ ४६।

४. गुर भेटत ही अलख लखाया।—वही, पृष्ठ ५१।

५. काम क्रोध तृसना अति जरै।
साध संगति कबहूँ नहिं करै।—वही, पृष्ठ ४७।

६. हरि की भगति साध की संगति सोई दिन धनि लेखौ।—वही, पृष्ठ ५३।

७. साध की संगति संत सूं भेंटा।
प्रणवंत नामा रांम सहेटा।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथमिश्र, १६६४ ई०, पृष्ठ ६, पद १४।

८. संत सूं लेना संत सूं देना। संत संगति मिलि दुस्तर तिरना।
संत की छाया संत की माया। संत संगति मिलि गोबिन्द पाया।
असंत संगति नामा कबहूँ न आई। संत संगति मैं रह्यौ समाई।
—वही, पृष्ठ १४, पद ३२।

करता है और शून्यसमाधि को प्राप्तकर मुक्तावस्था में पहुँचता है।[१] इस अवस्था में पूजा-अर्चना की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। जब तक मनुष्य आशा-निराशा के संघर्ष में पड़ा है तब तक ब्रह्म की प्राप्ति असंभव है। जब मनुष्य निष्काम भाव से सहज समाधि लगाता है तभी ब्रह्म से साक्षात्कार करता है।[२] अनहद नाद का श्रवण करने के पश्चात् परमज्योति से साक्षात्कार होता है और गुरु की कृपा से परमज्योति में विलीन होता है।[३]

बाह्याडम्बरों का विरोध—संतनामदेव ने साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। एक पत्थर के प्रति श्रद्धा-भाव प्रकट किया जाता है और दूसरे के ऊपर पांव रखते हैं दोनों में कोई अन्तर नहीं होता है।[४] हिन्दू देवालयों में साधना करते हैं और मुसलमान मस्जिदों में। संत नामदेव को इन दोनों में विश्वास नहीं है अतः वे ऐसी साधना करते हैं, जहां न देवालय है और न मस्जिद ही।[५] जाति-पाति का भेद-भाव व्यर्थ है। रात-दिन राम की सेवा में व्यतीत करना चाहिए,[६] चन्दन को घिसा-घिसा कर लेप लगाने से कुछ नहीं होता है।[७] इस पाखण्डपूर्ण भक्ति से ब्रह्म राम प्रसन्न नहीं होते हैं।[८] जब तक मन स्थिर और स्वच्छ नहीं है, तब तक संसार से पार उतरने की आशा व्यर्थ

---

१. चंदसूर दोऊ समकरि राषूं। मन पवन दिठ डांडी।
सहजै सुषमन तारा-मंडल। इहु विधि त्रिस्नां षांडी
— — — — —
गगन मण्डल मैं रहनि हमारी लहजि सुनि गृह मेला॥—वही, पृष्ठ २९, पद ६५।

२. जबलगि आस निरास बिचारै तब लगि ताहि न पावै।
— — — — —
प्रणवत नांमा भए निहकामा सहज समाधि लगाऊं।—वही, पृष्ठ २९, पद ६६।

३. नादि समाइलो रे सतिगुर मैंटिले देवा।
जह झिलि मिलै कारु दिसंता।
तह अनहद सबद बजंता
जोति जोति समानी मैं गुर परसादी जानी।—वही, पृष्ठ ९६, पद २००।

४. किसू हूँ पूंजू दूजा नजर न आई।
एके पाथर किज्जे भाव दूजे पाथर धरिये पाव।
जो वो देव तो हम भी देव, कहै नामदेव हम हरि की सेव।
संत सुधासार, १९५३ ई०, पृष्ठ ५४।

५. हिन्दू पूजै देहुरा मुसलमान मसीत
नामासोई सोविया जहां देहुरा न मसीत।—वही, पृष्ठ ५५।

६. का करौं जाती का करौं पांती। राजाराम सेंऊ दिन राती।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, १९६४ ई०, पृष्ठ ८, पद १८।

७. का घसि घसि चंदन लाइला।—वही, पृष्ठ ९, पद २०,

८. पाषंड भगति राम नहीं रीझै।—वही, पृष्ठ १०, पद २१।

है। रुद्राक्ष जप, माला, मुंडन आदि से क्या लाभ जब तक इनका मर्म न जाना जाय। सींगी, जटा, विभूति लगाने से क्या होता है? ब्राह्मण वेद पढ़-पढ़ कर सुनाते हैं परन्तु मन के भ्रम को दूर नहीं कर सकते हैं। मुसलमान कई दिवस रोजा रखते हैं और कलमा पढ़ते हैं, बांग देते हैं, परन्तु ये सब बाह्याडम्बर व्यर्थ हैं।[1] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि संत नामदेव ने वे सब बातें आरम्भ की थी जो परवर्ती संत-काव्य में उपलब्ध हैं।

कबीर का युग—कबीर का आविर्भाव-काल विक्रम की १४ वीं शताब्दी माना जाता है। १४ वीं शताब्दी के मध्यकाल में भारत पर तुगलक सम्राटों का प्रभुत्व था। मोहम्मद तुगलक (सं० १३२५-५३) का शासन जनता के लिए कष्टप्रद था। ताम्र-सिक्कों के प्रचलन से उस समय समस्त देश की आर्थिक सत्ता में परिवर्तन आया। राज-धानी-परिवर्तन, फारस विजय और मान-हिंसा आदि घटनाएं घातक सिद्ध हुईं। देश में अशान्ति और दुःख का वातावरण था। मोहम्मद तुगलक के पश्चात् धर्मान्ध फीरोजशाह तुगलक का शासन आरम्भ हुआ, इस समय जनता के सामने दो समाधान थे—इस्लाम ग्रहण करना या मृत्यु स्वीकार करना। मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट किया जाता था, हिन्दुओं की खाल उतरवाकर उसमें भुस भरवाई जाती थी। इन्हीं परिस्थितियों में तैमूर (सं० १३५८) का आक्रमण हुआ, यह आक्रमण हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की नींव हिलाने वाला था। तैमूर-आक्रमण के फलस्वरूप जन-धन-हानि, नृशंस मानव-हत्या और रक्तपात के बीभत्स दृश्यों ने जनता को भयभीत और निराश बना दिया। इसके पश्चात् दिल्ली का शासन-सूत्र लोदी वंश के हाथ में चला गया। सिकन्दर लोदी के समय भी हिन्दुओं का हत्याकाण्ड हुआ अतः यदि कबीर को मरवा डालने का प्रयत्न किया गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। कबीर ने स्वयं इस अत्याचार का वर्णन किया है।[2] लोदी वंश के पश्चात् भारत का शासन-सूत्र विशृंखल होकर छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हुआ परन्तु सन् १५१९ से १५२६ तक के बाबर के आक्रमणों ने पुनः वज्रपात किया। राज-नैतिक दृष्टि से यह काल अत्याचार और हत्या-काण्ड का काल था। जनता भयभीत और निराश थी, हिन्दू-धर्म और संस्कृति की प्राचीरें नष्टभ्रष्ट हुईं।

सामाजिक व्यवस्था—कबीर-कालीन समाज में हिन्दू, मुसलमान और अन्य वर्गों में धर्म के व्यावहारिक पक्ष में आडम्बर बढ़ गये थे, कृत्रिमता ने बल पकड़ा। हिन्दू-समाज में वर्णाश्रम-व्यवस्था बढ़ती गई। जनता में भेद-भाव के कारण अंधविश्वास ने घर किया। धर्म के नाम पर जीव-हिंसा आदि बीभत्स कार्य आरम्भ हुए। यवनों के उच्चपद प्राप्त करने के कारण मद्यपान और द्यूतक्रीड़ा का प्रचलन हुआ। हिन्दू-समाज का मानसिक एवं नैतिक पतन हुआ, इसी शोचनीय अवस्था में कबीर का आविर्भाव हुआ।

---

१. ब्रह्मा पढ़ि गुणि बेद सुनावै। मन की भ्रांति न जावै।

— — — — —

मास दिवस लग रोजा साधै। कलमा बांग पुकारै।—वही, पृष्ठ २८, पद ६४।

२. संत कबीर, डा० रामकुमार वर्मा, संस्करण १९५७, पृष्ठ १६७।

धार्मिक परिस्थितियां—इस काल में बाह्यडाम्बर और पाखण्ड ने धर्म के वास्तविक रूप पर आवरण डाला। बज्रयानी सिद्ध कापालिक और नाथपंथी जोगी क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी भागों में अपना प्रभुत्व जमाये हुए थे। यह चौरासी वज्रयानी सिद्ध कोई भिन्न सम्प्रदाय न होकर बौद्धधर्म की महायान शाखा का ही विकसित रूप था।[1] मूर्ति-पूजा के पीछे तंत्र-मंत्र और भूत-पिशाचों की पूजा का प्रचलन हो रहा था। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से बंगाल में मुसलमानी आक्रमण के पूर्व तक तांत्रिक बौद्धमत का प्रचार अधिकाधिक बढ़ता गया।[2] बिहार और बंगाल में ही इस मत के दृढ़ केन्द्र बन गये जहां से समस्त भारतवर्ष में इसका प्रचार हुआ। वाममार्गी साधना भी हो रही थी। बौद्ध और जैन धर्मी अपने-अपने मत को ही श्रेष्ठ समझते थे, यद्यपि शंकराचार्य ने आठवीं शताब्दी में ही बौद्धों और जैनों के नास्तिकवाद को दूर करने का प्रयत्न किया था।[3] सच्ची साधना का लो होप चुका था और परस्पर फूट और कलह ने जनता के हृदय में बल पकड़ा था। इस दयनीय धार्मिक दशा में कबीर का आविर्भाव हुआ।

कबीरदास का जीवन-वृत्त : कबीरदास का जन्म, जाति, जन्मस्थान, माता-पिता एवं जीवन की घटनाएं विवाद का कारण हैं क्योंकि स्वयं कबीरदास अपने विषय में मौन रहे हैं। जो कुछ स्वीकार करना पड़ता है वह बहिसाक्ष्य के आधार पर ही है। कबीरदास संत जयदेव और सँत नामदेव के पश्चात् हुए हैं। इनके जन्मसंवत् और मृत्यु संवत् में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद हैं। निम्नलिखित कबीर साहित्य के मर्मज्ञ कबीरदास का समय इसप्रकार मानते हैं :

१. बाबू श्माम सुन्दरदासजी के अनुसार कबीर का जन्म १४५६ और मृत्यु संवत् १५७५ है।[4]

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी इनका जन्म संवत् १४५६ मानते हैं।[5]

३. डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल जन्म संवत् १४२७ और मृत्यु संवत् १५०५ मानने के पक्ष में हैं।[6]

४. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी सं० १४५६ में कबीर का जन्म मानने के पक्ष में हैं।[7]

५. श्री परशुराम चतुर्वेदी उन विद्वानों से सहमत हैं जो कबीरदास की जन्म-

---

१. सिद्ध साहित्य, डा० धर्मवीर भारती, प्र० सं० १९५५, पृष्ठ ९९।

२. मध्यकालीन हिन्दी काव्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि, डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, प्र० सं० १९६३, पृष्ठ १४०।

३. अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोछड़, संस्करण २०१३ विक्रमी, पृष्ठ ३०।

४. कबीर ग्रन्थावली, आठवां संस्करण संवत् २०१८, पृष्ठ १६।

५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पांचवा संस्करण संवत् २००६, पृष्ठ ७५।

६. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, संस्करण २००७ वि०, पृष्ठ ११५-११६।

६. हिन्दी साहित्य, सन् १९६४, पृष्ठ ७७।

तिथि संवत् १४५५ से पूर्व (विद्यापति का समसामयिक) और मृत्यु विक्रमकाल संवत् की १६वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मानते हैं।[1]

६. डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत कबीर का जन्म संवत् १४५५ और मृत्यु १५७५ मानते हैं।[2]

७. डॉ० रामकुमार वर्मा भी संवत् १४५५ ही कबीर का जन्मसंवत् मानते हैं।[3]

८. डा० सरनामसिंह भी संवत् १४५५ विक्रमी और संवत् १५७५ क्रमश: कबीर की जन्म और मृत्यु-तिथि मानते हैं।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिक मतभेद संवत् १४५५ और १४५६ के विषय में हैं। कबीर-पंथियों में निम्न दोहा प्रसिद्ध है :

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार इकठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए।

एक पक्ष के मानने वाले १४५५ संवत् ही कबीर का जन्म मानते हैं और द्वितीय पक्ष के मानने वाले 'साल गए' से तात्पर्य लेते हैं कि १४५५ वर्ष व्यतीत हो गए थे अर्थात् १४५६ में उनका जन्म मानते हैं। परन्तु 'इंडियन क्रोनोलाजी' (एस० आर० पिल्ले) के अनुसार डा० माताप्रसाद गुप्त ने गणित कर यह स्पष्ट किया है कि सं० १४५५ के की जेष्ठ पूर्णिमा को सोमवार पड़ता है।[5] अत: कबीरदास का जन्म १४५५ विक्रमी ही निश्चित होता है।

कबीर की मृत्यु के सम्बन्ध में अभी तक दो अवतरण मिलते हैं :

१. संवत् पन्द्रह सौ औ पांच सौ मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकादशी, मिले पवन में पवन॥

२. संवत् पंद्राह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन॥

निष्कर्ष—इस प्रकार सं० १५०५ और १५७५ दो तिथियां प्रचलित हैं। जब तक कोई प्रामाणिक आधार प्राप्त न हो तब तक जनश्रुति के आधार पर सं० १५७५ ही कबीर का निधन काल मानना पड़ेगा।

माता-पिता—कबीर के माता-पिता और जन्मस्थान के विषय में भी मतभेद है। कई विद्वान् इनकी जन्मभूमि काशी और कई मगहर मानते हैं। कबीरपंथी लोगों का विचार है कि वे दिव्य महापुरुष थे परन्तु जनश्रुति है कि काशी में एक सात्विक ब्राह्मण

---

१. कबीर साहित्य की परख, प्र० सं० संवत् २०११, पृष्ठ २५९।

२. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि, संस्करण १९६१, पृष्ठ २७।

३. संतकबीर, संस्करण १९५७ ई० पृष्ठ ५६।

४. कबीर एक विवेचन, प्र० सं० १९६०, पृष्ठ २८।

५. परिशिष्ठ में देखिए डा० गुप्त का पत्र लेखिका के नाम।

रहते थे जो स्वामी रामानन्द जी के बड़े भक्त थे, उनकी विधवा कन्या को एक दिन स्वामी जी ने भूल से पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया और फलस्वरूप ब्राह्मणी विधवा को पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे उसने लोकलज्जा के भय से लहर तारा तालाब के तट पर छोड़ दिया। वहां नीमा और नीरू जुलाहे दम्पति ने उसे उठाकर पालन-पोषण किया। यही बालक कबीर कहलाया। जनश्रुति पर पूर्ण विश्वास करना वैज्ञानिक युग में भूल है। संगत यह लगता है कि कबीर इसी नीमा और नीरू दम्पति की सन्तान रहे होंगे। स्वयं कबीरदास जी ने अपने माता-पिता के विषय में कुछ भी नहीं कहा है, केवल अपने को काशी का जुलाहा कहा है—'तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा।'[1]

कबीर को गृहस्थ भी स्वीकार किया जाता है और उनके साथ लोई का नाम लिया जाता है जो एक बनखंडी वैरागी की परिपालिता कन्या थी। कबीर से प्रभावित होकर वह उसी के साथ हो ली। डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार अंतःसाक्ष्य के आधार पर कबीर की दो स्त्रियां थीं—एक का नाम लोई और द्वितीय रमजनियां।[2] यद्यपि कबीर ने कामिनी की निन्दा की है तथापि लोई को सम्बोधन करके अनेक पद उन्होंने कहे हैं। कबीर के पुत्र के विषय में भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है। जनश्रुति है कि इनका एक पुत्र कमाल और एक पुत्री कमाली थी। कमाल के कई पद ग्रन्थ साहिब में संकलित हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि कमाल कबीर के सिद्धान्तों का विरोधी था, इसी कारण कबीर ने कहा है—

बूड़ा वंश कबीर का उपज्यो पूत कमाल।
हरि सिमरन छाड़िकै, घर ले आया माल।।[3]

परन्तु यह दोहा प्रक्षिप्त भी हो सकता है। श्री क्षितिमोहन सेन का कथन है कि कबीर की मृत्यु के उपरान्त अनेक लोगों ने उनके पुत्र कमाल को कबीर के अनुयायियों का पन्थ बनाने को कहा परन्तु कमाल ने अस्वीकार कर दिया।[4] क्योंकि कबीर ने जीवन-पर्यन्त वर्ग और पन्थों की निन्दा की थी अतः कबीर-पंथियों का एक सम्प्रदाय बनाना कबीर की धार्मिक धारणा के विरुद्ध था।

---

१. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, सं० २०१८ विक्रमी, पृष्ठ १७ (प्रस्तावना)।
२. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, सं० १९६१ ई०, पृष्ठ २८।
३. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, संस्करण, २०१८, पृ० २००।
४. "After Kabir's death his son Kamal was asked by some to organise a sect of his father's followers. Kamal rejected the idea and pointed out that his father had fought throughout his life against all forms of sectarianism and that to organize such a sect would be to contradict the spirit of Kabir's religious faith."
—Hinduism, K. M. Sen, 1961, Page 99.

कबीरदास की जाति—कबीरदास की जाति के सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है। हिन्दू उन्हें अपना मानते हैं और मुसलमान अपना। कबीरदास की रचनाओं से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये जुलाहा जाति के थे। इन्होंने "जाति जुलाहा नाम कबीरा"[१] तथा "कबीर जुलाहा"[२] आदि कह कर स्वयं को जुलाहा जाति का स्वीकार किया है। कबीर ने "हरि को नांव अभै पद दाता कहै कबीर कोरी" कहकर अपने को कोरी भी कहा है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कोरी, जुलाहा और योगी या जोगी इन तीनों शब्दों की विशद व्याख्या की है जो पांडित्य-प्रधान शोध है। उनके अनुसार कबीरदास जिस जुलाहा वंश में पालित हुए थे वह इसी प्रकार के नाममतावलंबी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।[3] यह भी एक धारणा है कि कबीरदास का 'कोरी' जाति से कोई सम्बन्ध नहीं था, यह शब्द उन्होंने 'जुलाहे' के हिन्दी रूपान्तर के अर्थ में ही प्रयोग किया होगा।

कबीरदास पर उपलब्ध सामग्री—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने भाषा के आधार पर कबीर-सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री का विवेचन किया है।

१. कबीर-सम्बन्धी हिन्दी आलोचनात्मक ग्रन्थ, कबीर-ज्ञान, कबीर चरित, बोध ग्रन्थ, कबीर वचनावली, कबीर ग्रन्थावली, कबीर का रहस्यवाद, कबीर इत्यादि पुस्तकें।

२. कबीर-सम्बन्धी उर्दू आलोचनात्मक ग्रन्थ, यथा कबीर और उनकी तालीम, कबीर साहब, कबीर पंथ।

३. कबीर-सम्बन्धी अंग्रेज़ी आलोचनात्मक ग्रन्थ—हंडरेड पोयम्स आफ कबीर, कबीर एण्ड दि कबीर पंथ, कबीर एण्ड हिज़ फालोअर्स, कबीर एण्ड हिज़ बायोग्राफी।

इनके अतिरिक्त डा० त्रिगुणायत ने इतिहास-ग्रन्थों और भारतीय धर्म-साधना के ग्रन्थों का भी उल्लेख किया है जिनमें कबीर का उल्लेख आता है, जैसे भारतवर्ष का इतिहास, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वैष्णविज़्म शैविज़्म एण्ड अदर माइनर रिलीजस सिस्ट्मस, मेडिवल मिस्टीसिज़्म, रामानन्द टु रामतीर्थ, सिख रिलीजन, इन्फलुएन्स आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर आदि। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर साहब का किसी-न-किसी रूप में परिचय देने वाली आज तक की उपलब्ध सामग्री को निम्न ८ वर्गों में विभाजित किया है।[४] इस विभाजन में प्रायः सभी पुस्तकें और अन्य सामग्री आती है :

१. कबीर तथा उनके समसामयिक संतों के उल्लेख, सेन नाई, पीपा, रैदास, आदि के फुटकर उल्लेख।

२. कबीरदास के परवर्ती संतों व भक्तों-द्वारा वर्णित उल्लेख जैसे—मीराबाई,

---

१. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, आठवां संस्करण २०१८, पृ० १३५, पद २७०।

२. वही, पृ० १०० पद १३४।

३. कबीर, छठा संस्करण १९६०, पृष्ठ ९।

४. उत्तरी भारत की संत परम्परा, संवत् २००८ विक्रमी, पृष्ठ १३४-१३५।

गुरु अमरदास मलूकदास, दादू, गरीबदास आदि कवियों की वाणियों में पाये जाने वाले उल्लेख ।

३. कबीर-पंथी रचनाएं—यद्यपि इनमें स्तुति और चमत्कार भी मिलता है तथापि कुछ तथ्य भी मिलते हैं ।

४. चतुर्थ वर्ग में वे रचनाएं आती हैं जिनमें भक्तों के गुणगान के साथ कबीरदास का संक्षिप्त परिचय भी मिलता है, जैसे भक्तमालें, अनंतदास की परचई, भक्तमालों पर टीकाएं ।

५. ऐतिहासिक ग्रन्थ जिनमें प्रसंगवश कुछ महापुरुषों की साधारण वा आलोचनात्मक चर्चा मिलती है जैसे अबुल फज़ल की आईन-ए-अकबरी, अबुल हक की 'अखबारुल अखियार ।

६. धार्मिक ग्रन्थों में भी कबीर का उल्लेख मिलता है जैसे भण्डारकर, मेकालिफ, वेस्कट फर्कुहर आदि की पुस्तकों में ।

७. कबीर पर आलोचनात्मक साहित्य जैसे—श्री श्यामसुन्दरदास, डॉ० बड़थ्वाल, श्री परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, डॉ० चन्द्रबली पांडे आदि की रचनाएं ।

८. इस वर्ग में कबीरदास की समझी जाने वाली चित्र व समाधि-जैसी स्मारक वस्तुएं आती हैं ।

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने उत्तरी भारत की संत परम्परा में कबीर के प्राप्त तीन चित्र भी दिये हैं इन चित्रों में से एक वह है जो बाबू श्यामसुन्दर दास ने कबीर ग्रन्थावली में दे दिया है । डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी 'संत कबीर' ग्रन्थ में तानपूरा लिए हुए कबीर का चित्र दिया है ।

गुरु—कबीरदास के गुरु के सम्बन्ध में भी मतैक्य नहीं है । हिन्दू इन्हें रामानन्द का और मुसलमान उन्हें शेख तकी का शिष्य मानते हैं । अंग्रेजी विद्वान डा० जी० एच० वैस्कट भी शेखतकी को ही कबीर का गुरु मानते हैं ।[1] परन्तु इस पर आपत्ति उठती है । 'घट घट में अविनासी सुनहु तकी तुम शेख' में कबीर ही शेखतकी को उपदेश देते हुए जान पड़ते हैं । 'काशी मैं हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताए' से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कबीर के गुरु रामानन्द जी ही थे । परन्तु इसमें भी एक आपत्ति है कि यह पंक्तियाँ न गुरु ग्रन्थ साहब में संकलित हैं न कबीर के पदों में हैं और न ही उन दो पाण्डुलिपियों में जिनके आधार पर श्यामसुन्दरदास ने कबीर-ग्रन्थावली नामक ग्रन्थ का पाठ-सम्पादन किया है । इसके अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा ने नवीन ग्रन्थ श्री चेतनदास कृत 'प्रसंग पारिजात' का उल्लेख किया है ।[2] जिसमें कबीर का जन्म संवत् १४५५ और

---

1. Kabir and the Kabir Panth, G. H. wistcott, Edition 1953, Page 25
२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, संस्करण १९५८ ई० पृष्ठ २४५-२४६ ।

रामानन्द का अवसान संवत् १५०५ दिया है और कबीर को रामानन्द का शिष्य कहा गया है। अतः जनश्रुति और 'प्रसंगपारिजात' ग्रन्थ के आधार पर कबीर के गुरु रामानन्द ही निश्चित हैं।

कबीरदास की रचनाएँ—आजकल कबीर के नाम पर विस्तृत साहित्य मिलता है। कबीर स्वयं पढ़े-लिखे नहीं थे, जो कुछ लिखा गया है वह उनके शिष्यों-द्वारा ही लिपिबद्ध माना जा सकता है। वेस्कट साहब ने कबीर के जीवन और शिक्षा पर बयासी ग्रन्थों की सूची दी है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने कबीर कृत ६१ प्राप्य पुस्तकों की सूची दी है परन्तु ५७ को ही कबीर-कृत माना है।[2] नागरी प्रचारिणी सभा के अप्रकाशित विवरणों के आधार पर लगभग १३० ग्रन्थ कबीर-कृत कहे जा सकते हैं।[3] आचार्य क्षितिमोहन सेन ने भी कबीर के पदों का संग्रह किया है जिनको कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अंग्रेजी में अनूदित किया है। इन्हीं में से डा० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी ने भी अपनी पुस्तक 'कबीर' में प्रथम १०० पद दिये हैं।

कबीर का ब्रह्म—कबीर दास उस निर्गुण ब्रह्म को मानते हैं जिसका वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में ही मिलता है। जिस मूल सत्ता से सबकुछ उत्पन्न हुआ है, जो सर्वव्याप्त है, वह न सत् है न असत्। यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है, उसने इसे बनाया या नहीं बनाया, सबसे ऊँचे लोक में जो इसका अध्यक्ष है वह इसे जानता हो या नहीं।[4] यहाँ जगत से परे एक अव्यक्त निर्गुण परमसत्य की ओर संकेत है जो अनिर्वचनीय है। इस ब्रह्म का उल्लेख उपनिषदों में भी मिलता है। इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, गति, पालन और लय का कारण ब्रह्म है। वह अद्वितीय है, अपूर्व है, अबाह्य है और अनन्तर है।[5] छान्दोग्य उपनिषद् में भी ब्रह्म को एक ही माना गया है दूसरा नहीं।[6] समस्त विश्व ही ब्रह्म है।[7] गीता में भी ब्रह्म को निर्गुण कहा गया है परन्तु वह गुणों का

---

1. Kabir and the Kabir Panth, G. H. wistcott, Edition 1954, Page 112, 113, 114.
२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण १९५८, पृ० २५८।
३. कबीर की विचारधारा, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, संस्करण २०१४ विक्रमी, पृष्ठ ५४।
४. इदां विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
   यो आस्याध्यक्ष : परमे व्यामेन्त्सो अंगवेद यदि वान वेद।—ऋग्वेद, १०, १२९।
५. तदेतत् ब्रह्म अपूर्वमनपरमनन्तरमब्राह्यम्।
   वृहदारण्यकोपनिषत् २, ५, १९।
६. 'ब्रह्म एकमेवाद्वितीयम्'
   —छान्दोग्योपनिषत् ६, २, १।
७. 'सर्वं खल्वमिदं ब्रह्म'
   —छान्दोग्योपनिषत् ३, १४, १,।

उपभोग करता है।[1] कबीर का ब्रह्म भी यही निर्गुण ब्रह्म है जो सत, रज, तम तीनों गुणों से परे है। वह गुणातीत, गुनबिहून और निराकार है। वह अलख निरंजन है जिसे कोई नहीं देख सकता। वह न शून्य है न स्थूल। न कोई उसकी रूपरेखा है न वह दृश्य है न अदृश्य। न वह गुप्त है न प्रकट।[2] उस अवगति की गति क्या कही जा सकती है, उसका न कोई नाम है न ग्राम, वह 'गुनबिहून' है। उसे कैसे देखा जा सकता है, उसे कौन सा नाम दिया जा सकता है।[3] उसका न मुँह है न माथा, न वह कुरूप है न सुरूप, वह ऐसा अनूप-तत्त्व है जो पुष्प-सुगन्धि से भी पतला है।[4] वही सब में व्याप्त है, सृष्टि में परमात्मा और परमात्मा में सृष्टि व्याप्त है।[5] उसी निर्गुण ब्रह्म से ज्ञान-प्राप्ति सम्भव है।[6] वही गढ़ने वाला है, सुधारने वाला है, और नष्ट करने वाला है।[7] उसी का नाम जपने के लिए कबीर आदेश देते हैं।[8] कबीर दास ने प्रायः ब्रह्म को उन्हीं नामों से पुकारा है जो उस समय हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध और नाथपंथ में प्रचलित थे। इन्होंने राम और रहीम दोनों को सम्बोधित किया है परन्तु ब्रह्म के प्रतीक में। इनका राम दशरथि राम या सीतापति राम नहीं है। वह परमतत्त्व है। कबीरदास ने एकाधस्थल पर अपने ब्रह्म को सगुण-निर्गुण दोनों कहा है—

१. संतो धोखा कासूं कहिये
गुण मैं निरगुण निर्गुण मैं गुण बाट छाड़ि क्यू बहिये ।।[9]

---

१. सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्व भृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृच ।।
—गीता, १३, अध्याय, १४ श्लोक।

२. अलख निरंजन लखै न कोई, निरमै निराकार है सोई।
सुनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, सं० २०१८, पृ० १७५।

३. अवगति की गति क्या कहूँ जसकर गाँव न नाँव।
गुन बिहून का पेखिये, काकर धरिये नांव।—वही, पृष्ठ १८१।

४. जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा, एसा तत्व अनूप।।
—कबीर वचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय, संस्करण २०१५ वि०, पृ० ६४।

५. खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई।
—संत सुधासार (वृहद्) वियोगी हरि, संस्करण १६५३, पृष्ठ ६६।

६. निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरत सुधि बुधि मति पाई।।—वही, पृ० ८७।

७. भानड़ घड़ण संवारन सोई।।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ संस्करण, पृ० १३५।

८. निरगुन राम निरगुन राम जपहु रे भाई।।
अबिगति की गति लखी न जाई।।—वही, पृ० ८१।

६. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ वि०, पृ० १११।

२. वेद कहै सरगुन के आगे निरगुन का बिसराम ।
सरगुन-निरगुन तजहु सौहागिन, देख सबहि निज धाम ।।[१]
३. निर्गुन बीज सर्गुन फल-फूला । साखा ग्यान नाम है भूला ।।[२]

किन्तु यह वर्णन गौण है । कबीरदास पुनः निर्गुण स्वरूप का ही निरूपण करते हैं । कबीरदास ने इसी निर्गुण ब्रह्म के साथ दाम्पत्य और वात्सल्य दोनों सम्बन्ध स्थापित किये हैं । 'बाल्हा आव हमारे गेहरे, तुम्ह बिन दुखिय देह रे'[३] और 'हरि मेरा पीव माई हरि मेरा पीव'[४] कह कर कबीर ने अपने को नारी और ब्रह्म को प्रियतम माना है । 'हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा'[५] कहकर इन्होंने ब्रह्म को मातृस्वरूप भी माना है । कबीर के अनुसार वह परमतत्व निर्गुण एवं सगुण इन दोनों से परे की वस्तु है और अनुभव में आने पर भी अनिर्वचनीय है ।[६] इसी कारण कबीर ईश्वरानुभूति के विषय में मौन हैं और उसे गूंगे का गुड़ कहते हैं । डा० मोतीसिंह के अनुसार चाहे जिस प्रकार के भी दार्शनिक चमत्कार से निर्गुण ब्रह्म की संगति मानव और अवतारी ईश्वर के साथ इनके पूर्ववर्ती और परवर्ती आचार्यों ने स्थापित की हो, किन्तु कबीर के गले के नीचे उतरने वाली वह वस्तु नहीं थी, कबीर तो केवल 'आंखिन देखी' सत्य को ही आधार बनाकर आध्यात्मिक सत्यों का निरूपण करते थे ।[७] वास्तव में निर्गुण सत्य के विषय में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह है, उसे जो भी नाम दिया जायेगा वह विश्वसापेक्ष होता है । इसी कारण डा० राधाकृष्णन निरपेक्ष को परमेश्वर का वह रूप मानते हैं जो जगत् के पूर्व का है । जगत्-सम्बन्धी दृष्टिकोण से ही निरपेक्ष को परमेश्वर का नाम दिया जाता है ।[८]

कबीर ने इसी अव्यक्त ब्रह्म को रसानन्द-रूप कहा है और इस ब्रह्मानन्द रस का पान करने से शरीर की सुध-बुध ही खो जाती है । इस रामरस का मादक प्रभाव है ।[९]

---

१. संतसुधासार, वियोगी हरि, संस्करण १९५३, पृ० ९९
२. वही, पृ० १००
३. वही, पृ० ८१
४. वही, पृ० ६९
५. वही, पृ० ६८
६. कबीर साहित्य की परख, परशुराम चतुर्वेदी, संस्करण २०११ विक्रमी, पृ० ९२
७. निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डा० मोतीसिंह, प्र० सं० २०१९ विक्रमी, पृ० ८३-८४ ।
8. The absolute is the precosmic nature of God, and God is this absolute from the cosmic point of view.
—An idealistic view of life, Dr. Radhakrishnan, Edition 1961, Page 273.
९. हरि रस पीया जाणिये, जे कब हूँ न जाइ खुमार ।
मैमंता घूमत रहै, नांही तन की सार ।।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ वि०, पृ० १३ ।

इसके अतिरिक्त कबीर ने ब्रह्म को सत्य एवं ज्ञान-स्वरूप माना है। उपनिषदों में भी ब्रह्म को अनन्त सत्य और ज्ञानस्वरूप माना यगा है।[1] ब्रह्म का तेज इतना प्रकाशमान है कि वर्णन नहीं किया जा सकता। वह ज्योति स्वरूप है।[2] कबीरदास का यह ब्रह्म-वर्णन वेद, उपनिषद एवं अद्वैत वेदान्त के अनुकूल है। अवतारवाद तो कबीर में खोजने पर भी नहीं मिलता, वह निर्गुणवादी हैं पूर्ण निर्गुणवादी[3]। कबीर संत थे और उन्होंने ब्रह्म की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार किया है। उनका प्रमुख प्रतिपाद्य भगवान का अव्यक्त स्वरूप ही है। कबीर ने कहीं भी भगवान् के इन्द्रियग्राह्यरूप का उल्लेखन नहीं किया है। यही कारण है कि वह निर्गुणवादी है और उनके काव्य में अवतारवाद का उल्लेख नहीं है।

जीवात्मा—उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। आत्मा और ब्रह्म एक है। आत्मा ही ब्रह्म है।[4] यह पुरुष स्वयं ज्योति है।[5] मैं ही ब्रह्म हूँ।[6] यह जीवात्मा वास्तव में न तो स्त्री है न पुरुष और न नपुंसक। शरीर धारण करने से यह भिन्न-भिन्न रूप में आती है।[7] गीता में भी आत्मा को शुद्ध-बुद्ध एवं मुक्त कहा गया है। वह अछेद्य है, अकाट्य है, अक्लेद्य है, वह नित्य है।[8] कबीरदास ने भी आत्मविचार को जीवन का चरम लक्ष्य माना है। उनके अनुसार आत्मा सर्वव्यापी तत्व है जो भाँति-भाँति के घड़े दृष्टिगोचर होते हैं वे वास्तव में एक हैं।[9] ब्रह्म और आत्मा में भेद नहीं है, जैसे जलाशय में जल से भरा कुंभ रखा जाय, कुंभ के बाहर भी वही जल

---

१. 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—तैत्तिरीयोपनिषत्, २, १, २,

२. पारब्रह्म के तेज का कैसा है उन्मान।
कहिबे कूं सोभा नहीं, जगमगे जोति॥
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ वि०, पृ० १०

३. कबीर दर्शन, डा० रामजीलाल 'सहायक' —प्र० सं० १९६२ ई०, पृ० १६२।

४. 'अयमात्मा ब्रह्म'—वृहदारण्यकोपनिषत् २, ५, १९।

५. 'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति,—वही, ४, ३, ९।

६. 'अहं ब्रह्मास्मि'—वही, १, ४, १०।

७. नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं न पुंसकः।
यद् यच्छरीरमादते तेन-तेन स युज्यते॥
—श्वेताश्वतरोपनिषत् ५, १०,

८. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेद्यन्त्यापो न शोषयति मारुतः
—गीता, २ अध्याय, २३ श्लोक।

९. एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजन हारा॥
—संतसुधासार, वियोगीहरि, संस्करण १९५३, पृ० ६६।

है और भीतर भी। घड़ा फूटने पर दोनों जल एक होते हैं।[1] इसी प्रकार ब्रह्म और जीव एक हैं। जल से हिम बनता है और हिम पुनः गलकर जल में परिवर्तित होता है इसी प्रकार जीव ब्रह्म से आता है और उसी में लय हो जाता है।[2] 'कहु कबीर रहु राम को अंसु, जस कागद पर मिटै न मंसु' कहकर कबीर ने अंशांशि भाव की ओर भी संकेत किया है परन्तु यह अखण्डात्मक भाव से वास्तव में जीव और ब्रह्म में बूंद-समुद्र का सम्बन्ध है।[3] आत्मा ही राम है।[4] सर्वत्र एक ही ब्रह्म है एक ही आत्मतत्व है। आत्मा ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। इस प्रकार कबीरदास आत्मा और ब्रह्म को अभिन्न मानते हैं। इसी आत्मा के दो रूप हैं—पारमार्थिक और व्यावहारिक। पारमार्थिक रूप सत्य और नित्य है और द्वितीय असत्य। जीवात्मा मायोपाधिक होकर संसार में जन्म लेता है और मृत्यु प्राप्त करता है। माया से आबद्ध जीव अपने शुद्ध स्वरूप को भूलकर नाना रूपात्मक जगत् की ओर आकृष्ट होता है और विषय-विकारों में लीन होता है।

माया—ऋग्वेद में माया शब्द रूप बदलने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[5] उपनिषदों में भी इसका प्रयोग नाम-रूप बदलने के अर्थ में हुआ है। शंकराचार्य ने माया को भ्रम रूप माना है।[6] मुसलमान माया के स्थान पर शैतान मानते हैं।

शास्त्रानुसार माया के दो रूप हैं—विद्यामाया और अविद्यामाया परन्तु कबीरदास ने अविद्या माया का ही वर्णन किया है। वे उसे रघुनाथ की माया कह कर ब्रह्माश्रित मानते हैं, वह जादूगर का खेल है।[7] यह माया मोहिनी है। यह जीवों को

---

१. जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, सं० २०१८, पृ० ८०।

२. पाणीं ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाइ।।
—संत सुधासार, वियोगी हरि, सन् १९५३, पृ० १२७।

३. हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समंद मैं, सो कत हेरी जाइ।
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूंद मैं सो कत हेरया जाइ।।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, सं० २०१८ वि०, पृ० १३।

४. 'आतमराम आवर नहीं दूजा'
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, संस्करण २०१८ वि०, पृ० १००।

५. 'यन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।'
—ऋग्वेद ६, ४७, १८,

६. 'अध्यासो नाम अतस्मिन् तदबुधि।'
—ब्रह्म सूत्र, शंकराभाष्य, १, १, १।

७. तूं माया रघुनाथ की खेलण चली अहेड़।
—संतसुधासार, वियोगी हरि, सं० १९५३ ई०, पृ० ७४।

आकृष्ट करतीहै। इससे राम ही रक्षा कर सकता है।[१] यह माया त्रिगुणात्मिका है:[२] यह जीव को मीठी खण्ड की भाँति मधुर ढंग से मोहित करती है।[३] इसको कबीरदास 'डाकिनी'[४] और पापिनी[५] मानते हैं।

कबीरदास को माया के दोनों मोहक और भयंकर स्वरूप मान्य हैं। माया के कारण ही जीव चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरता है। यह सर्वव्यापिनी है, संसार में कोई इससे बच नहीं सकता है।[६] माया का घनिष्ठ सम्बन्ध मन से है, मन के सारे व्यापारों में माया की चेष्टाएँ हैं। मान, मोह, ममता, काम, क्रोध आदि माया का ही रूप है। शरीर के नाश होने से मन का नाश नहीं होता है परन्तु माया उसके साथ लगी रहती है।[७] माया का सम्बन्ध कनक और कामिनी से हैं:[८] इनसे बचना कठिन है। अज्ञानी पुरुष माया के जाल में फंसता है। संतों और भक्तों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है यह भक्तों के सामने नहीं जाती है।[९] और संतों की दासी है।[१०] ज्ञान के आगे माया का अस्तित्व नहीं है।[११] माया दीपक के समान है जिस पर अज्ञानी जीव

---

१. मोहिनी माया बाघिनी थैं, राखिलै रामराइ।।—वही, पृ० ७६।

२. माया महाठगनी हम जानी।
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै माधुरी बानी।।
—संत सुधासार, वियोगी हरि, संस्करण १९५३, पृ० १०१।

३. 'कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाण्ड।'
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, संस्करण २०१८ वि०, पृ० २५

४. 'कबीर माया डाकनी, सब किस ही कूं खाइ'।
—संतसुधा सार, पृ० १४१।

५. 'कबीर माया पापणीं फंध ले बैठी हाटि'।—वही, पृ० १४०।

६. 'कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घांणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिन तोड़ी कुल की कांणि।—वही, पृ० १४०।

७. माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिसणां ना मुई, यौं कहि गया कबीर।।
—संतसुधासार, वियोगीहरि, सं० १९५३ ई०, पृ० १४०।

८. माया की झल जग जल्या, कनक कांमिणीं लागि।
—कबीर ग्रन्थावाली, श्यामसुन्दरदास, संवत् २०१८, पृ० २७।

९. माया छाय एक सी, बिरला जानै कोय।
भगतां के पीछैं फिरै सनमुख भागे सोय।।—संतसुधासार, पृ० १४१।

१०. माया दासी संत की, ऊंभी देइ असीस।
—कबीर ग्रन्थावली, पृ० २६।

११. आँधी आई ग्यान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लागी नाम से प्रीति।।—संत सुधासार, पृ० १४१।

भ्रमवश मोहित होता है और नष्ट हो जाता है, कोई ही विरला साधु-संत गुरु के ज्ञान के द्वारा बच सकता है।[1] साधारण जीवों को यह वश में कर लेती है। कबीरदास ने जीव और ब्रह्म के मिलन में इसी को बाधक माना है।[2] यही वेश्या की भाँति हाट में बैठकर सारे संसार को बंधन में डालती है।[3] कबीरदास का यह मायावाद उपनिषद्, अद्वैत वेदान्त एवं गीता के अनुरूप ही है।

संसार—संसार भी परमतत्त्व की सीमा से बाह्य नहीं है। कबीरदास पूर्णाद्वैती हैं और विवर्तवाद के समर्थक हैं।[4] 'ज्यूं जल बूंद, तैसा संसारा, उपजत बिनसत लागै न बारा' कह कर कबीरदास ने जगत् को असत्य माना है। यह स्वप्नवत् है, नश्वर है, मिथ्या है। वेदान्ती और बौद्ध भी संसार को मिथ्या और स्वप्नवत् मानते हैं। कबीरदास भी संसार की उपमा सेमल के फूल से देते हैं।[5] यह अति मलिन है।[6] इस संसार के साथ प्रेम नहीं करना चाहिए क्योंकि यह मिथ्या है। संसार उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। धुएँ के बादल की भाँति यह क्षणभर में अदृश्य होता है।[7] ईश्वर ने ही त्रिगुणात्मिका माया से इस जगत् की सृष्टि की है और अपने को इसी के मध्य में छिपा लिया है। कबीरदास ने एक स्थल पर सृष्टि का मूल कारण ओंकार बतलाया है।[8] कबीरदास

---

१. माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि मांहि परंत।
कोई एक गुरु ग्यान तें, उबरे साधू संत॥
—संत सुधासार, वियोगीहरि, सन् १९५३, पृ० १४१।

२. कबीर माया पापणीं, हरि सूं करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की कहण न देई राम॥
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, संवत् २०१८ वि०, पृ० २५।

३. कबीर माया पापणीं फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंधे पड़्या, गया कबीरा काटि॥
—संतसुधासार, वियोगी हरि, पृ० १४०।

४. हिन्दी काव्य में निर्गुणसम्प्रदाय, डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृ० १८२।

५. 'यहू ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल'
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ वि०, पृ० १६।

६. 'यहु संसार सकल है मैला'
—संत सुधासार, वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृ० ७१।

७. 'यहु संसार इसौ रे प्रांणी, जैसौ धूंवरि मेह'—वही, पृ० ८२।

८. 'ऊंकार जग ऊपजै, बिकारे जग जाइ।'
—कबीर ग्रन्थावली श्यामसुन्दरदास, सं० २०१८ ई०, पृ० ९६।

ने जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी अपना विचार व्यक्त किया है:[1] कबीरदास जड़जगत् और जीवात्मा में ब्रह्म को ही मूलतत्त्व मानते हैं। वही सब में व्याप्त है अतः ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या। प्राणी को अज्ञान के कारण जगत् वास्तविक लगता है। 'आपण माँझ आप छिपाया' कहकर कबीरदास ने भी पारमार्थिक दृष्टि से केवल ब्रह्म को ही सत्य माना है।

मोक्ष—मनुष्य-धर्म के चार लक्ष्य बताये गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें मोक्ष को सर्वोत्तम और चरमलक्ष्य माना जाता है। वेदान्त ग्रन्थों में मुक्ति की दो दशाएँ बताई गई हैं—जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति। मुक्त पुरुष को साँसारिक विषयों के प्रति आसक्ति नहीं रहती है, उसके सम्मुख समस्त प्रपंच रहता है परन्तु वह निःस्पृह रहता है, उसे जीवितावस्था में ही मोक्ष प्राप्त होता है। कबीर ने कहा है कि जीवन-मुक्त पुरुष पर सांसारिक प्रभाव नहीं पड़ते हैं। संत पुरुष निर्वैर, निष्काम, निर्विषय तथा निस्संग रहते हैं।[2] मुक्त पुरुष अपने मनोविकारों को वश में करता है। निष्काम भाव से वह संसार में रहता है, प्रवृत्ति में निवृत्ति का सिद्धान्त अपनाता है। वह विकारों से शून्य निर्मल हृदयवाला भगवान्-स्वरूप होता है।[3] जीवनमुक्त साधक रामरस में मस्त रहता है। कबीरदास ने जीवनमृतक को अंत में जीवन मुक्त की ओर संकेत किया है। विदेह-मुक्ति के प्रसंग भी कबीर काव्य में प्राप्त हैं। कबीर ग्रंथावली के प्रथम पृष्ठ पर ही योग की उन्मत्त दशा का उल्लेख है।[4] कबीरदास की उन्मत्तावथा वास्तव में वेदान्तियों की विदेहावस्था ही है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर के अन्त होने पर जीवन्मुक्त जिस अवस्था को पहुँचता है वही 'विदेहमुक्ति' अवस्था है उसकी शारीरिक क्रियाओं में निष्क्रियता आती है, साधक अपनी आत्म में ही तल्लीन रहता है और आनन्द प्राप्त करता है।[5] कबीरदास के अनुसार तत्त्वज्ञान प्राप्त होने से पूर्व तक ही साधक और

---

१. जीव रूप यक अंत बासा, अंतर ज्योति कीन परगासा।
इच्छा रूप नारि अवतरी, तासु नाम गायत्री धरी॥
— कबीर वचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय, संस्करण २०१५ वि०, पृ० १९३।

२. निरबैरी निहकांमता साईं सेती नेह।
विषया सूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह॥
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, सं० २०१८, पृष्ठ ३९।

३. मैमंता अविगत रता, अकलप आसा जीति।
राम अमलि माता रहै, जीवत मुकति अतीति॥—वही, पृ० १३।

४. हसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि मिद्या, सतगुर के हथियारि॥
—कबीर ग्रन्थावली श्यामसुन्दरदास, सं० २०१८, पृ० १।

५. हरि रस पीया जांणियैं, जै कबहूँ न जाइ खुमाँरा
मैमता घूमत रहै नहीं तन की सारै॥—वही, पृष्ठ १३।

साध्य में अन्तर होता है, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् आत्मा अपने स्वरूप को प्राप्त होती है। वास्तव में मुक्ति अपना ही मुक्त स्वभाव है। अज्ञान के कारण द्वैतभाव का भास होता है, मूलतत्त्व सर्वत्र व्याप्त होता है अतः मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। अपूर्ण अवस्था से पूर्ण अवस्था पर पहुँचना ही मुक्ति, निरमैपद, अभयपद, परमपद अथवा निर्वाण है।

साधनापक्ष—कबीर की साधना समन्वय साधना है जिसमें ज्ञान, योग, भक्ति और प्रेम का मिश्रण है। कबीरदास धर्म के बाह्याडम्बर का विरोध करते हैं एक ओर से उन्होंने हिन्दू पण्डितों को फटकारा और दूसरी ओर से मुसलमानों के पीर-मौलवियों को। धर्म को वे आडम्बर से परे एकमात्र सत्यसत्ता मानते हैं। वह एक ऐसे मिलन-बिन्दु पर खड़े थे जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमा-नत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योग-मार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहाँ से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौरस्ते पर वे खड़े हैं।[1] कबीर केसमय हठयोगियों और नाथपंथियों का अत्यधिक प्रचार था। कबीर की रचना में भी हठयोग के सिद्धान्त मिलते हैं। चित्तवृत्तियों के निरोध का नाम योग है।[2] योग पांच प्रकार का है—

१. ज्ञानयोग, २. राजयोग, ३. हठयोग, ४. मंत्रयोग, ५. कर्मयोग।

कबीर की रचना में हठयोग का वर्णन मिलता है। हठयोग का तात्पर्य है बल-पूर्वक ईश्वर से मिलना। सम्पूर्ण तापों से तपायमान मनुष्यों का आश्रय मठरूप और सम्पूर्ण योगियों का आधार (आश्रय) कर्मठरूप हठयोग माना गया है।[3] योग-साधना के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आठ अंग माने गये हैं। शिव संहिता के अनुसार ३५०००० नाड़ियां शरीर में हैं जिनमें से दस नाड़ियां अधिक महत्त्व की हैं और उन दस में से भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना मुख्य हैं। सुषुम्ना नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी का निवास माना जाता है और इसकी भिन्न-भिन्न स्थितियों को जिनमें से होकर कुण्डलिनी आगे बढ़ती है, चक्र कहते हैं। यह छः हैं—१. मूलाधार चक्र, २. स्वाधिष्ठान चक्र, ३. मणिपूरक चक्र, ४. अनाहत चक्र, ५. विशुद्ध चक्र, ६. आज्ञा चक्र।

मूलाधार चक्र—यह सबसे निम्न चक्र है, इसका वर्ण पीला माना गया है, इसमें चार दल हैं और व, श, ष, स संकेताक्षर हैं। इस चक्र के एक त्रिकोण आकार में कुण्ड-लिनी वास करती है। इस चक्र में गणेश का रूप ही आराधना का साधन है।

स्वाधिष्ठान चक्र—यह चक्र रक्त वर्ण का है और इसमें छः दल माने जाते हैं,

---

१. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, सन् १९६०, पृष्ठ १८२।

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोध—पातञ्जल योग दर्शनम्, प्रथम समाधिपाद, सूत्र-२

३. अशेषयोग युक्तानामाधारकमठो हठ : हठयोग प्रदीपिका, १, १०।

इसके संकेताक्षर ब, भ, म, य, र, ल हैं। इस चक्र पर चिंतन करने से मनुष्म बंधन-मुक्त और निर्भय हो जाता है, वह मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करता है।

मणिपूरक चक्र—इस चक्र की स्थिति नाभि के समीप है, इसका वर्ण सुनहला है। इसमें दस दलों के संकेताक्षर ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ हैं। इस चक्र पर चिंतन करने से मनुष्य इच्छाओं का स्वामी बन जाता है और पाताल-सिद्धि प्राप्त करता है।

अनाहत चक्र—इसका निवासस्थान हृदय है। बारह दलों के संकेताक्षर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ट, ठ हैं। इसका वर्ण रक्त है। इस चक्र पर चिंतन करने से मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है और वह वायु में भी चल सकता है।

विशुद्ध चक्र—यह कंठ में स्थित है, इसका वर्ण सुनहला है। इसमें १६ दल हैं और अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, संकेताक्षर हैं। यही चक्र स्वर-ध्वनि का स्थान है। इस चक्र पर चितन करने से मनुष्य योगेश्वर बन जाता है और चारों वेदों के रहस्य को समझता है।

आज्ञा चक्र—इसका स्थान त्रिकुटी है, इसका वर्ण श्वेत है। इसके दो दल हैं और ह और क्ष संकेताक्षर हैं। यही प्रकाश बीज है इस पर चिंतन करने से ऊंची सफलता मिलती है।

इन्हीं छः चक्रों में से होती हुई कुण्डलिनी ब्रह्म रंध्र में पहुँचती है जहाँ एक सहस्र दल कमल की स्थापना है, उस कमल के मध्य एक चन्द्रमा की स्थिति मानी जाती है जहाँ से अमृतस्राव होता है। डा० रामकुमार वर्मा ने इन छः चक्रों का विशद विवेचन किया है और शरीर-विज्ञान के आधार पर इनको समझाया है[1] तथा चित्रों द्वारा भी इसको सुगम और स्पष्ट किया है। कबीरदास ने भी इन चक्रों का तथा उन्मनी दशा का उल्लेख किया है।[2]

---

१. कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, सन् १९६१ ई०, पृष्ठ ६८ से ९० तक।

२. (अ) ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर साईं जागेश्वर, सहज सुनि ल्यौ लागै।।
—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ८५, पद ६९

(आ) अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ़या मगन रस पीवै, त्रिभवन भया उजियारा।
—वही, पृष्ठ ८६, पद ७२

(इ) इला प्यंगुला माठी कीन्हीं, ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार मूंदे, लागी जोग जुग तारी।।—वही, पृष्ठ ८६, पद ७४

(ई) अवधू गगन मण्डल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै बंक नालि रस पीजै।—वही, पृष्ठ ८५, पद ७०

(उ) त्रिकुटी चढ़यो पाव ढौढारै, अरध उरध की क्यारी।
चंद सूर दोऊ पाणति करिहैं, गुरुमुषि बीज बिचारी।।
—वही, पृष्ठ १२० पद २१४

प्रेमपद्धति—कबीरदास ने अपनी साधना को प्रेम से भी प्लावित किया है। इनके प्रेम में एक ओर नारद की प्रेम भक्ति लक्षित होती है तो दूसरी ओर से सूफ़ियों का इश्क। कबीरदास ने प्रेम की मादकता का भी वर्णन किया है।[१] प्रेम ही ईश्वर से साक्षात्कार का साधन है।[२] प्रेम एक रसायन है इसका एक ही बिन्दु सम्पूर्ण शरीर को स्वर्ण बनाता है।[३] प्रेम मे त्याग आवश्यक है इसमें अपना सिर काटने वाली परीक्षाएं होती हैं।[४] यह प्रेम क्रय-विक्रय में नहीं मिलता है।[५] प्रेम के बिना शरीर का कोई महत्त्व नहीं है।[६] प्रेम पथ बीहड़ पथ है अग्नि की आंच और खड्ग की धार से भी यह कठिन है।[७] इसी कारण कबीरदास ने 'सूरा' और 'सती' के प्रेम की ओर संकेत किया है। इसी प्रेम के प्याले को कबीर ने पिया और उसे किसी अन्य वस्तु की इच्छा ही न रही।[८] कबीरदास ने आध्यात्मिक विरह का भी उल्लेख किया है।[९] उनका मन प्रियतम की ओर ही लगा है।[१०] अपने को प्रियतम की नारी मान कर कबीर ईश्वर-मिलन की इच्छा व्यक्त करते हैं।[११] वे ईश्वर साक्षात्कार की घड़ी की प्रतीक्षा करते हैं।[१२] पल-पल

---

१. हरि रस पीया जांणिये, जै कबहूं न जाई खुमार ॥—वही, पृष्ठ १३।

२. ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ी पौलि।
दरसन भया दयालका, सूल भई सुख सौड़ि।—वही, पृष्ठ १२

३. सबै रसाइंण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होई ॥—वही, पृष्ठ १३।

४. यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुईं धरै तब पैठे घर माहिं ॥—कबीर वचनावली, पृष्ठ १०३।

५. प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय ॥—वही, पृष्ठ १०३।

६. जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की सांस लेत बिनु प्रान ॥—वही, पृष्ठ १०५।

७. अगिनि आँच सहना सुगम सुगम खड़्क की धार ॥
नेह निभावन एक रस महाकठिन व्यौपार। –वही, पृष्ठ १०५।

८. कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा और अमल क्या खाय।—वही, पृष्ठ १०४।

९. तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहीं चैन रात नहिं निंदिया, तलफत तलफ के भोर किया।
—संतसुधासार, (वृहत्) पृष्ठ १०५॥

१०. कहै कबीर सुनों भाई साधो, पिया मिलन की आस रै ॥—वही, पृष्ठ १०१।

११. बाल्हा आव हमारै गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे।—वही, पृष्ठ ८१।

१२. वै दिन कब आवैंगे भाई।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाई ॥

उनकी आत्मा उस अन्तर्यामी की ही रट लगाती है।[१] इनकी भक्ति साधना का केन्द्र बिन्दु यही प्रेम है। द्विवेदी जी कबीर और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रेम का वर्णन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दोनों का ही प्रेम हिस्टीरिक प्रेमोन्माद का परिपंथी है।[२]

बाह्याडम्बर का विरोध—कबीरदास धर्म के किसी भी बाह्याडम्बर को नहीं मानते हैं। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को पाखण्ड पर खूब फटकारा है। समस्त संसार बुद्धिहीन हो गया, हिन्दू अपना देवता राम मानतें हैं और मुसलमान रहीम को। इस पर दोनों में वाद-विवाद होता है परन्तु सत्यतत्त्व के रहस्य को कोई नहीं पहचानता है।[३] हिन्दू वृक्षों और पाषाणों की अर्चना करते हैं, माला पहनकर तिलकधारी गृह-गृह में मंत्रोच्चारण करते हैं और मुसलमानों के पीर औलिया कुरान का पाठ करते हैं। हिन्दू छूतछात को मानते हैं परन्तु उनका नैतिक पतन हुआ है। पीर मौलवी उपदेश देते फिरते हैं परन्तु जीव हत्या करके मांस भक्षण करते हैं यह दोनों पथ भ्रष्ट हुए हैं।[४] वास्तव में ब्रह्म एक है वही अल्लाह है रहीम है जैसे एक ही मिट्टी से भिन्न-भिन्न बर्तन निर्मित होते हैं वैसे ही भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले है।[५] कबीर दास के अनुसार ब्रह्म सदैव आत्मा में वास करता है। बलि देकर उसकी प्राप्ति संभव नहीं, न वह मंदिर या मस्जिद में ही है।[६] वह आत्मा में ही व्याप्त है। अतः आत्मज्ञान प्राप्त करो। कबीरदास तो हिन्दुओं की 'हिन्दुआई' से और तुर्कों की 'तुरकाई' दोनों से परिचित हैं।[७] जनता उन बधिक पंडितों से दीक्षा लेती है जो स्नान तिलक करके भेड़ को बलि चढ़ाते हैं।[८] मुसलमान भी गाय की हत्या करते हैं परन्तु यह भेड़ों को हत्या करने वाले उनसे कम निठुर नहीं हैं।

कबीरदास ने जोगियों की भी हंसी उड़ाई है। जोगी अपने मन को शुद्ध नहीं

---

१. कब देखूं मेरे राम सनेही, जा बिन दुखपावै मेरी देहीं।

— — — —

हूं तेरा पंथ निहारू स्वामी, कब रमि लहुगे अंतरजामी।।—वही, पृष्ठ ७६।

२. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, सन् १९६० ई०, पृष्ठ २०२।

३. हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दौउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहि जाना।।—संतसुधासार, पृष्ठ १०४।

४. हिन्दू अपनी करे बड़ाई गागार छुवन न देई।।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।।—वही, पृष्ठ १०९।

५. बेगरि बेगरि नाम धराये एक मटिया के भांडे।।—वही, पृष्ठ ११०।

६. मोको कहां ढूंढों बदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी ना मैं छुरी गंडास मै।—वही, पृष्ठ ११२।

७. हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कौन राह ह्वै जाई।।—वही, पृष्ठ १०९।

८. साधौ, पाडे निपुन कसाई।
बकरी मारि भेड़ि को धाये, दिल में दरपन आई।।—कही, पृष्ठ १०३।

करते हैं वस्त्र को रंग देते हैं, कानों को फाड़कर जटा रख कर जंगल में धूनी जला कर पाखण्ड रचाते हैं।[1] वास्तव में यह सच्ची साधना से अत्यन्त दूर है। यदि ईश्वर मंदिर या मस्जिद में निवास करता है तो और प्रदेश किसका है।[2] हिन्दू पूर्व दिशा और मुसलमान पश्चिम दिशा को महत्त्व देते हैं, दोनों भ्रम में हैं, अपनी आत्मा को नहीं टटोलते, वास्तव में आत्मा में ही राम भी है और करीम भी।[3] उसे अन्य स्थान पर ढूँढ़ने से क्या प्रयोजन। ब्रह्म सर्वव्याक है।

गुरु-महिमा और साधु-संगति—परमतत्त्व को प्राप्त करने के लिए कबीर ने गुरु और साधु-संगति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वह ब्रह्म से भी गुरु को बड़ा मानते हैं।[4] गुरु धोबी है और शिष्य कपड़ा। गुरु ही शिष्य को ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करता है।[5] कबीर दास कहते हैं कि ईश्वर की प्राप्ति गुरु कराता है परन्तु गुरु की प्राप्ति ईश्वर नहीं करा सकता है।[6] मायारूपी दीपक पर जीव-रूपी पतंगा भ्रमित होकर गिरता है परन्तु गुरु ज्ञान से किसी-किसी की नौका पार लग जाती है।[7] मनुष्य-शरीर विष की लता है और गुरु अमृत की खान है। यदि सिर देने पर भी गुरु मिले तो भी महंगा नहीं है।[8] अतः गुरु की शरण में ज्ञान-प्राप्ति करके ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहिए।

साधु-संगति से संकट का नाश होता है परन्तु साधु की पहचान होनी चाहिए। असाधु की संगति भयंकर होती है।[9] तीर्थस्थानों की यात्रा के पश्चात् भी बिना साधु-

---

१. मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मँदिर मैं बैठे ब्रह्म छाडि पूजन लागे पथरा।—वही, पृष्ठ ९८।
२. जो खोदाय मसजीद बसतु है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी, बाहर केहिका डेरा॥—वही पृष्ठ ९८।
३. दिल में खोज दिलहि में खोजौ इहै करीमा रामा॥—वही, पृष्ठ ९९।
४. गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागौं पांय।
बलिहारी गुरु आपन, गोविन्द दियो बताय॥—वही, पृष्ठ १२०
५. गुरु धोबी सिष कापड़ा साबुन सिरजन हार।
सुरति सिला पर धोइए, निकसे जोति अपार॥—वही, पृष्ठ १२०
६. कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रूठते हरि नहिं होत सहाय।—वही, पृष्ठ १२०
७. माया दीपक नर पंतग, भ्रमि भ्रमि इवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ग्यान थैं एक आध उबरंत॥—वही, पृष्ठ ११९।
८. यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तौ भी सस्ता जान॥—वही, पृष्ठ १२०।
९. कबिरा संगत साध की हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाधि॥—वही, पृष्ठ १४९।

संगति के कोई लाभ नहीं है।[१] साधुओं की संख्या संसार में कम होती है।[२] अतः वह दिन पर्व है जब किसी साधु से परिचय हो।[3] कबीरदास उसको सच्चा साधु मानते है जो न सामग्री संचय करता है और न विषय-विकारों में लीन होता है।[४] साधु की जाति नहीं पूछनी चाहिए, उसके पास जो ज्ञान है उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।[५] ईश्वर से बढ़कर ईश्वर-भक्त होता है। सारा संसार ब्रह्म में है परन्तु स्वयं ब्रह्म भक्त के पास होता है।[६] साधु परोपकारी होते हैं और निष्काम भाव से संसार में रहते हैं।

नामस्मरण—साधु-संगति के साथ-साथ कबीरदास नाम-स्मरण को भी महत्व देते हैं, उनके अनुसार राम-नाम ही सारतत्त्व है।[७] नाम स्मरण से जीव ब्रह्ममय हो जाता है।[८] राम नाम के बिना मानव शरीर इस संसार में निष्फल है।[९]

रामनाम के भण्डार को जितना ले सकते हो ले लो यह समय पुनः नहीं प्राप्त होता है।[१०] जो मनुष्य केवल दुःख में ईश्वर का स्मरण करते हैं उनकी प्रार्थना कोई नहीं सुनता है।[११] हाथ की माला फिरने से क्या प्रयोजन, मन का मनका फिरना चाहिए।[१२]

---

१. मथुरा जावै द्वारिका भावै जावै जगन्नाथ।
साध संगति हरि भगति बिन कछन आवै हाथ।।—वही, पृष्ठ १५०

२. सिंहों के लैंहड़ें नहीं, हंसों की नहिं पांत।
लालों की नहिं बोरिया साध न चलैं जमात।।—वही, पृष्ठ १५०।

३. कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।
अंक भरै भरि भेंटिया, पाप सरीरों जांहि।।—वही, पृष्ठ १५०।

४. गांठी दाम न बांधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह।—वही, पृष्ठ १५०।

५. जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।—वही, पृष्ठ १५१।

६. हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिं।
कह कबीर जग हरि विषे, सोहरिजन माहिं।—वही, पृष्ठ १५१।

७. राम नांव तत सार है, सब काहू उपदेस।।—वही, पृष्ठ १२०।

८. मन मेरा सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि।।—वही, पृष्ठ १२१।

९ जिहि घटि प्रीति प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार मैं, उपजि षये बेकाम।—वही, पृष्ठ १२१।

१०. लूटि सकै तो लूटियो, राम नाम भण्डार।
काल कंठ तैं गहैगा, रुधै दसूं दुवार।—वही, पृष्ठ १२२।

११. सुख मैं सुमिरन ना किया दुख में कीया याद।
कह कबीरता दास की कौन सुनै फरियाद।—वही, पृष्ठ १२२।

१२. माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
करका मनका डारिदे मन का मनका फेर।।—वही, पृष्ठ १२२।

पाखण्डी लोग हाथ में माला फेरते हैं और जीभ से जाप करते हैं परन्तु उनका मन दसों दिशाओं में चंचलगति से घूमता रहता है।[१] इसको स्मरण नहीं कहा जा सकता है। मन की चंचलता को वश में करने के पश्चात् ही अन्य वस्तुएं सम्भव हैं।

कबीर का रहस्यवाद—'रहस्य' शब्द का मूल 'रहस' है जिसका एक अर्थ गुह्य भी है। यह शब्द 'रह त्यागे' के अनुसार, 'त्याग करना' अर्थ वाली धातु 'रह' से उसके आगे '**असुन**' प्रत्यय लगाकर बना कहा जा सकता है।[२] डा० रामकुमार वर्मा रहस्यवाद को जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन मानते हैं। जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता, जीवात्मा की शक्तियां इसी शक्ति के अनंत वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। एक भावना एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है। यही दिव्य संयोग है। आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा में परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों का प्रदर्शन।[३] डा० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार रहस्यवाद ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप में आत्मा की भावात्मक ऐक्यानुभूति के इतिहास का प्रकाशन है—जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में सजा कर रखने लगता है तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।[४]

ई० अण्डरहिल रहस्यमार्ग को एक शोधन प्रक्रिया मानती है जो आत्मा को ब्रह्माण्ड के साथ मिला कर प्राकृतिक चेतना से उच्चस्तर पर पहुंचाती है।[५]

डा० राधाकमल मुकर्जी रहस्यवाद को भीतरी समायोग विषयक वह कला मानते हैं जिसके द्वारा मनुष्य विश्व का उसके विभिन्न अंशों की जगह उसके अखण्ड रूप में बोध करता है।[६]

---

१. माला तो कर मैं फिरै, जीभ फिरै मुखमाहिं।
मनुवा तो दहुं दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।—वही, पृष्ठ १२२।

२. रहस्यवाद, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, प्र० सं० २०२० विक्रमी, पृष्ठ १।

३. कबीर का रहस्यवाद, सन् १९६१, पृष्ठ ७।

४. कबीर की विचारधारा, सं० द्वि २०१४ वि०, पृष्ठ २११।

५. "The Mystic way is best understood as a process of sublimation which carries the correspondences of the self with the universe up to higher levels than those of which our normal consciousness work"—The Essentials of Mysticism, E Uunderhill, 1920, Page. 6

६. "Mysticism is the art of adjustment by which man apprehends the universe as a whole, instead of its particular parts." The Theory and Art of Mysticism, Edition 1960, Page 12.

डा० विटमैन के अनुसार परा-विश्व और उसकी आध्यात्मिक सत्ता आत्मा के सूक्ष्म-शरीर और उनके पारस्परिक सम्बन्ध जो तर्क या कल्पना पर आधारित न होकर आत्मानुभव पर आधारित हैं—ये सब पराभौतिक-अध्ययन रहस्यवादी परिधि में सम्मिलित हैं।[1]

रहस्यवादियों की उद्देश्य-प्राप्ति में तीन अवस्थाएँ आती हैं :

१. प्रथम में व्यक्ति विशेष अनंत से अपना सम्बन्ध जोड़ता है।

२. द्वितीय में आत्मा परमात्मा से प्रेम करने लगती है।

३. तृतीय में आत्मा परमात्मा का एकीकरण होता है।

कबीर के रहस्यवाद में हिन्दुओं के अद्वैतवाद और मुसलमानों के सूफ़ी सिद्धान्तों का मिश्रण है। अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा और परमात्मा वस्तुतः एक ही सत्ता है। माया के कारण ही परमात्मा में नाम और रूप का अस्तित्व है, ज्ञान प्राप्ति से आत्मा और परमात्मा का पुनः एकीकरण होता है। कबीरदास ने भी आत्मा और परमात्मा को एक ही माना है।[2] कबीर मानव धर्म के पुजारी थे और सर्वत्र ईश्वर की प्रतिष्ठा मानते थे।[3] उसी में सृष्टि व्याप्त है और वही सृष्टि में व्याप्त है।[4]

कबीरदास के रहस्यवाद में प्रेमतत्त्व की भी प्रधानता है, इसकी प्रेरणा उन्हें सूफ़ियों से मिली है। सूफ़ियों के अनुसार भी जीवात्मा और परमात्मा का एकीकरण हो सकता है। वे माया के स्थान पर शैतान को मानते हैं। परमात्मा से मिलने के लिए आत्मा को चार दशाएं पार करनी पड़ती हैं: १. शरियत २. तरीक़त, ३. हक़ीक़त, ४. मारिफ़त।

मारिफ़त दशा में जीवात्मा और परमात्मा का एक्य हो जाता है। कबीरदास ने सूफ़ियों से प्रेम के उन्माद को भी ग्रहण किया।

हरि रस पीया जाणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
मैंमंता घूमत रहै, नांहि तन की सार।।[5]

---

१. "Mysticism is the study of everything nonp hysical, including the other worlds and their archetypal governance, as well as our spiritual bodies, the facts and their relationship being known by the self evidence of direct observation and not by reasoning or Sepeculation"—The Mystical Life, H. M. whittman, Edition 1961, page I.

२. जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतरि पानी,
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।। क० ग्र० पृष्ठ ८०।

३. जो खोदाय मसजीद बसतु है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी, बाहर केहि का डेरा।।—संतसुधा सार, पृ० ६८।

४. खालिक खलक खलक में खालिक सब घट रह्यौ समाई।—वही, पृष्ठ ६६।

५. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १३।

सूफ़ी ईश्वर की कल्पना सुन्दर नारी के रूप में करते हैं और जीवात्मा का प्रियतम मानते हैं। इसके विरुद्ध कबीर अपने को नारी और परमात्मा को पुरुष मानते हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कबीरदास ने माया और चिंतन् पद्धति अद्वैतवाद से और प्रेमतत्त्व सूफ़ियों से ग्रहण करके अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है।

गुरु नानक

गुरु नानक का आविर्भाव-काल विक्रम की १६ वीं शताब्दी है। इस समय देश में मुसलमानी राज्य का पूर्ण अधिपत्य था। मुसलमान शासकों में धर्मान्धता और संकीर्णता का भाव विद्यमान था। मुगल शासक बाबर के आक्रमण अविरल गति से हो रहे थे। ईसवी सन् १५२१ में बाबर ने ऐमनाबाद पर आक्रमण करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मुगलों और पठानों में भी घमासान युद्ध हुआ। देश का वैभव नष्ट हो गया। हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन न करने के कारण अनेकानेक कर लगाये जाते थे और मुसलमान बनने पर उन्हें पुरस्कृत किया जाता था। हिन्दू-जनता ने उदरपोषण के निमित्त अरबी-फ़ारसी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। लोग धर्म के वास्तविक रूप को भूल चुके थे। धार्मिक संकीर्णता और सांप्रदायिकता का प्रचार था। बाह्याडम्बरों पर विशेष जोर दिया जाता था। धार्मिक संत गुरु नानक को यह राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक दुर्व्यवस्था असहनीय हुई अतः उन्होंने विरोध के लिए अपने समाज को संगठित करने का प्रयत्न किया।

जीवन-वृत्त—गुरु नानक देव के सम्बन्ध में अनेक विवरण और जन्मसाखियां प्राप्त हैं जिनसे उनके जीवन को प्रकाश में लाने की सहायता मिल सकती है। गुरु ननक का जन्म सन् १४६९ ईसवी (संवत् १५२६ विक्रमी) को तलवंडी (ननकाना साहिब) नामक पश्चिमी पंजाब के एक गांव में हुआ था।[1] प्रचलित मत के अनुसार इनके पिता का नाम कालूचंद और माता का नाम तृप्ता था। इनके पिता तलवंडी ग्राम में पटवारी थे और खेतीबारी का व्यवसाय भी करते थे। एक जन्म-साखी के आधार पर सिक्ख सम्प्रदाय में विश्वास है कि गुरुनानक महाराजा जनक के अवतार थे जो कलियुग में पापियों का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए थे।[2]

नानक का स्वभाव बाल्यकाल से ही बहुत उदार और साधु-वृत्ति वाला था। ये

---

1. A Critical Study of Adi Granth, Dr. Surinder Singh Kohli, Edition 1961, Page 5.
2. "The same Raja Janak came into the world in this age in the person of guru Nanak that men entering his order might be saved from consequences of their actions."
   —Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. I, James Hastin, 1956, page 181.

साधुओं और फकीरों का संग भी करते थे, जिससे इनके पिता रुष्ट थे। पांच वर्ष की आयु में इनका अक्षरारम्भ हुआ और इन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा और विलक्षण बुद्धि से सबको चकित कर दिया। इन्हें पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत और फारसी का ज्ञान कराया गया परंतु ये अत्यधिक एकांतवास और आत्मचिन्तन में ही मस्त रहते थे। इनकी प्रवृत्ति सांसारिक व्यवहारों में नहीं थी।

ध्यान-मग्न रहने के कारण ये कोई भी कार्य उचित ढंग से नहीं कर सकते थे इस स्वभाव में परिवर्तन लाने के लिए इनका विवाह १४ वर्ष की अवस्था में सुलखनी नामक स्त्री से कर दिया गया जो वर्तमान बटाला ज़िला गुरदासपुर की थी। नानक के इन से श्रीचंद और लक्ष्मीचंद नामक दो पुत्र हुए। श्रीचंद आगे चलकर 'उदासी सम्प्रदाय' के प्रवर्त्तक बनकर एक बहुत बड़े साधु के रूप में विख्यात हुए हैं। गुरु नानक के उपदेशों से तंग आकर इनके पिता ने इन्हें व्यापार करने के लिए कहा और चुहारखाना (ज़िला गुजरानवाला) से नमक क्रय करने को कहा। नौकर को साथ लेकर नानक चल पड़े। मार्ग में इनकी भेंट साधुओं से हुई जिनको इन्होंने सारा धन वितरित कर दिया।[1] साधुओं के चले जाने पर नानक तलवंडी ग्राम के बाहर ही एक वृक्ष के नीचे बैठ गये जो अभी भी सुरक्षित है और उसे 'यंबा साहित' कहते हैं।[2] सारे परिवार के लिए इनका स्वभाव एक समस्या बन गया, इनके पिता ने दुकान खुलवाकर, घोड़ों की सौदागिरी तथा सरकारी नौकरी आदि दिलवाकर इनका मन सांसारिकता की ओर आकृष्ट करना चाहा परन्तु सब निष्फल हुआ। मोदीखाने का निरीक्षण-कार्य नानक ने स्वीकार तो कर लिया परन्तु अपनी आय निर्धनों में ही वितरित करते थे। एक समय जब ये आटा तौल रहे थे और तेरह पर तौल आया तब ये भावावेश में आकर 'तेरा-तेरा' ही जपने लगे। आटा अधिक तोला गया और मालिक को हानि हुई। परिणाम यह हुआ कि इन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ा।[3] तत्पश्चात् ये विरक्त होकर देश-भ्रमण के लिए निकल पड़े।

गुरु नानक की यात्राएं—मर्दाना गुरु नानक के साथ यात्रा आरम्भ करने के समय से ही रहने लगा। मर्दाना मुसलमान था परन्तु गुरु नानक के प्रभाव से सिख बन चुका था। गुरुनानक अपने पद गाते थे और मर्दाना रबाब बजाते थे। यात्रा करते-करते ये सर्वप्रथम सैयदपुर (वर्तमान अमीनाबाद) पहुँचे। वहां अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर आगे बढ़ गए। ग्रहण के अवसर पर ये कुरुक्षेत्र में भी उपदेश देने के लिए गये।[4] कुरुक्षेत्र से ये हरिद्वार तथा दिल्ली पहुंचे और आगे काशी, बंगाल, बनारस, गया, कामरूप,

---

१. The Sikh Religon, M. A. Macauliffe (Part I) Edition 1909, Page 30-31.

२. संत साहित्य, डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, प्रथम संस्करण सन् १९६२, पृष्ठ १११

३. संत साहित्य, डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, प्रथम संस्करण सन् १९६२, पृष्ठ ११३।

४. The Sikh Religion M. A. Macauliffe. (Part I) Edition 1909, Page 47.

और जगन्नाथपुरी की यात्राएं कीं। इसके पश्चात् ये शेख फरीद से मिलने के लिए पाकपट्टन गये। शेख फरीद का नाम शेख इब्राहीम या शेख फरीद द्वितीय था।[1] इसके पश्चात् गुरुनानक वापस लौट कर माता-पिता से मिलने तलवंडी ग्राम में पहुंचे और कुछ समय पश्चात् पुनः पाकपट्टन पहुंचे जहां इन्होंने द्वितीय बार शेख फरीद से सत्संग किया। हिजरी ९१७ में गुरुनानक ने बगदाद में जहाँ निवास किया था वहां एक मन्दिर बनाया गया है जिस पर तुर्की भाषा में इस घटना का उल्लेख है।[2]

कश्मीर की यात्रा में वर्णित है कि वहाँ एक पंडित ब्रह्मदास रहते थे। वे देवी के भक्त थे और उन्हें अद्भुत शक्ति प्राप्त थी। ये गुरु नानक की भेंट के लिए तत्पर हुए और उनसे भेंट की।[3] गुरुनानक की यात्राएं केवल भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं थीं अपितु इन्होंने रूस, तुर्किस्तान, और मक्का की भी यात्राएं की हैं।[4] अत्यधिक भ्रमण करने के कारण गुरु नानक का साथी मरदाना थक चुका था, बारह वर्ष तक ये यात्राएं करते रहे। यात्रा के पश्चात् जब नानक वापस लौटे तो तलवंडी से तीन मील दूर रहने लगे। मरदाना अपने घर चला गया। नानक के वापस आने का समाचार भी फैल गया। नानक के माता-पिता अपने पुत्र से मिलने आये। उन्होंने नानक से घर चलने की बहुत अनुनय-विनय की परन्तु इन्होंने नहीं माना। ये पुनः अपनी मण्डली समेत भ्रमण के लिए चल पड़े। इस समय इन्होंने सैयदपुर, सियालकोट, करतारपुर, मद्रास और सिंहल की यात्रा की।

गुरु नानक ने अपने दोनों पुत्रों की उनकी अयोग्यता के कारण उपेक्षा की और अपने प्रिय शिष्य लहिना को अपना उत्तराधिकारी बना दिया और 'गुरु अंगद' नाम दिया। इस घटना के पश्चात् इनकी मृत्यु आश्विन शुक्ल १० को करतारपुर में संवत् १५९५ अर्थात् १५३८ ई० में हुई। इनकी मृत्यु के पश्चात् कहा जाता है कि हिन्दुओं

---

१. संत साहित्य, डॉ० सुदर्शन मजीठिया, प्रथम संस्करण १९६२, पृष्ठ ११५।

२. 'In the place where Baba Nanak sctayed in Bagdad (about 917 A. H.) there is now a holy shrine with a Turkish inscription to commemorate the event. The decendents of Nanak's disciple of the Saiyad family are now the overseers of the shrine.'
—Medieval Mysticism of India, Shitimohan Sen, Edi. 1935, Page 102-103.

३. गुरु नानक, श्री जोगिन्द्र सिंह, पृष्ठ ६९।

४. These pilgrimages may have extended far beyond and confines of modern India and indeed it is claimed that he visited not only Cylon and Kashmir but also Russia, Turkistan—Mecca.-Encyclopaedia of Religion and Ethics, James Hastings. Vol. 9, Edition 195(. Page. 181.

और मुसलमानों ने अलग-अलग समाधियाँ बनाई थीं।[1] जो काल-चक्र में रावी नदी के जल से नष्ट-भ्रष्ट हो गईं। डा० धर्मपाल मैनी के अनुसार नानक के विरोध में कबीर की कटुता नहीं, उनके धार्मिक विश्वासों में वैष्णव आचार्यो की दार्शनिकता नहीं, उनके जीवनयापन में योगियों की शारीरिक कष्टमयी साधनाएं नहीं, उनकी भक्ति में पुष्टि-मार्ग का आडम्बर नहीं, उनके ज्ञान में शंकर की शुष्कता नहीं और इन सब से बढ़कर उनके कर्म में हउमै (अहंकार) का गर्व नहीं है। यही कारण है कि नानक के दूरदर्शी मन को संतों की वाणी को अपनी वाणी के साथ एकत्रित एवं सुरक्षित करने की अन्तः प्रेरणा प्राप्त हुई।[2]

गुरुनानक की रचनाएं—गुरु नानक ने समय-समय पर जो पदों की रचना की है वे गुरु ग्रन्थ साहिब में संगृहीत हैं। इनकी सबसे प्रमुख रचना जपुजी साहब है जिसमें ३८ छंदों के अंत में एक 'सलोक' है जिसके अन्तर्गत गुरुनानक के उपदेशों का सार निहित है। श्री वियोगी हरि ने समस्त जपुजी को अपने ग्रन्थ 'संतसुधासार' में उद्धृत किया है। गुरु नानक की द्वितीय प्रसिद्ध रचना 'असा दीवार' है और इसमें ईश्वर की स्तुति है। इसके अन्तर्गत २४ पौड़ियाँ हैं। 'रहिरास' तथा 'सोहिला' नामक पद-संग्रहों में भी गुरु नानक के अनेक पद या पौडियाँ संकलित हैं। फुटकर तो सैंकड़ों ही पद हैं। 'सौदरु' और 'गगन मैं थाल' नामक पद भी इनका प्रसिद्ध है। गुरु ग्रन्थ साहिब में 'महला' शीर्षक के जितने भी पद अनेक रागों में हैं वे सब गुरु नानक देव के हैं। गुरु ग्रन्थ साहब का संकलन और संपादन गुरु अर्जुनदेव ने किया है। इसमें गुरु अर्जुनदेव से पूर्व के सिख गुरुओं और निर्गुण भक्तों की वाणी का संग्रह है। इसमें केवल उन्हीं पदों का संकलन किया गया है जो ज्ञानाश्रयी निर्गुणधारा के पद हैं। इसमें विभिन्न पद राग-रागनियों में दिये गए हैं। ये पद क्रमानुसार विभिन्न 'महला' में रखे गये हैं जैसे गुरु नानक के पद महला, गुरु अंगद के पद महला, अमरदास के पद महला और गुरु रामदास के पद महला४ में रखे गये हैं। इनके पश्चात् भक्तों के पद हैं और अंत में राग-माला दी गई है। गुरु ग्रन्थ साहब की लिपि गुरुमुखी है। सन् १६६१ में गुरु अर्जुनदेव ने इस आदि ग्रन्थ का संपादन-संकलन किया है।

गुरु नानक की दार्शनिक विचारधारा : सिद्धान्तपक्ष

ब्रह्म—गुरु नानक निर्गुण ब्रह्म को मानते हैं। वह निर्गुण ब्रह्म सबसे निराला है, अमर है, अयोनि है और जाति-बन्धन से परे है। उसका न कोई रूप हैं और न रेखा

---

१. The Gospel of the Guru Granth Sahib, Duncan Greenlees, Edition 1952, Page 56.

२. श्री गुरु ग्रन्थ साहब एक परिचय, डा० धर्मपाल मैनी, संस्करण १९६२, पृ० १४

परन्तु वह घट-घट में व्याप्त है।[1] उसके न कोई माता-पिता है, न पुत्र और न भाई।[2] वह अगम-अगोचर है, अलक्ष्य और अपार है।[3] इस निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करना असम्भव है क्योंकि वह मन, वाणी और इन्द्रियों से परे है। गुरु नानक निर्गुण ब्रह्म की इस स्थिति का वर्णन करते हैं कि उस सत्य तक कोई नहीं पहुँचता है। ब्रह्म और जीव के बीच जो व्यवधान है वह गुरु नानक के अनुसार परमेश्वर के आदेश पर चलने से ही हट सकता है।[4] उसके सम्बन्ध में हम लाखों बार भी चिंतन करें, उसकी धारणा स्पष्ट नहीं होती है। वह सदैव आनन्दमग्न है।[5] वह एक है, वह सत्यनाम है, जो सदा एक रहा है, जो सबका स्रष्टा है, समर्थ पुरुष है। वही सर्वशक्तिमान होने के कारण वैर-विरोध से सर्वथा अतीत है। वह स्वयं विश्व का आदि कारण है परन्तु उसका कोई कारण नहीं इसलिए वह स्वयंभू तथा अजन्मा है। वह शुद्ध, स्वयं प्रकाश और सर्वत्र परिपूर्ण गुरु की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है।[6] वह सत्य रूप प्रभु आप ही सब कुछ है। न वह किसी के द्वारा स्थापित होता है और न बनाया जाता है। वह निरंजन है माया से परे है।[7] वह निर्गुणी को भी गुणी कर देता है और जो गुणी है उसे और भी गुण प्रदान करता है परन्तु उसे गुण प्रदान करने वाला कोई नहीं है।[8] गुरु नानक भी ब्रह्म को निराकार मानते हैं।[9]

---

१. एकम एकंकारु निराला। अमरु अजोनो जाति न जाला।
अगम अगोचरु रूपु न रेखिआ। खोजत खोजत घटि-घटि देखिआ।
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, सं० २०१८ वि०, पृ० ४८०
२. 'ना तिसु मात पिता सुत भ्राता'—वही, पृ० ६०६।
३. 'अगम अगोचर तू धणी सचा अलख अपारु'—वही, पृष्ठ ७६३।
४. सहज सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।
किव सचिआरा होइऐ, किव कूड़ै तुटैं पालि।
हुकमि रजाई चल्लणा नानक लिखिआ नालि।
—संत सुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, सन् १६५३, पृ० २०८-२०६।
५. 'हुक्मी हुकमु चलाए राहु नानक विग सै बेपरवाहु।'
—संत सुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, सं० सन् १६५३, पृष्ठ २१०।
६. 'ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ।
निखैरु अकाल मूरति सैभं गुरु प्रसादि।'
—श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (भाग १) मुनि अर्जुनसिंह, संस्करण प्रथम २०१७, पृ० १।
७. थापिआ न जाइ कीता न होइ। आपै आपि निरंजनु सोई
—संतसुधासार (वृहत्) श्री वियोगीहरि, सं० सन् १६५३, पृ० २११।
८. 'नानक निरगुणी गुणु करै गुणवतिआ गुणु दे।
नेहा कोई न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करै।'—वही, पृष्ठ २१३।
६. 'तू सदा सलामति निरंकार।'—वही, पृष्ठ २१८।

उसके असंख्य नाम और धाम हैं।[१] वह सत्य और सुन्दर है और अन्तर में सदा आनन्द-रूप में रहता है।[२] ब्रह्म अकथनीय है। जिन्होंने परमात्मरस का आस्वादन किया है वे उसका स्वाद जानते हैं परन्तु वर्णन नहीं कर सकते हैं। वह रस गूंगे का गुड़ है।[३] इस निराकार परमेश्वर का निवासस्थान सत्यखण्ड है।[४] कौन उसका वर्णन कर सकता है? कहीं उसका अंत ही नहीं है। वह ईश्वर ज्योतिस्वरूप है जो घट-घट में विद्यमान है।[५] वही अल्लाह, अगम्य, कादिर, अलक्ष्य और करीम है। समस्त संसार नाशवान है, रहीम ही स्थिर है।[६] नानक के अनुसार ईश्वर से परे कुछ नहीं है। सदगुरु की सहायता से उसका आभास प्रत्येक स्थान पर मिलता है। उसके अतिरिक्त जल, थल, धरणी और आकाश कुछ भी नहीं है। वह स्वयंभू है। वही मीन भी है और उसका जीवनरूप जल भी है, वही जाल है और वह जाल बिछानेवाला है।[७] गुरु नानक ने परमेश्वर को राम कह कर भी पुकारा है। वह निर्गुण राम दैवी गुणों के वशीभूत होता है।[८] मूलपुरुष ने स्वयं ही अपने आप को निर्मित किया है और निर्गुण और सगुण रूप धारण किया है। वह स्वयं निर्गुण है और सृष्टि के कारण सगुण बनता है जिसे नाम-रूप की संज्ञा दी जाती हैं। नामरूप रचने के पश्चात् उसने अपनी माया-शक्ति रची और फिर इस जगत् का दृश्य देखने लगा।[९] वही निर्विकल्प भी है। जो कोई उसके वर्णन की चेष्टा करता है

---

१. 'असंख नाव असंख थाव'—वही, पृष्ठ २२०।

२. 'सति सुहाणु सदा मनि चाउ।'—वही, पृष्ठ २२२।

३. जिन चाखिआ सेइ सादु जाणीन जिउ गंगु मिठिआई।।
अकथ का किआ कथीऐ भाई चालऊ सदा रजाई।।
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, सं० २०१८ वि०, पृष्ठ ४००।

४. सचखंडि वसै निरंकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल।
—संतसुधासार (वृहत्) श्री वियागीहरि, सं० १९५३ ई०, पृष्ठ २३६।

५ घटि-घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु।
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, सं० २०१८ वि० पृष्ठ २१६।

६. अलाहु अलखु अगंम कादरु कारणहारु करीमु,
सभी दुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु।—वही, पृष्ठ १६०।—

७. तू आप जलु मीना है आपे आपे ही आपि जालु।
तू आपे जालु वताइदा आपे विभि सेबालु।—वही, पृष्ठ १७०।

८. निरगुण रामु गुणह वसि होइ। आपु निवारि बीचारे सेई।।
—संत सुधासार (वृहत्) श्री वियोगीहरि, सं० सन् १९५३, पृ० २२०।

९. आपीन्हैं आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाऊ।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठोचाऊ।
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाऊ।
तू जानोई सभ सै दे लैसहि जिंदु कवाउ।
करि आसणि डिठो चाऊ।।—वही, पृष्ठ ३२४।

उसे पछताना पड़ता है।[1]

ब्रह्म के विराट स्वरूप का वर्णन गुरु नानक की वाणी में मिलता है। आकाश-रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक के समान बने हुए हैं और मलयचन्दन की सुगन्धि धूप के समान है। सारे ही कानन उस ज्योति-स्वरूप के पुष्प हैं। उसके सहस्रों नेत्र हैं तो भी वह विना नेत्र के हैं। सहस्र रूप होकर भी वह बिना रूप के हैं।[2] सहस्र निर्मलचरण होकर भी वह बिना चरण के हैं, सब उसी की ज्योति से ज्योति पा रहे है और प्रकाशित हो रहे है। इस प्रकार गुरु नानक की ब्रह्म सम्बन्धी विचारधारा का परिचय प्राप्त होता है। उन्होंने परमात्मा में निर्विशेष सत्य के साथ उसके व्यक्तित्व का समन्वय भी माना है। नानक के अनुसार हमें सर्वोच्च गुणों—महानता, दयालुता और सर्वशक्तिमत्ता का अनुभव करके ईश्वर के अलौकिक व्यक्तित्व को श्रेष्ठ आदर्शों का प्रतीक मानना चाहिए।

डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संतों को दार्शनिक विचारधाराओं के आधार पर तीन विभागों में विभाजित किया है :—१. अद्वैत, २. भेदाभेद, ३. विशिष्टाद्वैत।

उन्होंने नानक और उनके अनुयायियों का भेदाभेदी स्वीकार किया है।[3] डा० जयराम मिश्र के अनुसार गुरुओं की वाणी में परमात्मा के दोनों स्वरूपों का वर्णन है वह निर्गुण भी है और सगुण भी, तथा निर्गुण और सगुण दोनों भी, परन्तु वह अवतार धारण नहीं करता है। वह एक है और अजन्मा है।[4] इनके दार्शनिक सिद्धान्तों में सर्वात्मवाद की छाया है अर्थात् नित्य निर्विशेष एक मात्र सत्य और व्यावहारिक असीम-सत्ता में भिन्नता नहीं है। दोनों एक हैं। उस परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए साधन-रूप में नानक के अनुसार 'धरम खण्ड', 'ज्ञान खण्ड', 'करम खण्ड' और 'सचखंड' में स्वयं निराकार परमेश्वर का वास है और इसी अंतिम स्थिति में मनुष्य 'पंच'-रूप कहाकर आदर्श

---

१. ता कीआ गाला कथीआ ना जाहि।
   जि को कहै पिछै पछुताइ।
   —श्री गुरुग्रन्थ दर्शन, डा० जयराम मिश्र, प्र० सं० २०१८ वि०, पृ० ७६।

२. गगन मैं थालु रविचंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
   धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती।
   कैसी आरती होई भवखंडना तेरी आरती। अनहता सबद बाजंत भेरी।
   सहस तव नैन नव नैन हहि तेहि कउ सहस मूरति नना एक तोही
   सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गँध इव चलत मोही
   सभ महि जोति जोति है सोई तिस चानणि सभमहि चानणु होई।
   —संतसुधासार पृष्ठ २३६।

३. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, सं० विक्रमी २००७, पृष्ठ १७०।

४. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, डा० जयराम मिश्र, सन् १९६०, पृष्ठ ९५।

बन जाता है।

जीवात्मा—गुरु नानक के अनुसार जीव परमात्मा के 'हुक्म' से उत्पन्न होते हैं। परमात्मा के हुक्म से ही समस्त दृश्यमान और नामरूपात्मक वस्तुओं की उत्पत्ति होती है, उसी से मनुष्य उत्तम गति पाता है और उसी से नीच गति। वह आज्ञा जैसे कर्मों को लिख देती है वैसे ही दुःख और सुख पाते हैं। उस आज्ञा से किसी को मुक्ति का दान मिल जाता है, तो कितने ही अनेक योनियों में चक्कर काटते रहते हैं सभी उसकी आज्ञा के अन्दर हैं, कोई भी उसकी आज्ञा के बाहर नहीं है।[1] परमात्मा ने ही जीव और शरीर देकर सबका निर्माण किया है।[2] जाति और नाम का अहंकार व्यर्थ है, वास्तव में सारे जीवों में एक ही प्रतिबिम्ब है एक ही छाया है,[3] परन्तु द्वैतभाव में बंधा हुआ वह आता-जाता अर्थात् जन्मता-मरता है।[4] जीव का अस्तित्व परमात्मा पर ही निर्भर है। माया और अहंकार से पृथक होकर जीव अल्पज्ञ बनता है। जीव कोई स्वतंत्र शक्ति नहीं है, उसकी सारी शक्तियों का मूल स्रोत परमात्मा है वही, जीव को शक्ति प्रदान करता है। जीव का कोई वश नहीं चलता है क्योंकि प्रभु जीव के मन में वास करता है।[5] फिर भी जीव को आत्मज्ञान नहीं होता है। वह रात्रि निद्रा में और दिवस खाने-पीने में व्यतीत करके अपने आत्मतत्त्व को सांसारिक सुखों के लिए व्यर्थ गंवाता है।[6] संसार में अनेक और असंख्य जीव हैं उनके कर्म और धर्म भी असंख्य हैं परन्तु उनमें एक ही तत्त्व विद्यमान है।[7] जीव के अन्तर्गत परमात्मा का ही निवास है। इस परमतत्त्व की अनुभूति तभी संभव है जब जीव अपने अहं को समाप्त करके परमतत्त्व में लय होता है। जीव का मन

---

१. हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमि होवनि जीअ, हुकमि मिलै वड़िआई।
हुकमी उत्तमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाई अहि।
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाई अहि।
हुकमे अन्दरि सभु को बाहरि हुक्म न कोई।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोई।
—संत सुधासार, (वृहत्) श्री वियोगी हरि, संस्करण १९५३ ई, पृ० २०९।

२. आपे खसमि निवाजिआ। जीउ पिंडु दे साजिआ।
—नानकवाणी, डा० जयराममिश्र, सं० २०१८ वि०, पृ० १६१।

३. फकड़ जाती फकड़ु नाउ। सभना जीआ इका छाउ।—वही, पृष्ठ १६९।

४. "दुबिधा बाधा आवै जावै।"—वही, पृष्ठ १७२।

५. "आपे देइ पिआरु मनि वसाईऐ।", वही, पृष्ठ १६३।

६. "रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है कउड़ी बदले जाइ॥—वही, पृष्ठ २१५।

७. भीतरि एक अनेक असंख्य। करम धरम बहु संख असंख॥—वही, पृ० २८२।

चंचल होता है अतः परमात्मा से मिलने की विधि नहीं जानता है।[1] परमात्मा और जीवात्मा में कोई तात्विक भेद नहीं है। पंच तत्वों को मिलाकर ही परमात्मा ने काया का निर्माण किया है और उसी में रामरूपी रत्न रखा है। जीवात्माएं ही परमात्मा हैं और परमात्मा स्वयं भी जीवात्माओं में है।[2] शरीर नश्वर है। शरीर से जीव निकल कर यह देह सूनी और भयानक हो जाती है। गुरु नानक ने मानव जीवन को छः अवस्थाओं में विभाजित किया है—गर्भावस्था, बाल्यावस्था, यौवनावस्था, वृद्धावस्था का प्रारम्भ, वृद्धावस्था और मरणावस्था। सत्तर वर्ष में मनुष्य मतिहीन हो जाता है और अस्सी वर्ष का होनेपर व्यवहार करने योग्य नहीं रह जाता है।[3] इस प्रकार उसकी सारी आयु व्यर्थ ही जाती है परन्तु जब जीव-परमात्मा के भजन-चिन्तन में निमग्न रहता है तो वह साक्षात परमात्मा का स्वरूप बन जाता है।

संसार—गुरु नानक संसार को सत्य मानते हैं और ईश्वर को इसका उत्पन्न करने वाला मानते हैं।[4] उसी ने जीवों को संसार में कार्यरत किया है। जिस प्रकार जल में उत्पन्न कमल जल से निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार संसार-रूपी जल में परमात्मा की ज्योति है और वह सर्वत्र परिपूर्ण और निर्लेप है।[5] संसार नाशवान है, उत्पत्ति और नाश इसका क्रम है। परमात्मा ही सत्य और शाश्वत है। माया के कारण मनुष्य जगत के मोह से ग्रस्त हैं परन्तु कई मनुष्य गुरु की शिक्षा प्राप्त कर जगत् से उदासीन रहते हैं। संसार में स्त्री के द्वारा सभी जीते गये हैं। मनुष्य ने यहां पुत्र-कलत्र के कारण सत्य-नाम को ही विस्मृत किया है,[6] और प्रपंचों में पड़कर व्यर्थ ही जन्म गवा दिया है। संसार में सभी प्राणी बन्धन में हैं, अहंकार-वियुक्त होकर ही वे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यहां विचारवान पण्डित-ज्ञानी तो अनेक हैं परन्तु उस ज्ञान पर आचरण करने वाले कम हैं। यहां सभी दुःखी हैं, रोगी हैं, भोगी हैं और सत्व, रज और तमगुणों

---

१. मनु चंचल बिधि नाही जाणै मनमुखि मैला सबदु न पछाणै।—वही, पृष्ठ २८७।

२. पंच ततु मिलि काइआ कीनी। तिस महि राम रतन लै चीनी।
आतम रामु रामु है आतम। हरि पाई ऐ सबदि बेचारा।
—वही, पृष्ठ ६३२।

३. दस बालतणि बीस रवणि रवणि। तीसा का संदरू कहावै।
चालीसी पूरू होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोढेपा आवै।
सतरि का मतिहणू असीहां का विउहार न पावै।
नवै का सिहजासणी मूलि न जाणै अपबलु।—वही, पृष्ठ १७४।

४. तुधु संसारु उपाइआ। सिरे सिरि धधे लाइआ॥—वही, पृष्ठ १६१।

५. जल महि उपजै जल ते दूरि। जल महि जोति रहिआ भरपूरि॥
—वही पृ० २७८।

६. साच धणी जगु आइ बिनासा। छूटसि प्राणी गुरमुखि दासा।
जगु मोहि बाधा बहुती आसा। गुरमति इकि भए उदासा।

में राते रहते हैं। इस प्रकार प्रतिष्ठा खोकर जगत् उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।[१] यह संसार आडम्बर और पाखण्ड का आगर है। यहां मौखिक सहानुभूति प्राप्त होती है, सभी स्वयं को त्यागी समझते हैं परन्तु सांसारिक विषय-भोगों में लिप्त रहते हैं।[२] यद्यपि संसार में बाह्य साज-सज्जा है, चमक-दमक है परन्तु यह नश्वर है।[३] क्षणभंगुर यहां सभी माया के बंधन में बंधे हैं।[४]

माया—गुरु नानक के अनुसार निरंजन परमात्मा ने स्वयं अपने आपको उत्पन्न किया है और समस्त जगत् में वही अपनी क्रीड़ा करता है। उसी परमात्मा ने तीनों गुणों एवं उनसे सम्बद्ध माया की रचना की है। "त्रैगुण आपि सिरजिअनु माइआ मोह बधाइआ" कहकर यह भी स्पष्ट किया है कि उसी परब्रह्म ने मोह की वृद्धि के साधन भी उत्पन्न किए हैं। मनुष्य माया के भी वशीभूत होता है जब उसका मन भटकता है।[५] माया के प्रति मोह ही सारे जंजालों का मूलकारण है। मन के अनुसार चलने वाला व्यक्ति गंदा, कुत्सित तथा विक- राल है क्योंकि मन भटकता है। सदगुरु की सेवा में ही सारे जंजाल समाप्त होते हैं।[६] जीव की आशाएं और इच्छाएं नष्ट हो जाती है और त्रिगुणात्मक माया से वे निराश हो जाते हैं।[७] संसार में प्राणी ज्ञान की बातें करते हैं परन्तु वास्तव में सारा जगत् उस माया के बंधन में बंधा हुआ है।[८] माया झूठी है, नश्वर है।[९] संसार के लोग इसी माया के अहंकार में पड़ जाते हैं। मनुष्य अहंकार

अंतरि नामु कमलु परगासा। तिन्हकउ नाही जम की त्रासा।
जगु त्रिअ जितु कामण हितकारी। पुत्र कलत्र लगि नामु बिसारी।
—वही, पृष्ठ २७६।

१. जगु बंदी मुकते हउ मारी। जगि गिआनी बिरला आचारी।
जगि पंडितु बिरला बीचारी। बिनु सतिगुरु भेटे सब फिरै अहंकारी।
जगु दुखीआ सुखीआ जनु कोई। जगु रोगी भोगी गुण रोई।
जगु उपजै बिनसै पति खोइ।।—वही, पृष्ठ २८१।
२. नानक दुनीआ चारि दिहाड़े सुखिकीतै दुख होई।
गला वाले हैनि घनेरे छनि सकै कोई।।—वही, पृष्ठ ७६२।
३. चिलमिल बिसीआर दुनीआ फानी।
कालूबि अकल मन गोरन मानी।—वही, पृष्ठ ७७३।
४. बांधनि बांधिआ सभु जग भवै।
—संतसुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, सं० १९५३ ई०, पृष्ठ २४५।
५. "मनु भूलो माइआ धरि जाइ।"
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, संस्करण २०१८ वि०, पृष्ठ २२०।
६. "माइआ मोहु सरब जंजाला। मनमुख कुचील कुछित बिकराला।।"
—वही, पृ० २२२।
७. "आसा मनसा दोऊ बिनासत त्रिहु गुण आस निरास भई।"—वही, पृ० २६४।
८. "गिआनु धिआनु सभुकोई रवै। बांधनि बांधिआ सभुजगु भवै।" वही, पृ० ४३६।
९. "माइआ मोहु सभु कूड़ है कुड़ो होई गइआ।"—वही, पृ० ४६८।

में पड़कर अपने कर्मों की गिनती गिनता है और संशय में जीवित रहता है वह त्रिगुणात्मक माया के द्वैतभाव में कैसे सुख प्राप्त कर सकता है।[१] इस माया का विष परमात्मा या गुरु की कृपा से ही समाप्त हो सकता है।

साधना-पक्ष—साधना-पक्ष में गुरु नानक ने बाह्याडम्बरों की उपेक्षा की है और सद्गुरु को महत्त्व दिया है। प्राचीन ग्रन्थो के अनुसार भारतीय समाज में गुरु का स्थान बड़ा उच्च, गौरवपूर्ण और समादृत रहा है। वही धर्म और समाज का नियामक रहा है, वही राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाता रहा है, उसी गुरु को गुरुनानक ने भी उच्च स्थान दिया है। यदि गुरु का उपदेश ध्यान से सुना जायेगा तो बुद्धि से ही हीरे-मोती आदि सारे रत्न अर्थात् उच्च आध्यात्मिक गुण प्रकट होंगे।[२] गुरु ही सीढ़ी है, गुरु ही नाव है, गुरु ही सरोवर है, जहाज है और तीर्थ है।[३] बिना गुरु के मन का मैल नहीं छटता।[४] गुरु का उपदेश सुनने से सिद्धों, पीरों और बड़े-बड़े नाथों की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।[५] गुरु का उपदेश सुनने से सत्य-सन्तोष और दिव्यज्ञान प्राप्त होता है। उसे सुनना अड़सठ तीर्थों में स्नान करने के समान है।[६] गुरु-उपदेश से मनुष्य मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। नानक के अनुसार एक नाम का जपना ही 'हुक्म' है और इसका रहस्य सद्गुरु बताते हैं।[७] सद्गुरु के सच्चे शब्द का वर्णन करके मनुष्य परमात्मा में समा जाता है। सद्गुरु की सेवा किए बिना सुख में निवास नहीं हो सकता और बार-बार जन्म लेना पड़ता है। गुरु से प्राप्त ज्ञान-द्वारा आपापन नष्ट करके प्रभु का नाम स्मरण करना चाहिए।[८] जिस मनुष्य के अन्तर्गत सद्गुरु ने ज्ञान का दीपक जला दिया

---

१. गणत गणीऐ सहसा जीऐ किउ सुखु पावै दूऐ तीऐ।—वही, पृ० ६१२।

२. "मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी।"
—संतसुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, सं० १९५३ ई०, पृ० २१२।

३. "गुरु पउड़ी बेडी गुरू गुरु तुलहा हरि नाउ।
गुरु सरु सागरु बोहियो गुरु तीरथ दरीआउ।
—नानकवाणी, डॉ० जयराम मिश्र, २०१८ वि०, पृ० १०८।

४. बिनु गुर मैलु न उतरै बिनु हरि किउ घर वासु"—वही, पृ० १११।

५. सुणिएँ सिद्ध पीर सुरिनाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास।।
—संत सुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, संस्करण १९५३, पृ० २१३।

६. "सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठिसठि का इसनानु।"
—संत सुधासार, श्री वियोगी हरि, संस्करण १९५३ ई०, पृ० २१४।

७. एको नामु हुक्मु है नानक सतिगुर दीआ बुझाइ जीउ।
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, सं० २०१८ वि०, पृ० १६१।

८. पूरे गुर की कार करमि कमाइऐ
गुरमति जापु गवाइ नामु धिआइऐ।
दूजी कारै लगि जनमु गवाई ऐ।
विणु नावै सभ विसु वैझै खाईऐ।।—वही, पृ० १८९।

है उसे अपने भीतर ही नाम रत्न प्राप्त हो गया है। गुरु की शरण में आकर सच्चा रत्न प्राप्त हो गया है। गुरु की शरण में आकर सच्चे शब्द के द्वारा मनुष्य सत्य में निवास करने लगता है।[1] जिन्हें गुरु द्वारा प्रेम उत्पन्न हुआ है उनके शरीर में ही परमात्मा वास करता है।[2] सद्‌गुरु पुरुषदाता है और बड़ा दानी है उस सद्‌गुरु के अन्तर्गत सत्य (हरी—उसका शब्द) नाम समाया हुआ है। जिसे सद्‌गुरु मिलता है उसे यमराज का भय भी नहीं रहता।[3] गुरु ही परमात्मा से मेल कराता है। बिना गुरु के न भक्ति होती है और न भाव। बिना गुरु के सत्संगति नहीं होती।[4] मनुष्य गुरु के बिना अज्ञान के अन्धकार में रहकर संसार के प्रपंचों में पड़ा रहता है। मन का मैल भी गुरु से ही स्वच्छ होता है।

नामस्मरण—गुरु नानक ने नामस्मरण को बड़ा महत्त्व दिया है। इनके अनुसार माया से परे निरंजन परमात्मा के गुण गाने और सुनने चाहिए और भावपूर्वक अपने मन में रखने चाहिए।[5] जो प्रभु का नाम सुनता है, उस पर चलता है और अंतःकरण से उसकी भक्ति करता है उसने सारे तीर्थों का स्नान कर लिया और सब पापों को धो डाला।[6] बिना हरिनाम के कोई मुक्ति नहीं पा सकता है।[7] मनुष्य का जन्म रामनाम के बिना व्यर्थ है।[8] ईश्वर के नाम से ही संसार-सागर से पार हो सकते हैं। नाम ही आभूषण है। नाम द्वारा ही ज्ञान का लक्ष्य पूर्ण होता है। प्रभुनाम ही बल है और प्रभुप्राप्ति का साधन है।

योग-साधना—गुरु नानक ने योगमार्ग के षट्‌चक्रों, इन्द्रिय-निग्रह आदि का वर्णन किया है। उनके अनुसार षट्‌चक्रों वाला देह मठ है और उसमें रहने वाला वैराग्यवान् मन है उसके अन्तर्गत आत्मिक ज्ञान वाला शब्द गूँज रहा है। यही सुरति की उठती

---

१. सतिगुर सचे वाहु सचु समालिआ।
पाइआ रतनु घराहु दीवा बालिआ।—वही, पृ० १९६।

२. "तनमहि साचो गुरमुखि भाउ।"—वही, पृ० २२२।

३. सतिगुरु पुरखु दाता वड दाणा। जिस अंतरि साचु सु सबदि समाणा।
जिस कउ सतिगुरु मेलि मिलाए। तिसु चूका जम भै भारा है॥—वही, पृ० ६३१।

४. बिनु गुर भगति न भाउ होइ। बिनु गुरसत न रंगु देइ।
बिनु गुर अंधुले धुंध रोइ। मनु गुरमुखि निरमलु मलु सबदि खोइ॥
—वही, पृ० ७०४।

५. गाविऐ सुणिऐ मनि रखी भाउ। दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥
—संतसुधासार, (वृहत्) श्री बियोगी हरि, (सं० १९५३ ई०) पृ० २११।

६. सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मनि नाउ।
—वही, पृ० २२२

७. बिनुहरिनाम कोउ मुकति न पावसि डूबि मुए बिन पानी।—वही, पृ० २४५।

८. रामनाम बिनु विरथे जगि जनमा।—वही, पृ० २४६।

ध्वनि अनाहत शब्द है।[१] 'सुंन्न समाधि' और सहजभाव का वर्णन भी इनकी वाणी में मिलता है। योगी पुरुष 'निवली कर्म' करते हैं, कुण्डलिनी को प्राणायाम द्वारा जाग्रत करते हैं जिससे उसकी उध्वान्स होती है और साधक को सहस्त्रार चक्र से अनाहत नाद सुन पड़ता है।[२] नानक के अनुसार मंदवासनाओं को जीवित ही मारकर मरना चाहिए जिससे अन्त में पछताना न पड़े।[३] मन के मारने से फिर कभी दुःख नहीं होगा।[४] यदि वैरागी मन सत्य में अनुरक्त हो जाए और इधर-उधर के भटकने को त्यागकर आत्म-स्वरूप में स्थिर हो जाए तो वह ब्रह्म-ज्ञान के महारस को भोगता है।

बाह्याडम्बर का विरोध—गुरु नानक ने भी अन्य संतों की भाँति धर्म के बाह्या-डम्बरों का विरोध किया है परन्तु उनके विरोध में कबीर की कड़वाहट नहीं है। मुसलमान पाँच बार नमाज़ पढ़ते हैं और उनके नाम और समय भिन्न-भिन्न हैं—नमाज़े सुबह, नमाज़े पेशीन, नमाज़े दीगर, नमाजें शाम और नमाज़े खुफ़तन। नानक के अनुसार सत्य बोलना, श्रम की कमाई, परमात्मा से सब का भला माँगना, नीयत साफ करना, मन साफ रखना और परमात्मा का यशगान ही पाँच नमाजें हैं।[५] योगियों के पाखण्ड को उन्होंने तिरस्कार की दृष्टि से देखा है। उनके अनुसार योग की प्राप्ति कथा कहने से नहीं होती है न डंडा लेने या शरीर पर भस्म लगाने से ही होती है। मुद्रा, मुंड मुड़वाना श्रृंगी बजाना व्यर्थ है।[६] माया के बीच में रहते हुए निरंजन हरी से युक्त रहना ही वास्तविक युक्ति है और इसी से योग प्राप्त होता है। शरीर पर भस्म का लेप लगाने से कुछ नहीं होता है। अपने अन्त:करण को स्वच्छ रखना आवश्यक है। पंडित लोग धार्मिक पुस्तकें पढ़कर संध्या करते हैं और गायत्री पाठ करते हैं। गले में माला तथा ललाट पर

---

१. खटु मटु दही मनु वैरागी। सुरति सबदु धुनि अंतरि जागी।
बाजे अनहदु मेरा मनु लीणा। गुरबचनी सचि नामि पतीणा।
—नानक वाणी, डा० जयराम मिश्र, सं० २०१८ वि०, पृ० ५०४।

२. निवली कर्म भुअंगम भाठी रेचक पूरक कुंभ करे।—वही, पृ० ७९३।

३. जीवदिआ मरु मारि न पछोताइऐ।—वही, पृ० १९३।

४. नानक इहु मन मारि मिलु भी फिरि दुखु न होइ।—वही, पृ० ११८।

५. पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ।
चउथी निउति रासि मनु मंजवी सिफतिसनाइ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ।।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ।।—वही, पृ० १७९।

६. जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ जोगु न सिडी वाइए।
अंजन माहि निरंजनि रहिए जोग जगति इव पाइऐ।—वही, पृ० ४४१।

तिलक सजाते हैं ।[1] नानक के अनुसार यह बाह्य कर्म व्यर्थ है, सतगुरु के बिना सत्यमार्ग प्राप्त नहीं हो सकता है। यज्ञ, होम, तप आदि से शरीर को कष्ट देना व्यर्थ है ।[2] इनसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है । मुक्ति के लिए रामनाम आवश्यक है और रामनाम गुरु की कृपा से प्राप्त होता है ।

---

१. पढ़ि पुस्तक संधिआ बादं । सिल पूजसि बगुल समाधं ।
मुखि झूठ विभूखन सार । त्रै पालतिहाल विचार ।
गलि माला तिलक लिलाट । दोइ धोती वसत्र कपाट ।
जो जानसि ब्रह्मं करमं । सभ फोकट निसचै करमं ।
कहु नानक निसचौ ध्यावै । बिन सतिगुर बाट न पावै ।—वही, पृ० ८०२ ।

२. जगन होम पुंन तप पूजा देह दुखीनित दुख सहै ।
राम नाम बिनु मुकति न पावसि मुकुति नामि गुरमखि लहै ।
—संत सुधासार (वृहत्), श्री वियोगी हरि, सं० १९५३ ई०, पृ० २४५ ।

१६वीं और १७वीं शताब्दी के हिन्दी संतकवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा

संत दादूदयाल

अभी तक संत दादूदयाल की जीवनी ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर नहीं लिखी गई है। इनके जीवन के सम्बन्ध में इनकी शिष्य-परम्परा के जो कुछ विवरण उपलब्ध हैं उनमें जनगोपाल की 'जन्मलीला परची' और राघवदास की 'भक्तमाल' प्रमुख हैं। यह मान्यता है कि जनगोपाल ने इस पुस्तक की रचना दादू की मृत्यु के अल्प-कालोपरान्त ही की है।[१] परन्तु इन पुस्तकों में चमत्कारपूर्ण घटनाओं का बाहुल्य और ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव खटकता है। दादू महाविद्यालय, जयपुर के अध्यक्ष स्वामी मंगलदास के अनुसार, दादू पर रामचन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी स्वामी जयरामदास जी और स्वामी धनीराम विरक्त के संकलन भी उपलब्ध हैं।[२]

जीवनकाल—संत दादूदयाल के जीवन-काल में अधिक मतभेद नहीं हैं। जनगोपाल की परची के अनुसार इनका जन्म फाल्गुन सुदी २ सं० १६०१ (सन् १५४४ ई०) तथा मृत्यु जेठ बदी ८ सं० १६६० (सन् १६०३ ई०) पड़ता है। हिन्दी के विद्वान रामचन्द्र शुक्ल,[३] डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी[४] और श्री परशुराम चतुर्वेदी[५] इसी मत से सहमत हैं। यही मत अंग्रेजी विद्वान जेम्स हेस्टिंग[६] और डब्ल्यू जी० ओर[७] को भी मान्य

१. A Sixteenth Century Indian Mystic Dadu And His Followers W. G. Orr. 1947, page 26.

२. परिशिष्ठ में देखिये स्वामी मंगलदास का पत्र लेखिका के नाम।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००६, पृ० ८५।

४. हिन्दी साहित्य, संस्करण १६६४, पृ० ६१।

५. उत्तरी भारत की संत परम्परा, प्र० सं० २००८ वि०, पृ० ४११।

६. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol IV. James Hastings 1959, page 385.

७. A Sixteenth Century Mystic Dadu And His Followers, W. G. Orr, Page 45 1947 page 45.

है। निष्कर्षतः बहुमत के आधार पर दादू का जन्म सन् १५४४ ई० और मृत्यु सन् १६०३ ई० निश्चित होता है।

जन्मस्थान—आचार्य क्षितिमोहन सेन ने दादू के जन्मस्थान के विषय में दो मत उद्धृत किये हैं : एक तो स्व० पं० सुधाकर द्विवेदी जी का मत और द्वितीय दादू पंथियों का। पं० सुधाकर द्विवेदी के अनुसार दादू का जन्म मोची परिवार में काशी में हुआ था।[1] परन्तु दादू पंथ के अनुयायियों का कथन है कि इनका जन्म गुजरात प्रदेश के अहमदाबाद नगर में हुआ था। किंवदन्ती यह है कि दादूदयाल एक छोटे-से बालक के रूप में साबरमती नदी में बहते हुए लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को मिले थे। परन्तु अभी तक अहमदाबाद नगर अथवा उसके निकटवर्ती किसी प्रदेश में दादू दयाल की जन्मभूमि होने का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है। अतः इनकी जन्मभूमि की समस्या के सम्बन्ध में कोई समाधान नहीं है।

जाति—संत दादूदयाल किस जाति के थे ? यह प्रश्न विवादास्पद है। जो दादू-पंथी यह मानते हैं कि दादू साबरमती नदी में बहते हुए छोटे बालक के रूप में लोदीराम ब्राह्मण को मिले थे वे इनकी मूलजाति के सम्बन्ध में मौन हैं और उन्हें ब्राह्मण-द्वारा पोषित मानते हैं। एक किंवदन्ती यह भी है कि दादू उक्त लोदीराम के औरसपुत्र थे और इनकी माता का नाम बसीबाई था। द्वितीय किंवदंती इन्हें मुसलमान धुनिया जाति का भी कहती है। स्व० पं० सुधाकर द्विवेदी इन्हें मोची परिवार में उत्पन्न मानते हैं।[2] आचार्य क्षितिमोहन सेन दादू का प्रथम नाम दाऊद मानते हैं और उनकी पत्नी का नाम हव्वा (ईव) बताते हैं, इनके अनुसार दादू के दो पुत्र गरीबदास और मिस्कीनदास तथा दो पुत्रियाँ नानी बाई और माताबाई थीं।[3] संतदादू की पुत्रियों के नाम निश्चित नहीं हैं क्योंकि अब्बा और सब्बा नाम भी उनका प्रचलित है। दादू और इनके परिवार के नाम हिन्दू नामों से मेल नहीं खाते हैं, वे स्पष्ट इन्हें मुसलमान धुनिया जाति का सिद्ध करने के पोषक हैं। वास्तव में ये मुसलमान थे और इनका वास्तविक नाम दाऊद था। नम्र स्वभाव के कारण इनके नाम के साथ 'दयाल' लगाया गया था और इनका पूरा नाम दादूदयाल प्रचलित हुआ।

गुरु—दादूपंथियों में किंवदन्ती है कि जब दादू केवल ग्यारह वर्ष के थे और अन्य बालकों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे तो एक वृद्ध साधु ने आकर इनसे भिक्षा माँगी। भिक्षा प्राप्त कर साधु ने पान की पीक इनके मुँह में डाल दी। जब दादू दयाल अठारह वर्ष के हुए तब वही साधु द्वितीय बार इनके सामने आये और इनका ध्यान भगवत्-भक्ति की ओर आकृष्ट किया। दादूदयाल ने उक्त साधु का नाम कहीं भी नहीं लिखा है किन्तु इनकी शिष्य-परम्परा में यह साधु वृद्धानन्द या बुड्ढन बाबा कहे जाते हैं। प्रसिद्ध

---

१. Medieval Mysticism of India, K. M. Sen, 1935, page 108.

२. Medieval Mysticism of India, K. M. Sen, 1935, page 108.

३. वही, पृ० १०६।

फ्रांसिसी विद्वान गार्सा द तासी[१] और अंग्रेजी विद्वान एच० एच० विल्सन[२] इस बुड्ढन बाबा का सम्बन्ध कबीर की शिष्य-परम्परा से जोड़ कर इस प्रकार शिष्यों का क्रम-निर्देश करते हैं—कबीर→कमाल→जमाल→विमल→बुड्ढन→दादू। इसी मत की पुष्टि श्री परशुराम चतुर्वेदी भी करते हैं।[3]

अकबर के काल में सांभर में एक मुसलमान संत शेख बुड्ढन नामक बताये जाते हैं जो अब्दुल कादिरी जीलानी-द्वारा प्रवर्तित सूफियों के कादिरी सम्प्रदाय के थे।[४] इसी शेख बुड्ढन के साथ दादू का ऐतिहासिक सम्बन्ध भी स्थापित किया जाता है।[५] परन्तु उक्त साधु के नाम का दादूदयाल ने स्वयं कहीं भी संकेत नहीं किया है। दादू की शिष्य परम्परा में उसे वृद्धानंद या बुड्ढन बाबा कहा जाता है। संत दादूदयाल ने अपने पूर्ववर्ती संतों का नाम श्रद्धा से लिया है।[६]

दादूदयाल शिक्षित थे या नहीं, यह प्रश्न भी विवादास्पद है परन्तु इनकी रचनाओं से प्रकट होता है कि इनका आध्यात्मिक अनुभव गहन था।

देश-भ्रमण—दादूपंथियों में यह मान्यता है कि अठारह वर्ष की अवस्था में दादूदयाल को पुन: गुरु के दर्शन हुए और उन्हें प्रेरणा मिली कि जिस सत्य की प्राप्ति उन्हें हुई वह सत्य जनता को भी प्राप्त हो। इसी समय से दादूदयाल ने भगवद्-चिन्तन में अपना ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ किया और उनके दिवस साधु-सन्तों की संगति में व्यतीत होने लगे। अन्त में उन्होंने अपना घर छोड़ा और छ: वर्ष तक वे गुजरात और राजपूताना के निकटवर्ती प्रदेशों में रहे। इन्होंने काशी, बिहार और बंगाल देश का भी पर्यटन किया। पचीस वर्ष की अवस्था में ये सांभर पहुँचे और वहीं भवानीदास और हरिदास इनके शिष्य बन गये। सांभर में दस वर्ष व्यतीत करने पर ये आमेर चले गये जहाँ मुगल सम्राट अकबर की राजपूत पत्नी जोधाबाई के भाई राजा भगवान दास ने इनका स्वागत किया।[७] यहाँ आते ही इनकी ख्याति दिल्ली नगर तक फैल गई और

---

१. हिंदुई साहित्य का इतिहास, १९५३ संस्करण, पृ० १०७।
२. Religious Sect of the Hindus, H.H. Wilson. 1958, page 57.
३. भारतीय साहित्य (पत्रिका) अप्रैल १९६३, अंक २, पृ० १२।
४. A Sixteenth Century Indian Mystic Dadu And His Followers, W. G. Orr, 1947, page 54.
५. A Sixteenth Century Indian Mystic Dadu And His Followers. W. G. Orr. 1947, page 56.
६. नामदेव कबीर जुलाहो, मन रैदास तिरै।
दादू बेगि बार नहिं लागै, हरि सौं सबै सरै।।
—संत सुधासार (वृहत्) श्री वियोगी हरि, १९५३ ई० संस्करण, पृ० ४४१
७. A Sixteenth Century Indian Mystic Dadu And His Followers., W. G. Orr, 1947. page 30.

इनकी प्रशंसा मुगल सम्राट् अकबर तक पहुँच गई।

अकबर से भेंट—पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रेम और भक्ति ने भारत की जनता के हृदय में घर कर लिया था। भारतवासियों को कबीर, गुरुनानक और चैतन्य महाप्रभु मिल चुके थे, सम्राट् अकबर की भी आध्यात्मिक महापुरुषों के साथ सत्संग करने की बड़ी लालसा रहती थी। वे जीवन के रहस्य को जानना चाहते थे तथा अपनी आत्मा और जनता की शान्ति की कामना करने वाले थे। वे सत्यान्वेषक धार्मिक आन्दोलनों और सूफियों की कृतियों से अत्यधिक प्रभावित थे। अपने शासन के आरम्भिक काल में उन्होंने मन्दिरों की यात्राएँ की और मस्जिदों कीं निर्माण करवाया। वे हिन्दुओं के विश्वदेवतावादी सिद्धान्त (Pantheistic doctrine) से भी अत्यधिक प्रभावित थे।[१] उन्होंने सांस्कृतिक एकता के लिए अनेक प्रयत्न किये थे और फतेहपुर सीकरी में एक 'इबादतखाना' सन् १५७५ में निर्मित करवाया था जहाँ धार्मिक वार्तालाप हुआ करते थे।[२] अकबर ने अपना दूत भेजकर दादूदयाल के साथ मिलने की तिथि निश्चित कर ली थी और उपयुक्त स्थान सीकरी समझा। तदनुसार सन् १५८४ ई० में इनकी भेंट हुई। सम्राट् अकबर का फतेहपुर सीकरी में फरवरी सन् १५८४ से अगस्त सन् १५८५ तक रहना निश्चित है।[3] यह भी प्रसिद्ध है कि दादूदयाल की भेंट से प्रभावित होकर ही सम्राट् ने अपनी मुद्राओं पर एक ओर 'अल्लाह अकबर' और दूसरी ओर 'जल्लज लालुहू' अंकित करवाया था।

दादूदयाल की अब्दुर्रहीम खाँ खानखाना (सं० १६३३-१७०३) से भी भेंट होने की जनश्रुति प्रसिद्ध है परन्तु इसका कोई ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता।[४]

द्वितीय यात्रा—संत दादूदयाल के जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग आमेर में ही व्यतीत हुआ है। सांभर में जिन विविध रचनाओं का इन्होंने आरम्भ किया था उनका बहुत बड़ा अंश इन्होंने आमेर में पूर्ण किया। द्वितीय यात्रा में उन्होंने द्यौसा मारवाड़, बीकानेर और कल्यानपुर आदि स्थानों का पर्यटन किया। दादू-पंथियों में यह मान्यता है कि ये द्यौसा में जब प्रथम बार गये थे तो इन्होंने एक वैश्य-दंपति को पुत्रोत्पत्ति का आशीर्वाद दिया था। अब द्वितीय बार द्यौसा-यात्रा के समय उनका पुत्र सात वर्ष का हो चुका था। उस वैश्यदंपति ने अपने पुत्र को इस बार दादूदयाल के चरणों पर श्रद्धाभाव के साथ डाला और उस पर प्रसन्न होने की प्रार्थना की। दादूदयाल ने उस शिशु के सौन्दर्य की प्रशंसा करके उसे होनहार बालक घोषित किया था, यही बालक

---

१. Akbar the Great Moghul, A. Smith, 1962, page 253.

२. A Short History of the Indian People, Dr. Tarachand, 1953, page 180.

३. A Sixteenth Century Indian Mystic Dadu And His Followers. W. G. Orr. 1947, page 56.

४. उत्तरी भारत की संत परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, सं० २००८ वि०, पृ० ४१८

सुन्दरदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। द्यौसा से आकर दादूदयाल नराना की एक गुफा में निवास करने लगे और वहीं इनका देहान्त हो गया। सांभर के निकट नराने की गुफा में उनके बाल, तूंबा, चौला और खड़ाऊं अभी तक सुरक्षित हैं, जहां उनका दर्शन किया जाता है।

रचनाएँ—दादूदयाल की कृति का कोई प्रामाणिक संग्रह अभी प्रस्तुत नहीं हुआ। दादू पंथियों में यह मान्यता है कि इन्होंने बीस सहस्र पदों की रचना की है। इनके शिष्य संतदास और जगन्नाथ दास ने 'हरडे वाणी' नामक एक संग्रह इनकी रचनाओं का तैयार किया था। इनके एक और शिष्य रज्जब जी ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'अंगवधू' नाम से किया है और उसे ३७ भिन्न प्रकरणों में विभक्त किया है। स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदी ने २६२३ साखियों और ४४५ पदों का संग्रह किया है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त पं० चंडिका प्रसाद त्रिपाठी ने भी एक संग्रह अजमेर से प्रकाशित किया है : इसमें २६५२ साखियाँ और ४४५ पदों को २७ रागों के अन्तर्गत विभाजित किया है। प्रयाग के बेलवेडियर प्रेस की ओर से भी दादूदयाल की रचनाओं का एक संस्करण प्रकाशित हुआ है परन्तु पाठालोचन के सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित दादूदयाल की वाणी का अभी तक अभाव ही है।

दादूपंथ--संतदादूदयाल ने एक अलग पंथ का निर्माण किया जो दादूपंथ के नाम से प्रसिद्ध है। दादूपंथ दो विभागों में विभाजित है : एक में वे साधु हैं जो संसार से विरक्त हैं और गेरुए वस्त्र धारण करते हैं, द्वितीय श्रेणी के साधु सफेद वस्त्र धारण करते हैं और व्यापार करते हैं।[1] दादू स्वयं गृहस्थ थे, वे जीवन के प्रश्नों पर समन्वयात्मक रूप से विचार करते थे और जीवन के सम्बन्ध में गंभीर चिन्तन करते थे। इन्होंने आध्यात्मिक सत्संग में व्यावहारिक बातों की उपेक्षा नहीं की है। इनका 'ब्रह्मसंप्रदाय' ही आगे 'परब्रह्म सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है और आजतक यही सम्प्रदाय 'दादूपंथ' के नाम से प्रसिद्ध है।

दादू की शिष्य-परम्परा—संत दादू दयाल का व्यक्तित्व और स्वभाव कोमल और आकर्षक होने के फलस्वरूप इनकी सत्संगति का जनता पर अत्यधिक प्रभाव था, और लोग इनको गुरु स्वीकार कर आजीवन इनके उपदेशों पर आचरण करते थे। दादूपंथियों में यह मान्यता है कि इनके एक सौ बावन शिष्य थे जिनमें केवल बावन शिष्यों ने 'गुरुद्वारों' की स्थापना की है। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल इनके शिष्यों की संख्या एक सौ आठ बताते हैं और उनमें संत सुन्दरदास को सबसे प्रसिद्ध मानते हैं।[2]

अभी तक दादूदयाल के शिष्यों की कोई प्रामाणिक सूची उपलब्ध नहीं है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, चतुर्थ संस्करण १९५८ ई०, पृ० २७४

२. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, संस्करण २००७ वि०, पृ० १३१

राघौदास की 'भक्तमाल' के आधार पर श्री डब्ल्यू० जी० ओर ने दादूदयाल के बावन शिष्यों की सूची दी है[1] जिनमें गरीबदास, रज्जब जी, सुन्दरदास, प्रागदास, बनवारीदास, संतदास, जगन्नाथ आदि प्रमुख हैं।

संतदादू की दार्शनिक विचारधारा : सिद्धान्त पक्ष—

संतदादू की कविताओं में वेदान्तदर्शन की स्पष्ट झलक है। हिन्दुओं के पुनर्जन्मवाद, मायावाद और कर्मवाद उनकी वाणी में मुखरित हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से दादू रामानन्द की शिष्य-परम्परा में आते हैं अतः भक्तों की तन्मयता और साधना की झलक के साथ सांख्यदर्शन का भी समन्वय इनकी वाणी में मिलता है।

निर्गुण ब्रह्म—संत दादू ने ब्रह्म को निर्गुण, अमर और अपार माना है। यही निर्गुण ब्रह्म संतों का प्राणाधार है।[2] उस परमात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं है, उसी के अनेक नाम हैं। वही राम है, रहीम और अल्ला है, वही कृपालु, सृष्टिकर्ता और पवित्र है। वही नित्य, सर्वव्यापक, ज्योतिस्वरूप और अव्यक्त है।[3] उस अलक्ष्य परमात्मा का रहस्य सिद्ध, साधक, योगी और यति कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता है।[4] वह ईश्वर गुण और अवगुण की परिधि से परे है।[5] इसी ब्रह्म को अन्य सन्तों की भांति दादू ने भी पुरुष रूप में अभिव्यक्त किया है और जीवात्माओं को नारी कहा है। ईश्वर एक है और जीवात्माएँ अनेक।[6] वही हमारा पीव है, वही ज्योतिस्वरूप है और उसी का प्रकाश चहुँ ओर वितरित है।[7] ब्रह्म के बिना आत्मा विरहिनी हैं, अनाथ है वह कैसे

---

१. A Sixteenth Century Indian Mystic Dadu and His Followers, W. G. Orr, 1947, Page 234-235

२. निर्गुण नाउं फल अगम अपार, संत न जीवनि प्राण अधार ॥
—संत सुधासार वृहत्, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृ० ४३७।

३. अलख इलाही एकतूं, तूं ही राम रहीम।
तू ही मालिक मोहना, केसौ नांउ करीम।
सांई सिरजनहार तूं, तूं हटी हाजरी आप।
रमिता राजिक एकतू, तूं सारंग सुबहान।
—संत सुधासार, वृहत्, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृ० ४३८।

४. सिध साधक जोगी जती, सती सबै सुखदेव।
पीवत अन्त न आवई, ऐसा अलख अमेव।—वही, पृ० ४३२।

५. गुण औगुण थें रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥
—हिन्दी के जनपद संत, काका साहेब कालेलकर, १९६३ ई०, पृ० ६३।

६. पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग।—वही, पृ० ६४।

७. सोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर जोति उजारा।
मीठा प्राण पियारा, तूं है पीव हमारा।
—संत सुधासार (वृहत्), श्री वियोगी हरि, सं० १९५४, पृ० ४४७।

जीवित रह सकती है[1] आत्मा भी आनन्दरूप है जो सदैव अविनाशी ब्रह्म के साथ रहती है।[2] घट-घट में वही पदार्थ व्याप्त है, प्रयत्न करने पर भी वह अगम अगोचर रहता है।[3] इस परब्रह्म का साक्षात्कार पाने के लिए केवल एक वस्तु की आवश्यकता है—अहं का त्याग, क्योंकि जहाँ राम है वहाँ 'मैं' नहीं रह सकता, जहाँ 'मैं' (अहंत्व) है वहाँ राम नहीं है। यह तो लघु महल है। इसमें ये दोनों नहीं समा सकते हैं।[4]

दादू ने भी ब्रह्म को 'राम' नाम ही दिया है और उसकी ज्योति से जगत् को प्रकाशमान माना है, जिस शरीर में राम-रूपी दीपक का प्रकाश है उस शरीर में अन्धकार कैसे रह सकता है।[5] संत दादू ने कहीं-कहीं ब्रह्म और जीव का स्वामी-सेवक सम्बन्ध भी माना है।[6] ब्रह्म जीव का स्वामी है और जीव ब्रह्म का सेवक है, इनमें अभिन्नत्व है। जीव अपना तन-मन ईश्वर को अर्पण कर आत्म-प्रकाश प्राप्त करता है।[7] और अपने को ब्रह्ममय पाता है। इस आध्यात्मिक अनुभूति को दादू ने अन्य संतों की भाँति ही अवर्णनीय माना है और गूंगे का गुड़ कहा है।[8] रामरसायन का स्वाद व्यक्त नहीं किया जा सकता है।[9] प्रेमभक्ति से ही उसके साथ एकाकार हो सकते हैं। रामभक्ति और ईश्वर-प्रेम से रहित जीवन व्यर्थ है।[10]

जीवात्मा—आत्मा की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है। जो सम्बन्ध तरुवर और उसके फल-पुष्प का है वही ब्रह्म और जीव का है। यदि ईश्वर-रूपी माली सींचने की

---

१. तुम्ह बिन नाथ अनाथ विरहनि क्यूं रहै हो—वही, पृ० ४४७।
२. दादू आनन्द आत्मा, अविनासी कै साथ।—वही, पृ० ४५६।
३. अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन।
दादू छाना क्यों टहैं, जिस घटि राम रतन॥—वही, पृ० ४५६।
४. जहाँ राम तहं मैं नहीं, मैं तह नाही राम।
दादू महल बारीक है, द्वै कौं नाही ठाम।—वही, पृ० ४६२।
५. दादू जिहिं घटि दीपक राम का, तिहिं घटि तिमिर न होई।
उस उजियारे जोति के जग सब देखै सोई॥—वही, पृ० ४६४।
६. तूं साहिब मैं सेवग तेरा—वही, पृ० ४४६।
७. राम तू मोरा हूँ तोरा पारन परत निहोरा
— — — —
तन मन तुम्है कौं देबा, तेज पुंज हम लेबा।—वही, पृ० ४४६।
८. केते पारिख पचि मुए कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गुंगे का गुड़ खाई।—वही, पृ० ४६७।
९. गुंगे का गुड़ कहूं, मन जानत है खाई।
त्यौं रामरसाइण पीवतां सो सुख का कह्या न जाइ॥—वही, पृ० ४६८।
१०. कोटि बरस क्या जीवणा, अमर भये क्या होइ।
प्रेम भगति रस राम बिन, का दादू जीवनि सोइ॥—वही, पृ० ४७२।

ओर ध्यान नहीं देगा तो यह आत्मा-रूपी बेलि मुरझा जायेगी।[1] जीव परमात्मा से वियुक्त होकर संसार में आता है, जीव का मन चंचल होता है और निशिदिन वह व्याकुल फिरता है।[2] जीव अज्ञानी है, असत्य-भ्रम में भटकता फिरता है।[3] और विषय-विकारों में पड़कर अपना अमूल्य जन्म व्यर्थ गंवाता है। भला इस जीव का संसार-सागर से पार होना कैसे संभव है ? न तो यह ईश्वर का नाम स्मरण करता है, न ध्यान करता है, ज्ञान और समाधि से भी मुंह मोड़ता है, भावभगति से भी यह कायर जीव कोसों दूर भागता है।[4] मानव-जन्म अंजलि के जल की भाँति है जो समाप्त होता जाता है, समय व्यतीत होता जाता है, सूर्य और चन्द्रमा के घटने-बढ़ने से यही संकेत प्राप्त होता है कि मानव-जीवन भी नश्वर है।[5] अतः ज्ञान के प्रकाश से इस आत्मतत्त्व की रक्षा करनी चाहिए। मानव की काया सुन्दर होती है परन्तु इस सुन्दर काया को नष्ट होने में क्षण-मात्र भी नहीं लगता है।[6] मनुष्य अज्ञान के कारण सत्यता को नहीं प्राप्त कर सकता है। वास्तव में परमात्मा एक है, वही सब में व्याप्त है।[7] द्वैतभावना व्यर्थ है। घट-घट में राम हैं।[8]

जगत्—भारतीय दर्शन के अनुसार जगत् मिथ्या है, नश्वर है फिर भी अज्ञान-भ्रम के कारण हमें यह सत्य दृष्टिगोचर होता है। दादू का जगत् के प्रति भी यही दृष्टि-कोण है। जैसे निद्रावस्था में हम स्वप्न देखते हैं, उस समय वे स्वप्न हमें सत्य प्रतीत होते हैं और जागृतावस्था में असत्य। यही स्थिति जगत् की भी है। अज्ञान के अंधकार के कारण हम इसकी सत्यता मानते हैं परन्तु यह मृगतृष्णा की भाँति असत्य है।[9] संसार

---

१. जे साहिब सीचै नहीं, तो बेली कुमिलाइ।
दादू सीचै सांइयाँ, तो बेली बधती जाइ॥—वही, पृ० ५००

२. कैसै जीविये रे सांई संग न पास।
चंचल मन निहचल नहीं, निसदिन फिरै उदास॥—वही, पृ० ४३०

३. दादू जीव अयानां, झूठे भरमि भुलाना।—वही, पृ० ४३१।

४. नाव नांही खेव नांही, राम विमुख मरिये।
ग्यान नाही ध्यान नांही, लै समाधि नांही॥
— — — —
भाव नांही भगति नांही काइर जीव मेरा।—वही, पृ० ४३२-४३३।

५. जागि रे रैंणि विहाणीं, जाइ जन्म अंजुली कौ पाणीं।
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जै दिन जाइ सौ बहुरिन आवै।
सूरिज चंद कहै समझाइ, दिन दिन आव घटती जाइ॥—वही, पृ० ४३५

६. आज कालि चलि जावै देही ऐसी सुन्दर काया।—वही, पृ० ४३९।

७. दादू एकै आतमा दूजा कोई नाहीं।—वही, पृ० ४६५।

८. घटि घटि आतम राम।—वही, पृ० ४६५।

९. सोवत सुपिनां होई, जागै थैं नहिं कोई।
मृगतृष्णां जल जैसा, चेति देखि जगु ऐसा॥—वही, पृ० ४३१।

को देखकर भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए यह तो सेंबल पुष्प की नाई है।[१] संसार सुख और दु:ख की परिधि से बँधा हुआ है।[२] इस संसार का मर्म कोई नहीं जान सकता है।[३] अतः यहाँ माया और मोह के वश में नहीं होना चाहिए। संसार से निवृत्त होना आवश्यक है।[४] संसार के प्राणी पाषाण की मूर्ति बनाकर ब्रह्म का रूप उसे देते हैं और इसी प्रकार अपना समय व्यतीत करते हैं। सत्यता का अन्वेषण नहीं होता है।[५] इस सत्यता को केवल दो ही रतन 'संत' और 'सांई' प्राप्त किये हैं। ये रतन अमूल्य हैं जिनको तोलना कठिन है।[६]

माया—माया की असत्यता भारतीय दर्शन की विशेषता है। दादू ने भी माया का विरोध किया। माया का सुख अल्प समय का होता है परन्तु इसी पर सारा संसार गर्व करता है जब राजधन(परमतत्व)का साक्षात्कार होता है। तो माया का अस्तित्व ही समाप्त होता है।[७] मन को माया में नहीं लगाना चाहिए, नहीं तो इस खोटी धनुष-विद्या से व्यर्थ में पछताना पड़ेगा।[८] मायारस के आस्वादन से मन-रूपी मक्खन भी पाषाण बन जाता है।[९] माया सर्पिणी है जो जीव के आगे-पीछे घूम रही है और जीव को नष्ट करने पर तुली हुई है।[१०] माया के कारण संसार के प्राणी मृत्यु प्राप्त करते हैं।[११] काल, कनक और कामिनी इसी के तीन रूप हैं।[१२] यही समस्त संसार को अपने वश में किये बैठी है, केवल संतों के आगे इसका बस नहीं चलता है अतः उनकी चेरी बनी हुई है।[१३] जिस

---

१. यहु संसार देखि जिनि भूलै, सब ही सेंबल फूल ।।—वही, पृ० ४३५।

२. सुख दुख दोऊ भरम बिचारा, इन सूं बंध्या है जग सारा।—वही, पृ० ४३९।

३. इस दुनिया का मर्म न कोई लहै।—वही, पृ० ४४५।

४. माया मोह न बंधियै, तजियै संसारा।—वही, पृ० ४४२।

५. मूरति घड़ी पखाण की, कीया सिरजन हार।
दादू साच सूझै नहीं, यूं डूबा संसार ।।—वही, पृ० ४७७।

६. दादू इस संसार मैं, ये द्वै रतन अमोल।
इक सांई अरु संतजन, इनका मोल न तोल ।।—वही, पृ० ४८५।

७. दादू माया का सुख पंचदिन, गर्ब्यौं कहा गंवार।
सुपिनैं पायौ राजधन, जात न लागै बार ।।—वही, पृ० ४७५।

८. मन की मूठि न मांडि। माया के नीसाण।
पाछैं ही पछिताहुगे, दादू खोटे बाण ।।—वही, पृ० ४७५।

९. मांखन मन पाहण भया, मायारस पीया।—वही, पृ० ४७५।

१०. सांपणि इक सब जीव कौं, आगे पीछे खाइ।—वही, पृ० ४७६।

११. दादू माया कारणि जग मरै।—वही, पृ० ४७६।

१२. काल कनक अरु कामिनी, परहरि, इनका अंग।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यों दीपक जोति पतंग।—वही, पृ० ४७६।

१३. दादू माया चेरी संत की, दासी उस दरबारि।
ठकुरानी सब जगत् की तीन्यू लोक मंझारि ।।—वही, पृ० ४७७।

शरीर में ब्रह्मज्योति का प्रकाश अभी प्रकट न हुआ हो वह माया से नष्ट होता है। परन्तु ब्रह्म-ज्योति के प्रकाश के आगे माया क्षण मात्र में नष्ट हो जाती है।[1] माया ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी नहीं छोड़ा है, कनक और कामिनी के रूप में इसने सबको डस लिया है।[2] यह मधुरभाषिणी है।[3] यह माया एक बेल है जिस पर विषय-विकारों के फल लगते हैं।[4] जिन पर कभी नहीं भटकना चाहिए।

साधना-पक्ष—गुरु ही साधक का साध्य से साक्षात्कार करा देता है। दादू के अनुसार भी गुरु ही अगम, अगाध की प्राप्ति करा सकता है।[5] अतः गुरु के बताये हुए मार्ग पर चलकर गुरु द्वारा उपदिष्ट आत्मज्ञान से अपना आत्मज्ञान बढ़ाना चाहिए।[6] साधना से शारीरिक कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए, सतगुरु के उपदेश से ईश्वर-प्राप्ति स्वयं ही होती है।[7] मानव-शरीर पर मायाकृत द्वैत-भाव का आवरण सदैव रहता है परन्तु गुरु-कृपा से वह क्षणमात्र में मिट जाता है।[8] गुरु के बिना मानव विषय-विकारों के हलाहल का ही आस्वादन करता है परन्तु गुरु-कृपा से वह अमृत-रूपी महारस का सेवन करने लगता है।[9] गुरु ग्वाल की भांति शिष्य-रूपी गाय की रक्षा कर ईश्वर-रूपी मालिक को सौंपता है,[10] जो मनुष्य अपने आप जगत्-जाल में उलझ रहे हैं, उनको सारा जगत् उलझा

---

१. दादू जेहि घट ब्रह्म न प्रगटै, तहं माया मंगल गाइ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम बिलाइ॥—वही, पृ० ४७७।

२. माया सांपणि सब डसै, कनक कांमणी होइ।
ब्रह्मा बिश्न महेस लौं, दादू बचै न कोइ॥—वही, पृ० ४७८।

३. माया मीठी बोलनी।
—हिन्दी के जनपद संत, काकासाहेब कालेलकर, सन् १९६३ ई०, पृ० ६७।

४. माया बेलि विषै फल लागे, तापर भूलि न भाई।
जब लग प्राण प्यउ है नीका, तब लग ताहि जिनि भूलै।—वही, पृ० ७२।

५. दादू गैब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तकि मेरे कर धर्‌या, देख्य अगम अगाध॥
—संतसुधासार (वृहत्) श्री वियोगीहरि, सन् १९५३ ई०, पृ० ४४९

६. दीवै दीवा कीजिये, गुरमुख मारगि जाइ।
दादू अपनेपीवका, दरसन देखै आइ॥—वही, पृ० ४५०।

७. ना घरि रह्या न बनि गया, ना कुछ किया कलेस।
दादू मन ही मन मिल्या, सतगुर के उपदेस॥—वही, पृ० ४५०।

८. दादू पड़दा भरम का रह्या सकल घटि छाइ।
गुर गोव्यंद कृपा करै, तौ सहजै ही मिटि जाइ॥—वही, पृ० ४५०।

९. घरि घरि घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ॥
दादू गुर के ग्यान बिन, विखै हलाहल खाइ॥—वही, पृ० ४५१।

१०. सिख गोरु गुर ग्वाल है, रख्या करि करि लेइ।
दादू राखै जतनकरि, आणि धणी कौं देइ॥—वही, पृ० ४५२।

हुआ ही दीखता है, जो स्वरूप-दर्शन द्वारा सुलझ गये हैं अर्थात् जाल से मुक्त हुए हैं उन्हें सब कुछ सुलझा-सुलझा ही दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार का महाज्ञान अथवा महा-मनन ही 'गुरु ज्ञान विचार' है।[1] सतगुरु संसार-सागर में डूबते हुए प्राणियों का उद्धार करके उन्हें पार लगाता है।[2] संत दादू भी उस गुरु की बलिहारी जाते हैं जिसने उन्हें अमर, अलक्ष्य ईश्वर के पास पहुँचाया। सतगुरु ही परमजाप की प्रेरणा भी देता है।[3] सतगुरु के मिलने से भक्ति और मुक्ति प्राप्त होती है और सहज में ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है।[4]

नामस्मरण—अन्य संतों की भांति दादूदयाल ने भी नामस्मरण को महत्त्व दिया है। रामनाम-स्मरण से सभी शारीरिक मैल छट जाता है, रामनाम ही समस्त सम्पत्ति का सारतत्त्व है, रामनाम से ही संसार-सागर को पार किया जा सकता है।[5] इसी कारण संत दादूदयाल राम-नाम की बलि जाते हैं।[6] कभी हृदय से ईश्वर के नाम को बिसारना नहीं चाहिए, ईश्वर की मूर्ति तो मन में रहती है परन्तु हरि-नाम श्वास-प्रश्वास में रहता है।[7] यदि रामनाम के अतिरिक्त और कुछ जीव के मुख से निकले तो उसे तीनों लोकों में कहीं स्थान नहीं मिलेगा।[8] दादू के अनुसार रामनाम एक औषधि[9] है जिससे करोड़ों

---

१. दादू आपा उरझे उरझिया, दीसै सब संसार।
आपा सुरझे सुरझिया, यहु गुर ग्यान बिचार।।—वही, पृ० ४५२।

२. सतगुरु काढ़े केस गहि, डूबत रहि संसार।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार।।
—हिन्दी के जनपद संत, काका साहेब कालेलकर, सन् १९६३ ई, पृ० ५१।

३. सतगुरु माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ।
बिन हाथों निसदिन जपै, परम जाप यूं होइ।।—वही, पृष्ठ ५१।

४. सतगुरु मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भण्डार,
दादू सहजे देखिये, साहिब का दीदार।।—वही, पृष्ठ ५१।

५. राम नाम जिनि छाड़ै कोई, राम कहत जन निर्मल होइ।।
राम कहत सुख संपत्ति सार, राम नमि तिरि लघै पार।।
—संत सुधासार (वृहत) श्री वियोगी हरि, सं० १९५३, पृष्ठ ४२८।

६. तेरे नाऊं की बलि जाऊँ, जहां रहौं जिस ठाऊँ।—वही, पृष्ठ ४४६।

७. दादू नीका नांव है, हरि हिरदै न बिसारि।
मूरति मन माहे बसै, सासै सास संभारि।।—वही, पृष्ठ ४५३।

८. राम तुम्हारे नांव बिनजे मुख निकसै और।
तौ इस अपराधी जीव कौ, तीन लोक तक ठौर।।—वही, पृष्ठ ४५४।

९. दादू रामनाम निज औषदी, काटै कटि बिकार।
विषय व्याधि थै ऊबरै, काया कंचन सार।—वही, पृष्ठ ४५४।

विषय-विकार नष्ट होकर जीव का उद्धार होता है। इसी में आनन्द समाया रहता है।[1] जब जीव रामनाम को भूल जाता है तो प्राण और शरीर नष्ट होते हैं, समस्त सुख समाप्त होता है।[2]

बाह्याडम्बरों का विरोध—दादूदयाल ने साधना के बाह्याडम्बरों का अत्यधिक विरोध किया है। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को फटकारा है। हिन्दू राम की साधना करते हैं और मुसलमान अल्लाह की परन्तु रहस्य से दोनों अनभिज्ञ हैं। इसी प्रकार चाहे शेख हो चाहे स्वामी, संसार के मर्म को नहीं जानते हैं।[3] हिन्दू और मुसलमान यह नहीं जानते हैं कि दोनों का ईश्वर एक है।[4] ज्ञान, ध्यान, जप, तप, योग आदि सब को छोड़कर परमात्मा के विरह में अपने को अनुभव करना चाहिए।[5]

जाति-पांति के खण्डन के साथ- साथदादूदयालने मूर्तिपूजा का भी खण्डन किया उनके अनुसार जिन्होंने कंकर-पत्थर जोड़कर मन्दिरों का निर्माण किया है उन्होंने तो है। अपना मूल ही गंवाया है क्योंकि परब्रह्म हमारे अन्तःकरण में ही निवास करता है।[6] अन्यत्र खोजने का प्रयोजन व्यर्थ है, तीर्थ-व्रत, तीर्थयात्राएँ व्यर्थ हैं। कोई द्वारिका जाता है तो कोई काशी और मथुरा की यात्रा करता है परन्तु काया में स्थित ब्रह्म को कोई नहीं पहचानता है।[7] वास्तव में पंडित, ज्ञानी, साधक, काजी, मुल्ला, मोमिन और मुसलमान वही है जो ईश्वर के प्रेम में अनुरक्त हो।[8] हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं है। प्रत्येक शरीर में एक ही आत्मा का निवास है।[9] वही ब्रह्म जीव का गुरु है, मालिक है

---

१. सुमरिण माहै सुख घणा, छाड़ि देहु बकवाद।—वही, पृष्ठ ४५४।

२. दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही हांना होइ।
प्राण पिंड सर्वस गया, सुखी न देख्या कोइ॥—वही, पृष्ठ ४५७।

३. कोई स्वामी कोई सेख कहै, इस दुनियां का मर्म न कोई लहै।
कोई राम कोई अलह सुनावै, मुनि अलह राम का भेद न पावै।—वही, पृष्ठ ४४५।

४. हिन्दू तुरक न जाणौं दोइ।
सांई सबिनि का सोई है रे और न दूजा देखौ कोई॥ वही, पृष्ठ ४४५।

५. ग्यान ध्यान सब छाड़िदे, जप तप साधन जोग।
दादू बिरहा लै रहै, छाड़ि सकल रस भोग। वही, पृ० ४५६।

६. दादू जिन कांकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गंवाई।
अलख देव अंतरि बसै क्या दूजी जागह जाइ॥ वही, पृ० ४८१

७. दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जांहि।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही मांहि। वही, पृ० ४८१

८. सोइ जन साचे सौ सती, सोई साधक सूजान।
सोइ ग्यानी सोइ पँडित, जे राते भगवान।
सोइ काजी, सोइ मुल्ला सोई मोमिन मूसलमान।
सोइ काजी, सयाने सब भले जे राते रहिमान।—वही, पृ० ४८१

९. हम सब देख्या सौधिकरि दूजा नाही आन।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिन्दु मुसलमान।—वही, पृ० ४६५

और वही ज्ञान, ध्यान और देवता है, वही पूजा, अर्चना और तीर्थयात्रा है। वही शील, सन्तोष, मुक्ति और मोक्ष है।[१] उसी ब्रह्म का साक्षात्कार करना आवश्यक है।

आध्यात्मिक प्रेम और साधु-संगति—ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए संत दादू-दयाल ने आध्यात्मिक प्रेम और साधुसंगति को महत्त्व दिया है। उस ब्रह्म का प्रेमरस अत्यधिक मीठा होता है, उसी का आस्वादन करना चाहिए, जो सदैव उस प्रेम रस को पीता है वही अविनाशी हो जाता है। यही रस मुनि, साधु, सन्त और ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी पीते हैं। इसी का आस्वादन नामदेव, पीपा, रैदास और कबीर दास ने भी[२] किया है, इसी प्रेम-रस में जीव अनुरक्त होता है[३] हरिरस का आस्वादन करते-करते कभी अरुचि नहीं होती है पीकर नित नूतन प्यास का अनुभव जो करे वही वास्तव में इस रस का उपभोग करने वाला है।[४]

दादू के अनुसार साधु की संगति करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है और शरीर प्रेम से अनुरक्त होता है।[५] साधु के परिचय से ही हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। संतजन अपना स्वार्थ नहीं देखते, वे सदैव परोपकारी रहते हैं और जीवों को रामरस का आस्वादन कराते हैं।[६] दादू भी संतों को ईश्वर के समान अमूल्य रत्न मानते हैं।[७]

---

१. गोव्यंद गोसांई तुम्हें अम्हंचा गुरु तुम्हें अम्हंचा ग्यान।
तुम्हें अम्हंचा देव, तुम्हें अम्हंचा ध्यान।
तुम्हें अम्हचा पूजा, तुम्हें अम्हंचा पाती।
तुम्हें अम्हचा तीर्थ, तुम्हें अम्हंचा जाती।
तुम्हें अम्हंचा सील, तुम्हें अम्हंचा सन्तोख।
तुम्हें अम्हंची मुकति, तुम्हें अम्हंचा मोख।—वही, पृ० ४६९।

२. राम रस मीठा रे, कोई पीवै साध सुजाण।
सदा रस पीवै प्रेम सौ सौ अविनासी प्रांण।
— —
इहि रसि राते नामदेव पीपा अरु रैदास।
पिवत कबीरा ना थक्या अजहं प्रेम पियास॥—वही, पृ० ४३२।

३. प्रेममगन मतिवाला माता, रंगि तुम्हारे दादू राता। वही, पृ० ४३३

४. दादू हरिरस पीवतां, कबहूं अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ॥—वही, पृ० ४६४।

५. दादू नेड़ापरमपद, करि साधू का संग।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागै रंग।—वही, पृ० ४८२।

६. पर उपगारी सन्त सब आये इहि कलि माँहि।
पिवै पिलावै रामरस, आप सवारथ नाहि॥—वही, पृ० ४८३।

७. दादू इस संसार मैं ये द्वै रतन अमोल।
इक सांई अरु संतजन इनका मोल न तोल॥—वही, पृ० ४८४।

सन्त रज्जब जी

हिन्दी के निर्गुण संतों में नामदेव, कबीर, नानक आदि को छोड़कर अन्य सन्तों पर अल्प सामग्री ही उपलब्ध होती है। इसका यह कारण नहीं कि उन संतों का काव्य महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु उनकी ओर ध्यान कम गया है। संत रज्जबदास भी इसी श्रेणी के संतों में आते हैं। हिन्दी जगत् रज्जब जी से प्रथमबार तब परिचित हुआ जब मिश्र-बन्धुओं द्वारा लिखा गया हिन्दी साहित्य का विवरणात्मक इतिहास 'मिश्रबन्धु विनोद' नाम से सं० १६७० में प्रकाशित हुआ। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने रज्जब जी का उल्लेख भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में नहीं किया है। स्व० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने रज्जब जी को संत दादू का शिष्य बताकर उन्हें मुसलमान जाति का माना है और उनकी रचना स्रवंगी (सर्वांगी) को एक अत्यन्त उपयोगी वृहत् संग्रह माना है।[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी[2] और डा० रामकुमार वर्मा[3] ने दादूपंथी के रूप में रज्जब का नाम अपनी पुस्तकों में लिया है। परन्तु इन संकेतों से संत रज्जब का जीवन और काव्य प्रकाश में नहीं आ सकता है।

पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने रज्जब पर एक विस्तृत लेख 'महात्मा रज्जब जी' शीर्षक से लिखा था जो कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले त्रैमासिक पत्र 'राजस्थान' के वर्ष १ के तीसरे और चौथे अंकों में प्रकाशित हुआ था। इसी लेख को आधार मानकर संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' ग्रन्थ में रज्जबदास का विवरण दिया है। मुख्य रूप से संत रज्जब की कृतियों ने डा० ब्रजलाल वर्मा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया हैऔर उन्होंने संत रज्जब को अपने शोध-कार्य का क्षेत्र बनाया। उन्होंने 'संतकवि रज्जब सम्प्रदाय और साहित्य' नामक शोध-प्रबन्ध लिखा जो राजस्थान सरकार से पुरस्कृत भी हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ने अपने निरीक्षण में लिया है और आजकल उक्त प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है। इसके अतिरिक्त डा० वर्मा ने संत-कवि रज्जब की मौलिक रचनाओं का सम्पूर्ण संग्रह 'रज्जब बाणी' नाम से संकलित किया है। यह ग्रन्थ उपमा प्रकाशन, कानपुर से प्रकाशित है। इस ग्रन्थ का संकलन करते समय डा० वर्मा ने रज्जबदास की बानी की कई प्रतियां देखी हैं। 'रज्जब बानी' की एक प्रति, जो ज्ञानसागर प्रेस बम्बई से सं०१६७५ में प्रकाशित हुई थी, का उपयोग करके उन्होंने श्री दादू महाविद्यालय जयपुर में सुरक्षित दो हस्तलिखित प्रतियाँ देखकर रज्जबबानी का पाठ-शोध किया है। नारायणे के दादू द्वारा के विशाल संग्रहालय में रज्जबदास जी की दूसरी कृति सर्वंगी भी उन्होंने देखी। इस कृति में अनेक महात्माओं की बानियों का संग्रह है। डा० वर्मा ने उपलब्ध रज्जबबानी को साखी भाग, पदभाग,

---

१. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, प्र० सं० २००७ वि०, पृ० १३२।
२. हिन्दी साहित्य, संस्करण १६६४, पृ० ६५।
३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, सं० १६५४। पृ० २७६

सवैयाभाग, छंदजाति त्रिभंगी भाग, बावनी भाग और कवित्त भाग में विभाजित किया है। इस ग्रन्थ की ५७ पृष्ठों की भूमिका से संत रज्जबदास के काव्य पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ में लेखक ने संत रज्जबदास का अपने गुरु महात्मा दादू के साथ चित्र भी प्रकाशित किया है जो उन्हें 'दादू-द्वारा' नारायणा में प्रतिवर्ष होने वाले फाल्गुन मास के मेले में एक महात्मा से प्राप्त हुआ था।

जन्म और मरण-तिथि – रज्जब जी की जन्म-तिथि, जन्म-कुल एवं जन्म-स्थान के विषय में प्रामाणिक स्रोतों का अभाव है। मिश्रबन्धुओं ने रज्जब जी का चलताऊ उल्लेख किया है। उससे यही स्पष्ट है कि उन्हें रज्जबजी के विषय में वृत्त प्राप्त नहीं हो सका था, इसी कारण वे रज्जब जी के जन्म-स्थान, कुल और कृतियों का ठीक-ठीक उल्लेख नहीं कर सके। डा० रामकुमार वर्मा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी रज्जब जी के जीवन-सम्बन्धी तथ्यों के विषय में मौन हैं। इनकी जन्म-तिथि, मृत्यु-तिथि और माता-पिता आदि का न तो किसी दादू सम्प्रदाय के ग्रन्थ में ही उल्लेख है और न किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में। स्वयं रज्जब जी ने अपने काव्य में अपने विषय में कुछ भी नहीं कहा है।

स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा रज्जब जी के जन्म-काल के सम्बन्ध में लिखते है, 'रज्जब जी का जन्म संवत् कहीं लिखा नहीं मिलता है, परन्तु यह विख्यात है कि वे १२२ वर्ष के होकर परमपद प्राप्त कर गये थे। उनका शरीरावसान सं० १७४६ (सन् १६८९) में हुआ था। इस हिसाब से वे सं०१७४६-१२२=सं०१६२४ में जन्मे होंगे।'[1] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी इसी मत को मान्य मानते हैं और रज्जब जी का जन्म संवत् १६२४ के लगभग मानते हैं।[2] निष्कर्षतः बाह्य साक्ष्य के आधार पर संत रज्जब जी का जन्म संवत् १६२४ और मृत्यु संवत् १७४६ पड़ता है। ये १२२ वर्ष तक जीवित रहे हैं।

जन्म-स्थान एवं जन्मकुल—रज्जबदास का जन्म सांभानेर में एक प्रतिष्ठित पठान सैनिक के घर में हुआ था। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये पहले हिन्दू कलाल कुल के थे जिसमें मद्य की बिक्री होती थी और मुसलमान होने पर भी ये लोग सुरा-विक्रेता ही बने रहे।[3] परन्तु रज्जबदास के भक्तगण इस बात को स्वीकार नहीं करते हैं। प्रसिद्ध यही है कि ये पठान वंश में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता जयपुर के महाराजा भगवन्तराय जी तथा मानसिंह जी की सेना में एक नायक थे। इनका वास्तविक नाम रज्जब अली खां था। उस समय की प्रथानुसार इन्हें सर्वप्रथम व्यायाम, कुश्ती तथा शस्त्रास्त्र-प्रयोग की ही शिक्षा मिली थी, यही कारण है इनके प्रभावशाली व्यक्तित्व

---

१. संतकवि रज्जब-सम्प्रदाय और साहित्य, डा० ब्रजलाल वर्मा, प्रथम सं०, पृ० ७।
२. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, प्र० सं० २००८, पृ० ४२२।
३. वही, पृ० ४२२।

के साथ-साथ उनका शारीरिक सौन्दर्य भी प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम अज्जब अली खां और भ्राता का नाम गज्जब अली खां बताया जाता है परन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में यह निश्चयात्मक रूप से नहीं माना जा सकता है। शब्दों की सानुप्रासिक संगति इसके लिए पर्याप्त नहीं है।

रज्जब जी का शरीर सुडौल और विशाल था। दादूपंथी साधुओं में यह वृत्तान्त प्रचलित है कि एक बार नारायणे में महात्मादादू स्नान करके काष्ठ की चौकी पर बैठे हुए थे, उन्होंने रज्जब जी से खड़ाउ लाने को कहा, जिस पर रज्जब जी ने उत्तर दिया कि आप चौकी पर बैठे रहिये, मैं चौकीसहित आपको उठा कर ले चलता हूँ। रज्जब जी ने जब चौकी उठाने का प्रयत्न किया तो चौकी नहीं उठी। यद्यपि इससे गुरु-गौरव की ओर संकेत मिलता है फिर भी यह प्रमाणित है कि रज्जब जी हृष्ट-पुष्ट थे।[1] इस कथन की पुष्टि एक और जनश्रुति से होती है। जनश्रुति यह है कि एक दिन संत दादू अपने कई शिष्यों के साथ एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जा रहे थे, मार्ग में एक नदी पड़ी, दादू जी ने शिष्यों को उस नदी में पांच-दस पत्थर डालने को कहा जिनके सहारे नदी की कीचड़ को पार किया जा सके। गुरु का निर्देश पाकर सभी शिष्य पत्थर लाकर उसमें डालने लगे किन्तु रज्जब जी स्वयं कीचड़ पर लेट कर बोले कि इस शरीर पर होकर निकलिये।[2] शरीर के होते पत्थरों की क्या आवश्यकता? इन दोनों जनश्रुतियों से रज्जब जी के शरीर की विशालता की ओर संकेत मिलता है।

रज्जब जी के पठान वंशीय होने में कोई आपत्ति नहीं है। यह सर्वमान्य है कि मुगलों के शासन काल में भारत के उत्तर पश्चिमी प्रदेश में पठानों का आवागमन था। राजस्थान के अधिकांश राजपूतों ने प्रायः मुगल शासकों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उच्चपदाधिकारी पठान होते थे। रज्जब के पिता भी पठान थे और आम्बेर में सेना-नायक थे।

संत दादू से भेंट—रज्जब अली खां जब यौवनावस्था को प्राप्त हुए तो इनका विवाह सांभानेर के निकट लगभग १४-१५ मील दूर आम्बेर में किसी पठान घराने में निश्चित हुआ। आम्बेर में पहुँच कर बारात का मार्ग नगर के उस स्थान से होकर जाता था जहां संत दादू दयाल अपनी मण्डली के साथ विराजमान थे। उस स्थान पर पहुँच कर दूल्हा रज्जब कुछ क्षणों के लिए आगे बढ़े। संत दादू के ध्यानमग्न होने के कारण रज्जब जी को प्रतीक्षा करनी पड़ी। ध्यान-समाप्ति के समय रज्जब जी को संत दादू जी ने निम्न दोहा कहा—

कीया था कुछ काज को सेवा सुमिरण साज।
दादू मूल्या बंदगी सर्या न एको काज ॥

रज्जब जी इससे इतने प्रभावित हुए कि उसी क्षण वे विरक्त हो गये और

---

१. संतकवि रज्जब-सम्प्रदाय और साहित्य, डा० व्रजलाल वर्मा, प्र० संस्करण, पृ० १
२. वही, पृष्ठ १०।

मान्यता है कि उस समय रज्जब जी ने अपने दूल्हा रूप के वस्त्र अपने अनुज को दिये परन्तु अंत में रज्जबदास गुरु की आज्ञा से उस अवसर के स्मारक रूप में निरंतर दूल्हे के ही वेश में रहने लगे थे। उक्त दोहा उस चित्र के नीचे भी लिखा मिलता है जो डा० वर्मा ने 'रज्जबबानी' में दिया है। गुरु दादूदयाल द्वारा उक्त प्रकार से दीक्षित होने के समय रज्जब जी की अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। उसी समय से गुरु ने इन्हें रज्जब अली खां की जगह 'रज्जबजी' कहना आरम्भ कर दिया और तब से ये निरन्तर उनकी सेवा-में रहने लगे।

गुरुभक्ति—दादू-पंथ में साधना और मतिवैदग्ध्य की दृष्टि से महात्मा दादूदयाल के दो ही शिष्यों का उल्लेख आता है—रज्जब जी तथा छोटे सुन्दरदास जी। सुन्दरदास शास्त्रीयज्ञान की दृष्टि से समस्त सन्त-वर्ग में अग्रगीय है। रज्जबदास में अनुभूतिज्ञान का प्राबल्य है। रज्जब जी सन्त दादू के साथ छाया की भाँति सदा रहते थे पाँच-छः वर्ष के सत्संग से ही उन्होंने स्वयं पदों और साखियों की रचना करनी आरम्भ की। रज्जब जी ने अपने गुरु की प्रशंसा में अनेक साखियां कही हैं। 'रज्जब बानी' में गुरुदेव का अंग, गुरु सिष निगुरा का अंग, गुरु सिष निदान निरनै का अंग गुरु मुख कसौटी का अंग, गुरु-संजोग बियोग महातम का अंग आदि में गुरु महात्म्य गाया गया है। इनके शब्द-शब्द से गुरु के प्रति श्रद्धा टपकती है। इनका कथन है—

> दादू दीन दयाल गुर, सो मेरे सिरमौर।
> जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठौर॥[1]

शिष्य-परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन है कि इनके दस शिष्यों के नाम राघोदास की 'भक्तमाल' में मिलते हैं और उनके अतिरिक्त उनके चार अन्य शिष्य भी बतलाये जाते हैं।[2] इनके अनुयायियों को 'रज्जबपंथी' अथवा 'रजबावत' कहा जाता है इनकी मुख्यगद्दी सांभानेर में है परन्तु वहाँ कोई साधु नियमपूर्वक नहीं रहता है। उनके स्मारक के रूप में वहाँ कुछ वस्तुएँ भी रखी हुई हैं।

रचनाएँ—रज्जब जी की दो कृतियां उपलब्ध हैं। प्रथम रज्जबबानी और द्वितीय सर्वंगी। 'रज्जबबानी' रज्जब जी की मौलिक रचना है। डा० ब्रजलाल वर्मा ने इस विशाल ग्रन्थ को छन्दों के आधार पर निम्न आठ भागों में विभाजित किया है[3]—

१. साखी २. पद (भजन) ३. सवैया ४. गुण छंद ५. गुण अरिल, ६. तेरह लघु ग्रन्थों में ७. कवित्त (छप्पय) ८. शिष्यों के रचे महिमा छंद।

साखी—इसमें एक सौ तिरानवे अध्याय तथा ५३५२ छंद हैं, इसमें ज्ञान, उपदेश

---

१. रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, प्र० सं० १९६३, पृ० २।

२. उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, प्र० सं० २००८, पृ० ४२५।

३. रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, प्र० सं० १९६३, पृ० ९।

और रहस्य-भरे विषय हैं।

पद (भजन)—इसमें २०० पद तीस रागरागनियों में दिये गये हैं जिनमें भगवतप्रेम, विरह, योग, मुक्तिमार्ग, गुरुमहिमा, परमार्थ इत्यादि का वर्णन है।

सवैया—इस भाग में ३६ अंगों मे ११७ छंद हैं। दादू गुरु महिमा, दादू जी के सिद्धान्त, साधुमहिमा, उपदेश, विरह सूरातन, सत्य, चिन्तामणी, दादू जी के पुत्र-शिष्य गरीबदास जी की महिमा का वर्णन है। मुख्यतः इसका केन्द्र-बिन्दु संत दादू जी हैं।

गुणछंद—इसके ३३ छंदों में दादू जी की महिमा तथा गुणावली का वर्णन है।

गुण अरिल—इसके नौ अंगों में बयासी अरिल छंद हैं।

तेरह लघु ग्रंथों में—इसमें चौपाई छंद में उपदेशात्मक कथन हैं। प्रथम बावनी, ग्रन्थ बावनी, अक्षर उद्धार, पन्द्रह तिथि, सप्तवार, गुरु उपदेश, आतम उपाधि, अविगत लीला, अकल लीला, परम पारिख, उत्पत्ति निर्णय, गृह वैराग्य बोध, पराभेद, दोष दरीबे, जैन जंजाल सभी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

कवित्त (छप्पय)—इसके ४० अंगों में ८६ छप्पय हैं, इसमें विविध विषय हैं।

शिष्यों के रचे महिमा-छंद—इसमें चैनदास, रामदास, खेमदास, अमरदास, कल्याण मोहनदास आदि कई महात्माओं ने इसमें रज्जब जी का गुणानुवाद एवं अपनी प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण उपस्थित किया है।

रज्जब बानी का प्रथम प्रकाशन बम्बई के वानसागर प्रेस से संवत् १९७५ में हुआ है और अब डा० वर्मा ने सन् १९६३ ईसवी में नवीन ढंग से प्रकाशित की है।

रज्जब जी का द्वितीय ग्रन्थ है सर्वंगी अथवा सर्वांगयोग। यह संकलन ग्रन्थ है, इसमें १४२ अंग हैं। इसमें पूर्ववर्ती और समयुगीन संतों की बानियों का अंगों के अनुसार संकलन किया गया है। नारायणे के दादू द्वारे में सर्वंगी की एक विशाल पद्यटीका भी प्राप्त होती है। सर्वंगी का रचना-काल सं० १६५० से १७५० के बीच का ठहरता है।[1] रज्जबदास की एक तीसरी कृति का भी उल्लेख मिलता है जो इनके गुरु संतदादूदयाल जी की बानी का संग्रह है। यह ग्रन्थ भी रज्जब जी से संकलित एवं सम्पादित माना जाता है।

रज्जब जी के दार्शनिक विचार—सिद्धान्तपक्ष

ब्रह्म—रज्जबदास का ब्रह्म निर्गुण है, वह सर्वगुणातीत, घट के भीतर निवास करने वाला, परम पवित्र परमगति वाला पूर्ण ब्रह्म है।[2] वह निर्मल निरंजन नेत्रों में

---

१. रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, प्र० सं० १९६३, पृ० १०।

२. सब गुन रहित रमे घटि भीतरि, नाद व्यंद मैं न्यारा।
परम पवित्र परमगति खेलै, पूरण ब्रह्म पियारा॥
—रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, प्र० सं० १९६३, पृ० ३९४।

समाया है।[१] वह सदैव निकट रहने वाला और सब भाँति समर्थ है। निर्गुण ब्रह्म आवागमन के चक्र से मुक्त है, सगुण ब्रह्म कर्म करने के लिए संसार में आता है और शंकर आदि रूप धारण करता है। निर्गुण ब्रह्म अवतार धारण नहीं करता है, वह स्वामी है और सगुणब्रह्म उसका दास है।[२]इसी ब्रह्म को रज्जबदास ने'राम' कहकर पुकारा है। वही ब्रह्म चल और अगम है वही आनन्द में वास करने वाला है।[३] निगमों के अनुसार सगुण और निर्गुण एक ही है।[४] वही राम रस पीना चाहिए, उससे आनन्द की प्राप्ति होती है और समस्त पाप धुल जाते हैं।[५] कथन-श्रवण से क्या प्रयोजन ? जब तक जीव संसार के जाल में फंसा हुआ है तब तक वह व्याकुल है, जो अनीति करता है, माया में फंसा रहता है और अगम की बाणी बोलता है, वह विपरीत कर्म करता है जोनिष्प्रयोजन है।[६] वास्तव में एक ही ज्योति कण-कण में व्याप्त है वही शक्ति स्वरूप में भी है।[७] जब तक जीवह्म माया से लिप्त रहते हैं वे ब्रह्म से भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु वास्तव में सगुण-निर्गुण ब्रह्म शरीर में ही व्याप्त रहता है।[८] हृदय से राम नाम का भजन करने से आनन्द का सागर प्राप्त होता है और उस आनन्दरस से हृदय प्लावित होता है।[९] आत्मा और राम एक है, इनका हित चित एक है।[१०] निरंजन का नाम तन, मन और आत्मा में

---

१. अंजन माहि निरंजन निरमल, गुण अतीत गुण माही।
सदा समीप सकल विधि समरथ, मिलै सु मिली नहिं जाही।—वही, पृ० ३९४।

२. निरगुण राम न आवै जाई ।।
अगुण फिरि फिरि करम कमाई ।।
नृगुण राम न जामै मरई, सरगुण संकर जो तन धरई।
नृगुण राम औतारे नांही, सरगुण जीव फिरै जग माही ।।
निरगुन स्वामी सरगुन दासा, साधू संत कहै गुन तासा ।।—वही, पृ० ३९२।

३. अचल नाँव अगम ठांव, आनन्द धरि बासा ।।—वही, पृ० ३९६।

४. अगुण नृगुण यक येक हैं, नित निगम बतावै ।।—वही, पृ० ३८६।

५. राम रस पीजिये रे पीये सब सुख होइ ।।
पीवत ही पातग कटै, सब संतन दिसि जोइ ।।—वही, पृ० ३८८।

६. संतौ कहै सुणै कछु नाहीं।
जब लगि जीव जंजाल न छुटै, बिकल बिषै सुख मांही।
कर अनीति मगन माया मैं, कहै अगम की बाणी।
सो बिपरीति संत नहिं मानै, झूठी माहिली जाणी ।।—वही, पृ० ३८२।

७. परम जोति बसि जोति बहु, सो सब सकति सरूप ।।—वही, पृ० २३२।

८. जीव ब्रह्म मैं तब लग माया, एकमेक भिन भेद सु पाया।
ज्यूँ सुन्नि माहैं आमै नीर, सरगुण निरगुण होंहि सरीर।।—वही, पृ० २६०

९. जन रज्जब जगदीस भजि, आतम के अस्थान।
सुख सागर सबहू की, अंतर उघड़ै खानि ।।—वही, पृ० ४९।

१०. एक आतमा राम एक, एकै हित चित होइ ।।—वही, पृ० १४५।

लेना चाहिए, इस प्रकार स्मरण से परम-पुरुष की उपलब्धि होनी है।[1] ब्रह्म अवतार की भावना त्याग कर निरंजन-रूप हो जाता है और उसी निरंजन का ध्यान करन चाहिए।[2]

अन्य संतों की भांति रज्जब जी भी परमात्मा को प्रियतम और अपने को उसकी प्रियतमा मानते हैं। सूफियों का इश्क-हकीकी उनकी इस प्रियतम-साधना में पूर्णतः विद्यमान है। उस प्रियतम ब्रह्म की प्राप्ति से संसार के सारे ऐश्वर्य स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं। एक के बिना कुछ भी हाथ नहीं आता है।[3] उस प्रियतम परमात्मा के साक्षात्कार के लिए साधक तड़प रहा है। वह कौन-सा दिन होगा, जब उसे प्रियतम मिलेंगे और त्रिविध तापों का नाश होगा?[4] साधक का रोम-रोम उसी के ध्यान में लगा रहता है।[5] प्रियतम के विरह में कोई ऋतु अच्छी नहीं लगती है। क्षण-क्षण विरह-व्यथा को तीव्र करता है।[6] साधक उस परम पुरुष को अपने हृदय में बसाना चाहता है तथा ब्रह्माग्नि में भस्म होकर उसी प्रियतम परमात्मा में एक होना चाहता है।[7]

जीवात्मा—ब्रह्म और जीवात्मा में घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसे बीज में वृक्ष समाया रहता है, या कुएं और पात्र के जल में भिन्नता नहीं होती है, जैसे बूंद में घटा समाई रहती है वैसे ही ब्रह्म में जीव समाये रहते हैं।[8] ब्रह्म और जीव में भिन्नता यही है कि जीव ब्रह्म से अलग होकर चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरता है, पल-पल में

---

१. नाऊ निरंजन लीजियै, तन मन आतम मांहि।
जन रज्जब यूं सुमिरतौ, परमपुरषि मिलि जांहि।—वही पृ० ४६

२. सब औतारु आकार तजि भये निरंजन रूप।
सो हम सेवैं पंडितहुँ निरगुन तत्व अनूप ॥—वही, पृ० ११२।

३. एक मिल्यूं सारे मिलै, सब मिलि मिल्या न येक।
तार्थं रज्जब जगत तजि, बूझौ बड़ा बमेक ॥—वही, पृ० १४५।

४. कबहूँ सो दिन होयगा, पिव मेलैगा आइ।
रज्जब आनन्द आत्मा, त्रिबिध ताप तनि जाइ ॥—वही, पृ० २६।

५. प्राण प्यंउ रग रोम सब, हर दिस रहे निहार।
ज्यूं बसुधा बनराइ सौं, बिरही चाहै बारि ॥—वही, पृ० २६।

६. जन रज्जब जगदीस बिन, रुति भली कोइ नांहि।
सीत उसग बारिषा बुरी, बिरह बिथा मन मांहि ॥—वही, पृ० ३०।

७. प्रीतम प्रगटौ ताप ज्यूं प्यंउ तै प्रान छुड़ाई।
मारि मिलावौ आप मैं, जन रज्जब बलि जाइ ॥—वही, पृ० १००।

८. बीज माहि बृच्छ समाणा, हांडी कण मैं पाकी।
कूवा भरै कुंभमैं पाणी, कहत न आवै ताकी ॥—वही, पृ० ३६३।

उसकी आयु घटती जाती है और यमराज का भय सदैव उसके सिर पर होता है।[1] जीव अज्ञान की निद्रा में सोया है, उसे माया का त्याग करके भगवान् का भजन करना चाहिए।[2] जब तक जीव संसार-जाल से मुक्त नहीं होता तब तक उसे विषय-वासनाओं में ही सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।[3] एक तत्त्व ब्रह्म है और द्वितीय माया। इसी माया-तत्व से जीव जीव का भेद दृष्टिगोचर होता है। शक्ति रूपी समुद्र में जीव जलचर के समान है।[4] अज्ञान के कारण जीव और ब्रह्म में अन्तर दीख पड़ता है।[5] इस जीव की सृष्टि ब्रह्म ने की है। ब्रह्म ने ही जीव का निर्माण कर उसे शरीर-रूप दिया है और उसकी मुक्ति के लिए गुरु को बनाया है।[6]

माया—रज्जब जी ने माया की सत्ता स्वीकार की है, यही मन को वश में करती है।[7] यही माया जीव को ब्रह्म से भिन्न कर देती है।[8] माया जीव के आगे-पीछे घूमती रहती है, शरीर से चाहे मुक्ति मिले पर माया से मुक्ति पाना कठिन है।[9] छः दर्शन और समस्त संसार माया के वश में है।[10] गुण और इन्द्रियाँ माया के ही दान्त हैं।[11] इस माया ने ब्रह्मा और शिव को भी मोह लिया है, महाबली जैसे सिद्ध साधकों का मान इसी ने नष्ट किया है, इसी ने षट् दर्शन को वश में किया है और समस्त संसार को पागल बना दिया है।[12] सभी संतों का विश्वास है कि माया से हरि दूर जाते हैं। जैसे

---

१. पल पल आयु घटै तन छीजै, जम बैरी सिर परु है रे।
बादल बिपति बीजुरी मनसा, बिबिध विघन का झरु है रे।
चौरासी लख जीव जवासे, तेरो कौतुक जरु है रे।।—वही पृ० ४००।

२. जाणौ जाणौ जीव जनम जाइ, कौन नींद घोली।
भजिये भगवंत राइ, तजिये माया उपाइ, एसौ तनि ठौर लाइ देखौदृग खोली।।
—वही, पृ० ४१६।

३. जब लगि जीव जंजालन छूटै, बिकल बिपै सुखमाहीं।।—वही, पृ० ३८२।

४. एक ब्रह्म दूसरी माया, जीव जीव का भेद सु पाया।
सक्ति समंदर ज़िव जलचरा, भरम पुकारै बाहरि परा।—वही, पृ० २३१।

५. रज्जब जीब ब्रह्म अंतर इता, जिता जिता अजान।—वही, पृ० १६०।

६. जीव रच्या जगदीश नैं, बांध्या काया माँहि।
जब रज्जब मुकता किया, तौ गुर समि कोई नाँहि।।—वही, पृ० ६

७. माया बाध्यूं मन बधै, खोल्यूं खुलता जाइ।।—वही, पृ० २२८।

८. जीव ब्रह्म मैं तब लग माया, एकमेक भिन्न भेद सुपाया।।—वही, पृ० २३०

९. दीसै बाहर भीतर बैठी, जामण मरण सु आगै पैठी।
माया जीव जीव सोइ माया, रज्जब छूटै न छूटै काया।।—वही, पृ० २३०।

१०. षट दरसन अरु खलक सब, माया के मुख माँहि।।—वही, पृ० २३१।

११. रज्जब गुण यंद्री सब दंत है माया के मुख माँहि।।—वही, पृ० २३१

१२. राम राइ महाकठिन यहु माया।

सीप स्वाति नक्षत्र से प्रेम करती है और सागर के बिना जीवित नहीं रह सकती है उसी प्रकार चाहे जितना भी अपने को वश में करो, माया और काया का सम्बन्ध तोड़ना अति कठिन है।[1] सुख-दुःख, लाभ-हानि ये सब माया के ही रूप हैं।[2] रज्जब जी ने 'सक्ति शिव सोध का अंग' में शक्ति का उल्लेख माया के रूप में किया है, वे माया को उभयगुणी मानते हैं। वे संसार में 'ब्रह्मतत्त्व' और माया तत्त्व को मानते हैं।[3] माया शक्तिशाली है और निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। यही माया प्राण, पिण्ड और ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।[4]

साधना पक्ष

गुरु—भारतीय वैष्णव-परम्परा के अनुसार रज्जबदास ने अपनी बाणी के आरम्भ में ही गुरु की वन्दना की है।[5] रज्जब जी के गुरु दादूदयाल थे जिनको उन्होंने कई पदों में श्रद्धा समर्पित की है।[6] गुरु के गुणों का न आर है न पार, अल्प बुद्धि से उन गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है।[7] गुरु की कृपा से ही अमरगति प्राप्त होती है और जीव-ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।[8] गुरु के मार्ग-प्रदर्शन से ही यह ज्ञात होता है कि ब्रह्म और 'प्यंड' की एक गति है।[9] सांसारिक क्लेशों से तप्त आत्मा को सतगुरु के शीतल जल से

जिनि मौहि सकल जग खाया।
इन माया ब्रह्मा से मोहे, संकर सा अटकाया।
महाबली सिध साधिक मारे तिनका मान गिराया।।
इन माया षट दरसनि खाये, बातनि जग बौराया।।—वही, पृ० ३७६।

१. जैसे सीप स्वाति रत होइ, साइर बिन जीवै नहिं सोइ।।

— — — —

काया माया तजै न कोय, रज्जब भजै सकल सिधि होय।।—वही, पृष्ठ ३६५।

२. ब्रह्म सुख दुख रूप माया, कहीं लाभर हानि।—वही, पृ० ४०५।

३. एक ब्रह्म दूसरी माया, यहु संसार नहिं जाइ।।—वही, पृ० २२६।

४. ब्रह्माण्ड प्यंड जिव जोति लगि, मधि माया रूप।
रज्जब निकस कौन बिधि, रिधि छाया करि कूप।।—वही, पृ० २२६।

५. दादू नमो नमो निरंजन, नमस्कार गुरु देवतः।
बंदन सर्वसाधक, प्रणामं पारंगतः।।—वही, पृ० १

६. गुर गखा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।
दरसन परसन होत ही, भंजन भल भरिया।।—वही, पृष्ठ ४०२

७. गुरु गुन का कछु अन्त न पार।
अलप बुद्धि का करौ विचार।।—वही, पृष्ठ ४१४।

८. गुर परसाद अगम गति पावै।
पलटै जीव ब्रह्म कै आवे।।

९. ब्रह्म प्यंड की येक गति, पावै खेजी प्रान।

ही शान्ति उपलब्ध होती है।[1] ईश्वर के साक्षात्कार का एक मात्र कारण रज्जब जी ने गुरु को ही माना है। उनके अनुसार सतगुरु की शिक्षा से जगतपति का साक्षात्कार होता है और सभी विषय-विकारों से मुक्ति प्राप्त होती है।[2] गुरु पारस-मनी है जो शिष्य को पल में स्वर्ण बना देता है।[3] जैसे समुद्र में अनेक रत्न होते हैं वैसे ही सतगुरु शिक्षा का भण्डार होता है, कोई ही उसमें तन्मय होकर गुण प्राप्त कर सकता है।[4] रज्जबजी की दृष्टि में माया पानी है और मन दूध, दोनों परस्पर एक हुए हैं, इन्हें गुरु-रूपी हंस ही अलग कर सकता है।[5] गुरु के घर में अपार धन है किन्तु शिष्य में जब तक लक्षण न हों तब तक उस धन का संग्रह करना कठिन है।[6] गुरु के ज्ञान-प्रकाश से शिष्य को अपना गन्तव्य सूझता है और वह परमात्मा की ओर प्रेरित होता है।

नामस्मरण—अन्य सन्तों की भाँति रज्जब जी ने भी नामस्मरण को अत्यधिक महत्त्व दिया है। निरंजन का नामस्मरण करना चाहिए, उसी से परम पुरुष का साक्षात्कार होता है।[7] नामस्मरण के आगे ब्रह्म और साधक दोनों ही दास हैं। नामस्मरण के प्रकाश से साधक नारायण से भी श्रेष्ठ बन जाता है।[8] रामनाम की महिमा का वर्णन करना असंभव है इससे आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व का समन्वय होता है।[9] हरिनाम ही सब

उभय ठौर सब अंस है समझावै गुर जान ॥—वही, पृ० ४

१. रज्जब अगनि अनंत है, येक आतमा माँहि।
सतगुर सीतल सर्वनिधि, बहु बहनी बुझ जाँहि ॥—वही, पृ० ४

२. सतगुर के सब्दौं सुण्यों, बहुत होइ उपगार॥
जल रज्जब जगपति मिलै, छूटै सकल बिकार॥—वही, पृष्ठ ४॥

३. गुर पारस पल मैं परसि, सिख कंचन करि लीन ॥—वही, पृष्ठ ८

४. ज्यूं बहु रतन समुद्र मैं, त्यूं सतगुरु सबद धनाढ़ि।
मरजीवा ह्वै माहि मिलि, जग रज्जब बित काढ़ी ॥—वही, पृ० १०

५. माया पानी दूध मन, मिले सु मुहकम बंधि।
जन रज्जब बलि हंस गुरु सोधि लही सौ संधि ॥—वही, पृष्ठ ६

६. गुरु घर माही धन घणा, सिख संग्रह्या न जाइ॥
जब लग लषण न लेंण के, जुगत न उपजै आइ॥—वही, पृष्ठ १०।

७. नाउ निरंजन लीजिये, तन मन आतम माँहि।
जन रज्जब यूं सुमिरितौं, परम पुरिष मिलि जाँहि॥ —वही, पृष्ठ ४६

८. नर नाराइन सौं बड़ा, प्रकट नांव परगास।
ढून्यूं आगे नांव कै, सेवग स्वामी दास ॥—वही, पृ० ५५

९. रज्जब महिमा नांव की, नर पै कही न जाइ।
जाकै बसि दोउ देखिये, खुदरति सहित खुदाइ॥ —वही, पृष्ठ ५५।

कार्यों का साधन है, वही आदि-अंत है, वही संसार सागर से पार करने वाला है।[१] नाम के बिना मन निर्मल नहीं होता है। अन्य उपायों से तो अनन्त पाप लग जाते हैं।[२] तीर्थ-व्रत, पूजा, अर्चना सब हरिनाम में ही समाये जाते हैं।[3] नाम से सभी पवित्र होते हैं, मनुष्यों का मल इसी से छूट जाता है।[४] यही दीपक की भाँति प्रकाश ज्योति विकीर्ण करता है,[५] यही सभी सन्तों के जीवन का सहारा है, प्राणों का आधार है, भवसागर से पार होने का एकमात्र साधन है।[६] तन, मन और शक्ति समुद्र की गति है, निर्मल नाम-रूपी जहाज है, बुद्धि-रूपी बादबान से ही पार पा सकते हैं।[७] राम नाम सत्य है, यही मूल मंत्र है।[८] इसके समान और कोई सौदा नहीं है।[९] षट्दर्शन, वेद और कुरान में राम महिमा का ही नाम है, यही रहस्य को प्रकट कर सकता है।[१०] अल्लाह अल्लाह कहते ही अल्लाह को प्राप्त किया जा सकता है, यह ऐसा अक्षर है।[११] ईश्वर तो सब का एक ही है चाहे उसके नाम अनेक हों।[१२] इसी हरि नाम में अनंत सुख समाया है।[१३] निरंजन का नाम जल के समान है और समस्त सुकर्म बनखण्ड है, स्मरण-रूपी सलिल से इसमें पुष्प और

---

१. है हरि नांव सौ सब काज।
आदि अंत सु प्राण तारण, विषम जलधि जहाज॥—वही, पृष्ठ ४०६।

२. नांव बिन मन निरमल नहिं होइ।
आन उपाइ अनंत अघ लागें, बहुत भाँति करि जोइ॥—वही, पृ० ४०७

३. पूजा अर्चानवधा नावै, सोधि कियो व्याहार।
तीरथ बटत सु नांव तुम्हारा, और नहीं अधिकार॥—वही, पृष्ठ ४०८।

४. नांव निरंजन निरमला, नर कै मल धौवै।
सकल पतित पावन भये, कोई जाति न जोवै॥—वही, पृष्ठ ४१४।

५. नांव सु दीपग राम है, जहि जोति प्रगासै॥—वही, पृष्ठ ४१५

६. मुझै लागै नांव पियारा।
सब संतनि कै जीवन मूरि, मेरै प्रान अधारा।
नाव नांव जिवनितारि कै, भौ सागर करै पारा॥—वही, पृष्ठ ४३३।

७. तन मन कसति समंद गति, निरमल नाव जिहाज।
बादबान बुधि थंभ चढ़ि, गुर मारै सिख काज॥—वही, पृष्ठ ७

८. राम नाम मूल मंत्र, सत्य नाम निरंजन॥—वही, पृष्ठ ४२

९. रमिरन समय सौदा नहीं, निखि देरखि नौ खण्ड॥—वही पृष्ठ ४२।

१०. षट दरसन नावै कहै, नावै वेद कुरान।
नौ रज्जब नावै गहौ, पाया भेद बिनान॥—वही, पृष्ठ ४३।

११. अल्लह अल्लह कहत ही, अल्लह लह्मा सु जाइ।
रज्जब अज्जब हरफ है, हदें द्वैत चित लाइ॥—वही, पृष्ठ ४४

१२. साहिब सबका एक है, राखै नाव अनेक।—वही, पृष्ठ ४५।

१३. सुख अनंत हरि नांव मैं जाका वार न पार॥—वही, पृष्ठ ४५।

फल लगते हैं।[1] यही सेवा का मूल है और इसी से संशय और पाप नष्ट होते हैं।

साधुसंगति—रज्जब जी ने अन्य संतों की भाँति ही साधु-संगति को महत्त्व प्रदान किया है और 'साहिब' से साधु को बड़ा माना है।[2] जैसे वृक्ष के सिर पर फल और पत्र होते हैं वैसे ही यदि स्वामी से सेवक को बड़ा माना जाये तो कोई आश्चर्य नहीं है।[3] साधुओं का हृदय विशाल होता है, उसमें ब्रह्म और माया दोनों समा सकते हैं।[4] परन्तु विरक्त होने के कारण माया का प्रभाव साधुओं पर नहीं पड़ता है। संसार में साधुओं की पहचान कठिन है। समस्त संसार मानों कौवे हैं और साधुजन कोयल, जबतक दोनों चुप हैं, तब तक बाह्य रूप से दोनों एक जैसे दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु बोलने के समय दोनों में अन्तर ज्ञात होता है।[5] साधु अगाध हैं, इनके हृदय में शिव शक्तिसहित विराजमान है।[6] साधुओं के हृदय में सांई रहते हैं। इनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।[7]

प्रेमतत्त्व—ईश्वरोपासना में रज्जब जी प्रेमतत्त्व को प्रमुख मानते हैं। इस प्रेम में द्वैतभाव मिट जाता है और साधक-स्वामी एक हो जाते हैं। निर्मल प्रेम-भक्ति रस का पान करने से शारीरिक अस्तित्व मिट जाता है।[8] रज्जब जी भी ईश्वर को प्रियतम और अपने को प्रेमिका मानते हैं और पुरुष-नारी के प्रेम का वर्णन करते हैं।[9] साधक परमेश्वर

---

१. नाव निरंजन नीर है, सब सुकृत बनराइ ॥
इन रज्जब फूलै फलै, सुमिरन सलिल सहाइ ॥—वही, पृष्ठ ४७

२. साहिब सौ साधु बड़े, साधु बड़ा न कोइ ॥—वही, पृष्ठ ६८

३. स्वामी करि सेवग बड़े, नांहि अचरज कोइ।
रज्जब तरु फरु सीस पर, परतषि देखौ सोइ ॥—वही, पृष्ठ ६८

४. माया ब्रह्म वै जो किया, सो उन बाहरे नांहिं।
रज्जब साध अगाध दिल, उभै समानै मांहि ॥—वही, पृष्ठ ६८।

५. साधू कोइल काग जग, दरस एक उनमान।
रज रज्जब बोलै बिगति, अरु खान पान पहिचान ॥—वही, पृष्ठ ६६।

६. रज्जब साध अगाध हैं, कहिये कौन समान,
देखौ स्यो सक्ती सहत, सेवग ह्वै तहं आन ॥—वही, पृष्ठ ६७

७. साधू दिल साँई रहै, हरि हिरदै मैं साध।
रज्जब महिमा क्या कहै, ठाहर उभै अगाध ॥—वही, पृष्ठ ६७।

८. मति वाले रे मति वाले।
निरमल भगति प्रेम रस दीवै, देह गलित गुन गालै।—वही, पृष्ठ ४१८।

९. प्रिय कै भाई बैठी न्हाइ, बिगसत ज्यूं जाइ।
नौसत साजै स्यंगार, पलक पाट खोलै द्वार, देखन हरि चाइ ॥
राखी रति सेज बानि, नख सख सब सौंज आनि।
प्यारे पीय कौ सुजगनि लागन कौं पाई ॥—वही, पृष्ठ ४२१।

के प्रेम में रमा रहता है और वह परम स्नेह में ही डूबा रहता है।[1]

जब तक विरह न सहन किया जाता है तब तक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता है।[2] यह प्रेम अति कठिन है, इससे हृदय में तीव्र पीड़ा होती है। किसको पुकारा जाये? किसी के सामने इसका वर्णन भी नहीं होता है।[3] राम के साथ रम कर प्रेम का आस्वादन करना चाहिए, प्रेमी का यह सुख अवर्णनीय है।[4] प्रेम के क्षेत्र में स्वामी स्नेह-विभोर होकर अपने सेवक को आनन्द देने के लिए स्वयं सेवक बन जाता है तथा सेवक अपने क्लेशों को दूर कराने के लिए स्वामी से क्लेश-निवारण की सेवा लेने लगता है।[5] स्वामी और सेवक एक हो जाते हैं। प्रेम का प्रभाव इससे भी आगे बढ़ता है। विरह की तीव्र वेदना दुःखदायी है परन्तु ब्रह्म से मिलाप का साधन होने के कारण यह प्रिय है। प्यार, प्रीति, हित, नेह और महोब्बत—यह एक ही प्रेम के भिन्न नाम हैं जो मन और वचन का समन्वय करते हैं।[6]

बाह्याडम्बरों का विरोध—संत रज्जबदास ने अन्य सन्तों की भाँति साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उन्होंने व्रत और रोजे का विरोध करके उन्हें व्यर्थ सिद्ध किया है। वास्तविक तीर्थ तो सत्संग है जिससे निर्मल बोध-रूपी जल प्राप्त होता है और मल रूपी धूल मिट कर काया की शुद्धि होती है।[7] हिन्दू और मुसलमानों का विरोध व्यर्थ है।[8] यह जाति-पाँति की समस्या व्यर्थ है। सभी मनुष्य एक हैं, एक ही ब्रह्म से आये हैं और एक ही ब्रह्म में समाने वाले हैं।[9] योग, यज्ञ, तप, व्रत, संयम तो सभी

---

१. दरद नहीं दीदार का तालिब नाहीं जीव।
रज्जब बरिह वियोग बिन, कहा मिलै सो पीव ॥—वही, पृष्ठ ३५।

२. प्रीति इकंग महाजुरी, दुख दीरघ दिलि होइ।
काहि पुकारै किस कहै, बेड़ी नाहीं कोई ॥—वही, पृष्ठ ३३।

३. रज्जब रमि रमि राम सौं, पीवै प्रेम अघाइ।
रसिया रस मैं है रह्यौ, सो सुख कह्या न जाइ ॥—वही, पृष्ठ १५०।

४. प्रेम प्रीति हित नेह की, रज्जब उलटी बाट।
सेवग कौ स्वामी करहिं, स्वामी सेवग ठाट ॥—वही, पृष्ठ १५२।

५. प्रेम प्रीति हित नेह को, रज्जब दुबिधा नाहिं।
सेवग स्वामी एक ह्वै, आये इस घर माहि ॥—वही, पृष्ठ १५२।

६. प्यार प्रीति हित नेह मुहबति, पंच नाम एक प्रेम।
उभै अंग एकठे करहि, मनसा बाचा नेम ॥—वही, पृष्ठ १५२।

७. सति तीरज सत्संग है, वारि बिमल बिचि बोध।
रज्जब रजमल ऊतरै, बेत्वा बदन सु सोध ॥—वही, पृष्ठ ७०।

८. हिन्दू तुरक सुणौ रे भाई, काहूँ से मति होहु दुखदाई ॥—वही, पृष्ठ ३८३

९. कुल मरजाद मेंड सब भागी, बैठा माठी नेरा।
जाति-पाँति कछु समझै नाहीं, किसकूँ करै परेरा ॥—वही, पृष्ठ ३८८।

करते हैं परन्तु दान, धर्म और पुण्य कोई नहीं करता है।[१]

सुन्दरदास-जीवन और विचारधारा

जीवन—संत सुन्दरदास जी का जन्म द्यौसा नगर में 'बूसर' गौत के खंडेलवाल वैश्य कुल में विक्रमी संवत् १६५३ की चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ था।[२] इनकी माता का नाम सती और पिता का नाम 'चौखा' उपरनाम परमानन्द था। सुन्दरदास केवल छः वर्ष की आयु में दादू दयाल के शिष्य हो गए थे।[३] इन्होंने अपनी रचनाओं में अनेक बार अपने गुरु दादूदयाल का संकेत किया है जैसे—

१. सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाय
ऐसे गुरु देव दादू मेरे मन मान्यौ है ॥[४]
२. सुंदुर सकल संत प्रगट जगत माँहि ।
तैसे गुरु दादूदास लागे हरि सेवजू ॥[५]
३. ऐसि कृपा जु करी हम ऊपर ।
सुंदर के उर हैं गुरु दादू ॥[६]

दादूदयाल के सुन्दरदास नामक दो शिष्य थे अतः इन सुन्दरदास को छोटे सुन्दरदास कहा जाता है। संवत् १६५६ विक्रमी में जब दादूदयाल नारायणे में अपनी शिष्य मण्डली के साथ आये, तो उनके साथ सुन्दरदास जी भी थे। संवत् १६६३-६४ में ये काशी आये और वहाँ व्याकरण, वेदान्त, सांख्य, योग, षट्दर्शन और साहित्य का अध्ययन किया। काशी में ये लगभग अठारह-उन्नीस वर्ष तक रहे और महात्माओं और पंडितों का सत्संग किया। तदुपरान्त ये फतेहपुर (शेखावटी) आये और त्रियानवे वर्ष की आयु मे इन्होंने संवत् १७४६ में प्राण त्याग किया। सुन्दरदास ने अपने युग में मुगल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन देखा। इनका जन्म अकबर के राज्यकाल में हुआ था और औरंगज़ेब के शासनकाल में इन्होंने प्रयाण किया, इस प्रकार ये अकबर, जहाँगीर शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब के शासन से अवगत थे।[७]

सुन्दरदास जी बालकवि थे। कवि के लौकिक अर्थ में निर्गुण पंथी संतों में कवि केवल सुन्दरदास को ही कहा जा सकता है।[८] इन्होंने ४२ ग्रन्थों की रचना की है।

---

१. जोग जग्य जप तप व्रत संजन, करता है सब कोइ।
धरम नेव दान पुन्नि पूजा, सीझया सुण्या न कोइ ॥—वही, पृष्ठ ४०७।
२. सुन्दरग्रन्थावली (प्रथमखण्ड), पुरोहित श्रीहरिनारायण शर्मा, संवत् १९६३, पृ० १।
३. उत्तरी भारत की संत परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, संवत् २००८ वि०, पृ० ४२७।
४. सुन्दरविलास, संस्करण १९१४ ईसवी, पृ० १०।
५. वही, पृ० ९।
६. वही, पृ० २।
७. सुन्दरदर्शन, डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, सं० सन् १९६०, पृ० १।
८. संत सुधासार (प्रथम खण्ड), श्री वियोगीहरि, संस्करण १९५३ ई०, पृ० ५७०।

जिनमें ज्ञान समुद्र, सवैया और सुन्दर बिलास उत्तम हैं । लघुग्रन्थों में सर्वांगयोग और पंचेन्द्रियचरित्र भी प्रसिद्ध हैं। इनके समस्त ग्रन्थों को संकलित करके पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा ने प्रकाशित किया है। सुन्दरदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि ये हिन्दी और संस्कृत भाषा के पंडित थे। इसके अतिरिक्त फारसी, पूर्वी पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी आदि भाषाओं की शब्दावली भी इनके काव्य में मिलती है। ये आशुकवि थे अर्थात् बिना प्रयास के कविता करते थे।[1] इनके काव्य में हास्यरस के कटाक्ष उपलब्ध हैं। ये शान्तरस के एक मात्र आचार्य माने जाते हैं।

इनका 'सुन्दर बिलास' बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से सन् १९१४ ईसवी में प्रकाशित हुआ है। श्री हरिनारायण शर्मा ने सुन्दरग्रन्थावली (दो भागों) में सुन्दरदास जी की समस्त रचनायें संकलित कर अत्यन्त शोधपूर्ण भूमिका और सुन्दरदास का जीवन-चरित्र देकर राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता से प्रकाशित करवाया है।

दार्शनिक विचार धारा—

ब्रह्म—सुन्दरदास के अनुसार ब्रह्म निर्गुण है उसका न रूप है न रेखा, वह अलक्ष है, अखण्ड है और निरंजन है।[2] वही शेष, गणेष, विष्णु और अन्य देवताओं का स्वामी है। वह व्यापक, अखण्ड, अनाव्रत, सर्वव्यापक और अन्तर्यामी है।[3] ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं है जिस प्रकार एक ही शरीर के अनेक अंग होते हैं, एक ही पृथ्वी पर अनेक स्थान होते हैं, एक ही शिला से भाँति-भाँति के चित्र बनाये जाते हैं, एक ही समुद्र में अनेक तरंगे उठती हैं उसी प्रकार जीवन और ब्रह्म एक हैं अखण्ड हैं।[4] ब्रह्म से ही पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुई है फिर प्रकृति से तत्त्व और अहंकार उत्पन्न हुए, अहंकार से सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण फिर तमोगुण से विषय आदि उत्पन्न हुए हैं।[5] रूप नष्ट होकर अरूप में समा जाता है, इसी रूप के मध्य में अरूप ब्रह्म

---

१. सुन्दर बिलास, संस्करण १९१४ ईसवी, पृ० ७।

२. रूप न रेख अलेख अखंडित, भिन्न रहै सब कारज सारे।
नाम निरंजन है तिनको पुनि, सुन्दरता प्रभु की बलिहारे।
—सुन्दर बिलास, १९१४ ई०, पृ० ७९।

३. सेस महेस गणेस जहाँ लगि, विष्णु बिरंचिहु के सिर स्वामी।
व्यापक ब्रह्म अण्ड अनाव्रत, बाहर भीतर अन्तरजानी।—वही, पृ० ८०।

४. एक सरीर में अंग भये बहु, एक धरा पर धाम अनेका।
एक सिला मह कोर किये सब, चित्र बनाइ धरै इक ेका।
एक समुद्र तरंग अनेकछु, कैसे कै कीजिये भिन्न बिबेका।
द्वैत कछू नहिं देखिये सुन्दर, ब्रह्म अखंडित एक को एका॥—वही, पृ० १२५।

५. ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई।
प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहंकार है।
अहंकारहू तें तीन गुण सत रज तम।
तमहू तें महाभूत, विषय पसार है।—वही, पृ० ११०।

है जो अखण्ड है।[1] यही ब्रह्म कुम्हार की भाँति भिन्न-भिन्न पात्रों का निर्माण करता है।[2] वेदों में भी इसी अखण्ड ब्रह्म का वर्णन है। स्थूल दृष्टि से जीव और ब्रह्म में भेद दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रकार स्वप्न में किसी पदार्थ की प्रतीति होती है परन्तु जाग्रतावस्था में अदृश हो जाते हैं। इसी प्रकार जन्म, मरण, भय, संसार, आत्मसाक्षात्कार के पश्चात् मिथ्याभासित होते हैं।[3] सुन्दरदास का ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण की सीमा से परे हैं। कवि ने गुणधारी ब्रह्म को माया का प्रतीक माना है। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित के अनुसार सुन्दरदास के काव्य में ब्रह्म विषयक धारणा स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है कि ब्रह्म नाम रूपादि की सीमा से परे है।[4]

जीव—जीव नश्वर है। जन्म लेने के समय से ही उसकी आयु घटने लगती है। दिवस व्यतीत होते हैं। क्रीड़ा में ही उसकी बाल्यावस्था और यौवनावस्था व्यतीत हो जाती है उसके पश्चात् वह वृद्ध हो जाता है। जीव आरम्भ से ही भ्रम में भटकता फिरता है।[5] जीव की काया मिथ्या है।[6] उसकी तृष्णा दिन-प्रतिदिन बढ़ जाती है, क्षण-क्षण पल-पल में युग व्यतीत हो जाते हैं।[7] जीव को अपने शरीर पर अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि मानव-शरीर मलमूत्र का ही भण्डार है।[8] परन्तु सब में आत्मा व्याप्त

---

१. रूप को नास भयो कछु देखिये, रूप अरूपहि माहि समावै।
रूप के मध्य अरूप अखंडित, सो तो कहूँ कछु जाय न आवै।—वही, पृ० १०२।

२. ब्रह्म कुलाल रचै बहुभाजन।—वही, पृ० ७९।

३. है विदानन्द घन ब्रह्म तू सोई, देह संयोग जीवत्त्व भ्रम सोई।
जगत हू सकल यह अन छतौ जानौ, जनम अरु मरण सब स्वप्नकरि मानौ।
सुन्दरग्रन्थावली, भाग १, पुरोहित हरिनारायण शर्मा,
—संवत् १९९३ विक्रमी, पृ० १३।

४ सुन्दर दर्शन, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, १९६० ईसवी, पृ० १५१।

५. जब ते जनम लेत, तब ही तें आयु घटे।
— — — —
जो बनहु बीते बूढ़ो डोकरो दिखात है।
—सुन्दरबिलास, १९१४ ईसवी, पृ० २९।

६. झूठी काया झूठी माया।—वही, पृ० ३२।

७. नैनन की पलही पल में छिन, आधि घरी घटिका जु गई है।
जाग गयो युग याम गयो पुनि, साँझ गई तब रात भई है।
आज गई अरु काल्ह गई परसों तरसों कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसहि आयु गई, तृस्ना दिन ही दिन होत नई है।—वही, पृ० ३७।

८. हाड को पिंजर चाम मढ़्यो सब,
महि भस्यो मल मूत्र बिकारा,
थूक लार परै मुख तैं पुनि।
व्याधि बहै सब औरहु द्वारा।—वही, पृ० ५०।

है। शरीर के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती है। आत्मा बारम्बार जन्म एवं मृत्यु नहीं प्राप्त करती है वह इन बन्धनों से परे है। आत्मा बिना किसी भेदभाव के ऊँचे. नीचे, मध्यम रूप के शरीरों में व्याप्त है।[1]

जगत्—सुन्दरदास ब्रह्म और जगत् को भिन्न नहीं मानते हैं परन्तु मनुष्य इस ज्ञान से वंचित है। जैसे स्वर्ण और आभूषण में कोई भेद नहीं है. बीज और वृक्ष में कोई अन्तर नहीं, उसी प्रकार ब्रह्म ही जगत् है और जगत ही ब्रह्म है।[2] सुन्दरदास के अनुसार एक ही तत्त्व अखण्ड ब्रह्म है उसी ने जगत् का नाम धारण किया है।[3] ब्रह्माण्ड का विस्तार संसार, आकाश और पाताल है यही ब्रह्म है।[4] जीव में ही जगत् विद्यमान है और जगत में जीव व्याप्त है। इन दोनों में भिन्नता नहीं है।[5] संसार माया का जाल है जिस प्रकार आरोप से रस्सी का साँप या सीप में चाँदी प्रतीत होती है उसी प्रकार सत्य-वस्तु ब्रह्म में असत्यवस्तु जगत् प्रतीत होता है।[6]

माया—संसार में जीव माया के वश होता है। माया बड़ी चतुर है इसने जीव को उलझा कर रखा है।[7] अज्ञान के कारण मनुष्य माया को जोड़-जोड़ कर प्रयत्न से

---

१. तैसे ही सुन्दर ऊँच नीच मध्य एक ब्रह्म।
देह भेद देखि भिन्न-भिन्न नाम धर्‍यो है।—वही, पृ० ११२।

२. कनक समाइ ज्यूँ ही, होइ रह्यौ आभूषण।
कनक कहै न कोई, आभूषण कह्यौ है।
बीजहू समाइ करि, वृच्छ ह्योई रह्यौ पुनि।
वृच्छही कूं देखियत बीज नहिं लह्यौ है।
सुन्दर कहत यह, यूँ ही करि जान्यौ सब।
ब्रह्म ही जगत् होइ, ब्रह्म दूरि रह्यौ है।—वही, पृ० १२३।

३. सुन्दर कहत यह एक ही अखण्ड ब्रह्म।
ताहि कूं पलटि के जगत नाम धर्‍यो है।—वही, पृ० १२४।

४. सकल संसार विस्तार करि करणियौ।
स्वर्ग पाताल मृत ब्रह्म ही है—वही, पृ० १२६।

५. तोही में जगत यह तूं ही है जगत माहि।
तो मैं अरु जगत में भिन्नता कहाँ रही।—वही, पृ० १२७

६. ऐसे नहि जाने यह मृगजल मरयौ है।
जेवरे कौं साँपु जैसे सीप विषै रूपौ जानि।
और कौं और इ देषि यौं ही भ्रम कर्‍यौ है।— वही, पृ० १२४।

७. माया को उपाय जाने, माया की चातुरी ठानै।
माया में मगन अति, माया लपटानो है।—वही, पृ० ३१।

रखता है कि एक दिवस काम आयेगी।[1] माया का मुख्य रूप कामिनी है जिसके हाथ मनुष्य बिक जाता है।[2] कामिनी का शरीर सघन वन है जहाँ सभी भटक जाते हैं।[3] सुन्दरदास ने नारी को नरक का कुंआ भी कहा है।[4] नाम रूप की भिन्नता ही असत्य माया है।[5] भावना के अनुसार ही जीव को आभास होता है। एक भाव से देखने पर सूर्य का प्रकाश एक दीखता है परन्तु द्वैत भाव से देखने पर किरणों की भिन्नता प्रतीत होती है। इसी प्रकार भ्रम और अज्ञान में माया की सत्यता दृष्टिगोचर होती है परन्तु भ्रम के नष्ट होने पर ब्रह्म की सर्वव्यापकता का ज्ञान होता है।[6] जीव को माया और मोह में नहीं पड़ना चाहिए, स्वजनों को देखकर प्रसन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि इनके साथ रहने से कोई लाभ नहीं है।[7]

साधना-पक्ष—गुरु-सुन्दरदास ने साधना पक्ष में गुरु ज्ञान, प्रेम और योग को महत्त्व देकर बाह्याडम्बरों का खण्डन किया है। ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए गुरु आवश्यक है। गुरु ही काल के जाल से मुक्त कराता है।[8] गुरु सर्वगुण सम्पन्न, ज्ञानभण्डार आनन्द-रूप और श्रेष्ठ है।[9] सुन्दरदास भी गोविन्द से गुरु को अधिक महत्त्व देते हैं।[10] गुरु

---

१. माया जोरि जोरि नर, राखत जतन करि।
कहत है एक दिन मेरे काम आइ है।—वही, पृ० ३०।

२. काम बस कामिनी के हाथ ही बिकानौ है।—वही, पृ० ३१।

३. कामिनी को तनु मानु कहियो सघन बन,
वहाँ कोऊ जाइ सो तौ भूलेही परतु है॥—वही, पृ० ५१।

४. सुन्दर कहत नारी नरक को कुंड यह,
नरक में जाइ परै, सो नरक पाती है।—वही, पृ० ५२।

५. नाम रूप जहाँ लगि मिथ्या माया मानिये।—वही, पृ० १२६।

६. द्वैत करि देखै जब द्वैतहि दिखाई देत।
एक करि देखै तब उहै एक अंग है।
सूरज कूं देखै जब सूरज प्रकासि रह्यौ।
किरण कूं देखे तो किरण नाना रंग है।
भ्रम जब भयौ तब माया ऐसो नाम धरयौ।
भ्रम के गये ते एक ब्रह्म सरबग है।—वही, पृ० १३०।

७. माया मोह माँहि जिनि भूलै। लोक कुटुंब देषि मत फूलै।
इनके संगलागि क्या जरना, समुझि देषि निश्चै करि मरना।
—सुन्दर ग्रन्थावली, पुरोहित श्रीहरिनारायण शर्मा, संस्करण १९९३ विक्रमी, पृ० ३३३।

८. गुरु उपदेसे सौं तो छूटै जम फंद तैं।—सुन्दरबिलास, पृ० ८।

९. गुरुदेव सर्वोपरि अधिक विराजमान है।
गुरुदेव सबहि ते अधिक गरिष्ठ हैं—वही, पृ० ९।

१०. गुरु की तो महिमा अधिक है गोविंद तें।—वही, पृ० ९।

मार्गदर्शन करता है, गुरु के बिना भक्ति और ज्ञान नहीं होता है। गुरु के बिना संशय नहीं जाता है, गुरु के बिना सदगति भी नहीं होती है। गुरु ही वेद का उपदेश देता है और ब्रह्म का साक्षात्कार करा देता है।[1]

ज्ञान—साधक के लिए ब्रह्मज्ञान आवश्यक है, जिस प्रकार अबरक से दीपक की ज्योति नहीं छिप सकती है उसी प्रकार ज्ञानी भी अपने ज्ञान को गुप्त नहीं रख सकता है।[2] ज्ञानी की दशा राग-वैराग्य की सीमा से परे ही होती है।[3] ज्ञानी केवल अखण्ड ब्रह्म का ही दर्शन करता है।[4]

प्रेमतत्त्व—अन्य संत कवियों की भांति सुन्दरदास भी साधक को नारी और ब्रह्म को प्रियतम मानते हैं। साधक-रूपी नारी को पतिव्रता होना चाहिए। पति उनके लिए प्रेम, नियम, यश, योग, ध्यान, ज्ञान, पुण्य, दान और तीर्थस्थान है।[5] जिस प्रकार जल और मीन, मणि और साँप, स्वाति बूंद, सीप और चातक, रवि और कमल, शशि और चकोर का प्रेम होता है वैसे ही प्रभु के साथ प्रेम करना चाहिए।[6] सुन्दरदास के

---

१. गुरुदेव बिना नहिं मारग सूझय, गुरु बिन भक्ति न जानै।
गुरुदेव बिना नहिं संशय भागय, गुरु बिन लहै न ज्ञानै।
गुरुदेव बिना नहिं कायर होई, लोक वेद यौं गावै।
गुरुदेव बिना नहिं सदगति कोई, गुरु गोविन्द बतावै।
—सुन्दर ग्रन्थावली, संवत् १६६३ वि०, पृ० ८।

२. ज्ञान प्रकाश भयो जिनके उर वे घट क्यूंहि छिपे न रहैंगे।
मौडल माँहि दुरै नहिं दीपक, यद्यपि वे मुख मौन गहैंगे।—सुन्दरबिलास, पृ० १४५।

३. सुन्दर ज्ञानी कि ऐसी दसा यह जानै नहीं कछु राग बिरग।—वही, पृ० १४६।

४. सुन्दर ज्ञान प्रकास भयौ जब, एक अखण्डित ब्रह्म अनूपा।—वही, पृ० १४७।

५. पति ही सूं प्रेम ठोई पति ही सूं नेम होइ।
पति ही सूं छेम होइ, पति ही सूं रत है।
पति ही है यज्ञ योग, पति ही है रस भोग।
पति ही सूं मिटै सोग, पति ही को जत है।
पति ही है ज्ञान ध्यान, पति ही है पुत्र दान।
पति ही है तीर्थस्नान, पति ही को मत है।—वही, पृ० ८१।

६. जल को सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान।
मणि बिनु अहि जैसे जीवत न लहिये।
स्वांति बिन्दु को सनेही, प्रगट जगत माहिं।
एक सीप दूसरो सु चातकहु कहिये।
रवि को सनेही पुनि कमल सरोवर में।
ससि को सनेही हू चकोर जैसे रहिये।
तैसे ही सुन्दर एक प्रभु सू सनेह जोर।
और कछु देखि काहू और नहिं बहिये।—वही, पृ० ८२।

अनुसार जाति-पाँति, कुल और गोत्र की भिन्नता नहीं होती, न इसका कोई नियम ही होता है।[1]

योग—सुन्दरदास ने अपने काव्य में योग का भी वर्णन किया है। योग के प्रथम अंग यम और नियम हैं, इसके पश्चात् आसन आते हैं फिर प्राणायाम और प्रत्याहार, षट्चक्र ध्यान और समाधि की अवस्था आती है।[2] नाड़ियों में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना मुख्य हैं।[3] सुन्दरदास ने षट्चक्रों का भी वर्णन किया है। ब्रह्म-प्राप्ति के लिए इन्द्रियों का वशीकरण भी आवश्यक है। जो इन्द्रियों को वश में करता है वही पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है।[4]

बाह्याडम्बरों का विरोध—प्रायः सभी संतों ने साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। तीर्थयात्रा, जप, तप आदि सब व्यर्थ हैं। ब्रह्म जीव के हृदय में ही व्याप्त है परन्तु जीव उसका अन्वेषण करने प्रयाग, बनारस, पुरी, मथुरा आदि स्थानों पर जाता है।[5] ब्रह्म घट में ही व्याप्त है। जीव अज्ञान के कारण उसका भास नहीं पाता है।[6] कोई गेरुवे वस्त्र धारण करता है, कोई नंगा, कोई जटा रखकर वलकल पहन कर भजन करता है परन्तु यह सब अज्ञान का परिणाम है।[7] कठिन तपस्या करके शरीर को

---

१. प्रीति कि रीति कछु नहि राखत, जाति न पाँति नहीं कुल गारो।
प्रेम कुं नेम कहूँ नहि दीसत, लाज न कान लग्यौ सबखारौ ।।—वही, पृ० १५५।

२. प्रथम अंग यम कहौं दूसरौ नियम बताऊँ।
त्रितिय सु आसन भेद सुतौ सब तोहि सुनाऊँ।
चतुर्थ प्राणायाम पंचम प्रत्याहारं।
षटसु सुनि धारणा ध्यान सप्तम विस्तारं।
पुनि अष्टम अंग समाधि है भिन्न-भिन्न समुझाइ हों।
—सुन्दर ग्रन्थावली, पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा, संवत् १९९३ वि०, पृ० ३२।

३. नाडी कही अनेक विधि दश मुख्य विचार।
इडा पिंगला सुषुम्ना, सब मोहि ये त्रय सार ।।—वही, पृ० ४४।

४. ये इन्द्रिय कोई मारे, सो पूरन ब्रह्म बिचारे।
ये इन्द्रिय जिनि बसि कीन्हा, तिनि आतम रामहि चीन्हा ।।—वही, पृ० १४८।

५. कोउक जात प्रयाग बनारस, कोउ गया जगनाथहिधावै।
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु कोउ गंगा कुरुक्षेत्र नहावै ।।
—सुन्दरबिलास, पृ० ६८।

६. आपही के घट में प्रगट परमेसुर है।
ताहि छोड़ि भूले नर दूर दूर जात है ।।—वही, पृ० ६८

७. कोऊक अंग बिभूति लगावत, कोउक होत निराट दिगंबर।
कोउक सेत कषायक ओढत, कोउक बाथ रगे अम्बर।
कोउक वलकल सीस जटा नख, कोउक ओढत है जु बघम्बर।
सुन्दर एक अज्ञान गये बिनु, ये सब दीसत आहि अडम्बर ।।
—वही, पृ० ६७-६८।

दुःख देना और वैराग्य लेना भी व्यर्थ है। अपने रूप को पहचानना चाहिए। जीव में ही ब्रह्म व्याप्त है।[1]

मलूकदासजी—जीवन और विचारधारा

जीवन— मलूकदासजी का जन्म इलाहाबाद के कडा नामक ग्राम में संवत् १६३१ वि० में हुआ था।[2] इनके पिता का नाम लाला सुन्दरदास था, ये कक्कड़ खत्री जाति के थे। आरम्भ से ही इनमें मानवता के भाव जाग्रत थे, बाल्यकाल से ही ये साधु-सेवा में रत रहते थे। जब ये ग्यारह वर्ष की आयु के हुए तो इन्हें कम्बल के व्यापार में लगाया गया परन्तु ये कम्बलों का दान किया करते थे। इनके सम्बन्ध में बड़ी चमत्कार-पूर्ण घटनाएँ प्रसिद्ध हैं।

बाबा मलूकदास के गुरु बिट्ठलदास थे जो द्रविड़ देश के एक महात्मा थे। मलूकदास गृहस्थ आश्रम का पालन करते थे, इनकी एक पुत्री भी थी परन्तु अल्पकाल में ही पत्नी और पुत्री दोनों का देहान्त हो गया। बाबा मलूकदास का मृत्युकाल संवत् १७३९ विक्रमी है। ये एक सौ आठ वर्ष तक जीवित रहे हैं। इनके पंथ की मुख्य गद्दियाँ मौज़ा कडा जिला प्रयाग, जयपुर, इस्फहाबाद, गुजरात, मुल्तान, पटना, सीताकोयल, कालापुर, नेपाल और काबुल में हैं।

इनकी बानी "मलूकदासजी की बानी" के नाम से बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद से सन् १९४६ में प्रकाशित हुई है। जिसमें इनके साखी, शब्द और कुछ कवित्त संग्रहीत हैं। इन्होंने निर्गुण ब्रह्म के साथ-साथ सगुण का भी गुणगान किया है। इनकी "बानी" की भाषा मिली जुली है—जिसमें फ़ारसी के अनेक शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया गया है।[3]

दार्शनिक विचारधारा—

ब्रह्म—संत मलूकदास के अनुसार ब्रह्म निरंजन, निराकार, अलक्ष और अवगत है। यह ब्रह्म संतों के हृदय में व्याप्त हैं।[4] ब्रह्म-नाम निर्मल और अमूल्य है, सर्व-समर्थ

---

१. कठिन तपस्या धरि, मेघ सीत धाम सहै।
कंदमूल खाइ कोऊ, कामना के उर तैं।
अति ही अज्ञान उर, बिबिध उपाया करैं।
निजरूप भूलि के बंधत जाइ पर तैं।।—वही, पृ० ६५।

२. उत्तरी भारत की संत परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, संवत् २००८ वि०, पृ० ५०५।

३. संत सुधासार, दूसरा खण्ड, श्री वियोगी हरि, सन् १९५३, पृ० २६।

४. नमो निरंजन निरंकार, अवगति पुरुषा अलेख।
जिन संतन के हित धरयो, जगु जगु नाना भेख।
—मलूकदासजी की बानी, सन् १९४६, पृ० ३४।

है, जीव उसके सामने कीट के समान है।[1] अविनाशी ब्रह्म की गति अविचल है परन्तु वह घट-घट में व्याप्त है।[2] वही माता-पिता और बन्धु-बान्धव है।[3] ब्रह्म के दशावतार देख कर भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। जीव को वास्तव में अलक्ष ब्रह्म के पास पहुँचना है। उस निर्गुण के गुणों का वर्णन कोई भाग्यशाली ही कर सकता है।[4] वह ज्योति-स्वरूप है।[5]

जीव—संत मलूकदास के अनुसार ब्रह्म-नाम सत्य है और मानव-शरीर मिथ्या है।[6] जीव अपना जन्म निद्रावस्था में ही व्यतीत करता है, वह माया और मोह से आबद्ध है। अतः राम-नाम का स्मरण नहीं करता है।[7] ब्रह्म ही जीव का गुरु है, दास सदैव उसी के आश्रय में रहता है।[8] जीव संसार में पाप करता है परन्तु सृष्टिकर्त्ता को यह मन में नहीं लाना चाहिए।[9]

जगत्—संसार मिथ्या है, नश्वर है, इसमें सदैव उत्पत्ति और प्रलय होती है। माता-पिता, भाई-बहन ये सभी मिट्टी के पुतले हैं इनके साथ झूठा सम्बन्ध है। काल की आज्ञा से ये सभी नष्ट होने वाले हैं। संसाररूपी आंचल सदैव परिवर्तित होता रहता है।[10] जीव जिस संसार के लिए अपना परमार्थ गँवाता है वह इसका साथ कभी नहीं

---

१. नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा।
तू साहेब समरथ, हम मल मुत्र कै कीरा।।—वही, पृ० २।

२. अविगत गति तुम्हारा अबिनासी, घट-घट रहत चलाया।—वही, पृ० ५।

३. तुही मातु तुही पिता तुही हितु बन्धु है।
कहत मलूकदास बिना तुझ धुंध है।—वही, पृ० ५।

४. कहत मलूका निरगुन के गुन, कोइ बड़भागी गावै।—वही, पृ० १७।

५. परम जोति के देखे संतो, अब कछु नज़र न आवै।—वही, पृ० २३।

६. ऐसी झूठी देह ते काहे लेव न साँचा नाम हो।—वही, पृ० २३।

७. सोते सोते जन्म गँवाया।
माया मोह मैं सानि पड़ा सो, राम नाम नहिं पाया।—वही, पृ० १४।

८. साहेब है मेरा पीर कुदरत क्या कहिये।
कहता मलूक बन्द तक पनाह रहिए।—वही, पृ० २०।

९. बन्दा ते गन्दा गुनाह करे बार-बार।
सांई तू रिजन हार मन में न आनियो।—वही, पृ० २९।

१०. अजब तमासा देखा तेरा ता तें उदास भया मन मेरा।
उतपति परलय नित उठ होई, जग में अमर न देखा कोई।
माटी के पुतरे माया लाई ? कोई कहे बहिन कोई कहे भाई।
झूठा नाता लोग लगावै, मन मेरे परतीत न आवै।
जब ही भेजे तबहिं बुलावै, हुकुम भया कोई रहन न पावै।
उलटत पलटत जग की अंचली, जैसे फेरे पान तमोली।—वही, पृ० १३।

देता।[1]

माया—संत मलूकदास ने अन्य संतों की भाँति माया का अस्तित्व माना है। माया काली नागिन के समान है जो समस्त संसार को डस लेती है। इसी ने इन्द्र, ब्रह्मा, नारद और व्यास को डस लिया है। शिव को भी इसी ने डस लिया है।[2] माया के वश जीव ईश्वर का नाम-स्मरण नहीं जानते हैं, वे साधुवेश बनाकर निन्दनीय कार्य करते हैं।[3] माया अति कठिन है, इससे कौन बच सकता है? मनुष्य माया के गर्व में ही नष्ट हो जाता है।[4] माया एक मीठी छुरी है, इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए, इसने ब्रह्मादि देवों को नचाया है।[5] इस माया के दो रूप हैं—कामिनी और कंचन। इन्होंने ही समस्त संसार को ठग लिया है।[6]

साधना-पक्ष : गुरु—संत मलूकदास ने साधना-पक्ष में गुरु, प्रेम, योग और राम-नाम को महत्त्व दिया है। गुरु साधनामार्ग में जीव का पथ-प्रदर्शक होता है, जीव जन्म मरण के चक्र में उलझा रहता है, परन्तु गुरु-उपदेश से वह वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है। मलूकदास ने गुरु और ब्रह्म को एक माना है। ब्रह्म-रूपी गुरु न सोता है, न जगता है न खाता है, पीता न जीता है और न कभी मरता है। इसकी लीला अद्भुत है, यह बिना वृक्ष के फल-फूल लगा सकता है और एक क्षण में अनेक रूप धारण करता है।[7] जो जीव गुरु-उपदेश पर विश्वास करता है वही इस संसार-सागर से पार हो जाता है।[8]

प्रेम—मलूकदास ने ब्रह्म को प्रियतम और स्वयं को प्रेमिका मानकर आध्या-

---

१. बन्दे दुनिया कौ दीन गँवाया।
   सौ दुनिया तेरे संग न लागी, मूड़ अजाब चढ़ाया है। —वही, पृ० २५।
२. माया काली नागिनी, जिन डसिया सब संसार हो।
   इन्द्र डसा ब्रह्मा डसा, डसिया नारद ब्यास।
   बात कहत सिव कौं डसा, जेहि धरि एक बैठे पास हो।—वही, पृ० ६।
३. माया के गुलाम गीदी क्या जाने बन्दगी।
   साधुन से धूम धाम करत चोरन के काम।—वही, पृ० १२।
४. माया के अभिमान भूले, गर्व ही मैं गले।—वही, पृ० २४।
५. माया मिसरी की छुरी, मत कोई पतियाय।
   इन मारै रसबाद कै ब्रह्मादि ब्रह्म लडाय। —वही, पृ० ३८।
६. कामिनी कनक कलह का भण्डा, इन ठगनिन सारा जग डंडा। —वही, पृ० १७।
७. हमरे गुरु की अद्भुत लीला, ना कुछ खाय न पीवै।
   ना वह सोवै ना वह जागै, ना वह मरै न जीवै।
   बिन तरवर फल फूल लगावै, सो तो वा को चेला।
   छिन मैं रूप अनेक धरत है, छिन मैं रह अकेला॥ —वही, पृ० १-२
८. गुरु के बचन करै परतीत, सोई सिद्ध जाय जग जीत।—वही, पृ० १८।

त्मिक प्रेम का वर्णन किया है। जिसका राम-जैसा पति हो वह नारी सदैव सुहागिन है, उसे मुहमांगा आनन्द प्राप्त होता है।[१] ब्रह्म रूपी योगी के बिना रहा नहीं जाता। जीव प्रियतमा 'पिउ पिउ' पुकारती है।[2] जीव ब्रह्म के दर्शनों के लिए लालायित है। पल-पल उसे खोजने का प्रयत्न करता है, जीव को शरीर की सुध-बुध ही नहीं है, उसने प्रेमासव पिया है और मस्ती में गिरता है।[३] यदि जीव के हृदय में प्रेम हो तो उसे कह-कहकर वर्णन नहीं करना चाहिए क्योंकि वह अन्तर्यामी ब्रह्म तो स्वयं जानता है।[४]

योग—मलूकदास ने साधना-पक्ष में योग को महत्त्व दिया है और अपने काव्य में यौगिक शब्दावली का प्रयोग किया है। ब्रह्म की कोई जाति या वर्ण नहीं है, केवल ब्रह्मरंध्र में अनहद नाद सुनाई देता है। अतः मन से अजपा जाप करना चाहिए।[५] क्योंकि जहां अनहद नाद होता है वहीं ब्रह्म का निवास माना जाता है ब्रह्मरन्ध्र में ही ब्रह्म की ज्योति का साक्षात्कार होता है।[६]

रामनाम—मलूकदास ने रामनाम को अत्यधिक महत्त्व दिया है। जो राम-नाम के महत्त्व को जानते हैं वे सच्चे सपूत हैं। बिना इस भजन के कंगाल कपूत फिरते हैं।[७] राम-नाम से करोड़ों पाप एक क्षण में नष्ट हो जाते हैं।[८]

बाह्याडम्बरों का विरोध—ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति बाह्याडम्बर से नहीं होती है। पंडित वेदों को पढ़-पढ़ कर उनमें उलझ जाते हैं और ज्ञानी ज्ञान का वर्णन करते हैं। ब्रह्म की अद्भुत लीला को कोई नहीं पहचान सकता है।[९] जीव मूर्ति-पूजा करते हैं, सदैव

---

१. सदा सोहागिन नारि सो, जा के राम भतारा।
मुंह मांगे सुख देत हैं जग जीव प्यारा।। —वही, पृ० ३

२. कौन मिलावै जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यौ न जाय।
मैं जो प्यासी पीव की, रटत फिरौं पिउ पीव।—वही, पृ० ६

३. तेरा मैं दीदार दिवाना,
घड़ी-घड़ी तुझे देखा चाहूं सुन साहेब रहमाना।
हुआ अलमस्त खबर नहिं तन की, पिया प्रेम पियाला।
ठाढ़ होउं तो गिर गिर परता, तेरे रंग मतवाला। —वही, पृ० ६

४. जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अंतरजामी जानिहै अंतरगत का भाव।। =वही, पृ० ३५।

५. अब तो अजपा जपु मन मोरे—वही, पृ० १६।

६. सब्द अनाहद होत जहाँ तैं तहाँ ब्रह्म कर बासा।
गगन मण्डल मैं करत कलोलै, परम ज्योति परगासा।—वही पृ० १७।

७. राम नाम जिन जानिया, तेई बड़े सपूत।
एक राम के भजन बिन, बाँगा फिरै कपूत।—वही, पृ० ३३।

८. राम-नाम एकै रती, पाप के कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार।।—वही, पृ० ३३।

९, वेद पढ़े पढ़ि पंडित भूले, ज्ञानी कथि कथि ज्ञाना।
कह मलूक तेरी अद्भुत लीला, सो काहू नहिं जाना।—वही, पृ० ५।

ब्रह्म का नाम जपते हैं परन्तु अन्य जीवों की आत्मा को दुःख देते हैं। उनकी मूर्तिपूजा व्यर्थ है।[1] ब्रह्म जप और तप से प्रसन्न नहीं होता है, दया-धर्म को अपना कर अपने दुःख की भाँति अन्य का दुःख मानने से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है।[2] मुल्ला का कुरान, बाँग और रोजा भी व्यर्थ है क्योंकि ये स्वयं कसाई प्रकृति के होते हैं।[3] माला या तसबीह फेरने से क्या होता है, इन आडम्बरों से मुक्ति पानी चाहिए।[4]

सन्त दूलनदास : जीवन और विचारधारा

सन्त दूलनदास जगजीवन साहब के शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १७१७ वि० और मरण सम्वत् १८३५ वि० में हुआ है।[5] ये जाति के सोमबंसी ठाकुर थे। इनके पिता लखनऊ के एक ग्राम समेसी में कृषक थे। ये अपने गुरु के साथ कोटवा में अनेक वर्ष तक रहे और अन्त में रायबरेली जिले में धर्म्मे नाम का एक ग्राम बसाया और वहीं अन्ततक रहे। ये गृहस्थ आश्रम में ही रहे हैं। इनके सम्बन्ध में अनेक चामत्कारिक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं।

इनकी वाणी वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से 'दूलनदास जी की बानी' के नाम से सन् १९१४ में प्रकाशित हुई है। इसमें चेतावनी, प्रेम, विनय और उपदेश के पद हैं। भूलने और साखियां भी इनकी प्रसिद्ध हैं। इनकी बानी की भाषा अवधी है, कहीं-कहीं भोजपुरी और फारसी शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है।

ब्रह्म—सन्त दूलनदास ब्रह्म को सर्वत्र व्याप्त मानते हैं। पृथ्वी, आकाश और जीव में वही व्याप्त है।[6] ब्रह्म इन्द्रियातीत है, नेत्रों से वह देखा नहीं जाता है।[7] ब्रह्म सत्य है,

---

१. मूरत पूजे बहुत मति नित नाम पुकारै।
कोटि कसाई तुल्य हैं सो आतम मारै।—वही, पृ० ८।

२. ना वह रीझै जप तप कीन्हें ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगे, ना काया के परवारे।
दाया करै धरम मन राखै, घर मैं रहे उदासी।
अपना सा दुःख सब का जानै ताहि मिलै अबिनासी।—वही, पृ० १९

३. देखा मैं मुल्ला बौराना, नाहक पढ़ै किताब कुराना।
है हजूर वह दूर बतावै, बाँग जिकिर धौं किसे सुनावै।
रोजा करै निमाज़ गुज़ारै, उरस करै और आतम मारै।—वही, पृ० २१-२२।

४. माला कहाँ और कहाँ तसबीह,
अब चेत इनहिं कर टेक न टेकै।—वही, पृ० २७।

५. सन्तसुधासार, श्री वियोगी हरि, संस्करण १९५३, पृ० ७७।

६. साहिब अपने पास हो, कोई दरद सुनावै।
साहिब जल थल घट-घट व्याप्त, धरती पवन अकास हो।
—दूलन दास की बानी, संस्करण १९१४ ई०। पृ० २५।

७. साईं तेरा गुप्त मर्म हम जानी।
कस करि कहौं बखानी।।—वही, पृ० ५

वह अवर्णनीय है, अगम और अपार है, परन्तु जीव के शरीर में ही व्याप्त है। उसका न रूप है न नाम।[१] दूलनदास ने भी ब्रह्म का प्रतीक राम शब्द ही रखा है परन्तु यह 'राम' दशरथि राम न होकर निर्गुण ब्रह्म है। वह ज्योति-स्वरूप है।[२] निर्गुण ईश्वर ही ब्रह्म के रूप में सृष्टि रचता है परन्तु सृष्टि से स्वयं अलग है। वेदादि ग्रन्थों की रचना करके वही दशावतार-रूप धारण करता है।[३]

जीव—जीव संसार में आता है। यहाँ उसके दिन शीघ्र समाप्त होते जाते हैं। काल का प्रहार सदैव उसके ऊपर रहता है परन्तु फिर भी वह सचेत नहीं होता है।[४] जीव का संसार में आना व्यर्थ है क्योंकि ब्रह्म नाम से वह प्रेम नहीं करता है। वह काम, क्रोध और तृष्णा का शिकार बन कर दिन-रात भोग-विलास में व्यतीत करता है, वह सदैव भ्रम में भटकता फिरता है।[५] मनुष्य का जीवन व्यर्थ है क्योंकि यह किसी के काम नहीं आता है।[६]

माया—सन्त दूलनदास के अनुसार माया ब्रह्म की ही है। राम की माया ही जीव को नचाती है, इससे जीव का मन रात-दिन व्याकुल रहता है और ब्रह्म स्मरण करना भूल जाता है। प्रेम-सूत्र को कभी तोड़ता और कभी जोड़ता है जिससे उलझन बढ़ती है।[७] योग-प्रक्रिया में भी माया ही उलझन डालती है। यह उलझन सतगुरु के पथ-प्रदर्शन से ही सुलझ सकती है।[८] संसार में धन का ही व्यवहार चलता है, प्रीति और मर्यादा को कोई नहीं पूछता।[९]

---

१. निज घर है वह अगम अपारा, जहाँ बिराजै स्वामी।
ता के परे अलोक अनामी, जा का रूप न मानी। —वही पृ० ६।

२. निरख रहै नूर अल्लाह का, रहै जीतै रहै जब तक।
हुआ हाफिज़ दिवाना भी भये ऐसे नहीं हर यक।—वही, पृ० १९।

३. ब्रह्म रूप घटि सृष्टि उपाई आप रहा अलगानी।
बेद कितेब की रचनरचाई, दस औतार धरानी।—वही, पृ० ६

४. पछितात क्या दिन जात बीते, समुझ करु नर चेत रे।
अन्ध तेरे कन्ध सिर पर, काल डंका देत रे।—वही, पृ० ६

५. तू काहे को जग मैं आया, जो पै नाम से प्रीति न लाया रे
तृष्णा काम सवाद घनेरे, मन से नहिं बिसराया।
भोग बिलास आत नित बासर, इत उत चित भरमाया रे।—वही, पृ० ७

६. यह नर देही हाथ न आवै, चल तू अपने धाम।—वही, पृ० १०।

७. राम तोरी माया नाच्चु नचावै।
निसुबासर मेरो मनुआं व्याकुल सुमिरन सुचि नहि आवै।
जोरत तूरै नेह सूत मेरा, निरवारत अरुझावै।—वही, पृ० १६।

८. छठवां माया चक्र सोइ, अरुझनि गगन दुवार।
दूलन बिन सतगुरु मिले, बोधि जाय को पार।—वही, पृ० २८।

९. दुलन प्रीत मरजाद हम, देखा यह संसार।
धेला छः दमरी हद, पैसा का व्योहार।—वही। पृ० ४०

संसार—सन्त दूलनदास ने संसार की सत्ता को तो माना है परन्तु अन्य सन्तों की भाँति इसे मिथ्या और झूठ कहा है।[१] संसार एक अन्धकूप है, यहाँ माता-पिता नारी-पुत्र, बन्धु-बान्धव कोई साथ नहीं देता है। यहाँ जीवन केवल चार दिन का होता है और अन्त में राम-नाम से प्रेम करना पड़ता है।[२] ब्रह्म-स्मरण के बिना जगत् में रहना निष्फल है।[३] यहाँ गुरु-चरणों से प्रेम करना चाहिए।[४] मानव-शरीर पर कोई भरोसा नहीं है। इसको उत्पन्न और नष्ट होने में देर नहीं लगती है।

साधनापक्ष—दूलनदास ने साधना में गुरु, प्रेमतत्त्व, नाम-महिमा और सत्संगति को महत्त्व दिया है। गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और शंकर है। गुरु-उपदेश अगम और अगाध है।[५] जिस साधक पर गुरु का अनुग्रह हो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर उसी के अनुकूल हो जाते हैं।[६] उसी का भाग्योदय होता है और उसी पर गुरु-उपदेश-रूपी अमृत की धारा बहती है।[७]

प्रेमतत्त्व—दूलनदास ने प्रेमतत्त्व को बड़ा महत्त्व दिया है। उन्होंने अन्य सन्तों की भाँति जीव को प्रियतमा और ब्रह्म को प्रियतम माना है। जीव के हृदय में राम-राम ब्रह्म की रट लगी रहती है, उसके हृदय में प्रेम की तीव्रता बढ़ जाती है।[८] साधक के मन में यही सन्देह बना रहता है कि प्रियतम का मिलन कब होगा। जब तक दीपक में तेल है, तब तक वह जलता है और सब कुछ दृष्टिगोचर होता है परन्तु प्रकाश की समाप्ति पर कठिनाई आती है।[९] ब्रह्म के रंग से जीव ऐसा मतवाला हो जाता है, ओष्ठ भट्ठी की

---

१. यह जीवन सुपने को लेखा, का भूलसि झूठी संसारी।—वही, पृ० १

२. अंत काल कोइ काम न अइहै, मातु पिता सुत बंधू नारी।
दिवस चारि कै जगत सगई, आखिर नाम सनेह करारी।—वही, पृ० १।

३. तू काहे को जग मैं आया, जो पै नाम से प्रीति न लाया रे।—वही, पृ० ७

४. जग मैं जै दिन है जिन्दगानी।
लाइ लेव चित गुरु के चरनन, आलह करहु न प्रानी।—वही, पृ० ११।

५. गुरु ब्रह्म गुरु विष्णु है गुरु संकर गुरु साध।
दूलन गुरु गोविन्द भजु, गुरुमव अगम अगाध।—वही, पृ० २८।

६. ब्रह्मा बिस्नु तापर ढुरैं, ढुरौ भवानी ईस।
दूलनदास दयाल गुर, हाथ दीन्ह जेहि सीस॥—वही, पृ० २८।

७. श्री सतगुरु मुखचन्द्र तें सबद सुधा झरि लागि।
हृदय सरोवर राखु भरि, दूलन जागे भागि।—वही, पृष्ठ २८।

८. रट लागि हिये रमई रमई।
गुरु अंतर डोरी पोढ़ि दई।
नित बाढ़न लागी प्रीत नई।—वही, पृष्ठ १७।

९. पिया मिलन कब होइ अंदेसवा लागि रही।
जब लग तेल दिया मैंबाती, सूझ पड़ै सब कोइ।
जारिगा तेल निपटि गई बाती, लै चलु लै चलु होइ।—वही पृष्ठ १८।

भाँति तप्त हो जाते हैं और विरह में तीव्रता आती है ।[१] ब्रह्म-नाम की मदिरा से जीव भी मस्त हो जाता है, संसार से विमुख होकर वह 'प्रियतम' की रट लगाता है ।[२] प्राणायाम और इन्द्रियनिग्रह से ब्रह्म-साक्षात्कार नहीं होता है जबतक प्रेमतत्त्व की व्याप्ति न हो।[३] प्रेम करके उसका निर्वाह न करना भूल है, ऐसे जीव का तन और मन व्यर्थ है ।[४]

नाम-महिमा—दूलनदास ने नाम-स्मरण को अत्यधिक महत्त्व दिया है। जिनके हृदय में राम-नाम का वास हो उन्हीं को नवनिधि और अष्टसिद्धि प्राप्त होती है ।[५] जीव की आयु क्षणप्रतिक्षण घटती जाती है अतः उसे सदैव राम का नाम-स्मरण करना चाहिए ।[६] यह विधि किसी विरले पुरुष को ही ज्ञात होती है। राम-नाम केवल दो अक्षरों का होता है, उसका स्मरण दिन-रात इस ढंग से करना चाहिए कि न जिह्वा हिले और न ओष्ठ ही फड़के ।[७] माता-पिता, पुत्र-कुटुम्बी सभी स्वार्थी होते हैं, वे समय पर साथ छोड़ देते हैं अतः राम-नाम का जप और श्रवणकरना चाहिए ।[८]

बाह्याडम्बरों का विरोध— दूलनदास ने साधना के बाह्याडम्बरों का कटु विरोध किया है। जोगी योग में भटके हुए हैं और पंडित वेद-पुराणों का अध्ययन करते हैं। दूलनदास के अनुसार संसार से वही पार हो सकता है जो आठों पहर नाम-स्मरण करता है ।[९] योगी योग की युक्ति नहीं जानते हैं, कपड़ों को रंगने से क्या हुआ जब मन

---

१. ऐसा रंगरंगै हौं मैं तो मतवालिन होइ हौं।—वही, पृष्ठ १९।

२. ह्वै रस मगन पियौ भर प्याला, माला नाम डोलैं हौं।
कह दूलन सतसाई जग जीवन पिउ मिलि प्यारी कहै हौ।—वही, पृष्ठ २०।

३. पेट टठावहि स्वास गहि, मूँदहिं दसहु दुवार।
दूलन रीझै न प्रेम बिनु, सत्त नाम करतार।।—वही, पृष्ठ ३७।

४. धृग तन धृग मन धृग जनम, धृग जीवन माँहि।
दूलन प्रीति लगाई जिन्ह और निबाही नाँहि ।।—वही, पृष्ठ ३७।

५. दुलन जिनके हृदय, नाम बास जो आय।
अष्ट सिद्ध नौ निधि बिचारी, ताहि छाड़ि कहं जाय।—वही, पृ० २९

६. नाम सुमिरु मन मुरुख अनारी।
छिन छिन जायू घटत जातु है समुझि गह हुसत डौरि संभारी—वही, पृ० १

७. कोई बिरला यहि बिधि नाम कहै।
मंत्र अमोल नाम दुइ अच्छर, बिनु रसना रट लगि रहैं।
होंठ न डोलै जीभ न बोलै, सूरत धरनि दिढाइ गहै।—वही, पृ० २

८. प्रानी जपि ले तू सत नाम।
मात पिता सुत कुटुम कबीला, यह नहिं आवै काम।
सब अपने स्वारथ के संगी, संग न चलै छदाम।—वही, पृ० १०।

९. जोगी भूले जोग जुगत में, पंडित भूले पढ़ते पुरान।
दूलन दास ओही जन तरिगे, आठ पहर जिन सुमिरा नाम।—वही, पृ० २५

पर कोई प्रभाव नहीं है। वह राम-नाम इन अक्षरों का ज्ञान तो नहीं प्राप्त कर सका है परन्तु अपने को विद्वान मानता है। उसके हृदय में सच्ची प्रीति नहीं है फिर ब्रह्म का अनुग्रह कैसे हो।[1] संसार में कोई छोटा या बड़ा नहीं है, हिन्दू और मुसलमान भिन्न नहीं हैं। भूखों को अन्न देकर ब्रह्म का स्मरण ब्रह्म-प्राप्ति का एकमात्र साधन है।[2]

१. जोगी जोग जुगत नहिं जाना।
गेरु घोरि रंगि कपरा जोगी, मन न रंगे गुरु ज्ञाना।
पढ़ेहु न सत्त नाम दुइ अच्छर, सीखहु सो सकल सयाना।
सांची प्रीति हृदय बिनू उपजे, कहूं रीझत भगवाना।—वही, पृ० २५-२६।

२. दूलन छोटे वै बड़े, मुसलमान का हिन्दु।
भूखे देवै भौरियां, सिवै गुरु गोविन्दु ॥—वही, पृ० ३९ :

१८वीं और १९वीं शताब्दी के हिन्दी संतकवि और उनकी दार्शनिक विचारधारा

चरणदास जी—जीवन और विचारधारा।

जीवन—चरणदास जी का जन्म मेवात देश के डेहरा नामक गांव में ढूसर कुल में हुआ था। ये सन् १७०३ ईसवी में उत्पन्न हुए थे और उनासी वर्ष तक जीवित रहे।[१] इनके गुरु श्री शुकदेव जी थे। इनका पूर्व नाम रणजीत सिंह था। पिता मुरलीधर के स्वर्गवास होने पर ये अपने नाना के पास दिल्ली में रहने लगे। इनके जन्म के समय दिल्ली पर मुगल शासक औरंगजेब का शासन था, उसकी मृत्यु के पश्चात् बहादुर शाह ने शासन - सूत्र अपने हाथ में लिया, पाँच वर्ष तक सिखों के साथ लड़ाई हुई। सन् १७३८ में नादिरशाह का आक्रमण हुआ जिसने हत्याकाण्ड करके रक्त की नदी प्रवाहित की। उसके पश्चात् १७४८ से १७५४ तक अहमदशाह और सन् १७५९ में शाहआलम शासक हुआ जो चरणदास जी के गुप्त होने के समय तक नाममात्र को राज्य करता रहा।[२]

चरणदास जी को बाल्यकाल से ही परमार्थ की इच्छा थी। ये ईश्वर के बिरह में जंगलों में रोया करते थे। देश-भ्रमण करने के पश्चात् ये दिल्ली में रहने लगे, इन्होंने दिल्ली में १४ वर्ष तक योगाभ्यास किया, वहीं, सत्संग में इन्होंने अनेक शिष्यों को ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश दिया। इनके मुख्य शिष्यों की संख्या ५२ बतलाई जाती है और इस के अनुसार चरणदासी सम्प्रदाय की ५२ शाखाएं भी प्रसिद्ध हैं।[३] सहजोबाई और दयाबाई इन्हीं की शिष्या थीं। इनकी रचनाओं में बारह प्रमुख हैं जिनके नाम इस प्रकार से हैं—

१. ब्रज-चरित्र
२. अष्टांगयोग-वर्णन
३. योग सदेह सागर
४. पंचोपनिषद्
७. धर्म जहाज़ वर्णन
८. अमरलोक अखण्डधाम-वर्णन
९. ज्ञान स्वरोदय
१०. मन विकृतकरण गुटका सार

---

१. चरनदास जी की बानी (भाग १) संस्करण १९५२, पृ० १।
२. वही, पृ० १।
३. उतरी भारत की संत-परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, २००८ वि०, पृ० ५९९।

५. भक्ति पदार्थ वर्णन ११. शब्द
६. ब्रह्मज्ञान सागर १२. भक्ति सागर

चरणदास जी की बानी में माधुर्य है। इन्होंने भगवत्-भक्ति, ब्रह्मज्ञान, और शब्द-योग का वर्णन किया है। इनकी बानी बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से दो भागों में प्रकाशित है।

चरणदास की विचारधारा

ब्रह्म—चरणदास के अनुसार ब्रह्म अवर्णनीय है, जीव में उतनी बुद्धि नहीं है कि वह ब्रह्म के गुणों का वर्णन करे। ब्रह्मा भी चार मुखों से ब्रह्म का गान करता है परन्तु उसे पाने में असमर्थ है।[1] जीव ब्रह्म का दास है, ब्रह्म स्वामी है।[2] वेदपुराणों में ब्रह्म को आदि और अनादि कहा गया है।[3] ब्रह्म जीव में ही विद्यमान है, शरीर में ही देवालय है, तीर्थ हैं और ब्रह्म का प्रकाश है।[4] ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, जड़ और चेतन उसी का रूप है, वह अखण्ड और व्यापक है।[5] ब्रह्म रूपी सरिता का आदि और अन्त नहीं है। वेदभी नेति-नेति कहते हैं।[6] ब्रह्म-निर्गुण है, वेद और पुराण भी उसके रहस्य को नहीं जान सकते हैं, चार-आश्रम, स्वर्ग-नरक, प्रेम-नियम और योग से उसकी प्राप्ति नहीं होती है। ब्रह्म एक है अखण्ड है, अविचल है, ज्ञान-अज्ञान से मुक्त और माया से निर्लिप्त है।[7]

---

१. तव गुन करूँ बखान यह मेरी बुद्धि कहाँ है।
चतुर मुखी ब्रह्मा गुन गावैं तिनहुँ न पायो जान।
चरनदास की बानी (भाग १), संस्करण १९५२, पृ० ४४।

२. तुम साहब करतार हो हम बंदे तेरे।—वही, पृ० ५४।

३. आदि अनादि जुगादि तेरो जस बैद पुरानन गायो।—वही, पृ० ४३।

४. घट मैं खेलि ले मन खेला।
सकल पदारथ घट ही माहीं हरि सूं होय जो मेला।
घट मैं देवल घट मैं जोती, घठ मैं तीरथ सारे।— वही, पृ० ४९।

५. घट घट मैं रमता रमि रहैव।
चेतन तजै भजै जल पाहन, मूरख भ्रम मैं भ्रमि रहैव।
एक अखण्ड रहैव सब व्यापक, लख चौरासी समि रहैव॥—वही, पृ० ५२।

६. ब्रह्म दरियाव नहि वार पारा।
आदि अरु मध्य कहुं अंत सूझै नहीं।
नेत ही नेत बेदन पुकारा।—वही, भाग २, पृ० १३।

७. सो लखि हम निर्गुन झरि लाई।
जहां न बेद कितेब पहुचैं नहीं ठकुराई।
चारि बरन आस्रम नाहीं नहीं कर्मनन काई।

उसकी न कोई रेखा है न रंग। वह अकथनीय है, अदृष्ट है परन्तु सब में व्याप्त है।[१] जीव निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, ब्रह्म अमर है, उस अलक्ष निरंजन की ज्योति सर्वत्र व्याप्त है, संसार का कण-कण उसी से प्रकाशित है।[२]

जीव : जीव संसार में आकर अपना समय व्यर्थ गंवाता है। सारी आयु विषय-सुखों में व्यतीत करता है परन्तु अन्त में पछताता है।[३] जीव के सांसारिक सम्बन्ध मिथ्या हैं, वे न पूर्ण संसारी रहते हैं और न पूर्ण आध्यात्मिक, प्रेम और भक्ति से वे वंचित रहते हैं।[४] जब तक जीव आत्मज्ञान प्राप्त नहीं करता है तबतक उसे मुक्ति नहीं मिलती।[५] जीव नश्वर है, अनेक प्रयत्न करने पर भी जीव काल के प्रहार से नहीं बच सकता है।[६] मनुष्य को इस शरीर पर घमण्ड नहीं करना चाहिए। यह ओले और काँच के बर्तन की

नरक अरु बैकुंठ नाहीं नहीं तन ताई।
प्रेम अरु जहं नेम नामी लगन ना लाई।
आठ अंग जहं जोग नाहीं नहीं सिद्धाई।
आदि अरु जहं अंत नाही नहीं मध्याई।
एक ब्रह्म अखण्ड बिचल माया ना राई।
ज्ञान अरु अज्ञान नाहीं नहीं मुक्ताई।—वही, भाग, २, पृ० १३४-१३५।

१. हो अवगति जो जानै सोई जानै।
सब की दृष्टि परै अबिनासी कोई काई जन पहिचानै।
रेख जहां नहि खिंच सकै रे ठहरै ना वहां राई।
— — —
अति असूंघ अदृष्ट अकथ है कहि सुनि सकै न कोई।
सर्बस मैं अरु सब देसन मैं सर्व अंग सब माही।—वही, भाग २, पृष्ठ १३९।

२. इन नैनन निराकार लहा।
कहन सुनन की कौन पतीजै, जान अजान ह्वै सहज रहा।
जित देखौं तित अलष निरंजन, अमर अडोल अबोल महा।
जोति जगत बिच झिलमिल झलकै, अगम अगोचर पूरि रहा।
—वही, भाग २, पृ० १८८।

३. अरे नर जन्म पदारथ खोया रे।
बीती अवधि काल जब आया सीस पकरिकै रोया रे।—वही, भाग २, पृ० १७७।

४. जो नर इत कै भयै न उत कै।
उत को प्रेम भक्ति नहि उपजी, इत नहि नारी सुत के।—वही, भाग २, पृ० ४९

५. आतम ज्ञान बिना नहि मुक्ता, बेद भेद करि देखा जाये।—वही, भाग १, पृ० ५२

६. थिर नहि रहना है आखिर मौत निदान।
देखत देखत बहुतक बिनसे आवत तुम्हारी बारि।
जतन करौ कोई नाना विधि के बचै नहीं नर नारि॥—वही, भाग १, पृ० ६८

भाँति क्षणभर में नष्ट हो जाता है।[1] यह सुन्दर काया एक ही ठोकर से नष्ट हो सकती है।[2]

जगत्—चरणदास के अनुसार संसार भ्रम है, इसमें मनुष्य उलझा रहता है। संसार से मुक्ति पाना अत्यंत कठिन है।[3] इस संसार में एक क्षण का भी भरोसा नहीं है, शरीर-रूपी पिंजरे से प्राण-रूपी पक्षी को निकलने में समय नहीं लगता है।[4] संसार को सत्य मानकर धनी और निर्धन दोनों नष्ट हो जाते हैं।[5] अंजुली के जल की भाँति श्वास-रूपी पूँजी दिन-प्रतिदिन घटती जाती है।[6] संसार में कमल की भाँति निर्लिप्त रहना चाहिए।[7]

साधनापक्ष—चरणदास ने साधना-पक्ष में गुरु को बड़ा महत्त्व दिया है। इनके अनुसार बिना गुरु-सेवा के योग, दान, जप, तप और तीर्थयात्रा निष्फल है।[8] गुरु के बिना जीव अज्ञानांधकार में रहता है।[9] गुरु का महत्व ईश्वर से अधिक है। ईश्वर के रूठ जाने से कोई भय नहीं होता है क्योंकि उपदेश देने वाला गुरु साथ-साथ रहता है।[10] गुरु-निंदक कभी मुक्त नहीं हो सकता है। वह चौरासी योनियों में भटककर अनेक प्रकार दुःख झेलता है।[11] गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता है, ज्ञान की प्यास नहीं बुझती,

---

१. या तन कौ कह गर्ब करत है, ओला ज्यों गलि जावै रे।
जैसै बरतन बनौ काँच कौ ठसक लगै बिनसावै रे।—वही, भाग १, पृ० ७०।

२. तन का तनिक भरोसा नाहीं, काहे करत गुमाना रे।
ठोक लगै नैकहूं चलतै, करि हैं प्रान पयाना रै।—वही, भाग १, पृ० ७१

३. साधो भरमा यह संसारा।
गति मति लौक बड़ाई, उरझै कैसे हो छुटकारा।—वही, भाग १, पृ० ५१

४. दम का नहीं भरोसा रे, करिले चलने का सामान।
तन पिंजरे सूं निकस जायगौ, पल मैं पंछी प्रान।—वही, भाग १, पृ० ७२।

५. इस जग भरोसे ख्वार हो गये साह और अमीर।—वही, भाग १, पृ० ७७।

६. भाई रे अवधि बीती जात।
अंजुली जल घटत जैसे तारे ज्यों परभात।
स्वाँस पूँजी गाठि तेरे सौ घटत दिन रात।—वही, भाग १, पृ० ८०।

७. प्रीत जगत की छोड़ दे, जब हौवै निर्वास।
जग माहों ऐसे रहौ, ज्यों अंबुज सर माहि।—वही, भाग १, पृ० २१।

८. जोग दान जप तीरथ नाना, गुरु सेवा बिन निरफल जाना।—वही, भाग १, पृ० ६

९. गुरु सेवा बिन घट अंधियारा, कैसे प्रगटै ज्ञान उजारा।—वही, भाग १, पृ० ६।

१०. हरि रूठै कुछ डर नहीं, तू भी दे छुटकाय।
गुरु को राखौ सीस पर, सब विधि करै सहाय।—वही, भाग १, पृ० ६।

११. गुरु निंदक नहिं मुक्ति महा गर्भ फिरि आवई।
चौरासी लख मुक्ति महा दुख पावई॥—वही, भाग १, पृ० ६।

मनुष्य अँधेरे में इधर-उधर भटकते हैं ।[1]

प्रेमतत्त्व—चरणदास भी अन्य सन्तों की भाँति ब्रह्म को प्रियतम और स्वयं को नारी मानते हैं । वे 'इश्क' में दीवाने हैं, बिना जल की मछली की भाँति उनकी आत्मा तड़पती है । वह चकोर और पपीहे की भाँति प्रिय के विरह में व्याकुल है ।[2] जीव-रूपी नारी सदैव सुहागिनी होती है । ब्रह्म-रूपी प्रियतम से मिलकर वह मस्त है ।[3] चरणदास ने नारी-रूप की निन्दा की है, कनक और कामिनी ने संसार में देव, दानव, गन्धर्व और इन्द्र को ठग लिया है । सावित्री ने ब्रह्मा और पार्वती ने महादेव को वश में किया है । हरि ने भी लक्ष्मी के साथ लीन होने के लिए अवतार धारण किया है ।[4]

योग—अन्य सन्तों की भाँति चरणदास ने भी योग को महत्त्व दिया है और यौगिक शब्दावली का प्रयोग किया है । उनके अनुसार अनहद नाद का ध्यान करने से जीव ब्रह्म-रूप हो जाता है ।[5] मनुष्य के मस्तक में एक सहस्रदल कमल है जहाँ अनहद का श्रवण होता है ।[6] योग की युक्ति बड़ी कठिन है, मूलाधार के सभी चक्रों को वश में करना, पद्मासन का प्रयोग, चन्द्र और सूर्य को एक स्थान पर लाना, सहजसाधना और प्राणायाम, ये योग की ही प्रक्रियायें हैं ।[7]

---

१. गुरु बिन तपन बुझै नहीं, प्यासा नर जावै हो ।
बहुत मनुष्य ढूँढत फिरै, अँधेरे गुरु सेवै हो ।—वही, भाग २, पृ० १५७ ।

२. सुधि बुधि सब गइ खोय री मैं इश्क दीवानी ।
तलफत हूं दिन रैन ज्यों मछली बिन पानी ।
... ...
जैसे चकोर रटत चन्दा को जैसे पपीहा स्वाँती ।
ऐसे हम तलफत प्रिय बिरह बिया यहि भाँति ।।—वही, भाग १, पृ० १२ ।

३. तू सदा सोहागिन नारी है ।
प्रिय के संग मिली मद पीवै तातै लागत प्यारी है ।—वही, भाग १, पृ० ३४ ।

४. छलै सब कनक कामिनी रूप ।
सुर असूर अरु जच्छ गन्धर्व, इन्द्र आदिक भूप ।
सावित्री बस कियौ ब्रह्मा पारबती त्रिपुरारि ।
करत लीला संग लक्ष्मी, हरि लियौ औतार ।—वही, भाग १, पृ० ७३ ।

५. करते अनहद ध्यान के ब्रह्म रूप हो जाय ।—वही, भाग १, पृ० ३६ -

६. गगन मध्य जो कँवल है बाजत अनहद तूर ।
दल हजार को कमल है पहुँच गुरु मत सूर ।—वही, भाग १, पृ० ३६ ।

७. ऐसी जोग जुक्ति गति भारी ।
मूलहि बँध लगाय जुक्ति सूँमंदि दई नव नारी ।
आसन पद्म महा ढूँढ़ कीन्हीं हिरदय चिबुक लगाई ।
चन्द सूर दोउ सम केरि राखै निरति सुरति घर आई ।।
—वही, भाग २, पृ० १६८ ।

बाह्याडम्बरों का विरोध :—चरणदास ने साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उनके अनुसार माला फेरने से कोई लाभ नहीं है, यदि मन की माला में कोई परिवर्तन नहीं आता है। पाप करते-करते मानव जन्म व्यर्थ में नष्ट हो जाता है।[1] कथनी और करनी में भेद नहीं करना चाहिए।[2] माला पहनने, तिलक लगाने और पूर्व या पश्चिम में फिरने से क्या होता है। ब्रह्म अपने समीप है। हिरण की नाभि में ही कस्तूरी रहती है परन्तु वह उसे ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर भटकता है।[3] ब्रह्म भी जीव के साथ है, उसे अन्यत्र खोजना व्यर्थ है।

पलटू साहब

पलटू साहब के जीवन के विषय में अत्यल्प सामग्री उपलब्ध है अत: निश्चित रूप से इनके विषय में कुछ कहना कठिन है। मान्यता यह है कि इनका जन्म नगपुर जलालपुर (जिला फैज़ाबाद) में हुआ था जहाँ आज भी इनके वंशज हैं। इन्होंने भीखा साहब की शिष्य-परम्परा में शिक्षा प्राप्त की। ये काँदू बनिया जाति के थे जिसका संकेत इन्होंने स्वयं दिया है।[4] ये आरम्भ में गृहस्थ थे परन्तु इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि ये अंत में मूँड मुड़ाकर विरक्त बन गए थे।[5] पलटूसाहब के जन्म और मरण की तिथियाँ अभी तक अज्ञात हैं इनके आविर्भाव काल के विषय में अभी तक अनुमान से ही काम लिया जाता है। इनकी रचनाओं से यह तथ्य निकलता है कि ये अंत में अयोध्या में रहने लगे थे।[6]

इनका समय विक्रम की १९ वीं शताब्दी है, ये अवध के नवाब शुजाउदौला और

---

१. माला फैरे कहा भयौ।
अन्तर के मन को नहिं फैरा पाप करत सब जनम गयौ।
—वही, भाग २, पृ० १७१।

२. करनी की गति और है कथनी की औरे।
बिन करनी कथनी कथै कब बादी बौरे।—वही, भाग २, पृ० १७०।

३. माला तिकल बनाय पूर्व अरु पच्छिम दौरा।
नाभि कँवल कस्तूरि हिरन जंगल मौ बौरा॥—वही, भाग १, पृ० ५७।

४. बनिया जाति मैं अधक बड़ा हौं पातकी।
अधरम आठि गाँठ तनिक नहिं सातुकी।
—पलटू साहब की बानी (भाग २), सन् १९१५, पृ० ९९।

५. सहर जलालपुर मूँड मुडाइनि अवध तोरिनि करघनियाँ।
पलटूदास सतगुरु बलिहारी, पाइनि भक्ति अमानियाँ।
—वही, भाग ३, सन् १९१५, पृ० ७९।

६. अवधपुरी में जारि मुए दुष्टन दिया जराइ।
जगन्नाथ की गोद में पलटू सूते जाइ।—वही, भाग १, पृ० २।

हिन्दुस्तान के सम्राट शाहआलम के समकालीन थे।[१] इनकी समाधि अयोध्या से चार मील दूर बनी है जहां इनके अनुयायी रहते हैं। इस स्थान को पलटू साहब का अखाड़ा कहा जाता है।

पलटूसाहब की अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं जो बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद से तीन भागों में प्रकाशित हैं। प्रथम भाग में दो सौ छासठ कुंडलियाँ संकलित हैं, द्वितीय भाग में रेख्ते, झूलने, अरिल्ल, कवित्त और सवैये हैं और तृतीय भाग में उनके शब्द और साखियों का संकलन है। इनकी भाषा अत्यंत सरल, स्पष्ट और ओजपूर्ण है। कहीं-कहीं इनके काव्य में कबीर की सी पदावली मिलती है।[२] अतः इन्हें द्वितीय कबीर कहा जाता है।[३]

पलटू साहब की दार्शनिक विचारधारा :

ब्रह्म—पलटूदास के अनुसार ब्रह्म एक है उसी से अनेक जीव आते हैं और पुनः उसी में समा जाते हैं।[४] ब्रह्माण्ड और घट एक है समस्त संसार भटकता फिरता है।[५] पलटूदास के अनुसार इस ब्रह्म की गति न्यारी है इसे ब्रह्म ही जान सकता है। जब जीव में 'अहंतत्त्व' नहीं होता है तब उसे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। उसका स्वाद गूंगे का गुड़ है जो व्यक्त नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार नदी और तरंग में कोई भेद नहीं है, प्रकाश और मोमबत्ती में कोई अंतर नहीं है उसी प्रकार जीव और ब्रह्म वास्तव में एक हैं इनमें कोई अन्तर नहीं है। पूर्ण ब्रह्म जीव के शरीर में ही व्याप्त है, तीर्थ-स्थानों में ब्रह्म को खोजना व्यर्थ है, वह निम्न कोटि के जीवों में भी विद्यमान है और कण-कण

---

१. वही, पृ० १।

२. (अ) घूंघट को पट खोलौंगी, जोगिन ह्वै के डालौंगी,
—पलटू साहब की बानी, भाग ३, सन् १९१५, पृ० २४।
(आ) कोई जाति न पूछे हरि को भजै सो ऊंचा है।—वही, पृ० ६०।
(इ) खालिक खलक खलक में खालिक ऐसा अजब जहूरा है।—वही, पृ० ८०।

३. उत्तरी भारत की संत परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४९२।

४. एक अनेक अनेक फिर एक है,
एक ही एक ना और कोई।
—पलटूसाहब की बानी, भाग २, सन् १९१५, पृ० ६।

५. जब मैं नाहीं तब वह आया, मैं ना वह यह कौन माने।
गूंगे ने गूड़ खाइ लिया, ज़बान बिना क्या सिफल आने।
दरियाव औ लहर तो दोइ नहीं, समा और रोसनी कौन छानै।
पलटू भगवान की गति न्यारी, भगवान की गति भगवान जानै।
—वही, पृ० ६३।

में व्याप्त है। अज्ञानी पुरुष उसे ग्रन्थों में ढूँढते हैं जहाँ वह गुप्त रहता है।[१] ब्रह्म पूर्ण पुरुष है जिसका न रूप है, न रंग है और न रेखा। वह संसार में स्वप्नवत आभासित होता है।[२] निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार के समय मुख से वचन नहीं निकलते हैं, काजी को भी माला, पोथियां आदि बाह्याडम्बर लगते हैं, पंडित वेद नहीं पढ़ता है, तीर्थ यात्रा नहीं करता, वैराग्य और त्याग को नहीं अपनाता है उस समय ब्रह्मसाक्षात्कार होता है।[३] जीव अहंत्व और ममत्व के कारण प्रत्येक वस्तु को अपना मानता है जिसके फलस्वरूप वह चौरासी लाख यौनियों में भटकता है।[४] निर्गुण ब्रह्म का आदि और अन्त नहीं है, उसका रंग, रूप और रेखा भी नहीं है वह रहस्य है और गुप्त में ही रहता है।[५] पलटूदास के अनुसार ब्रह्म और संसार में कोई भेद नहीं है हज और हाजी में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार फल और बीज एक दूसरे में व्याप्त हैं उसी प्रकार ब्रह्म का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है।[६]

जीव—पलटू साहब के अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं। इनका सम्बन्ध तरंग और जल, पुरुष और प्रतिबिम्ब, स्याही और अक्षर, मिट्टी और घड़े, स्वर्ण और आभूषण का है।[७] जिस प्रकार जल से तरंग उठती है और पुनः जल में ही

---

१. पूरन ब्रह्म रहै घट में, सठ तीरथ कानन खोजन जाई।
कीट पतंग रहै परिपूरन, कहु तिल एक न होत जुदा ही।
नैन दियौ हरि देखन को, पलटू सब में प्रभु देत दिखाई।
ढूँढत अंध गरंथन में, लिखि कागद में कहु राम लुकाही।—वही, पृष्ठ १०७।

२. पलटू पुरुष पुरान वह रंग रूप नहिं रेखा।
जागत में एक सूपना मोहि पड़ा है देख।—वही, भाग १, पृष्ठ ८०।

३. जा को निरगुन मिला है भूला सरगुन चाल।
भूला सरगुन चाल बचन ना मुख से आवै।
तसवी और किताब नहीं काजी को भावै।
पंडित पढ़े न वेद तीरथ बैरागी त्यागा।—वही, भाग १, पृष्ठ १०५।

४. साहिब मेरा सब कुछ तेरा अब नाही कुछ मेरा है।
यहि हमता ममता के कारण चौरासी किहा फेरा है।—वही, भाग ३, पृष्ठ ४०।

५. आदि अन्त अरु मध्य नहिं, रंग रूप नहिं रेखा।
गुप्त बात गुप्तै रही, पलटू तोपा देख।।—वही, भाग ३, पृष्ठ ४५।

६. खालिक खलक खलक में खालिक ऐसा अजब जहूरा है।
हाजी हज्ज हज्ज में हाजी हाजिर हार हजूरा है।
फल में फूल फूल में फल है रोसन नबी का नूरा है।—वही, भाग ३, पृष्ठ ८०।

७. जोई जीव सोई ब्रह्म एक है, दृष्टि अपानी चर्मा।
जिव से जाइ ब्रह्म तब होता, जिव बिनु ब्रह्म न होई।
फल में बीज बीज में फल है, अवर न दूजा कोई।
नीर में लहर लहर में पानी, कैसे कै अलगावै।

समाती है वैसे ही जीव हरि में समा जाता है। वेद और पुराणों में यही समस्या है। पुष्प की सुगन्धि, काठ की अग्नि, दूध में घी और घड़े में जल की भांति ब्रह्म और जीव एक है।[1] जीव संसार में आकर काल ग्रस्त होता है। जीवन का अल्प समय व्यतीत कर वह नष्ट होता है।[2] राम-स्मरण न करने के कारण उसे दुःख उठाना पड़ता है। जिसने न कभी सत्संग किया हो, न कभी भूखे को अन्न दिया हो, सदैव भ्रम में भटकता है, सांसारिक सम्बन्ध देखकर आनन्दित होता है, वही संसार में अपना शरीर स्वयं नष्ट कर देता है।[3]

संसार—पलटूदास के अनुसार संसार रात्रि के स्वप्न की भांति है, भ्रम है, नश्वर है और अस्थिर है।[4] इसमें कोई हितकारी नहीं होता है, जिसको प्रेम करो वही वैरी बन जाता है।[5] यदि जीव समस्त सुख त्याग दे, वैरागी बने परन्तु राम-नाम का स्मरण न करे तो उसके त्याग और वैराग्य का कोई लाभ नहीं है।[6] संसार को माया ने

छाया में पुरुस पुरुस में छाया, दुइ कहवां से कहिये।
गहना कनक कनक में गहना, समझि चुप्प करि रहिये।
जीव में ब्रह्म ब्रह्म में जीव है, ज्ञान समाधि में सूझै।
माटि में घड़ा घड़ा में माटी पलटूदास यों बूझै॥—वही, भाग ३, पृष्ठ ५३।

१. जल से उठत तरंग है जल ही माहि समाय।
जल ही माहि समाय सोई हरि सोई माया।
अरुझा बेद पुरान नहीं काहू सुरझाया।
फलू महै ज्यौं बास काठ में आग छिपानी।
दूध महै घिउ रहे नीर घट माहि लुकानी।
जो निर्गुन से सर्गुन और न दूजा कोई।
दूजा जो कोइ कहै ताहि को पातक होई।
पलटू जीव और ब्रह्म से भेद नहीं अलगाय।
जल से उठत तरंग है जल ही महि समाय।—वही, भाग १, पृष्ठ ८०।

२. जीवन है दिन चार भजन करि लीजिये॥—वही, भाग २, पृष्ठ ७५।

३. नहीं मुख राम गाओगे, आगे दुख बड़ा पाओगे।
राम बिन कौन तोरेगा, पकड़ जमदूत मारैगा।
कबै सतसंग ना कीन्हा, भूखे को नहिं कुछ दीन्हा।
माया और मोह में भूले, कुटुम परिवार लखि फूले।
पूंछ धर्मराज जब भाई, वचन मुख नाहिं कहि आई।
पलटूदास लखि रोया, सुधर तन पाया के खोया।—वही, भाग ३, पृष्ठ ४३।

४. यह संसार रैन का सुपना, रूपा भ्रम सीपी केरा है।—वही, भाग ३, पृष्ठ ४०।

५. पलटू यहि संसार में कोऊ नाही हीत।
सोऊ बैरी होत है जा को दीजै प्रीत॥—वही, भाग ३, पृष्ठ १०२।

६. संसार सुख छांडि कै भया फक्कीर तू।
भया फक्कीर क्या स्वाद पाया॥—वही, भाग २, पृष्ठ २६।

अपने वश में किया है, योगी,यती और सिद्ध तपस्वी भी माया के वश में हो जाते हैं।[1] संसार में केवल संत का ही महत्त्व है, सन्त के ही भिन्न अवतार होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश वही है वही संसार का मुकुट है।[2] संसार झूठा है, झूठ पर सभी विश्वास करते हैं परन्तु इसका स्थान नरक में होता है। संसार में पाखण्ड के पीछे सभी दौड़ते हैं संतों के पास कोई नहीं आता है।[3] जीव यहाँ स्वर्ण की झलक देखकर भ्रमित होता है, इसको बनने में दस मास लग जाते हैं परन्तु एक क्षण में उसका नाश हो जाता है।[4] यहाँ राजा और रंक दोनों काल-चक्र में पिस जाते हैं।[5] समस्त संसार भटका हुआ है।[6]

माया—अन्य सन्तों की भाँति पलटूसाहब भी माया को ठगिनी मानते हैं। समस्त संसार को ठगने वाली माया ही है। यह देवताओं के घर में अप्सरा और योगियों के घर में शिष्या के रूप में बैठी है। इसी ने देव और मानव दोनों को भ्रष्ट किया है।[7] माया से जो परे है वह सत्य है। माया अपनी मीठी वाणी से मनुष्य को ज्ञानच्युत कर देती है। यह वह काला सर्प है जिसका काटा हुआ पानी भी नहीं माँग सकता है। पलटू-

---

१. माया संसार को जीति आई, संसार चला सब हरि है जी।
जोगी जती और सिद्ध तपी, उनको भी लेती मारि है जी॥
—वही, भाग २, पृष्ठ ५८।

२. सब मैं बड़े हैं सन्त दूसरा नाम है।
तिसरे दस औतार तिन्है परनाम है।
ब्रह्म बिसुन महेस सकल संसार है।
अरे हाँ पलटू सब के ऊपर सन्त मुकुट है।—वही, भाग २, पृष्ठ ७५।

३. झूठा सब संसार झूठे पतियात है।
दुइ झूठे इक ठौरा नरक में जात है।
जहवाँ सुनै पखण्ड तहाँ सब धावते।
अरे हाँ पलटू संतन के रे पास कोऊ नहि आवत॥—वही, भाग २, पृष्ठ ८१।

४. भूलि रहा संसार काँच की झलक में।
बेनत लगा दस मास उजाऊ पलक में।—वही, भाग २, पृष्ठ ८३।

५. राजा रंक फकीर गुजर दिन दोइ है, चलती चक्की बीच परा जो जाइ कै।
—वही, पृष्ठ ८४।

६. भूला एक न दोय सकल संसार है।—वही, भाग २, पृष्ठ १०३।

७. माया हमैं अब जानि बगदावो,
तुम तो ठगिनी जग बौरावो,
देवन के घर भइउ अपसरा,
जोगी के घर चेली,
सुर नर मुनि तौ सब ही खायो,
होइ अलमस्त अकेली।—वही, भाग ३, पृष्ठ ५५।

दास के अनुसार माया काल है जो किसी को नहीं छोड़ता है।[1] इसने समस्त संसार को दुःखी किया है।[2] इसी के परिणामस्वरूप जीव भौतिक सुखों के पीछे पड़ता है, अपना सुन्दर शरीर बिना राम-भजन के नष्ट करता है।[3] माया जीवों को विष घोलकर देती है जिससे नाश होता है।[4] माया का प्रभाव दिन-रात चलता है वह जंजाल है।[5] माया और वैराग्य में बड़ा वैर है, मनुष्य वैराग्य चाहता है परन्तु माया में फँसता है। विष पिया हुआ मनुष्य मृत्यु पाता है वैसे ही माया से बद्ध जीव नष्ट होता है।[6]

प्रेमतत्त्व—सन्त पलटूदास ने अन्य सन्तों की भाँति अपने को प्रेमिका और ब्रह्म को प्रियतम माना है। ब्रह्म की ध्वनि का श्रवण कर प्रियतमा मस्त हो जाती है, वह 'पिया पिया' की रट लगाती है।[7] प्रेमी का घर अत्यन्त दूर है वहाँ कोई योगी ही पहुँच सकता है।[8] प्रेममार्ग अति कठिन है यह सरल कार्य नहीं है। इसमें अपने महत्त्व को

---

१. सोई है अतीत जो तौ माया ते अतीत।
माया ठगिनी ठगा संसार, सुर नर मुनि बोरे मंझधार।
माया बोले मीठी बोल, गाँठ से ज्ञान ध्यान लेइ खोल।
माया है यह काली नाग जेहि का काटै पानी सकै न माँग।
पलटूदास माया यह काल, भागि बजे साहिब के लाल।
—वही, भाग ३, पृष्ठ ५६-५७।

२. माया के फन्द से बचा ना कोऊ है,
माया ने किहा संसार सोगी है।—वही, भाग २, पृष्ठ ३८।

३. माया की लहर संसार सब मगन है।
खाय भरि पेट भरि नींद सोया।
राम को नाम नहिं चेत सपनेहु किहा,
सुभग तन पाइ कै वृथा खोया॥—वही, भाग २, पृष्ठ ३८।

४. माया कलवारिनी देत विष घोरि कै,
पिये विष ना कोऊ भागै॥—वही, भाग २, पृष्ठ ३६।

५. माया यार फकीर कहै जंजाल है।—वही, भाग २, पृष्ठ ८४।

६. माया औ वैराग दोऊ में वैर है।
लिये कुल्हाड़ी हाथ मारता पैर है।
किया चहै वैराग मया में जायगा।
अरे हाँ पलटू जो कोई माहुर खाइ सोई मरि जायगा।—वही, भाग २, पृष्ठ ६०।

७. मेरे तन मन लग गई पिय की मीठी बोल।
पिय की मीठी बोल सुनत मैं भई दिवानी।—वही, भाग १, पृष्ठ २७।

८. आसिक का घर दूर है पहुँचे विरला कोय।
पहुँचे विरला कोय होय जो पूरा जोगी॥—वही, भाग १, पृष्ठ ३३।

त्यागना पड़ता है।[१] पलटूदास ने प्रेम का आदर्श जल और मीन को माना है। मछली बिना जल के प्राण त्याग करती है।[२] संसार में प्रेमिका अपने प्रियतम को खोजते-खोजते अपनी सुध-बुध खो देती है, 'पिय' की रट लगाती है।[३] वास्तविक प्रेमी रात-दिन प्रेम में मस्त रहता है, उसे न भूख लगती है न नींद आती है, वह केवल ब्रह्म का प्रेम चाहता है।[४] पपीहे की रटन से प्रियतमा का हृदय धड़कता है, सोते हुए भी वह चौंक उठती है, प्रियतम के बिना उसका जीवन छाया की भाँति महत्त्वहीन रह जाता है।[५] पलटूदास कहते हैं कि बिना सगाई के उसका ब्रह्म से विवाह हो गया।[६] पिया के सामने मान नहीं करना चाहिए हठ को छोड़कर सत्संगति से प्रियतम का साक्षात्कार करना चाहिए। अपना तन, मन और धन अर्पण कर प्रेम-मदिरा का पान करना चाहिए। प्रियतमा घूँघट के पट खोल कर जोगन बनना चाहती है। लोक-लज्जा और मान मर्यादा छोड़कर वह प्रियतम से हास-क्रीड़ा करती है। वह रात्रि और दिवस में निरन्तर ज्ञान के ढ़ोल बजाती है। प्रियतम के प्रेमासव को पीकर प्रियतमा मस्त हो जाती है। अपने शरीर और समस्त संसार को वह विस्मृत कर देती है।[७]

साधना-पक्ष—पलटूदास ने साधना पक्ष में गुरु, हठयोग, साधुसंगति और ज्ञान को महत्त्व देकर बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। इन्होंने गुरु की प्रशंसा की है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा आवश्यक नहीं है गुरु का ध्यान करना चाहिए, ब्रह्म काया में ही विद्यमान है। काशी जाना, पंचकोश का ज्ञान, अजपाजप, अनहद नाद-श्रवण तथा

---

१. यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
खाला का घर नाहिं सीस जब धरै उतारी।—वही, भाग १, पृष्ठ ३२।

२. पलटू ऐसी प्रीति करु जल और मीन समान।
जहाँ तनिक जल बीछुड़े छोड़ि देत है प्रान।—वही, भाग १, पृष्ठ ३४।

३. सुन्दरी पिया की पिया को खोजती भई बेहोस तू पिया के कै।
बहुत सी पद्मिनी खोजती मरि गई, रटत ही पिया पिया एक एकै।
—वही, भाग २, पृष्ठ २३।

४. नहिं भूख लागै नहिं नींद आवै, नहि पीवत है नहि खात है जी,
पलटू हम बूझि विचारि देखा. वही साहब की जीति है जी।
—वही, भाग २, पृष्ठ ४।

५. पिया पिया बोले पपीहा, सबद सुनत फाटै हीया है।
सोवत से मैं चौंकि परी हौं धकर धकर करै जीया है।
पिय की सोच परी अब मो को बिनु जीवन छाया है।—वही, भाग ३, पृष्ठ २०।

६. साहिब से लागी री सजनी, मेरौ ब्याह भयौ बिन मँगनी।
—वही, भाग ३, पृष्ठ २१।

७. पिया है प्रेम का प्याला, हुआ मन मस्त मतवाला।
भया दिल होस से भाई, बेहोसी जगत बिसराई।—वही, भाग ३, पृष्ठ २८।

योग-प्रक्रिया में पद्मासन का अभ्यास व्यर्थ है। सभी जापों को छोड़कर गुरु का स्मरण और ध्यान करना चाहिए।[१] गुरु के ज्ञानोपदेश से ही साधक इन्द्रियों को वश में करता है।[२] सतगुरु की कृपा से ज्ञान का दीपक प्रकाशित होता है और अज्ञानांधकार मिटकर चारों दिशाएँ उज्ज्वल हो जाती हैं। उस समय साधक को यह ज्ञान हो जाता है कि ब्रह्म घट-घट में व्याप्त है।[३]

साधु-संगति—ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति के लिए सत्संगति आवश्यक है। बिना सत्संगति के ब्रह्म-नाम का श्रवण नहीं होता, बिना नामस्मरण के मोह नहीं छूटता और मोह से मुक्ति असम्भव हो जाती है।[४] पलटूदास ने सत्संग को वरदान मान लिया है। बिना सत्संग के माया नहीं छूटती है।[५] सत्संगति से आनन्द और ज्ञान की प्राप्ति होती है, दुःख द्वन्द्व और काल का भय नहीं रहता है।[६] जीव को संतों की सेवा में रत रहना चाहिए यही साधक का कर्त्तव्य है, तन-मन साधु-चरणों में अर्पण करना चाहिए। पलटू-

---

१. सकल तजि गुरु ही ध्यान लगै हौं।
ब्रह्मा विस्नु महेस न पुजिहौं ना मूरत चित लैहौं।
जो प्यारा मोरे घट माँ बसतु है वाही को माथ नवैहौं।

— — —

पदम आसन खींच न बैठौ, अनहद नाहिं बजै हौं।
सब ही जाप छोड़ि के साधौ गुरु का सुमिरन लै हौं।—वही, भाग ३, पृष्ठ २-३।

२. गुरु पूरा मिलै ज्ञान साधन करै।
पकरि कै पाँच पच्चीस मारै।—वही, भाग २, पृष्ठ १।

३. सतगुरु साहिब जब मिहर करी, तब ज्ञान का दीपक बारा है जी।
मर्म अंधेरा छूटि गया, दसहूँ दिसि भा उजियारा है जी।
रैन दिवस टूटै नाही लागी ज्यों तेल की धारा है जी।
पलटू कहै मोहि दीख परा, घट घट में ठाकुर द्वारा है जी।
—वही, भाग २, पृष्ठ ४५।

४. बिना सत्संग ना कथा हरि नाम की बिना हरि नाम ना मोह भागै।
मोह भागै बिना मुक्ति ना मिलैगी मुक्ति बिनु नहि अनुराग लागै।
बिना अनुराग से भक्ति ना मिलैगी, भक्ति बिनु प्रेम उर नाहिं जानै।
प्रेम बिनु नाम ना नाम बिनु सन्त ना पलटू सतसंग वरदान मांगै।
—वही, भाग २, पृष्ठ ९-१०।

५. बिना सतसंग ना छूटै माया।—वही, पृष्ठ १०।

६. संतन संग अनन्द पर सुख।
जेकरी संगति ज्ञान होत है, मिटत सकल दुख द्वन्द्व।
उनके निकटकाल नहि आवै, टूट जात जम फन्द॥—वही, भाग ३, पृष्ठ १०।

दास के अनुसार सन्त के उपदेश पर विश्वास करना चाहिए।[1]

ज्ञान—मनुष्य बिना ज्ञान के अन्धा होता है, रोग में भी वैद्य का उपदेश टाल कर लालच करता है जिससे उसका रोग बढ़ जाता है।[2] ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् जीव को संसार झूठा लगता है, वह तब जीव और ब्रह्म के अभेद को जान लेता है। ज्ञान से ही भ्रम का आवरण हट जाता है।[3]

योग—पलटूदास ने योग को भी बड़ा महत्त्व दिया है षट्चक्र निरूपण, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, शून्य सहस्रदल कमल आदि यौगिक शब्दावली का प्रयोग किया है। सहस्रदल कमल सदैव अधोमुख होता है उसी से अमृत बूंद-बूंद में टपकता है, दिन-रात इससे प्रकाश विकीर्ण होता है परन्तु बिना गुरु के इसका ज्ञान असम्भव है।[4] सहस्रदल कमल में भ्रमर गुँजारव करते हैं, वहीं एक मैदान होता है जिसमें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीन घाट हैं। शून्य रूपी सागर सत्य-तत्त्व रूपी जल से भरा रहता है उसके मध्य में सुरति का स्थान है।[5] पलटूदास के अनुसार सहज समाधि के पश्चात् एक ऐसी

---

१. जाय सन्त सेवा में लागि रहै, यही धर्म जिग्यास है जी।
तन मन सेती जब नहिं टरै, करै चरन में बास है जी।
दीन दयाल है संत बड़े जो पुजवै मन की आस है जी।
पलटू जो संत उपदेस करै, कोई कीजै बिस्वास है जी।—वही, भाग २, पृष्ठ ६५।

२. अंजन देय न ज्ञान का अन्धा बना बनाय।
अन्धा भया बनाय बैद की बात न मानै।
विषय बयाला खाय करे संजम ना जानै।
लालच रोगिया करै बैद को दोस लगावै।—वही, भाग १, पृष्ठ ९०।

३. ज्ञान का चाँदना भया आकास में, मगन मन भया हम लखि पाया।
दृष्टि के खुले से नजर सब आयगा, लखा संसार यह झूठि माया।
जीव और ब्रह्म के भेद को बूझि कै, सबद की साच टकसार लाया।
दास पलटू कहै खोलि परदा दिया, पैंटि के भेद हम देखि आया।
—वही, भाग २, पृष्ठ २८।

४. उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वा को दरसावै।—वही, भाग १, पृ०७७।

५. गगन के बीच में ऐन मैदान है एन मैदान के बीच गल्ली।
सहसदल कंवल में भंवर गुंजार है, कंवल के बीच में सेती कल्ली
इड़ा और पिंगला सुखमना घाट है, सुखमना घाट में लगी नल्ली।
सुन्न सागर भरा सत के नाम से तेहि के बीच में सुरति हल्ली।
—वही, भाग २, पृष्ठ ३२-३३।

अवस्था आती है जिसमें योग, प्राणायाम, ध्यान, ज्ञान, वैराग्य, इड़ा-पिंगला की साधना, अनहद शब्द, अजपा-जाप आदि कुछ नहीं रहता है। इस अवस्था को कोई सन्त ही जानता है।[१]

बाह्याडम्बरों का विरोध—ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है परन्तु हिन्दू और मुसलमान उसे भिन्न-भिन्न स्थानों में खोजते हैं। हिन्दू पूर्व में राम का निवास मानते हैं और मुसलमान पश्चिम में। दक्षिण और उत्तर दिशा में फिर कौन रहता हैं, यह भूल है। ब्रह्म सर्वत्र और प्रत्येक कण में व्याप्त है।[२] पंडित वेद पुराण पढ़कर व्यापार करते हैं, माला तिलक आदि आडम्बरों को अपना कर वे स्वयं माया के वश में हो जाते हैं।[३] ब्राह्मण, शूद्र, सैयद और शेख़ में कोई अन्तर नहीं है ये सभी एक हैं।[४] मुसलमान रोज़ा रखकर सायंकाल मुर्गी खाते हैं, आठ बार निमाज़ पढ़कर भी गोमांस खाते हैं।[५] पंडित ने पढ़-पढ़ कर क्या किया जब उसे अपने ही रूप का ज्ञान नहीं है। स्वयं अज्ञानी रह कर वह दूसरों को ज्ञान बताते हैं।[६] तीर्थ-स्थानों में खोजने से कुछ नहीं प्राप्त होता है, पूजा, अर्चना व्रत रखना, वेदाध्ययन, योग-युक्ति आदि ब्रह्मसाक्षात्कार करने में सफल नहीं

---

१. जोग ना जुगत ना प्राणायम, सुन्न में ध्यान ना धरत ध्यानी,
नहि कछु ज्ञान है नहि वैराग है जाय न सकै तह पनव पानी।
— — — —
सहज समाधि के परे की बात है दास पलटू कोई संत जानी।
—वही, भाग २, पृष्ठ ३५-३६।

२. पूरब में राम है पश्चिम खुदाय है, उत्तर और दक्खिन कहो कौन रहता।
साहिब वह कहां है कहां फिर नहीं हैं, हिन्दू और तुरक तौफान करता।
—वही, भाग २, पृष्ठ ५।

३. वेद पुरान पंडित बांचे करता अपनी दूकान है जी।
अरथ कै बूझि कौ टीका करै माया में मन बिकान है॥
—वही, भाग २, पृष्ठ, ६१।

४. ना बाम्हन ना सूद्र न सैयद सैख है, हम तुम कोउ नहिं बालेता एक है।
दूजा कोउ नाहिं यही तहकीक है अरे हां पलटू बात की बात कहा हम ठीक हैं
—वही भाग, २, पृष्ठ ९२।

५. रहते रोजा नित्त सांझ कै मुरगी मारै।
आठो वक्त निमाज़ गाय की कुही निहारै।—वही, भाग २, पृष्ठ १०६।

६. पढ़ि पढ़ि क्या तुम कीन्हा पंडित अपना रूप न चीन्हा।
औरन को तुम ज्ञान बताओ, तुम को परै न बूझी।—वही, भाग ३, पृष्ठ ५७।

होते ।[1] ब्रह्मा न मक्का में है, न ठाकुर द्वारे में, उसका स्थान हिन्दू-मुसलमानों की सीमा से परे है ।[2]

---

१. तिरथ में बहुत हम खोजा, उहा तो नहि कुछ पाया ।
मूरत को पुजि पछताने, नजर में नाहिं कुछ आया ।
मुए हम बर्त के करते बेद को सुना चित्त लाई ।
जोग और जुगति करि पाके, भजन की खबर नहिं पाई ।

—वही, भाग ३, पृष्ठ ५८-५९ ।

२. वह दरबारा भारा साधो, हिन्दू मुसलमान से न्यारा ।
मक्के रहे न ठाकुरद्वारा, है सब में सब खोजन हारा ।—वही, भाग ३, पृष्ठ ५९ ।

हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत कवियों की दार्शनिक विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन

भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न भाषाएँ प्रचलित हैं, भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की जनता है, भिन्न-भिन्न प्रकार के साहित्य का सृजन होता है। परन्तु देश की एकता कुछ इस प्रकार की रही है कि किसी भी प्रदेश का साहित्य दूसरे प्रदेश के साहित्य से भिन्न नहीं है। प्रत्येक शती में एक विशेष वातावरण होता है जिसका प्रभाव लगभग समानतया इस देश की समस्त भाषाओं के साहित्य पर पड़ता है।[1] डा० के भास्करन नायर के अनुसार स्थल का व्यवधान और वातावरण की भिन्नता होने पर भी दो भाषाओं की कृतियों में भाव साम्य और विषय की एकता होती है।[2] यही कारण है मध्यकाल में महान भक्ति-आन्दोलन से अनुप्रेरित होकर राम और कृष्ण सम्बन्धी जो विशाल साहित्य निर्मित हुआ वह हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि सभी भाषाओं में उपलब्ध होता है।[3]

यहां उपशीर्षकों के अन्तर्गत कश्मीरी और हिन्दी निर्गुण संत कवियों की विचारधारा में साम्य देखने का प्रयास किया गया है।

सिद्धान्तपक्ष

ब्रह्म—हिन्दी और कश्मीरी दोनों भाषाओं के निर्गुण संत कवियों ने ब्रह्म को निर्गुण निराकार माना है। संत नामदेव के अनुसार ब्रह्म निराकार है।[4] उसका कोई

---

१. १६ वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, डा० रत्नकुमारी, २०१३ वि०, पृष्ठ ३।

२. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण-भक्ति काव्य, डा० के० भास्करन नायर, १९६०, पृष्ठ २।

३. गुजराती और ब्रज भाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डा० जगदीशगुप्त, १९५७ ई०, पृष्ठ ७।

४. अषंड मंडल निराकार मैं दास नामदेव गावै।

—संतनामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, १९६४, पृष्ठ ३३।

रंग रूप नहीं है।[1] लल्लद्यद के अनुसार ब्रह्म का न कोई नाम है, न रूप और न गोत्र। वह आत्म-स्वरूप और शून्य में वास करने वाला है।[2] कबीर भी इसी भाव को व्यक्त करते हैं कि ब्रह्म का न मुंह है न माथा, न वह कुरूप है न सुरूप। वह ऐसा अनूपतत्त्व है जो पुष्प की सुगन्धि से भी पतला है।[3] कबीर ब्रह्म को सर्वव्यापक मानते हैं वह सृष्टि में व्याप्त है और सृष्टि उसमें व्याप्त है।[4] लल्लद्यद के अनुसार जो कुछ भी है वह ब्रह्म ही है, पृथ्वी, आकाश, रात्रि, दिवस, जल, पवन पुष्प, चन्दन सब ब्रह्म हैं।[5] ब्रह्म निर्गुण है उसी का जप करना चाहिए, उसकी गति अवर्णनीय है।[6] नुंदर्योश भी ब्रह्म को निर्गुण मानते हैं जिसका नाम-स्मरण जीव करता है।[7] गुरुनानक ब्रह्म को असंख्य नाम और

---

१. कहै नामदेव परमतत है ऐसा जाके रूप न रेष न वरण कहौ कैसा।
—वही, पृष्ठ ३४।

२. अनाहत स्वस्वरूप शून्यालय,
यस नाव ना वर्णना रूप ना गोत्र।
—लल्लेश्वरीवाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ ७।

३. जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप॥
—कबीर वचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय, २०१५ वि०, पृष्ठ ९४।

४. खालिक खलक खलक में खालिक, सब घट रह्यो समाई॥
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ६६।

५. गगन चय भूतल चय।
चय दयन पवन त राथ।
अर्घ्य चन्दनु पोष पोज़्ज़ चय।
चय छुख सोरुय त लागिज़ि क्याह॥
—लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ १९।

६. निरगुन राम निरगुन राम जापहु रे भई।
अबिगति की गति लखी न जाई॥
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ विक्रमी, पृष्ठ ८१।

७. निरग्वोन च रू येति दितम।
छुस ब चौनुय नाव सौरान।
बग कैलास खांरिथ नितम।
छुहम च्यतस च मेहरबान॥
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ ६२।

धामवाला मानते हैं।[1] नुंदर्योश भी ब्रह्म को सहस्रों नामों वाला स्वीकार करते हैं।[2] वही अल्लाह, कादिर और करीम है, वही अगम्य और अलक्ष्य है। समस्त संसार नाशवान है, रहीम ही स्थिर और निश्चल है।[3] नुंदर्योश यह भी मानते हैं कि ब्रह्म सदैव रहने वाला है, भूतकाल में वही था और भविष्य में भी वही होगा। वही समस्त दुःखों का नाश करने वाला है।[4] वही सदैव सर्वत्र व्याप्त है, वही सार तत्त्व है परन्तु रहस्य में रहता है।[5] दादू के अनुसार परमात्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं है, उसी के अनेक नाम हैं। वही राम, रहीम और अल्लाह है, वही कृपालु सृष्टिकर्त्ता और पवित्र है, नित्य, सर्वव्यापक, ज्योति-स्वरूप और अव्यक्त है।[6]

रूपभवानी भी निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करती हैं, जिसका न रंग है। न वर्ण और

---

१. असंख्य नाव असंख थाव।

—संत सुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ २२०।

२. अकुय खोदा नाव छुस लछा।
 ज़िकिरि रोस कांह कछा मो।

—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ ४२।

३. अलाहु अलखु अगंम कादरू करणहारु करीमु।
 सभी दुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु ॥

—नानकबानी, डा० जयराम मिश्र, २०१८ वि०, पृष्ठ १६०।

४. सुय ओस त सुय हो आसी।
 सुय सुय करिज़ै येति।
 सुय सारिय अन्देश कासी।
 होजुवो पायस प्यते ॥

—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृ० १३५।

५. सुय ओस तति सुय छुय येती।
 सुय छुय प्रथ शायि रटिथ मकान।
 सुय छुय प्याद त सुय छुय रथी।
 सुय छुय सोरुय त गुपिथ पान।—वही, पृष्ठ २४९।

६. अलख इलाही एक तूं तू ही राम रहीम।
 तू ही मालिक मोहना, कैसौ नाऊँ करीम।
 सांई सिरजन हार तूं, तू हरी हाजरी आप।
 रमिता राजिक एक तूं, तूं सारंग सुबहान।
 कादिर करता एक तू तू साहिब सुल्तान ॥

—संतसुधासार, श्रीवियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४३८।

न गोत्र।[1] वह आनन्दस्वरूप है,[2] उसके न पाँव हैं, न शरीर और न अन्य अंग, वह त्रिजगत् में वास करने वाला भी नहीं है।[3] वह स्वयं ही माता-पिता और भ्राता है, प्रत्येक स्थान में वह व्याप्त है परन्तु निराकार है।[4] रज्जबदास के अनुसार ब्रह्म निर्गुण है, सर्वगुणातीत, घट के भीतर निवास करने वाला, परम पवित्र, परमगति और पूर्ण ब्रह्म है।[5] वही अचल, अगम और आनन्द में वास करने वाला है।[6] मिर्ज़काक के अनुसार ब्रह्म निर्गुण और गुणातीत है उसके नाम को महत्त्व देना चाहिए।[7] सुन्दरदास भी ब्रह्म को निर्गुण मानते हैं, उसकी न रेखा है, न रूप, वह अलक्ष है, अखण्ड है और निरंजन है।[8] संतपरमानन्द ने सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति की कविताएँ की हैं। अतः ये दोनों वर्गों के कवियों के साथ आते हैं। निर्गुण परक कविताओं में इन्होंने भी ब्रह्म को निरंजन और निराकार माना है।[9] वह पवित्र और निर्लिप्त है। इसी को वेदों ने

---

१. नाव तारा वाव सवारा,
   ना रंग ना वर्न त न गुथुर।
   —श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, २००७ वि०, पृ० १६।

२. आनन्द रूपदं परं ब्रह्म सोहम्।—वही, पृ० ४६।

३. पादू न बीज़म चतुर्बुजाकारम्।
   न त्रि ज़ग चराचर अनन्त रूपम।—वही, पृ० ४४।

४. माता पिता त भ्राता पानय।
   प्रथ थानय न कथ नये।
   निराकार रूप लागिथपानय।
   सयपानय त कथ सन नये।—वही, पृष्ठ ३५-३६।

५. सब गुन रहित रमै घटि भीतरि, नाद व्यंद मैं न्यारा।
   परम पवित्र परम गति खेलै, पूरण ब्रह्म पियारा।।
   —रज्जबबानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, १९६३ ई०, पृ० ३९४।

६. अचल नाव अगम ठाँव, आनन्द धरि बासा।—वही, पृ० ३९६।

७. परुण गव अन्य सु गौन,
   गुण सोथ रूद न मंजूर,
   अतीत गुण ओं पौरुष,
   भजन नाम राम रामै।।
   —मिर्ज़काक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, १९६३ ई०, पृ० १ पद १।

८. रूप न रेख अलेख अखंडित, भिन्न रहै सब कारज सारे,
   नाम निरंजन है तिनको पुनि, सुन्दरता प्रभु की बलिहारे।
   —सुन्दर बिलास, १९१४ ई०, पृ० ७९।

९. निर्गुण निरंजन त निराकार,
   सारिसय रुस्तुय त सर्वाधार।
   —परमानन्द सूक्तिसार, भाग २, मास्टर ज़िन्दाकौल, १९४२, पृ० १०५।

भेद और अभेद की सीमा से परे माना है।[1] संत मलूकदास भी ब्रह्म को निरंजन, निराकार, अलक्ष और अवगत मानते हैं, इसी का भजन करना चाहिए, यह ब्रह्म संतों के हृदय में व्याप्त है।[2] अविनाशी ब्रह्म की गति अविचल है परन्तु वह घट-घट में व्याप्त है।[3] शमस फकीर भी ब्रह्म को सर्वव्यापक और सर्वत्र मानते हैं, ब्रह्माण्ड का कोई कण उसके अस्तित्व के बिना नहीं।[4] वह सृष्टिकर्त्ता है, ब्रह्म रूपी कुलाल ने विभिन्न रंगों के अनन्त पात्र रूपी जीवों का निर्माण किया है, जिनमें ज्ञानी और अज्ञानी दोनों हैं। ब्रह्म के रहस्य को कोई नहीं जानता।[5] संत दूलनदास भी ब्रह्म को नाम-रूप से रहित मानते हैं, वह अगम और अपार है परन्तु जीव के शरीर में व्याप्त है।[6] वह पृथ्वी-आकाश, जल थल और जीव के शरीर में व्याप्त है।[7] कृष्णराज़दान के अनुसार ईश्वर वास्तव में एक है अद्वय है।[8] सभी वस्तुओं का बीज है।[9] उस निराकार को कौन जान सकता है।[10]

---

१. सुय क्या हु निर्गुण त निर्लेप नेरान,
निर्मल निराकार आसानो।
भेद-अभेद विन वीद छिस वखनान ।।—वही, पृ० ३०।

२. नमो निरंजन निराकार, अवगति पुरुष अलेख।
जिन संतन के हित धरयौ, जुग जुग नाना भेख ।।
—मलूकदास जी की बानी, १६४६ ई०, पृ० ३४।

३. अविगत गति तुम्हारी अविनासी, घट घट रहत चलाय।।—वही, पृ० ५।

४. म्ये कुछ हर शायि सु यार,
छुनअ काँह मोय ति खअली।—शमसफकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १६५६ ई०, पृ० ५२।

५. अमि कालन बान थुरि स्यठाह,
रंग रंग तथ अन्द्र क्याह,
साअरिय छि पोख्त ब द्रास ओम,
अमि कुनिरन क्याह द्यूत जलाव,
तस कुनिसय क्याह छु नाव ।।—वही, पृ० ५०।

६. निज घर है वह अगम अपारा, जहाँ विराजै स्वामी।
ता के परे अलोक अनामी, जा का रूप न नामी ।।
—दूलनदास की बानी, १६१४ ई०, पृ० ६।

७. साहिब अपने पास हो, कोई दरद सुनावै।
साहिब जल थल घट-घट व्याप्त, धरती पवन अकास हो।—वही, पृ० २५।

८. हे शिव केशव ग्वोफि अदंरय,
द्वय आकार छुख अद्वय रूफ।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १६२३ ई०, पृ० २६४।

६. सु ज्योति रूफ छुय प्रथ चीज़कुय बीज़।—वही, पृ० ३३२।

१०. च्ये कुस ज़ानिय चह छुख कियु हिहु निराकार।—वही, पृ० २२८।

चरणदास इसी ब्रह्म की व्याप्ति घट-घट में मानते हैं, वही सर्वत्र व्याप्त है, अखण्ड है और व्यापक है, जड़ और चेतन इसी के रूप हैं।[1] वेदों में इसी को 'नेति नेति' कहा गया है।[2] वह निर्गुण[3] और अरूप है।[4] संत लछकाक ने भी ब्रह्म को निरंजन और निराकार माना है, वह 'ख' स्वरूप शून्य और अरूप है,[5] उसी का साक्षात्कार करना चाहिए[6] वह इन्द्रियातीत है, उसे कौन जान सकता है, उसका न कोई रूप-रंग है और न गोत्र। पलटूदास के अनुसार निर्गुण ब्रह्म का न आदि है और न अंत, उसका रंग-रूप और रेखा भी नहीं है, वह रहस्यमय है।[7] ब्रह्म ही संसार है और संसार में वही व्याप्त है, हज और हाजी फल और फूल में कोई अन्तर नहीं है, ब्रह्म का प्रकाश भी सर्वत्र व्याप्त है।[8] संत रामानन्द भी ब्रह्म को निराकार मानते हैं, उसका न नाम है न रूप, उसके वर्णन और गोत्र भी नहीं हैं।[9]

इस प्रकार सिद्ध होता है कि दोनों भाषाओं के कवियों की ब्रह्म सम्बन्धी विचार-धारा एक है।

---

१. घट घट में रमता रमि रहेव।
चेतन तजै भजै जल पाहन, मूरख भ्रम में भ्रमि रहेव।
एक अखण्ड रहेव सब व्यापक, लख चौरासी समि रहेव।।
—चरणदास जी की बानी, भाग १, १९५२ ई०, पृ० ५२।

२. नेत ही नेत बेदन पुकारा।—वही, भाग २, १९०८ ई०, पृ० १३१।

३. सो लखि हम निर्गुन भरि लाई।—वही, पृ० १३४।

४. साधौ समुझौ अलख अरूपा।—वही, पृ० १३३।

५. शून्यालय ख स्वरूप नारायणस,
न्याराकारस युस निरंजन,
तथ शुन्य सथ शुन्य सरूफ अरूफ शुन्य,
शुन्यी च्यथ चैतन्य ज़ानतन ।।—पाण्डुलिपि से उद्धृत।

६. रंग लरि छुय रंग रोस्त दय प्रथ वान सुय रंगरय,
नाना रंग धारण सुय नारंग तस ना गुथुरय,
जानि कुस तस न्यराकारस स्वर्गीय न्यथरय ।। (पाण्डुलिपि से)

७. आदि अंत अरु मध्य नहिं, रंग रूप नहिं रेख।
गुप्त बात गुप्तै रही, पलटू तोपा देख।।
—पलटूसाहिब की बानी, भाग ३, १९१५ ई०, पृ० ४५।

८. खालिक खलक खलक में खालिक ऐसा अजब जहूरा है,
हाजी हज्ज हज्ज में हाजी हाजिर हार हजूरा है
फल में फूल फूल में फल है, रौसन नबी का नूरा है।—वही, पृ० ८०।

९. ब्रह्म सुय व छुसय अवरण यस दोपहय
न गुथुर नाव आश्रय, भजनय राम रामै। (पाण्डुलिपि से)

जीव—दोनों भाषाओं के संतों ने आत्मा और परमात्मा को एक माना है। जीव अज्ञानी होता है अतः वह स्वयं को नहीं पहचानता है। जीव एक ही मिट्टी के विभिन्न पात्रों के समान है। स्थावर और जंगम में एक ही ब्रह्म राम व्याप्त है।[1] जीव की अपनी कोई भिन्न सत्ता नहीं है, ब्रह्म ही एक होकर अनेक बन गया है।[2] मिट्टी से जीव का निर्माण करने वाला स्वयं ब्रह्म ही है, जीव इसी मिट्टी का अन्वेषण करता है परन्तु जब ज्ञान से ब्रह्मसाक्षात्कार होता है तो मिट्टी निर्मित अपने रूप और ब्रह्म को एक देखता है।[3] रात्रि और दिवस ब्रह्मान्वेषण में जीव व्यतीत करता है परन्तु जिस क्षण अपनी आत्मा में ब्रह्म का आभास होता है वही वास्तव में अमूल्य क्षण है।[4] संत नामदेव के अनुसार जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध जल और तरंग का सम्बन्ध है।[5] कबीरदास के अनुसार जीव जलाशय में जल से भरा हुआ एक कंभ है, फूटने पर जिसका जल बाहर वाले जल से एक हो जाता है।[6] इनका सम्बन्ध जल और हिम तथा[7] समुद्र और बूंद का है[8] जो वास्तव में अभिन्न है। जहाँ से जीव आता है लल्लद्यद के अनुसार उसे वहीं

---

१. थावर जंगम कीट पतंगा, सब घटि राम समाना।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृ० ३।

२. मैं नहीं मैं नहीं मैं नहीं माधौ तू है मैं नहीं हौं।
तू एक अनेक है बिस्तरयौ मेरी चरम न खाई हो ।।—वही, पृष्ठ २२।

३. पानस लागिथ रूदुख म्य चह।
म्य च्यह छांडान लूस्तुम दोह।
ज्ञानस मंज़ येलि ड्यूठुख म्य चह।
म्य च्य त पानस दितुम छोह ।।
—लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्रीराजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ २०।

४. लल्लव, द्रायस लौ लरे।
छांडान लूसुम द्यन क्योह राथ।
वुछुम पण्डित पननि गरे।
सुय म्य रोटुमस न्यशतुर त साथ ।।—वही, पृष्ठ २।

५. जल ते तरंग तरंग ते है जल कहन सुनन को दूजा।
—संत सुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४७।

६. जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ विक्रमी, पृष्ठ ८०।

७. पाणीं ही तें हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाय ।।
जो कुछ था सोई भया अब कछु कह्या न जाइ ।।
संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ १२७।

८. हैरत हैरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समद मैं, सोकत हेरी जाइ ।।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, २०१८ वि०, पृ० १३।

समाजाना है। इसी भाव को हिन्दी भाषा के सन्तों ने सागर-बूंद,सागर-तरंग, जल और हिम आदि रूपकों द्वारा स्पष्ट किया है। सभी संतों ने आत्मा और शरीर को भिन्न मान कर शरीर को नश्वर माना है। नुंदर्योश के अनुसार शरीर और श्वास क्षणिक होता है, मृत्यु के समय उसकी चेतना भी समाप्त हो जाती है।[1] गुरु नानक के अनुसार भी शरीर से जीवात्मा निकल कर यह सूना और भयानक बन जाता है। उन्होंने मानव जीवन को छः अवस्थाओं में विभाजित किया है—गर्भावस्था, बाल्यावस्था, यौवनावस्था, वृद्धावस्था का प्रारम्भ, वृद्धावस्था और मरणावस्था। सत्तर वर्ष में मनुष्य मतिहीन हो जाता है और अस्सी वर्ष का होने पर व्यवहार के अयोग्य हो जाता है।[2] मनुष्य को सुन्दर काया पर घमण्ड नहीं करना चाहिए क्योंकि यह वस्तुएँ नश्वर हैं। संत नुंदर्योश को विश्वास है कि ये नरक की अग्नि से जल जायेंगे।[3] संत नामदेव, लल्लद्यद और गुरु नानक का एक मत है कि जीव संसार में अपना जन्म व्यर्थ गँवाता है। नामदेव के अनुसार जीव दिवस गृहस्थी की समस्याओं में व्यतीत करता है और अंधकारपूर्ण रात्रि निद्रा में। बिना सत्संग के वह इस संसार से कैसे पार हो सकता है।[4] लल्लद्यद के अनुसार कई निद्रावस्था में रहकर भी ज्ञान-नेत्र खुले रखते हैं और कई उस ज्योति को भी नहीं देख सकते हैं। कई बाह्याडम्बर करके भी अपवित्र होते हैं और वैराग्य लेकर भी

---

१. जुव ति ओछुय पवन ति ओछुय।
च्यथ ति ओछुय ओछुय सार।।
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ ५८।

२. दस बालतणि बीस रवणि, तीसा का सुंदरू कहावै।
चालीसी पूरू होइ पचासी पगु, खिसै सठी के बोढेपा आवै।
सतरि का मतिहीणु असीहां का विउहार न पावै।
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, २०१८ वि०, पृष्ठ १७४।

३. हो जुवो म्याने गुलि अनारो।
छी शूभल गुल्य त रम्बवन्य मछ।
यिम येलि दज़नम दौज़खनि नारो।
अद क्याह कर त अद कौत गछ।।
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ १४६।

४. दिवस गंवाया ग्रिह व्योहार।
राति जु आई अँधाकार।
दूरि पयानां अवघट घाट
क्यों निस्तररिबौ संग न साथ।।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृ० ५५।

निर्लिप्त नहीं होते हैं।[१] गुरुनानक के अनुसार रात्रि निद्रा में और दिवस खाने में व्यतीत करके जीव अपने आत्मतत्त्व को सांसारिक सुखों के लिए व्यर्थ में गंवाता है।[२] जिस प्रकार कबीर ब्रह्म को सृष्टिकर्त्ता मानते हैं और सभी जीवों का निर्माण एक ही मिट्टी से मानते हैं[३] उसी प्रकार संत नुंदर्योश का विचार है कि ब्रह्म ने जीव का निर्माण मिट्टी से किया है, समस्त वैभव और घर-गृहस्थी इसी मिट्टी की बनाई, मिट्टी के पात्रों में जीव स्वादिष्ट पदार्थ निर्मित करता है परन्तु जब आत्मा काया से अलग हो जाती है तो मिट्टी मिट्टी में ही लय होती है।[४] संत दादू दयाल के अनुसार आत्मा एक है, वही सब में व्यापप्त है।[५] द्वैत भावना व्यर्थ है, घट-घट में राम का निवास है।[६] रूपभवानी भी ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध को अंश-अंशी सम्बन्ध मानती हैं। उनके अनुसार जीव नदी के एक अंश की भांति है। अंश रूप में आकर मिट्टी से उत्पन्न हुआ, इसी मिट्टी को भोग कर स्वादिष्ट पदार्थ खिलाता है और अन्त में मिट्टी में ही विलीन होता

---

१. केंह छिय न्यन्दर्य हति वुदीय,
केंचन वुद्यन न्यसर प्येयी।
केंह छिय स्नान करिथ अपुतिय,
केंह छिय गृह वज़िथ अक्रिय॥
—लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ १४।

२. रैंणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है कउड़ी बदले जाइ॥
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, २०१८ वि०, पृष्ठ २१५।

३. एक हीखाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा।
—संतसुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ६६।

४. आदम वोपदोवुन यथ म्यचे।
म्याचि हुन्द सोरुय गरवेठ ह्यथ।
सारिय न्यामच वोपदान म्यचे।
स्नान म्यचिव्यन बानन क्यथ।
जुंव चलि नीरिथ मूर मो च म्यचे।
म्यचि सूत्य म्यच मीलिथ क्यथ॥
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ १५४।

५. दादू एकै आतमा दूजा कोई नाही।
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४९५।

६. घटि घटि आतम राम।—वही, पृष्ठ ४९५।

है।[1] संसार में जीव का भाग्य भिन्न-भिन्न है परन्तु उनका निर्माता ब्रह्म एक है।[2] संत रज्ज़बदास ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध बीज और वृक्ष की भांति मानते हैं। जिस प्रकार कुएं के जल और पात्र के जल में कोई अन्तर नहीं है उसी प्रकार ब्रह्म और जीव भी एक हैं।[3] मिर्ज़काक के अनुसार भी जीव और ब्रह्म एक हैं, जीव ब्रह्म से तब अलग हुआ जब वह संसार में आया। ब्रह्म तब उसका प्रियतम कहलाने लगा परन्तु पुष्प की सुगन्धि की भांति वह जीव में व्याप्त है।[4] परन्तु जीव का शरीर नश्वर है, झूठा है।[5] परमानन्द जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध वृक्ष और बीज तथा छाया और पुरुष का-सा सम्बन्ध मानते हैं। जिस प्रकार वृक्ष में फल लगते हैं और फलों में बीच व्याप्त होते हैं जो पुनः वृक्ष रूप धारण करते हैं उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से आते हैं और पुनः ब्रह्म में विलीन होते हैं।[6] वास्तव

---

१. दरियाव अन्दर अंशाह आव।
ज़ाव म्यच्य त ज़ायस म्यच।
म्यच्यय बूग त न्यामच ख्याव।
पतोह अपिथ म्यचिय गव ॥
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, २००७ वि०, पृष्ठ ४०।

२. और ति ज़ीवा योर ति ज़ीवा।
जींवस ज़ीवा रस ख्यवान।
युसु छ्युह नाना रंग रुवुन।
छुह प्रथ कुने वात वुन।
च्योन म्योन लोन ब्योन तय।
न त रान सोनुय अकुय तय। —वही, पृष्ठ ३४।

३. बीरज माहि बृच्छ समाणा, हांडी कण में पाकी।
कूवां भरै कुंभ में पाणी, कहत न आवै ताकी।
ब्रह्म बूंद में घटा समाणी, बाइ बीजुली सेती।
—रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, १९६३ ई०, पृष्ठ ३९३।

४. इकवट आग ब म्याने दय,
बय ज़ीव तय सु जानि जानान,
जानस पथ जानान रोशन,
पोशन बोय चे सूल्य सूत्यी। —मिर्ज़काक की पाण्डुलिपि से उद्धृत।

५. झूठी काया भूठी माया। —पुन्दरबिलास, १९१४ ई०, पृष्ठ ७९।

६. येमि कुलि मंज़ फल केंह नेरान,
सुय कुल फलस मंज़ आसानो।
तमि कुलि मंज़ भियि सुय फल फोलान।
—परमानन्द सूक्तिसार, भाग २, मास्टर ज़िन्दाकौल, पृष्ठ ३३।

में माया और ब्रह्म भिन्न नहीं हैं।[१] संत मलूकदास ब्रह्म को सत्य और मानव शरीर को असत्य मानते हैं।[२] संसार में जीव निद्रा में ही अपना समय व्यतीत करता है और माया मोह से आबद्ध हो जाता है।[3] शमस फकीर जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। जिस प्रकार नदी से छोटे झरने निकलते हैं और नदी उन जलकणों में भी व्याप्त है उसी प्रकार ब्रह्म जीव में व्याप्त है परन्तु साधारण जीव इस रहस्य से अपरिचित हैं।[४] जीव की भिन्न सत्ता नहीं है वह स्वयं ही ब्रह्म भी है।[५] संत दूलनदास के अनुसार जीव संसार में आता है, उसके दिवस व्यतीत होते हैं, काल का प्रहार उसके ऊपर सदैव रहता है परन्तु वह सचेत नहीं होते हैं।[६] कृष्णराजदान के अनुसार जीव ब्रह्म में ही समाहित था परन्तु संसार में आकर उससे दूर हो गया।[७] चरणदास जीव को नश्वर मानते हैं क्योंकि वह काल के प्रहार से नष्ट होता है, अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पर भी कोई नहीं बच सकता है।[८] मानव शरीर ओले और कांच के पात्र की भांति शीघ्र नष्ट होने वाला है।[९] संत लछकाक के अनुसार जीव और ब्रह्म का अंश-अंशी सम्बन्ध है, ब्रह्म अग्नि है और

---

१. ब्रह्म और माया दो नाही भासता।—वही, भाग १, पृष्ठ ११३।

२. ऐसी झूठी देह ते काहे लेव न सांचा नाम हो।
—मलूकदास की बानी, १९४६ ई०, पृष्ठ १४।

३. सोते सोते जन्म गंवाया।
माया मोह में सानि पड़ा सो राम नाम नहिं पाया।—वही, पृष्ठ १४।

४. दरियावस छय जोयि नेरान, दरयाव कतरस मन्ज़ छु इरन।
तमिची खबर केंह छय न आमन।
—शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, पृष्ठ ३२।

५. बो छुस केंह नय सुद पानय,
बो केंह नय कस वनय पानय॥—वही, पृष्ठ ३४।

६. पछितात क्या दिन जात बीते समुझ करु नर चैत रे।
अंध तेरे कंध सिर पर, काल डंका देत रे॥
—दूलनदास की बानी, १९१४ ई०, पृष्ठ ६।

७. ओसुख कुनुय त सांपनुस स्यठाह।
नज़दीख वातिथ गोमय दूर।
—शिव परिणय, कृष्णराजदान, १९२३ ई०, पृष्ठ १०६।

८. थिर नहि रहना है आखिर मौत निदान।
देखत देखत बहुतक बिनसे आवत तुम्हारी बारि।
जतन करो कोइ नाना बिधि के बचै नहीं नर नारि।
—चरणदास जी की बानी, भाग १, १९५२ ई०, पृष्ठ ६८।

९. या तन को कह गर्ब करत है, ओला ज्यों गलि जावै रे।
जैसे बरतन बनो कांच को, ठपक लगे बिन सावै रे।—वही, पृष्ठ ७०।

जीव उसकी चिन्गारी ।[१] ब्रह्म जीव में ही व्याप्त है ।[२] पलटूदास के अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है, जिस प्रकार बीज और फल, जल और तरंग, पुरुष और प्रतिबिम्ब, सियाही और अक्षर, स्वर्ण और आभूषण तथा मिट्टी और घड़े में कोई अन्तर नहीं है वैसे ही जीव और ब्रह्म एक हैं ।[३] संत रामानन्द भी जीव और ब्रह्म में तात्त्विक भेद नहीं मानते हैं, शिव ही जीव है और जीव ही शिव है ।[४]

जगत्—प्राचीनकाल से ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या माना गया है । इसी आधार को संतों ने भी अपनाया है । दोनों भाषाओं के संतों ने संसार का अस्तित्व स्वीकार किया है परन्तु इसको असत्य और क्षणिक माना है । संत नामदेव के अनुसार जगत् मिथ्या है, ब्रह्म नाम ही सत्य है ।[५] संसार एक हाट है जहाँ मनुष्य वस्तुओं का क्रय-विक्रय करता है ।[६] यह माया-जाल है ।[७] लल्लद्यद के अनुसार भी संसार सारहीन है, नश्वर है, विषयवासनाओं से भरा हुआ है, बुद्धिहीन इसी के बन्धनों में उलझे रहते हैं ।[८]

---

१. ईश्वर अग्न अंश त्यम्बर अज्ञान काठस सन्दरिजे —(पाण्डुलिपि से)

२. पानस मंज़ छुय पानय नारायण, नाराण नारायण वाच्चारान —(पाण्डुलिपि से)

३. जोई जीव सोई ब्रह्म एक है, दृष्टि अपानी चर्मा ।
जिव से जाइ ब्रह्म तब होता, जिवबिनु ब्रह्म न होई ।
फल में बीज बीज में फल है, अवर न दूजा कोई ।
नीर में लहर लहर में पानी, कैसे कै अलगावै ।
छाया में पुरुस पुरुस में छाया, दुइ कहवां से कहिये।
गहना कनक कनक में गहना, समझि चुप्प करि रहिये ।
जीव में ब्रह्म ब्रह्म में जीव है, ज्ञान समाधि में सूझै ।
माटि में घड़ा घड़ा में माटी पलटूदास यों बूझै ।
—पलटूसाहिब की बानी भाग ३, १९१५ ई०, पृष्ठ ५३ ।

४. (अ) तत्त्व असे जीव ईश्वर ब्रह्म ज़ान्य किन्य ऐक्य भाव ।
(आ) जीवय शिव तय शिव जीवय दीवियि वखनान छुय शिवय ।।
—(पाण्डुलिपि से उद्धृत)

५. सार तुम्हारा नाव है जूठा सब संसार ।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भागीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृष्ठ २१ ।

६. यह संसार हाट का लेखा ।
सब कोई बनिजहि आया ।।—संतसुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३ई० पृ०, ५३ ।

७. रे मन पंछीया न परसि पिंजरै,
संसार माया जाल रे ।।
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भागीरथ मिश्र, १९६४ ई० पृष्ठ, ३३ ।

८. विष मिस संसार निस पाशस ।
अबुद्धव गण्ड शत् शत् दितीय ।
—लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृ० ३ ।

अज्ञानी संसार को सत्य मानते हैं। यह बुद्धिहीनों के लिए गर्म तवा है जिसके प्रखर ताप से उनका नाश होता है, परन्तु योगियों और ज्ञानियों के लिए यह ज्ञान की मुद्रा है जिसका आभास योग से होता है।[1] संत कबीरदास भी जगत् को असत्य मानते हैं। ये संसार की उपमा सेमल-पुष्प से देते हैं।[2] यह धुएं के बादल की भाँति उत्पन्न और नष्ट होता है।[3] यहां सभी जीव ब्रह्म-प्राप्ति के जिज्ञासु हैं परन्तु लाखों में किसी एक को ही ब्रह्म साक्षात्कार होता है।[4] सांसारिक पीड़ाओं और यातनाओं से मुक्त करने वाला स्वयं ब्रह्म है।[5] गुरु नानक के अनुसार यद्यपि संसार में बाह्य साज सज्जा है, चमक-धमक है परन्तु यह नश्वर है।[6] जिस प्रकार कमल जल से निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार जीव को संसार से विमुख रहना चाहिए।[7] संसार में जीव अज्ञानी होता है इसी कारण वह संसार के नश्वर रूप की ओर ध्यान नहीं देता है,[8] संत नुंदर्योश ने संसार को हाट माना है जहां

---

१. संसार नाम्य ताव तचय।
मूढन किच तावन् आय।
ज्ञान मुद्रा छय यूगियन किचय
सु यूगकलि किन्य परज़न आय।।
—लल्लवाक्यानि (भाग १), सर्वानन्द चरागी, १६६६ वि०, पद ७५।

२. यह ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
—कबीर ग्रन्थावली, श्यमसुन्दरदास, २०१८ वि०, पृष्ठ १६।

३. यहु संसार इसौ रे प्राणी जैसो धूंवरि मेह।।
—संतसुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ८२।

४. ज़गस अन्दर कत्याह पालिम,
सारिय छि छांडान दयि संज़ वथ।
लछि मन्ज़ अकिस दया ज़ानिम,
मानिम यी दापिज़ि ईशर गथ।
—ललवाख, जियालाल कौल जलाली, १९५६ ई०, पृष्ठ १५-१६।

५. म्य अबलि कासितन भव रूज़,
सह वा सुह वा सुह वा सुह।।
—लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ ४।

६. चिलमिल बिसीआर दुनीआ फानी,
बालूबि अंकल मन गोरन मानी।
—नानकवाणी, डा० जयराममिश्र, २०१८ वि०, पृष्ठ ७७३।

७. जल महि उपजै जल ते दूरि, जल महि जोति रहिआ भरपूरि।।—वही, पृ० २७८।

८. ब योद ज़ानहा दुनिया ब्रमा,
नमहा त ह्यमहा, लागन्य ज़ान।
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५, पृष्ठ ७६।

जीव केवल व्यापार करने आता है, उसने यहां जन्म लेकर कोई लाभ नहीं पाया।[1] संत दादू संसार को सेंबल पुष्प के समान मानते हैं।[2] यह मृगतृष्णा है।[3] रूप भवानी के अनुसार जगत् अस्थिर है, नश्वर है।[4] सृष्टि न स्थावर है और न जंगम, चार वर्ण भी नहीं हैं। यह समस्त संसार चराचर परम आकार वाला भी नहीं है।[5] मिर्ज़काक ने भी शंकर की भान्ति संसार की सत्ता को माना है परन्तु इसे मिथ्या कहा है।[6] संत सुन्दरदास जगत् और ब्रह्म में स्वर्ण-आभूषण का सम्बन्ध मानते हैं।[7] वास्तव में ब्रह्माण्ड का विस्तार आकाश, पाताल और जगत् यह सब ब्रह्म ही है।[8] परमानन्द संसार को ब्रह्म रूप ही मानते हैं। ईश्वर एक है और अनेक होना चाहता है इसी इच्छा के कारण संसार का निर्माण हुआ है।[9] परन्तु वास्तव में संसार भ्रम है, आत्मा ही केवल अमर है।[10] सांसारिक सम्बन्धों को इन्होंने भी व्यर्थ और असत्य माना है क्योंकि जगत् मृगतृष्णा है।[11] संत

---

१. आयस सौदा कर यथ दारस,
वति लोगुस बाज़ारस क्यथ।
वुशत किथ चजिम पोख्यतकारस,
क्याह ज्यूनुम संसारस ज्यथ ।।—वही, पृष्ठ १६४।

२. यहु संसार देखि जिनि भूले, सब ही सैंबल फूल ।।
—संतसुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४३५।

३. मृगतृष्णा जल जैसा चेति देखि जगु ऐसा ।।—वही, पृष्ठ ४३१।

४. मोड युस ज़ाले नारय।
दोड नौव इह इह संसारय ।।
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेश, डा० शिवनाथ शर्मा, २००७ वि०, पृष्ठ २७।

५. थावर न जंगम नह चतुर्वणम्,
ज़ग न चराचर तथ परमाकारम्
सथ ना असतु अछिन्नदारम्,
सूक्ष्मो समाधि परं ब्रह्म सोहम्—वही, पृष्ठ ४३-४४

६. सत्यम ब्रह्म ज़गथ मिथ्या।
दपान छुय राम रामै ।।—मिर्ज़काक की पाण्डुलिपि से उद्धृत।

७. कनक समाइ ज्यूं ही, होय रह्यो आभूषण।
—सुन्दर बिलास, १९१४ ई०, पृ० १२३।

८. सकल संसार विस्तार करि बरणियो,
स्वर्ग पाताल मृत ब्रह्म ही है।—वही, पृ० १२६।

९. राज़ हंसय यस ब्रह्मांड अंडय,
तसदे बचन् छि बचि बचनय,—परमानन्द सूक्तिसार, भाग २, पृ० १३३।

१०. अमर पानो भ्रम संसार छुय।—वही, भाग ३, पृ० ८६।

११. मृग तृष्णा मुख जग को आखा ।।—वही, भाग १, पृ० ११४।

मलूकदास भी संसार को मिथ्या मानते हैं। यहाँ सदैव उत्पत्ति और प्रलय का क्रम चलता है, इसके सभी पदार्थ नश्वर होते हैं, माता-पिता, भाई-बहन ये सभी मिट्टी के पुतले हैं। इनका सम्बन्ध व्यर्थ है, ये सभी काल के ग्रास हैं। संसार परिवर्तनशील है।[१] शमस फकीर भी संसार को व्यर्थ मानते हैं—यह असत्य है, अस्थिर है, कौवों के समूह की भाँति है।[२] सांसारिक बन्धन व्यर्थ हैं कठिनाई आने पर यहाँ कोई साथ नहीं देता है।[३] संत दूलनदास भी संसार को मिथ्या मानते हैं।[४] यह अन्धकूप है।[५] यहाँ माता-पिता, पुत्र-बन्धु और नारी कोई भी अन्त समय में सहायक नहीं सिद्ध होता है।[६] कृष्णराज़दान भी संसार को मिथ्या, असार और नश्वर मानते हैं, यह जीव के साथ सदैव छल करता है।[७] संसार एक माया-जाल है, प्रत्येक जीव उसके बन्धन में पड़ा है।[८] संतचरणदास भी संसार को भ्रम मानते हैं, मनुष्य इसमें उलझा रहता है, यहाँ से मुक्ति पाना अत्यन्त कठिन है।[९]

---

१. अजब तमासा देखा तेरा। ता तें उदास भया मन मेरा।
उत्पत्ति परलय नित उठ होई। जग में अमर न देखा कोई।
माटी के पुतरे माया लाई। कोई कहे बहिन कोई कहे भाई।
झूठा नाता लोग लहावैं, मन मेरे परतीत न आवै।
जबही भेजे तबहिं बुलावैं, हुकुम भया कोई रहन न पावै।
उलटत पलटत जग की अंचली, जैसे फेरे पान तमोली ॥
—मलूकदास जी की बानी, १९४६, पृ० १३।

२. हज़रति हअदियन आदी दोपनम,
दुनिया छु काव येनिवैलुये।
— कांशिर शायरी, महीउद्दीन हाजिनी, १९६० ई०, पृष्ठ १०३।

३. यार बोय अशिनाव नो छु काहं,
तिम छि सअरिय बेवफा ॥
—शमस फ़कीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १९५९ ई०, पृष्ठ ५०।

४. यह जीवन सुपने को लेखा, का भूलसि झूठी संसारी।
—दूलनदास की बानी, १९१४ ई०, पृष्ठ १।

५. अंधकूप संसार तें सूरत नाहु फेरि।—वही, पृष्ठ ३०।

६. अंत काल कोइ काम न आइ है, मातु पिता सुत बंधू नारी,
दिवस चारि को जगत सगई, आखिर नाम सनेह करारी ॥—वही, पृष्ठ १।

७. असोर संसार छलरावान् सोरु रोज़िकस तय।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०, पृष्ठ ६६।

८. वलिन असि संसारकिय माया ज़ालन।—वही, पृष्ठ १४०।

९. साधो भरमा यह संसारा।
गति मति लोक बड़ाई, उरझै कैसे हो छुटकारा।
—चरनदास जी की बानी, भाग १. १९५२ ई०, पृष्ठ ५१।

संत लछकाक के अनुसार जगत् स्वप्नवत है, भ्रम है[1], ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है।[2] पलटूदास भी संसार को भ्रम मानते हैं, उन्होंने इसे रात्रि के स्वप्न की संज्ञा दी है।[3] संसार मिथ्या है, इसी पर सभी विश्वास करते हैं। झूठ का स्थान नरक में होता है।[4] संत रामानन्द भी संसार को माया मानते हैं—यह भ्रम है नश्वर है, जीव का शरीर भी मोह का जाल है।[5]

माया—संतों का माया सम्बन्धी विचार वेदान्त पर आधारित है। शंकराचार्य ने माया को भ्रम माना है।[6] नामदेव के अनुसार माया पुरुष को भ्रम में डालती है, माया के आवरण से ब्रह्म का भास नहीं होता है परन्तु ब्रह्म के समीप माया अदृश हो जाती है।[7] इसी ने समस्त संसार को मोह में डाला है।[8] माया के दो मुख्य रूप हैं कंचन और कामिनी। लल्लद्यद के अनुसार माया शिव की शक्ति है। वह मातृरूप में जीव को जन्म देती है और पालन करती है, भार्या रूप में वही विलास करती है और माया रूप में वही जीवों का हनन करती है।[9] संत कबीरदास भी माया को रघुनाथ की कह कर उसे ब्रह्माश्रित मानते हैं।[10] माया जादूगर की क्रीड़ा है, मोहित करने वाली है, इससे राम ही

---

१. वुशत संसार स्वप्नय भूत शरीर भ्रमय ।।—पाण्डुलिपि से।

२. ब्रह्म सत्यं जगतिमथ्या साक्षी पोराण पोस्तका।—वही

३. यह संसार रैन का सुपना रूपा भ्रम सीपी केरा है।

—पलटूसाहिब की बानी, भाग ३, १९१५ ई०, पृष्ठ ४०।

४. झूठा सब संसार झूठै पतियात है।
दुइ झूठे इक ठौर नरक में जात है।—वही, भाग २, पृष्ठ ८१।

५. संसार सोरुय माया भ्रम, माया काया मुहनुय जाल ।।—पाण्डुलिपि से उद्धृत

६. अध्यासो नाम अतस्मिन् तदबुद्धि।—ब्रह्मसूत्र, शंकर भाष्य, १, १, १

७. बीहौं बीहौं तेरी सबल माया,
आगै इनि अनेक भरमाया,
माया अंतर ब्रह्म न दीसै,
ब्रह्म के अंतर माया नहीं दीसै।

—संतनामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृष्ठ १६।

८. माया मोह करि जगत् भुलाया।—वही, पृष्ठ २०।

९. सोय माता रूपी पय दिये।
सोय भार्या रूपी करि विलास।
सोय माया रूपी जीव हरे।
शिव छुय कूठ तय चेन वोपदीश ।।

—लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ २५।

१०. तू माया रघुनाथ की, खेलन चली अहेडे ।।

—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३, पृष्ठ ७४।

रक्षा कर सकते हैं।[१] यह त्रिगुणात्मिका है,[२] डाकिनी और पापनि है।[३] इसने समस्त संसार को वश में करके नष्ट किया है।[४] लल्लद्यद ने संसार को ही माया माना है। उनके अनुसार मनुष्य माया के पाश में ही जन्म और मृत्यु के चक्र में फँसा रहता है। माया की जड़ता के कारण ज्ञान भी जड़ बन जाता है। जल का घनत्व हिम है और वही संसार है। जल जड़ता से मुक्त होकर शिव रूप हो जाता है।[५] गुरु नानक के अनुसार भी मनुष्य माया के बन्धन में बन्धा हुआ है। जीव ज्ञान का उपदेश देते हैं परन्तु समस्त संसार माया के वश में है।[६] संत दादू माया को सर्पिणी मानते हैं जो जीव के आगे पीछे घूमती है और उसे नष्ट करने पर तुली हुई है।[७] काल, कनक और कामिनी इसी के तीन रूप हैं।[८]

रूपभवानी भी माया का विरोध करती हैं। उनके अनुसार मन को माया से मुक्त रखना चाहिए,[९] ब्रह्म वास्तव में निर्गुण है परन्तु वह सगुण लक्षित होता है। पंचभूतों का मिश्रण करके तथा माया को मिलाकर ही उसे सगुण ही संज्ञा प्राप्त होती है।[१०]

---

१. मोहिनी माया बाघिनी थैं राखि ले रामराइ ।।—वही, पृष्ठ ७६।

२. माया महाठगनी हम जानी,
तिरगुन फांसि लिये कर डोले, बोले माधुरी बानी।—वही, पृष्ठ १०१।

३. कबीर माया डाकणीं, सब किस ही कूं खाई ।।—वही, पृष्ठ १४१।

४. कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घांणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की कांणि ।।—वही, पृष्ठ १४१।

५. तूरि सलिल खोट तय तूरि।
यिम त्रे गय भिन्नाभिन्न विमर्शा ।।
चैतन्य रव भाति सब समे।
शिव मय च़राच़र जग पश्या ।।
—लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ ७।

६. गिआनु छिआनु सभु कोई रवै। बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै।
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, २०१८ वि०, पृष्ठ ४३६।

७. सांपणि इक सब जीव कौं आगे, पीछै खाइ ।।
—संतसुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३, पृष्ठ ४७६।

८. काल कनक अरु कामिनी, परहरि इनका अंग।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यौं दीपक जोति पतंग ।।—वही, पृष्ठ ४७६।

९. वाव रठ द्वाद्वशान्त रव संगटे,
मायायि तृष्णायि मारे मन।
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेश, डा० शिवनाथ शर्मा, २००७ वि०, पृष्ठ ३६-३७।

१०. मूथाहै करिथ त अमूरथ पचीय,
खाख छय तय क्याह फचे,
पांछ महाभूत करिन फचे
ह्यच माया तय करि ना बुत।—वही, पृ० ३७।

संत रज्ज़बदास माया की सत्ता स्वीकार कर इसे ही मन को वश करने वाली मानते हैं।[१] यही जीव को ब्रह्म से भिन्न कर देती है।[२]

मिर्ज़काक माया से सांसारिक सुखों और वैभव की प्राप्ति मानते हैं परन्तु यह निरंजन ब्रह्म की प्राप्ति में बाधक है।[३] संत सुन्दरदास ने भी माया को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक माना है। यही जीव को उलझन में डालती है।[४] ज्ञान के द्वारा जब मनुष्य को नाम-रूप का महत्त्व ज्ञात होता है तो माया की असत्यता का भास होता है।[५] परमानन्द के अनुसार ब्रह्म और माया भिन्न नहीं हैं, माया की सत्ता उसी प्रकार भासित होती है जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न देखता है। उस स्वप्नावस्था में वह हंसता है, रोता है यद्यपि उसके अतिरिक्त वहाँ कोई नहीं होता है।[६] माया का भास अज्ञान के कारण होता है। ब्रह्म मायातीत है।[७] संत मलूकदास ने भी माया को काली नागिन के समान माना है, यह समस्त संसार को डस लेती है। इसी ने इन्द्र, ब्रह्मा, नारद और व्यास को वश में किया है, शिव भी इसी के बन्धन में आये हैं।[८] माया एक मीठी छुरी है इस पर विश्वास नहीं करना चाहिए।[९] शमस फ़कीर की कविता में यद्यपि माया की ओर स्पष्ट संकेत नहीं मिलता तथापि वे जीव को माया के पाश से बद्ध मानते हैं।[१०] दूलनदास माया को

---

१. माया बांध्यं मन बंधै, खोल्यूं खुलता जाइ ॥
—रज्जबबानी, प्रो० ब्रजलाल वर्मा, १९६३ ई०, पृष्ठ० २२८।

२. जीव ब्रह्म में तब लग माया, एकमेक भिन्न भेद सु पाया ॥ —वही, पृष्ठ २३०।

३. महामाया परम सोख पाया।
अलख निरंजन सुय परिज्यन।—मिर्ज़काक की पाण्डुलिपि से उद्धृत।

४. माया को उपाय जानै, माया ही चातुरी ठानै।
माया में मगन अति, माया लपटानौ है।—सुन्दरबिलास १९१४ ई०, पृष्ठ ३१।

५. नाम रूप जहांलगि, मिथ्या माया मानिये।—वही, पृष्ठ १२६।

६. ब्रह्म और माया दो नहीं भासता,
स्वप्न विषै वेख है कोई वासता।
क्यों रौंदा किस कारण हासता।—परमानन्द सूक्तिसार, भाग १, पृष्ठ ११३।

७. मायातीतो छायि मत रोज़तम।
च़राच़र छुख त आर्चर बोज़तम ॥—वही, भाग २, पृष्ठ २२।

८. माया काली नागिनी, जिन डसिया सब संसार हो।
इन्द्रा डसा ब्रह्मा डसा, डसिया नारद ब्यास।
बात कहत सिव कोडसा, जेहि घरि एक बैठे पास हो।
—मलूकदास जी की बानी, १९४६, पृष्ठ ९।

९. माया मिसरी की छुरी, मत कोई पतियाय।—वही, पृष्ठ ३८।

१०. दर्शन रायो मायो वोलहस,
वायुन छु जिकिर इन्तिकाल।
—शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १९५९ ई०, पृष्ठ १८।

ब्रह्माश्रित मानते हैं। यही जीव को नचाती है।[1] यही योग-प्रक्रिया में उलझन डालती है।[2] कृष्णराज़दान भी माया का अस्तित्व मानते हैं, संसार माया का बन्धन है जिससे गुरु ही मुक्त करा सकता है।[3] ब्रह्म माया से निर्लिप्त है और समस्त संसार का दृश्य देखता है।[4] चरणदास भी माया की सत्ता स्वीकार करके इसको अस्थिर मानते हैं।[5] पलटूदास के अनुसार माया के जाल से कोई नहीं बच सकता है।[6] यही समस्त संसार को विष घोल-घोल कर पिला रही है।[7] यह ठगिनी है।[8] संत रामानन्द संसार और मन की तरंगों को माया की संज्ञा देते हैं।[9]

साधना-पक्ष

प्रायः सभी संतों ने गुरु को महत्त्व दिया है। गुरु जीव का जन्म सफल बनाता है और ब्रह्म साक्षात्कार का मार्ग दर्शाता है। संत नामदेव के अनुसार ज्ञान रूपी अंजन गुरु से ही प्राप्त होता है[10], वही संसार-सागर से पार उतारता है।[11] गुरु पथ-प्रदर्शक होता है। लल्लद्यद गुरु की उपमा गडरिये से देती हैं जो भेड़ों के समूह का निरीक्षण करता है।[12]

---

१. राम तोरी माया नाच्चु नचावै — दूलनदास की बानी, १९१४ ई०, पृष्ठ १६।

२. छठवां माया चक्र साइ, अरुझनि गगन दुवार।—वही, पृष्ठ २८।

३. वलुनस संसारचमायाय,
म्वकलय च्यानि व्वपाया सूत्य।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०, पृष्ठ ८।

४. सदा मायाय अन्दकनि छुखच्ह रूज़िथ।
तमाशाह छुख वुछान बनि क्याह अथ।—वही, पृष्ठ १३८।

५. तिरदेवा थिर नहीं नहीं थिर माया रानी।
—चरनदास जी की बानी, भाग १, १९५२ ई०, पृष्ठ ५७।

६. माया के फँद से बचाना कोऊ है, माया ने किहा संसार सोगी,
—पलटूसाहब की बानी, भाग २, पृष्ठ ३८।

७. माया कलवारिनी देत विष घोरि कै॥—वही, पृष्ठ ३९।

८. विश्वमाया नानाता मनुक तरंग मशिराव।—पाण्डुलिपि से उद्धृत।

९. विश्वमाया नानाता मनुक तरंग मशिराव।—पाण्डुलिपि से उद्धृत।

१०. गिआन अंजनु मोकउ गुर दीना।
—संतनामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृ० ९७।

११. जिह गुरु मिले तिह पारि ऊतारै।—वही, पृ० १०१।

१२. ग्वोर सुन्दर वनुन रावन त्योल प्योम।
पहलि रोस्त ख्योल गोम ह्यक कहु न॥
Lalla Vakayani, Grierson and Barnett, 1920, Page 118.

वे ग्रात्मज्ञान ग्रौर ब्रह्मप्राप्ति का साधन गुरु को ही मानती हैं।[१] संत कबीर ने परमतत्त्व को प्राप्त करने के लिए गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। वे ब्रह्म से गुरु को बड़ा मानते हैं।[२] माया रूपी दीपक पर जीवरूपी पतंगा भ्रमित होकर गिरता है परन्तु गुरु-ज्ञान से जीव का संसार में उद्धार होता है।[३] लल्लद्यद भी मानती हैं कि जो जीव गुरु की शिक्षा पर विश्वास करे ग्रौर ज्ञानरूपी लगाम से चित्त रूपी ग्रश्व को तथा इन्द्रियों को वश में करे वही मुक्त हो सकता है।[४] गुरु नानक के ग्रनुसार बिना गुरु के मन का मैल नहीं छूटता है।[५] बिना गुरु के न भक्ति होती है ग्रौर न श्रद्धाभाव। गुरु बिना सत्संग-ग्रानन्द भी नहीं मिलता। मनुष्य गुरु के बिना ग्रज्ञान के ग्रन्धकार में रहकर संसार के प्रपंचों में पड़ा रहता है।[६] संत नुंदर्योश गुरु को बुद्धिमान ग्रौर ग्रमृत स्वरूप मानते हैं जिससे ग्रमृत बूँद-बूँद में टपकता है।[७] संत दादू गुरु को ही ग्रगम ग्रौर ग्रगाध ब्रह्म की प्राप्ति का साधन मानते हैं।[८] गुरु ग्वाल की भाँति शिष्य रूपी गाय की रक्षा कर ईश्वर रूपी

---

१. क्रयि हुन्द आगुर वति क्युत छुय।
ग्रन्तः क्युत छुय ग्वोर सुन्दर नाव।।
—ग्रमृतवाणी (भाग १) राजम्यू मल्ला, १६६१ ई० पृ० २६।

२. गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागौ पाँय।
बलिहारी गुरु ग्रापने, गोविन्द दियो बताय।
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १६५३ ई०, पृष्ठ १२०।

३. माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक ग्राध उबरंत।।—वही, पृष्ठ ११६।

४. ग्वोर शब्दस युस यछ त पछ मरे।
गन्यानह वग रटि चित तोरगस।
इन्द्री सोबरिय ग्रानन्द करे।
ग्रदह कुस मरितय मारन कस।
—ग्रमृतवाणी (भाग १), राज्यू मल्ला, १६६१, पृ० ३६।

५. बिन गुर मैलू न उतरै बिनु हरि किउ घर वासु।
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, २०१८ वि०, पृष्ठ १११।

६. बिनु गुर भगति न भाउ होइ। बिनु गुर सत नसंगु देइ।
बिनु गुरु ग्रँधुले धुँध रोइ। मनु गुरमुरिव निरमलु मलु सबदि खोइ।।
—वही, पृष्ठ ७०४।

७. दानिशमन्द छुय ग्रमृत ग्वोर।
फ्योर फ्योर ग्रासी तस पशपान।।
—नूरनामा, मुहम्मद ग्रमीन कामिल, १६६५ ई०, पृष्ठ १७६।

८. दादू गब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तकि मेरे कर धर्‍या, देख्य ग्रगम ग्रगाध।।
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १६५३ ई०, पृष्ठ ४४६।

मालिक को सौंपता है।[१] रूपभवानी गुरु को ज्ञान का प्रबल प्रकाश देने वाला मानती हैं, वही कुल का उद्धार करने वाला भी है, वही ब्रह्म है और वही गुरु है।[२] इनके अनुसार ब्रह्म और गुरु में कोई अन्तर नहीं है। संत रज्जबदास के अनुसार गुरु से ही परमगति प्राप्त हो सकती है वही जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार करा देता है।[3] गुरु के मार्ग-दर्शन से ही ब्रह्म और जीव की एकता का ज्ञान होता है।[४]

मिर्ज़काक ने भी गुरु को ब्रह्म का अवतार माना है, उसके ज्ञानोपदेशों से अज्ञान का नाश होता है।[५] संत सुन्दरदास भी गोविन्द से अधिक गुरु की महिमा मानते हैं।[६] काल के जाल से गुरु ही मुक्त करा सकता है।[७] परमानन्द भी साधना पक्ष में गुरु को महत्त्व देते हैं, वही जीव को आनन्द-प्राप्ति कराता है। गुरु-दीक्षा स्वीकार करना ही सोहम् है। गुरु की शिक्षा से ममत्त्व की भावना का लय होता है और मैं वही (ब्रह्म) हूँ का ज्ञान होता है।[८] जीव को तन-मन से सद्गुरु का ध्यान करना चाहिए।[९] संत मलूकदास भी गुरु को जीव का पथ-प्रदर्शक मानते हैं। जीव जन्म-मरण के चक्र में उलझा रहता है। गुरु ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति करा सकता है। जो जीव गुरु उपदेश पर विश्वास

---

१. सिख गोरुगुर ग्वाल है, ख्या करि करि लेइ।
दादू रखै जतन करि, आणि घणी कौं देइ॥—वही, पृष्ठ ४५२।

२. सुह इह प्रबल दीप प्रकाश,
सुह इह सर्व क्वोलस़ उदार करवुन,
सुह इह ईश्वर सुह छुह ग्वोर॥
—रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, २००७वि०, पृ० २१-२२।

३. गुर परसाद अगम गति पावे,
पलटै जीव ब्रह्म कै आवै।
—रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, १९६३ ई०, पृष्ठ ३८७ :।

४. ब्रह्म प्यंड की यैक़ गति, पावै खैजी प्रान।
उभय ठौर सब असहै, समझावै गुरुजान॥—वही, पृ० ४

५. ग्वोर आम रूप अवतार,
कोरनम वोपदीशिय।
गोलुन अज्ञान बोवुन ज्ञान,
मुफतस नाम राम रामै॥
—मिर्ज़काक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, १९६३ ई०, कविता १, पद २१।

६. गुरु की तो महिमा अधिक है गोविन्द तें।—सुन्दर बिलास, १९१४ ई०, पृ० ९।

७. गुरु उपदेसे सौं तो छूटै जम फंद तैं।—वही, पृ० ८।

८. परमानन्द प्राव सोख तय सावय।
गोरु मोख मानुन छुय सोहम्॥—परमानन्द सूक्तिसार, भाग २, पृ० १२२।

९. सोयंज़े तन मन सत्गुरु ध्यान।—वही, भाग ३, पृष्ठ २६।

करता है वही संसार-सागर से पार हो जाता है।[1] ब्रह्म-साक्षात्कार या आध्यात्मिक रहस्य पाने के लिए शमसफकीर गुरु को आवश्यक मानते हैं। जीव आध्यात्मिक सरिता का कोलाहल तो सुनता है परन्तु बिना गुरु के इसको पार नहीं किया जा सकता।[2] गुरु ही ब्रह्म के रहस्य का ज्ञान करा सकता है।[3] संत दूलनदास तो गुरु को ही ब्रह्मा, विष्णु और शंकर मानते हैं।[4] उसका उपदेश अगम और अगाध है। कृष्णराज़दान भी गुरु को बड़ा महत्त्व देते हैं, वही परमतत्त्व का साक्षात्कार कराकर अमृतपान करा देता है।[5] चरणदास गुरु को ज्ञान-रूपी प्रकाश का साधन मानते हैं।[6] वे ब्रह्म से भी गुरु को बड़ा मानते हैं।[7] संत लछकाक के अनुसार जीव के लिए ब्रह्म रहस्य में रहता है परन्तु गुरु की कृपा से ही ब्रह्म-ज्योति दृष्टिगोचर होती है।[8] पलटूदास के अनुसार सबकुछ त्याग कर गुरु का ध्यान करना चाहिए, ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा आवश्यक नहीं है, काया में व्याप्त परब्रह्म की ही अर्चना करनी चाहिए।[9] गुरु की कृपा से ही ज्ञान-प्रकाश प्राप्त

---

१. गुरु के बचन करैं परतीत, सोई सिद्ध जाय जग जीत।
—मलूकदास जी की बानी, १९४६, पृष्ठ १८।

२. बौज़दरियायि समीतुक शोर,
बेपय नो तरख अपोर,
सूत्य सूत्य ह्यन रहबरै।।
—शमसफकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १९५९ ई०, पृष्ठ २४।

३. मना सपदुम सिर फाश करनस,
पीरय छु मालिक कार।।—वही, पृष्ठ २४।

४. गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु है गुरु संकर गुरु साध,
दूलन गुरु गोविन्द भजु गुरुमत अगम अगाध।
—दूलनदास की बानी, १९१४ ई०, पृष्ठ २८।

५. ब्रह्मानन्दस प्यठ वार थावतम।
सद्गवर हावतम गटि मंज़ गाश।।
—शिवपरिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०, पृष्ठ १०।

६. गुरुसेवा बिन घट अँधियारा, कैसे प्रगटे ज्ञान उजारा।
—चरणदास जी की बानी, भाग १, १९५२ ई०, पृष्ठ ६।

७. हरि रूठै कुछ डर नहीं, तू भी दे छुटकाय।
गुरु को राखौ सीस पर सब विधि करैं सहाय।—वही, पृष्ठ ६।

८. ओस हरी हरय छायि रूज़िथ दय।
परम ग्वोरन द्युत परम रूप बो न्येरि दय।।—पाण्डुलिपि से।

९. सकल तजि गुरु ही से ध्यान लगै हौं।
ब्रह्मा विस्नु महेस न पुजिहौ ना मूरत चित लैहौं।
जो प्यारा मोरे घट माँ बसतु है, वाही को माथ नवैहौं।
—पलटूसाहिब की बानी, भाग ३, पृष्ठ २।

होता है।[1] संत रामानन्द भी गुरु-उपदेश पर विश्वास करने के पक्ष में हैं, सच्चा गुरु वह है जिसने सत्यतत्त्व को प्राप्त किया हो, जो मतवादी न हो।[2]

योग—निर्गुण संत-कवियों ने योगियों से भी कुछ-न-कुछ ग्रहण किया यद्यपि इन्होंने यौगिक क्रियाओं, व्रत, उपवास, शरीर को पीड़ित करने का विरोध किया तथापि यौगिक शब्दावली सुरत, अनाहद, षट्चक्र आदि को ग्रहण कर उसे अपनी साधना में इन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। संत नामदेव के अनुसार गुरु की कृपा से जब अनहद नाद का श्रवण होता है तभी जीव और ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।[3] योगियों की भाँति ये सन्त मानते हैं कि शरीर में छह कमल हैं जो षट्चक्र कहलाते हैं। लल्लद्यद के अनुसार ब्रह्म-प्राप्ति के लिए षट्चक्र को वश में करके शरीर में स्थित ब्रह्मरन्ध्र से अमृत का पान करना आवश्यक है।[4] संत कबीरदास ने जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति शरीर में मानी है,[5] उसी प्रकार लल्लद्यद भी भानु और चन्द्रमा का स्थान शरीर में स्वीकार करके सूर्य के प्रकाश की क्षीणता के पश्चात् चन्द्रमा के प्रकाश का विकीर्ण होना मानती हैं।[6] गुरु नानक के अनुसार षट्चक्रों वाला देह मठ है और उसमें रहने वाला वैराग्यवान मन है, इसके अन्तर्गत आत्मिक ज्ञान वाला शब्द गूंज रहा है। यहीं से अनहद

---

१. सतगुरु साहिब जब मिहर करी, तब ज्ञान का दीपक बारा है जी।—वही, पृ० ४५।

२. सथ ग्वोर सुय यस सथ भासे न त युथ न ग्वोर मतवादी आसे।

—पाण्डुलिपि से उद्धृत।

३. तह अनहद सबद बजंता।
जोति जोति समानी मैं गुरु परसादी जानी॥
—संत नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, १९६४ ई०, पृष्ठ ९६।

४. षे वन चटिथ शशिकल वुज़म।
प्रकृथ होज़म पवन सातीय।
लोलक्य नार सूत्य वालिज्य बुजुम।
शंकर लोभुम तमिय सूत्य।
—लल्लवाक्यानि ग्रियर्सन, १९२० ई०, पृष्ठ ४६।

५. त्रिकुटी चढ्यौ पाव ढौढारै अरध उधर की क्यारी।
चंद सूर दोऊ पाणति करिहै, गुर मुषि बीज बिचारी॥
—कबीर ग्रन्थावली, श्याम सुन्दरदास, २०१८ वि०, पृष्ठ १२०।

६. भान गोल तय प्रकाश आव जूनै।
चन्द्र गोल तय स्वत चित॥
—लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२० ईसवी, पृष्ठ ३०।

नाद का श्रवण होता है।[1] संत नुंदर्योश ने सहज भाव को अधिक महत्त्व दिया है।[2] कबीरदास 'सहज' से ही ब्रह्म की प्राप्ति मानते हैं।[3] लल्लद्यद "सहज" के लिए शम और दम की आवश्यकता नहीं मानती हैं।[4] रूपभवानी के अनुसार अनाहत शब्द से मन को केन्द्रित करके आनन्द की प्राप्ति है।[5] इन्होंने योग में राजयोग को सर्वोच्च माना है।[6] प्राणायाम से सहस्रार की अमृतधारा का स्वाद मिलता है।[7] मिर्ज़काक ने भी राजयोग को उत्तम माना है। राजयोग में मन को केन्द्रित करके ब्रह्म-साक्षात्कार होता है।[8] सन्तसुन्दरदास षट्चक्रों का वर्णन करके इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को मुख्य नाड़ियाँ मानते हैं,[9] ब्रह्म-प्राप्ति

---

१. खटुमटु दही मनु वैरागी, सुरति सबदु धुनि अंतरि जागी।
वाजे अनहदु मेरा मनु लीणा। गुरबचनी सचि नामि पतीणा।
—नानकबाणी, डा० जयराम मिश्र, २०१८ वि०, पृष्ठ ५०४।

२. सहज़ ज़ल छोवुन तीर येरनोवुम,
बिहिथ साअल कोरुम अकि आनत।
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ २४७।

३. जा सहजै साहब मिलै सहज कहावै सोय॥
—कबीर वचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय, २९१५ वि०, पृष्ठ ११५।

४. सहज़स शम त दम नो गछे।
इछि प्राक्ख मुक्ति द्वार॥
—लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२० ई०, पृष्ठ ५०।

५. अनाहत शब्द मना गंडिथ।
मान मंडिथ रिशीयस।
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेश: डा० शिवनाथ शर्मा, २००७ वि०, पृष्ठ ३९।

६. यिहुय राजे यूगी दाता पितासुय,
सर्वकांख्या सु अर्थ पूरनी।—वही, पृष्ठ ३-४।

७. आकाश सुह मदुर वछूम दाड,
तवय तार रोटुमस पय॥—वही, पृष्ठ ३९।

८. राजयूग छुम्ये वानान,
शब्द पज्य पाठ्य गव म्ये कनन,
और योर निशि मन अन,
स्वोता स्यद नाम राम रामै॥
—मिर्ज़काक, सर्वानन्दकौल प्रेमी, १९६३ ई०, कविता १, पद २२।

९. नाडी कही अनेक विधि दश मुख्य विचार,
इडा पिंगला सुषुमना, सब माहि ये त्रय सार॥
—सुन्दर ग्रन्थावली, पुरोहित हरिनारायण शर्मा, १९९३ वि०, पृष्ठ ४४।

लिए इन्द्रियों का वशीकरण आवश्यक है।[१] परमानन्द ने कश्मीर के भिन्न-भिन्न स्थानों से समता देकर षट्चक्रों का निरूपण किया है और शरीर में ही सूर्य और चन्द्रमा का वास माना है।[२] इन्होंने कुण्डलिनी शक्ति को माता और पंच प्राणों को उसकी सन्तान माना है।[३] संत मलूकदास भी साधनापक्ष में योग को महत्त्व देते हैं। इनके अनुसार जहाँ अनहद नाद होता है वहीं ब्रह्म का निवास है, ब्रह्मरन्ध्र में ही ब्रह्म की ज्योति का साक्षात्कार होता है।[४] मन को अजपा-जाप में रत रखना चाहिए।[५] शमसफकीर भी ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए ज्ञान और प्राण का रहस्य जानना आवश्यक मानते हैं।[६] छः द्वारों को बन्द कर शशिकल का अनुभव करना चाहिए।[७] कृष्णराज़दान इन्द्रियों के वशीकरण पर जोर देते हैं।[८] जो साधक राजयोग को अपनायेगा उसी को ब्रह्म की प्राप्ति होती है।[९] संत चरणदास ने भी योग को महत्त्व दिया है। उनके अनुसार योग की युक्ति बड़ी कठिन है। मूलाधार से लेकर सभी चक्रों को वश में करना, पद्मासन का अभ्यास, चन्द्र और सूर्य

---

१. ये इंद्रिय कोई मारै, सो पूरन ब्रह्म बिचारै।
ये इंद्रिय जिनि बसि कीन्हा, तिनि आतम रामहिचीन्हा ।। —वही, पृष्ठ १४८।

२. चन्द्र मंडलस ओस तचर खसान।
शशि कलि शीन विगलावानो।
पृथिवियि वर्णण रत्य फल उपदान ।। —परमानन्द सूक्तिसार भाग २, पृष्ठ ४९।

३. माज्य कुंडलिनी त शुर्य छिस पांच प्राण। —वही, भाग १, पृष्ठ ९६।

४. सब्द अनाहद होत जहाँ तें, तहाँ ब्रह्म कर बासा।
गगन मंडल मैं करत कलौले, परम ज्योति परगासा।
—मलूकदास जी की बानी, १९४६ पृष्ठ १७।

५. अब तो अजपा जपु मन मेरे। —वही, पृष्ठ १६।

६. ज़ानवन्य ज़ानकर प्राणस ज्ञानस।
ज़ान मिलनाव भगवानस सूत्य।
—शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १९५६ ई०, पृष्ठ ६८।

७. शे पाश त्रोपरिथ शशिकल वुज़ुम,
इशरह तमिकुय छुय हुशियारन।—वही, पृष्ठ ३२।

८. इन्द्रिय यिम असि द्रायेम फटिथय,
ह्यस ह्यथ रटिथय खटिथय पोढय।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०, पृष्ठ १०।

९. राज़योग राज़ यस पकि च्यय हिवु सूत्य,
दय दन वालि तस वति मेलन कूति।।—वही, पृष्ठ ३१६।

को सम करना, सहज साधना, प्राणायाम आदि यौगिक प्रक्रिया के अन्तर्गत ही आता है।[1] संत लछकाक के अनुसार संसार-सागर को पार करने का एक साधन योग है। योग-प्रक्रिया से ब्रह्म का ध्यान कर आनन्दामृत का पान किया जाता है।[2] पलटूसाहिब के काव्य में भी यौगिक शब्दावली का प्रयोग मिलता है। षट्चक्र-निरूपण, पिंगला, सुषुम्ना, शून्य स्थल आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। मनुष्य के मस्तक में एक सहस्रदल कमल है जो सदैव नीचे की ओर लटका रहता है, इससे बूंद-बूंद में अमृत नीचे की ओर टपकता रहता है, इस स्थान से रात्रि और दिवस निरन्तर प्रकाश आता है।[3] संत रामानन्द सर्वप्रथम वैराग्य को अपनाने की ओर संकेत करते हैं, उसके पश्चात् मन का वशीकरण और योग, प्रक्रिया द्वारा इन्द्रिय-निग्रह-वासना का त्याग तथा शम और दम आवश्यक है।[4]

बाह्याडम्बरों का विरोध—सन्तों ने साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। एक ओर तो उन्होंने हिन्दुओं के कर्मकाण्ड का विरोध किया और दूसरी ओर मुसलमानों को फटकारा। सन्त नामदेव के अनुसार पत्थर में कोई अन्तर नहीं होता, एक पर पाँव रखा जाता है और एक से मूर्ति का निर्माण होता है।[5] उन्होंने हिन्दुओं को मन्दिरों

---

१. ऐसी जोग जुक्ति गति भारी।
मूलहि बँध लगाय जुक्ति सूँ मूँदि दई नव नारी।
आसन पद्म महा दृढ़ कीन्ही हिरदय चिबुक लगाई।
चंद सूर दोउ सम करि राखे निरति सुरति घर आई।
ऊपर खैंचि अपान सहज मैं सहजै प्रान मिलाई।
पवन फिरी पच्छिम कूँ दौरी मेरुहि मेरु चलाई।
—चरनदास जी की बानी, भाग २, १६०८ ई०, पृष्ठ १६८।

२. यूग लयि सु वति सोर्यजे
सहज़ अमृथ चे गलि गले।
यम भयि भवसर तरिजे ॥ —पाण्डुलिपि से उद्धृत।

३. उलटा कूवा गगन मैं तिस मैं जरै चिराग,
तिस मैं जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।
—पलटूसाहिब की बानी, भाग १, पृष्ठ ७७।

४. ग्वोड आदि वैराग्य छुम कारण अभ्यास यूग रठ यन्द्रियत मन।
वामनायि क्षय त्याग सुय शम दम ही योंश पोत्रव सोरिवो ओं।
—पाण्डुलिपि से उद्धृत

५. किसू हूँ पूंजूँ दूजा नज़र न आई।
एक पाथर किज्जे भाव दूजे पाथर धरिये पाव।
—सन्तसुधासार, श्री वियोगी हरि, १६५३ ई०, पृष्ठ ५४।

में और मुसलमानों को मस्जिदों में पूजने पर फटकारा है, वास्तव में ब्रह्म मन्दिरों और मस्जिदों की सीमा से परे है।[1] लल्लद्यद भी पूजा को व्यर्थ मानती हैं। देवता भी पाषाण है और देवालय भी पाषाण ही है, दोनों का पत्थर एक है अतः पूजा के आडम्बर में न पड़कर मन और पवन को वश में करना चाहिए।[2] कबीरदास ने भी हिन्दू और मुसलमान दोनों को फटकारा है।[3] जो गुरु घर-घर जाकर मन्त्रों का उपदेश देते हैं वे शिष्यों-समेत अन्तकाल में पछताते हैं।[4] लल्लद्यद भी तन्त्र-मन्त्र को मानती हैं क्योंकि आत्मा-परमात्मा एक है, शून्य शून्य के साथ मिल जाता है।[5] गुरु नानक के अनुसार पंडित लोग धार्मिक पुस्तकें पढ़कर संध्या करते हैं और गायत्री पाठ करते हैं, गले में माला तथा ललाट पर तिलक लगाते हैं, यह व्यर्थ है।[6] नुंदर्योश भी शरीर को कष्ट देने के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार शरीर को कष्ट देने से मन की मैल स्वच्छ नहीं होती है और न ही

---

१. हिन्दू पूजै देहुरा मुसलमान मसीत।
नामा सोई सेविया जहाँ देहुरा न मसीत।—वही, पृष्ठ ५५।

२. देव वटा देवर वटा।
प्यठ ब्वोन छुय एक वटा।
पूज़ कस करख हतो बटा।
कर मनस त पवनस संगाट॥
—लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२० ई०—पृष्ठ ३९।

३. अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
—कबीर वचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय, २०१५ वि०—पृष्ठ २४२।

४. घर-घर मंत्र जे देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना।
गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अन्तकाल पछताना॥—वही, पृष्ठ २३७।

५. तन्त्र गलि तय मन्त्र म्वोचे।
मन्त्र गोल तय म्वतुय चित।
चित गोल तय केंह ति ना कुने।
शून्यस शून्याह मीलिथ गव।
—लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२० ई०—पृष्ठ ३३।

६. पढ़ि पुस्तक संधिआ बादं। सिल पूजसि बगुल समाधं॥
मुखि झूठ किभूखन सारं। त्रै पाल तिहाल विचारं॥
गलि माला तिलक लिलाट। दोइ धोती वसत्र कपाट॥
—नानकवाणी, डा० जयराम मिश्र, २०१८ वि०—पृष्ठ ८०२।

माला जपने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है।[1] प्रायः सभी सन्तों ने हिन्दू और मुसलमानों को एक मानकर जाति-प्रथा का विरोध किया है। लल्लद्यद हिन्दू और मुसलमानों को एक समझने का उपदेश देती हैं।[2] कबीर के अनुसार हिन्दू राम को अपना देवता मानते हैं और मुसलमान रहमान को, परन्तु दोनों जातियाँ भ्रम में हैं। वास्तविक मर्म कोई नहीं जानता कि इनमें द्वैतभाव नहीं है।[3] सन्त नुंदर्योश हिन्दुओं और मुसलमानों को एक ही माता-पिता की सन्तान मानते हैं।[4] सन्त दादू ने हिन्दुओं और मुसलमानों को अज्ञानी माना है, वे यह नहीं जानते कि ईश्वर एक है।[5] जो कंकर-पत्थर एकत्रित करते हैं वे अपना अमूल्य रत्न खो देते हैं, ब्रह्म का वास जीव के अन्तःकरण में है।[6] रूपभवानी भी पूजा-पाठ को व्यर्थ मानती हैं। पाठ स्वयं भक्त के मन में होना चाहिए, वाणी और आत्मा

---

१. अथ कुन्द पानस मो दिम रन्दौ।
अमि सूत्य वोन्द मल वोथिनो।
अमि तसबीहि आसत जन्दो।
अभि फन्द सु अथि यियीनो॥
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५—पृष्ठ १९१।

२. शिव छुय थलि थलि रोज़ान।
मो ज़ान ह्योंद त मुसलमान।
त्रुकय छुख त पनुनुय पान परज़ान।
सुह हा मालि छय साहिबस सूत्य ज़ानी ज़ान॥
—अमृतवाणी (भाग १) रामज्यूमल्ला, १९६१ ई०—पृष्ठ ४३।

३. हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस मैं दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना॥
—सन्तसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०—पृष्ठ १०४।

४. अकिस मालिस माजि हन्द्यन।
तिमन दय त्राविथ त क्याह।
मुसलमान न क्योहो ह्यन्द्यन।
कर बन्दन तोशि खोदाय॥
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ ४८।

५. हिन्दू तुरक न जाणौं दोइ।
सांई सबनि का सोई है रे और न दूजा देखौं कोई।
—सन्तसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४४५।

६. दादू जिन कांकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गवाइ।
अलख देव अंतरि बसै क्या दूजी जागह जाइ॥—वही, पृष्ठ ४८१।

एक हो वही जप है, उसी से परम पद की प्राप्ति होती है।[1] सन्त रज्जबदास ने जाति-पाँति को व्यर्थ कहा है। सभी मनुष्य एक हैं, ब्रह्म से आये हैं और एकही ब्रह्म में समाने वाले हैं।[2]

सन्त सुन्दरदास के अनुसार तीर्थयात्रा, जप, तप आदि सब व्यर्थ है। ब्रह्म जीव के हृदय में व्याप्त है परन्तु जीव उसका अन्वेषण तीर्थ-स्थानों में करने जाता है।[3] ब्रह्म जीव के शरीर में ही व्याप्त है परन्तु वह अज्ञान का कारण उसे अन्यत्र खोजता है।[4] परमानन्द भी तंत्र-मन्त्र को व्यर्थ मानते हैं। संसार बिना पुल का सागर है जिससे पार होना कठिन है।[5] मनुष्य को जाति, वंश, कुल या स्तर पर अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि समस्त संसार परमतत्त्व से ही व्याप्त है अतः भिन्नता कैसी?[6] मलूकदास के अनुसार ब्रह्मज्ञान बाह्याडम्बर से नहीं होता है। पंडित वेदों को पढ़कर उनमें ही उलझ जाते हैं, ज्ञानी ज्ञान का वर्णन करते हैं परन्तु ब्रह्म की अद्भुत लीला कोई नहीं पहचान

---

१. नव पाठ ज़ानस तव पाठ पड।
सुह पाठ पानय मने वोत।
ज़पान आत्म त दपान वानी।
पीव मदु रस बरिथ तो छिव॥
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, २००७ वि०, पृष्ठ १४।

२. कुल मरजाद मैंड सब भागी, बैठा भाठी नेरा।
जाति पाँति कछु समझै नाहीं, किसकूँ करै परेरा॥
—रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, १९६३ ई०, पृष्ठ ३८८।

३. कोऊक जात प्रयाग बनारस, कोउ गया जगनाथहि धावै।
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु कोउ गंगा कुरुक्षेत्र नहावै।
— — — — —
—सुन्दर वित गड्यो घर माहिं सु वाहिर ढूंढत क्यूं करि पावै॥
—सुन्दरबिलास, १९१४ ई०, पृष्ठ ६८।

४. आपही कै घट मैं प्रगट परमेसुर है,
ताहि छोड़ि भूले नर दूर-दूर जात है।—वही, पृष्ठ ६८।

५. ज़ानय न मंतर तंतर त पाठ्य।
भवसागर कति सुम तय शाठ्य।।—परमानन्द सूक्तिसार, भाग २, पृष्ठ १२७।

६. ना हो कुल गोत्र का मानी,
ना वर्ण और आश्रम।
प्रभु जिस का सब स्वरूप उसी का
सब कर्मों का क्रम।—वही, भाग २, पृष्ठ ८४।

सकता।[१] मूर्तिपूजक जीव ब्रह्म नाम का स्मरण तो करते है परन्तु दूसरों की आत्मा को दुःख देते हैं अतः उनकी मूर्तिपूजा निष्फल जाती है।[२] माला या तसबीह फिराना भी व्यर्थ है।[३] शमस फकीर भी साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध करते हैं। रात-दिन माला फेरना व्यर्थ है, इससे वास्तविक मोती खो जाते हैं और जीव कृत्रिम मोती के पीछे पड़ते हैं।[४] सन्त दूलनदास के अनुसार योगी योग में भ्रमित है, पंडित वेद-पुराणों में मग्न है परन्तु यहां वही लोग पार हो जाते हैं जो आठों पहर नाम-स्मरण में रत हों।[५] जातिगत भेदभाव छोड़ना चाहिए, हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई छोटा-बड़ा नहीं है जिसको भूखा देखो उसकी सहायता करो।[६] कृष्णराज़दान भी स्वयं को बाह्याडम्बरों से वंचित सिद्ध करते हैं। वे अर्चन, तत्वज्ञान, यज्ञ, भक्ति, संध्या और स्नान आदि नहीं जानते, उन्होंने न वेदाध्ययन किया है और न जप। वे शास्त्र और पुराणों के अध्ययन से भी वंचित हैं।[७] सन्त चरणदास भी साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध करते हैं। माला पहनने से क्या होता है।[८] तिलक लगाना, पूर्व और पश्चिम की ओर प्रार्थना करना

---

१. वेद पढ़े पढ़ि पंडित भूले, ज्ञानी कथि कथि ज्ञाना।
कह मलूक तेरी अद्भुत लीला, सो काहू नहिं जाना।।
—मलूकदास जी की बानी, १९४६, पृष्ठ ५।

२. मूरत पूजै बहुत मति नित नाम पुकारैं।
कोटि कसाई तुल्य है सो आतम मारैं।—वही, पृष्ठ ८।

३. माला कहाँ और कहाँ तसबीह,
अब चेत इनहि कर टेक न टेकै।—वही, पृष्ठ २७।

४. हा ज़ाहिद क्याह छुख च करान,
राथ दोह गोय तसबिह फिरान,
मोख्त रावी फोतस रछिय जोम।
—शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १९५९ ई०, पृष्ठ २८।

५. जोगी भूले जोग जुगत मैं पंडित भूले पढत पुरान।
—दूलनदास की बानी, १९१४ ई०, पृष्ठ २५।

६. दूलन छोटे वे बड़े मुसलमान का हिन्दु।
भूखे देवैं भौरियाँ, सेवैं गुरु गोविन्दु।--वही, पृष्ठ ३९।

७. न ज़ानय योग पूज़ा नय त्वता ध्यान,
न ज़ानय यज्ञ बक्य न संध्य श्रान,
न ज़ानय वीद परुनु स्वरुनु न नावय,
न ज़ानय तफ न ज़ानय बक्ति बाक्य,
न छुम परुभुत शास्तर नय पुरानेय।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०, पृष्ठ २२४।

८. माला फेरे कहा भयो।
—चरणदास जी की बानी, भाग २, १९०८ ई०, पृष्ठ १७१

भी व्यर्थ है, ब्रह्म तो कस्तूरि की भाँति जीव-रूपी हिरण के ही समीप होता है।[१] सन्त लछकाक ने भी बाह्याडम्बरों का विरोध किया है, उनके अनुसार पुराणों का अध्ययन करना व्यर्थ है, अजपा जाप करना चाहिए, योग ही ब्रह्म-प्राप्ति का एकमात्र साधन है।[२] पलटूदास ने साधना के बाह्याडम्बरों का कटु विरोध किया है। उनके अनुसार ब्रह्म का स्थान न मक्का में है न ठाकुरद्वारा में, वह हिन्दुओं और मुसलमानों के तीर्थस्थानों से परे है।[३] पंडित ने पढ़-पढ़ कर अपने रूप को ही भुला दिया है, दूसरों को ज्ञान का उपदेश देता है परन्तु स्वयं अज्ञानी बना रहता है।[४] तीर्थयात्रा और मूर्ति-पूजा भी व्यर्थ है, वहाँ कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता हैं। सन्त रामानन्द ने भी साधना के बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। उनके अनुसार कर्मकाण्ड एक क्रीड़ा है।[६]

प्रेमतत्त्व—संत साहित्य में आध्यात्मिक प्रेम की महत्ता है। प्रायः सभी संतों ने अपने को प्रेमिका और ब्रह्म को प्रियतम मानकर आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन किया है। संत नामदेव भी आत्मा को ब्रह्म की प्रेमिका मानते हैं। आत्मा ब्रह्म-रूपी प्रिय के लिए ही शृंगार करती है।[७] कबीर दास ने भी आध्यात्मिक विरह का वर्णन किया है।[८] उनकी आत्मा विरह में अत्यन्त दुःखी है।[९] हरि उनका प्रियतम है और वे उनकी प्रेमिका।[१०]

---

१. माला तिलक बनाय पूर्ब अरु पच्छिम दौरा।
नाभि कंवल कस्तूरि हिरन जगत भौ बौरा।
—वही, भाग १, १९५२ ई०, पृष्ठ ५७।

२. ज्येवि पोराण मु परुणुय काव टाव टाव करुनुय।
ज्येवि रोस्तुय ब्रह्मयूग ज़ानत गव दय सोरुनुय।
न्येत्य संध्या गयि सोय ज़पनय ज़फ ज़पुनुय ।।—पाण्डुलिपि से उद्धृत

३. वह दरबारा मारा साधो, हिन्दू मसलमान से न्यारा।
मक्के रहे न ठाकुरद्वारा है सब मैं सब खोजन हारा।
—पलटूसाहिब की बानी, भाग ३, पृष्ठ ५९।

४. पढ़ि पढ़ि क्या तुम कीन्हा पंडित, अपना रूप न चीन्हा।
औरन को तुम ज्ञान बताओ तुम को परै न बूझी ।।—वही, पृष्ठ ५७।

५. तिरथ मैं बहुत हम खोजा, उहा तो नाहिं कुछ पाया।
मूरति को पुजि पछताने, नज़र मैं नाहिं कुछ आया।—वही, पृष्ठ ५८।

६. भाचि बढ़ वुछत बाँडय पाथर कर्म काण्डय।—पाण्डुलिपि से उद्धृत

७. मैं बौरी मेरा राम भतार,
रचि रचि ताकौं करौं सिंगार ।।
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४८।

८. तलफै बिन बालम मोर जिया।—वही, पृष्ठ १०५।

९. बाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे।—वही, पृष्ठ ८१।

१०. हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया।—वही, पृष्ठ ६९।

लल्लद्यद का जीवन ब्रह्मान्वेषण करते-करते व्यतीत हो गया है, अनेक कठिनाइयाँ आईं, ज्यों-ज्यों वे ब्रह्म-प्रियतम के समीप पहुँचीं और वहाँ के द्वार बन्द देखे, त्यों-त्यों उनमें मिलन की इच्छा तीव्र से तीव्रतर होती गई।[1] रात्रि के अन्तिम प्रहर में जाग्रत होकर लल्लद्यद ने प्रेम-विह्वल हृदय से पुकार की और ब्रह्म की प्रेमाग्नि सहन की, प्रियतम प्रियतम पुकार कर प्रिय को जाग्रत किया, इस प्रकार मन के मिलन से उनकी काया भी पवित्र हो गई।[2] गुरु नानक गुरु से ब्रह्म-प्रियतम के मिलन के लिए प्रार्थना करते हैं।[3] ब्रह्म के दर्शन मात्र से ही उनकी आत्मा कमल की भाँति विकसित होती है।[4] संत नुंदर्योश उसी को "आशक" मानते हैं जो प्रेमाग्नि में स्वर्ण की भाँति जल कर चमक उठे, जिसका हृदय प्रेम की पीड़ा से विच्छिन्न हो। ऐसा ही प्रेमी मुक्त हो सकता है।[5] दादूदयाल ने भी आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन किया है। हरि-रस का आस्वादन करते-करते कभी अरुचि नहीं होती है, पीकर नित नूतन प्यास का जो अनुभव करता है वही इस रस का वास्तविक उपभोगी है।[6] संत रज्जबदास राम को प्रेमी मानते हैं और स्वयं को प्रेमिका। राम के साथ रम कर प्रेम का आस्वादन करना चाहिए, प्रेमी का यह सुख

---

१. लल्ल ब लूसस छांडान त गारान,
हल म्ये करिमस, रसनि शतीय,
वुछुन ह्योतमस तार्य डीठिमस बरन,
म्ये ति कल गनेयि ज़ि जोगमस ततीय ॥

—लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन—बारनेट, १६२०, पृष्ठ ६७।

२. पोत ज़ूनि, वथिय मोत बोलनोवुम,
दग ललनावम दय संज़ि प्रहे,
लाल लाल करिथ लाल वुज़नोवुम,
मीलिथ तस मन श्रोच्योम दीह ॥—वही, पृष्ठ ११६।

३. करउ बिनउ गुर अपने प्रीतम हरि वरु आणि मिलावै।

—संत सुधासार, श्री वियोगीहरि, १६५३ ई०, पृष्ठ २४४।

मिर्ज़काक के अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति में प्रेमाग्नि भी एक साधन है, प्रेम की

४. दरसनु देखत हीमनु मनिआ, जल रसि कमल बिगासी ॥—वही, पृष्ठ २४३।

५. आशक सुय युस अशक नार दज़ै।
स्वोन ज़न प्रज़लयस पनुनुय पान।
अशिकुन दोद यस वालिज्य सज़े।
सुय अद वाते लामकाम।

—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १६६५ ई०, पृष्ठ १६८।

६. दादू हरिरस पीवतां कबहूं अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥

—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १६५३ ई०, पृष्ठ ४६४।

अवर्णनीय है।[1]

मिर्ज़काक के अनुसार ब्रह्म की प्राप्ति में प्रेमाग्नि भी एक साधन है, प्रेम की अवस्था में पाप और पुण्य पर विचार नहीं रहता वहाँ जीव ब्रह्म हो जाता है।[2] सुन्दरदास के अनुसार जिस प्रकार जल और मीन, मणि और साँप, स्वाति बूंद, सीप और चातक, रवि और कमल, शशि और चकोर का प्रेम होता है वैसे ही प्रभु के साथ प्रेम करना चाहिए।[3] संत परमानन्द का अन्तर और बाह्य आध्यात्मिक प्रेम से व्याप्त है, वह ब्रह्म के सुन्दर रूप का दर्शन प्राप्त करना चाहता है।[4] संत मलूकदास का विचार है कि राम जैसा पति जिसका हो वह नारी सदैव सुहागिन है, उसे आनन्द की उपलब्धि होती है।[5] उनके विरह में आत्मा 'पिउ पिउ' पुकारती है।[6] शमस फकीर की कविता में भी प्रेम की तीव्रता है। प्रेमी की उत्कट लालसा ब्रह्म-साक्षात्कार की होती है।[7] जीव का हृदय प्रेमाग्नि से तप्त हो जाता है, ब्रह्म-ज्योति का प्रकाश उसके नेत्रों के सामने आता है, प्रेमी मर कर भी अमर रहते हैं।[8] दूलनदास ने अन्य संतों की भान्ति ही अपने को प्रेमिका और ब्रह्म को प्रियतम माना है। प्रेमिका प्रिय-मिलन के लिए उत्सुक है, जब तक दीपक में तेल है, उसे सबकुछ दृष्टिगोचर होता है परन्तु यह प्रकाश समाप्त होने पर

---

१. रज्जब रमि रमि राम सौं, पीवै प्रेम अघाइ।
रसिया रस मैं है रह्यो, सो सुख कह्या न जाइ॥
—रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, १९६३ ई०, पृष्ठ १५०।

२. अशक नार छुय तोत क्याहतामथ, पाप पोण्य तति ना रोज़ान छुय।
सुय भगवान वोन्य छुय पानस, तोत न केंह बोज़ सूहम स्॥
—मिर्ज़काक की पाण्डुलिपि से उद्धृत।

३. जल को सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान।
+ + +
तैसे ही सुन्दर एक प्रभु सू सनेह जोर॥—सुन्दर विलास, १९१४ ई०, पृष्ठ ८२।

४. पूरुम में फोर प्रेम न्यबर त अन्दरो।
सुन्दरो च़ ति म्ये दर्शन दि।—परमानन्द सूक्तिसार, भाग ३, पृष्ठ २३।

५. सदा सोहागिन नारि सो, जा के राम भतारा।
मुख मांगे सुख देत हैं जग जीवन प्यारा।
—मलूकदास जी की बानी, १९४६, पृष्ठ ३।

६. मैं जो प्यासी पीव की, रटत फिरौं पिउ पीव॥—वही, पृष्ठ ६।

७. दियिना दर्शुन यियिना बमनय ललि म्ये लोसम रूज़िथ बेदार,
नालमति रटहन त रोय छुमनह समनय॥
—शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १९५९ ई०, पृष्ठ ३८।

८. अम्य अशक नारन ज़ोलनम बदन,
परतवि आफताब प्यव चशमन, मरिथ मरतब ज़िन्दय रिन्दन।—वही, पृष्ठ ३२।

अन्धकार में कठिनाई होती है।[१] जो प्रेम करके उसका निर्वाह नहीं कर सकते हैं उनका शरीर, मन और जीवन व्यर्थ है।[२] संत लछकाक के अनुसार प्रेममार्ग में विचारपूर्वक चलना चाहिए क्योंकि प्रेमाग्नि के प्रखर ताप से ही वास्तविक कुन्दन का ज्ञान होता है।[३] चरणदास भी आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन करते-करते स्वयं को नारी और ब्रह्म को प्रियतम मानते हैं, वे 'इश्क' में मस्त हैं और उनकी आत्मा बिना जल की मीन की भाँति तड़पती है।[४] पलटूदास भी प्रेम को महत्त्व देते हैं। वे अपने को ब्रह्म की प्रियतमा मानते हैं और बिना सगाई के अपना ब्याह उनके साथ मानते हैं।[५] वह घूँघट के पट खोलकर, जोगन बनकर लज्जा और मर्यादा का परित्याग करके प्रियतम से हँस-हँस के बोलना चाहते हैं।[६]

नामस्मरण—हिन्दी और कश्मीरी के प्रायः सभी सन्तों ने नामस्मरण को महत्त्व दिया है। संतनामदेव दिन-रात रामनाम के जप का उपदेश देते हैं।[७] कबीरदास के अनुसार रामनाम ही सारतत्त्व है।[८] नामस्मरण से जीव ब्रह्ममय हो जाता है।[९] इसी भाव की अभिव्यक्ति लल्लद्यद ने भी की है। उनके अनुसार जो अपनी इच्छा से ब्रह्म का

---

१. पिया मिलन कब होइ, अंदेसवा लागि रही।
जब लग तेल दिया मैं बाती, सूझ पड़ै सब कोइ।
जारिगा तेल निपटि गइ बाती, लै चलु लै चलु होइ॥
—दूलनदास की बानी, १९१४ ई०, पृष्ठ १८।

२. धृग तन धृग मन जनम धृग जीवन माहिं।
दूलन प्रीति लगाइ जिन्ह, और निबाही नाहिं।—वही, पृष्ठ ३७

३. स्वोन छुय थजि त स्वर थाव फवोकस लोलक्य नार सूरस व्यचार
सूरस सरतलि वावथ प्येयि सो नेरे कुन्दन कार॥
—लछकाक की पाण्डुलिपि, कविता संख्या ११।

४. सुधि बुधि सब गइ खोय री मैं इस्क दिवानी,
तलफत हूँ दिन रैन ज्यों मछली बिन पानी॥
—चरणदास जी की बानी, भाग १, १९५२ ई०, पृष्ठ १३।

५. साहिब से लागी री सजनी, मेरो ब्याह भयो बिन मंगनी।
—पलटूसाहिब की बानी, भाग ३, पृष्ठ २१।

६. घूंघट को पट खोलोंगी, जोगिन ह्वै के डोलौंगी।
लोक लाज कुलकानि छोड़ि कै, हँसि हँसि बातैं बोलौंगी॥—वही पृष्ठ २,४।

७. राम को नाम जपों दिन राती
—संतसुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४६।

८. रामनांव तत सार है, सब काहू उपदेस।—वही, पृष्ठ १२०।

९. मन मेरा सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि॥—वही, पृष्ठ १२१।

स्मरण करता है वही ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकता है।[1] गुरु नानक के अनुसार मनुष्य का जन्म बिना रामनाम के व्यर्थ है।[2] बिना हरिनाम के जीव मुक्ति नहीं पा सकता है।[3] संत नुंदर्योश कलिमा पढ़ने को महत्त्व देते हैं, उन्होंने कलिमा पढ़ा और उसी का स्मरण किया, स्वयं को कलिमा बना दिया और कलिमा के द्वारा ही मुक्त हुआ।[4] दादूदयाल रामनाम को एक औषधि मानते हैं जिससे कोटि विषय-विकार नष्ट होते हैं। यही जीव का उद्धार करने वाला है।[5]

रूपभवानी के अनुसार ब्रह्म के प्रतीक कृष्ण, विष्णु, महेश्वर या ब्रह्मा का स्मरण करना चाहिए, जिससे परमज्योति का प्रकाश विकीर्ण होता है।[6] रज्जबदास भी ब्रह्म-साक्षात्कार का साधन नाम-स्मरण ही मानते हैं।[7] नाम-स्मरण के आगे ब्रह्म और साधक दोनों ही दास हैं। नामस्मरण से साधक नारायण से भी श्रेष्ठ बन जाता है।[8] मिर्ज़काक

---

१. शम्भुअस स्वोरि पननि यछ़े।
सोय दपिज़े सहज़ क्रिय ॥—लल्लवाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२० ई०, पृष्ठ ६४।

२. राम नाम बिनु बिरथे जगि जनमा।
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ २४६।

३. बिनु हरिनाम कोउ मुकति न पावसि डूबि मुए बिन पानी।—वही, पृष्ठ २४५।

४. कलिमै पोरुम कलिमै सोरुम,
कलिमै कोरुम पनुन पान।
कलिमै हनि हनि मोयन तोरुम,
कलिमै सूत्य वोतुस लाभकान ॥
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०, पृष्ठ १०५।

५. दादू रामनाम निज औषदी, काटै कोटि बिकार।
विषम व्याधि थै ऊबरैं, काया कंचन सार ॥
—संत सुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४५४।

६. प्रमा तीज़य वोन्दि आदरुम,
रूम रूम ज्योथ तरुमानव
कृष्णा रूपी ब्रह्म स्वरिथ,
स्वोरिथ बिष्णु महीश्वर ॥
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः, डा० शिवनाथ शर्मा, सं० २००७ वि०।

७. नाउं निरंजन लीजिये, तन मन आतम माहिं।
जन रज्जब यूं सुमिरितौं, परम पुरिष मिलि जाहिं ॥
—रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, १९६३ ई०, पृष्ठ ४९।

८. नर नाराइन सौंबड़ा, प्रकट नांव परगास।
दून्यू आगे नांव कै, सेवग स्वामी दास ॥—वही, पृष्ठ ५५।

के अनुसार ब्रह्म का स्मरण ओंकार के द्वारा करना चाहिए।[१] सुन्दरदास के अनुसार ब्रह्म के नामस्मरण में शील, सन्तोष और मुक्ति दिलाने की शक्ति है।[२] राम-नाम के सामने जप, तपस्या, व्रत और दान सबकुछ महत्त्वहीन है।[३] संत परमानन्द ओंकार जाप को महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार ओंकार ही आदि और अन्त है, यही जप का सार है, यही आत्मध्यान है और मन्त्रों का तत्त्व है।[४] वेदशास्त्रों का अध्ययन, स्मृतियों का स्मरण तथा कर्म की निष्ठा ओंकार के बिना व्यर्थ है।[५] संत मलूकदास के अनुसार राम-नाम के जप से करोड़ों पाप एक क्षण में नष्ट हो जाते हैं।[६] जो राम-नाम के महत्त्व को जानते हैं वे सच्चे सपूत होते हैं।[७] शमस फकीर के अनुसार ब्रह्म-स्मरण से मन को स्वच्छ करके अपनी आत्मा में ही ब्रह्म का भास होता है।[८] दूलनदास राम-नाम स्मरण से अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति मानते हैं।[९] अतः सबकुछ भूलकर राम-नाम की रट लगानी

---

१. ओं निशि द्राव वखुन सु रोशन,
जानि जानानस सूत्य सूत्यी।—मिर्ज़काक की पाण्डुलिपि से उद्धृत

२. सुमिरन ही मैं शील है सुमिरन मैं सन्तोष
सुमिरन ही तैं पाइये सुन्दर जीवन मोष॥
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३, पृष्ठ ६३५।

३. राम नाम बिन लैन कौं और वस्तु कहि कौन।
सुन्दर जप तप दान व्रत, लागे खारे लौन॥—वही, पृष्ठ ६३५।

४. आदि अंत शब्दन मंज़ओंकार छुय।
ज़पनय मंज़ अज़पा ज़प सार छुय।
ध्यान मंज़ आत्मुक ध्यान शोभिदार छुय।
धारणा धार धारणा धार।—परमानन्द सूक्तिसार, भाग ३, पृष्ठ ८६।

५. वेद शास्तर त पुराण यच् पर्य पर्य।
कर्म क्रम अभिमान सूत्य सच् कर्य कर्य।
मानि युस बोज़ि बूज़्य बूज्य श्रुच् पर्य पर्य।
तार छ न तस तार तरि ओ त लो लो॥—वही, भाग ३, पृष्ठ ३१।

६. राम नाम एकै रती, पाप कैं कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार॥
—मलूकदास जी की बानी, १९४६, पृष्ठ ३३।

७. राम नाम जिन जानिया, तेई बड़े सपूत।—वही, पृष्ठ ३३।

८. ज़िकिर हरतन सूत्य दरपन सपदुम।
हर छुम नाली नाल।
—शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, १९५९ ई०, पृष्ठ १८।

९. दुलनदास जिनके हृदय, नाम बास जो आय।
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि बिचारी, ताहि छाड़ि कह जाय॥
—दूलनदास की बानी, १९१४ ई०, पृष्ठ २९।

चाहिए।[१] कृष्णराज़दान नाम-स्मरण को ही सार मानते हैं। नाम-स्मरण से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है।[२] पलटूदास के अनुसार बिना सत्संग के हरि-कथा का श्रवण नहीं होता है और बिना नामस्मरण के मोह नहीं भागता है।[३]

ज्ञानतत्त्व—संतकवि भारतीय अद्वैत दर्शन से प्रभावित हैं। उन्होंने शंकर की भाँति ही साधना-क्षेत्र में भक्ति की अपेक्षा ज्ञान को महत्त्व दिया है। संत नामदेव ज्ञान को अंजन मानते हैं, जिसकी प्राप्ति गुरु से होती है, इसी से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।[४] कबीर के अनुसार ज्ञान-रूपी दीपक के प्रकाश से जीव का मन प्रकाशित होता है।[५] ज्ञान के बिना मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है, ज्ञान गुरु से प्राप्त होता है।[६] लल्लद्यद के अनुसार ज्ञान के प्रकाश से शरीर को प्रकाशमान करके जो कुछ वे कहती हैं, वह अनुभूति पर आधारित है। फिर प्रणव की महिमा के द्वारा अहं को समाप्त कर जीवित ही ब्रह्म-साक्षात्कार होता है।[७] गुरु नानक की साधना में पाँच खण्ड आते हैं—धर्मखण्ड, ज्ञान-खण्ड, कर्मखण्ड, सरनखण्ड और सच खण्ड। ज्ञानखण्ड में ज्ञान ही ज्ञान प्रज्वलित रहता है, वहाँ ऐसा नाद सुनाई देता है जिससे आनन्द की प्राप्ति होती है।[८] संत नुंदर्योश ने भी

---

१. मन वहि नाम की धुनि लाउ,
रटु निरन्तर नाम केवल अवर सब बिसराउ।—वही, पृष्ठ ३।

२. तसन्दि रस्तु कुस अचि् म्वक्त लरे,
छ्यरा छुह श्यराह श्री हर नाव।।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०, पृष्ठ ८६।

३. बिना सतसंग ना कथा करि नाम की बिना हरिनाम ना मोह भागै।
—पटलूसाहिब की बानी, भाग २, पृष्ठ ९।

४. ग्यान अंजन मो को गुर दीना
राम नाम बिनु जीवन मनि हीना।
—संत सुधासार, श्री वियोगीहरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ५०।

५. ज्ञान दीप परकास करि भीतर भवन जराय।
—कबीरवचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, २०१५ वि०, पृष्ठ ९७।

६. पण्डित पढ़ि गुन पचि मुए गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है सब शब्द परमान।—वही, पृष्ठ १२०।

७. ज्ञानक्य अम्बर पूरिथ तने।
यिम पद ललि दप्य तिम हृदे आँख।
कारन्य प्रणवक्य लय कौर लले।
च्यथ जीवत कासन मरनरि शेंख।।
—ललवाक्यानि, ग्रियर्सन, १९२० ई०, पृष्ठ ८९।

८. गिआनखण्ड माहि गिआनु परचंडु, तिथै नाद बिनोद कोड अनंदु
—संतसुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ २३५।

ज्ञान को महत्ता दी है, उनके अनुसार अज्ञानी पुरुष अंधे की भाँति होता है। जिस प्रकार अँधे को रात-दिन का कुछ पता नहीं चलता है उसी प्रकार अज्ञानी को वास्तविकता का परिचय नहीं होता है।[1] रूपभवानी साधना-क्षेत्र में ज्ञान को महत्त्व देती हैं। उनके अनुसार ज्ञान से जीव उस अवस्था को पहुँच जाता है जहाँ उसे अपने अस्तित्व का होना-न होना समान लगता है। वह समभाव की स्थिति में आता है।[2] ज्ञान-द्वारा ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है।[3]

सुन्दर दास के अनुसार साधक के लिए ब्रह्म-ज्ञान आवश्यक है। जिस प्रकार अबरक के दीपक की ज्योति नहीं छिप सकती है उसी प्रकार ज्ञानी भी ज्ञान को गुप्त नहीं रख सकता है।[4] ज्ञानी को अखण्ड ब्रह्म का दर्शन होता है।[5] कृष्णराज़दान के अनुसार इस ज्ञान की प्राप्ति गुरु से होती है, वही जीव के ज्ञाननेत्र खोलकर उसका मन कमल की भाँति प्रफुल्लित करता है और जीव और ब्रह्म में अद्वैत का ज्ञान कराता है।[6] पलटूदास के अनुसार ज्ञान अंजन है, ज्ञान से जीव की दृष्टि का विस्तार होता है और संसार झूठा लगता है।[7] संत रामानन्द मोह और माया को अज्ञान का ही परिणाम

---

१. सोरुय पानय वुछान कुय पानस।
ज़ातस लबि न न्यन्दर त ख्यन।
येम्य न ध्यान कौर ज़ाँह अथ ज्ञानस।
अनिस छु हुहुय राथ क्योहो द्यन।।
—नूरनामा, मुहम्मद अमीन कामिल, १९६५ ई०; पृष्ठ २५१।

२. ज्ञान रूप त शून्या आसन,
आसुन न आसुन सूतीय छह।।
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेशः डा० शिवनाथ शर्मा, २००७ वि०, पृष्ठ १०।

३. वथरि ज्ञान त पान तलाड़े,
शून्यस शून्या सूत्थ मिलावे।—वही, पृष्ठ १०।

४. ज्ञान प्रकास भयो जिनके उर वे घट क्यूँहि छिपै न रहैंगे।
मोडल माँहि दुरै नहिं दीपक यद्यपि वे मुख मौन गहैंगे।
—सुन्दर बिलास, १९१४ वि०, पृष्ठ १४५।

५. सुंदर ज्ञान प्रकास भयो जब, एक खंडित ब्रह्म अनूपा।—वही, पृष्ठ १४७।

६. ज्ञानकि निथरय वार मुचरावतम,
पंपोश ज़न फबोल्लनावतम मन,
अद्वैत भाव सूत्य पानस छावतम,
सदग्वर हावतम गटि मंज़ गाश।।
—शिव परिणय, कृष्णराज़दान, १९२३ ई०, पृष्ठ १०।

७. ज्ञान का चाँदना भया अकास मैं, मगन मन भया हम लखि पाया।
दृष्टि के खुले से नज़र सब आ गया, लखा संसार यह झूठि माया।
—पलटूसाहिब की बानी, भाग २, पृष्ठ २८।

मानते हैं, मनुष्य आत्मज्ञान प्राप्त करने से पूर्व सांसारिक बन्धनों में उलझा रहता है।[१]

संतों के स्त्री-सम्बन्धी विचार—यद्यपि सन्तों ने ब्रह्म को प्रियतम और स्वयं को प्रेमिका नारी माना है तथापि उन्होंने स्त्रियों की निन्दा की है। इन्होंने नारी को साधना में व्यवधान माना है। यह सदैव पतन का कारण बनती है। संतों ने नारी को माया का रूप दिया है जो मनुष्य को भ्रम में डालती है। नामदेव कनक और कामिनी को जीव का मोह और बन्धन मानते हैं।[२] कबीरदास ने कनक और कामिनी को दुर्गम घाटियाँ माना है जिनको पार करना अति कठिन है।[3] नारी की दृष्टि पड़ने से सर्प भी अँधा हो जाता है अतः नारी के संग रहने वाले व्यक्तियों की दशा शोचनीय होती है।[४] लल्लद्यद ने जहाँ एक ओर नारी को जननी माना है वहाँ वे उसे विलास कराने वाली भी मानती हैं, यही माया के रूप में जीव का हनन करने वाली है।[५] संत सुन्दरदास ने भी नारी की निन्दा की है। उसके अनुसार नारी नरक का कुंड है।[६] उसका शरीर सघन वन है जहाँ जीव भटक जाता है।[७] संत मलूकदास भी नारी को माया का रूप मानते हैं। यह समस्त संसार को ठग लेती है।[८] संत चरणदास ने भी नारी-रूप की निन्दा की है। कनक

---

१. मूह गट अज्ञानय विवीक गाश आत्म ज़ानय।
गट गाश पत्थ चानय फश दित त्रोव भानय॥ (पाण्डुलिपि से उद्धृत)

२. ऐसे कनक कामिनी बांध्यौ मोह।
—संत सुधासार, श्री वियोगी हरि, १९५३ ई०, पृष्ठ ४६।

३. एक कनक और कामिनी दुरगम घाटी दोय
कबीर वचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय, २०१५ वि०, पृष्ठ १४१।

४. नारी की भाई परत अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति नित नारी को संग॥—वही, पृष्ठ १४१।

५. सोये माता रूपी पय दिये,
सोय भार्या रूपी करि विलास,
सोय माया रूपी जीव हरे,
शिव छुय कूठ तय चैन वोपदीश॥
—लल्लेश्वरी वाक्यानि, राजानक भास्कराचार्य, पृष्ठ २५।

६. सुन्दर कहत नारी, नरक को कुंड यह।
नरक मैं जाइ परै सो नरक पाती है।
—सुन्दर बिलास, १९१४ ई०, पृष्ठ ५२।

७. कामिनी को तनु मान कहिये सघन वन
वहाँ कोऊ जाय सो तो भूले ही परतु है।—वही, पृष्ठ ५१।

८. कामिनि कनक कलह का मण्डा, इन ठगनिन सारा जग डंडा।
—मलूकदास जी की बानी, १९४६, पृष्ठ १७।

और कामिनी ने ही संसार में देव, दानव, गन्धर्व और इन्द्र आदि को ठग लिया है।[1]

काव्य-शैली—भाषा-वैभिन्य होने पर भी दोनों भाषाओं के संत-कवियों की रचनाओं में शैली समान है। दोनों का काव्य मुक्तक शैली में है। हिन्दी संतों में यदि शब्द और साखी का प्रचलन था तो कश्मीरी संतों ने वाख (पद) लिखे हैं। दोनों भाषाओं के संतकाव्य में संगीतात्मकता है। हिन्दी संतों के पद शस्त्रीय पद्धति के अनुसार गाये जाते हैं परन्तु कश्मीरी संतों के पद भी इस विशेषता से रिक्त नहीं हैं। कश्मीर के गायकों ने एक विशेष शैली को अपनाया है जिसमें सर्वप्रथम लल्लद्यद के 'वाख्य' गाये जाते हैं और तत्पश्चात् कोई अन्य कश्मीरी भजन या गज़ल। उर्दू की शब्दावली का यत्र-तत्र प्रयोग दोनों भाषाओं के संतों ने किया। दोनों ने काव्य-रचना को गौण माना है। दोनों भाषाओं के संत पहले संत थे फिर कवि यद्यपि उच्च कवित्व का दर्शन भी इनकी कविताओं में होता है। भावाभिव्यक्ति का माध्यम दोनों का भिन्न है।

---

१. छले सब कनक कमिनि रूप।
सुर असुर अरु जच्छ गंधर्व इन्द्र आदिक भूप॥
—चरनदास जी की बानी, भाग १, १९५२ ई०, पृष्ठ '७३'।

परिशिष्ठ-१

आगरा

माता प्रसाद गुप्त, १९ जनवरी, १९६५।

एम० ए० एल-एल० बी० डी० लिट्०,

प्रिय कृष्णा शर्मा,

आपका गत १४ का पत्र मिला। डा० रामकुमार वर्मा के आलोचनात्मक इतिहास में कबीर की जन्मतिथि के बारे में मेरे द्वारा गणना के जो परिणाम दिए हुए हैं, वे निश्चय ही मेरी गणना के थे। डा० द्विवेदी का मत किस आधार पर है, मुझे ज्ञात नहीं है। पुन: गणना करने की आवश्यकता नहीं है।

आपका निश्चय अच्छा है और आप उस पर काम करती रहें।

आपका



माता प्रसाद गुप्त

फा० शु० ११, २०२१ ता० १३-३-६५।

दादू महाविद्यालय, मोती डगूरी, जयपुर सिटी।

श्रीमती कृष्णा शर्मा,

सादर नमस्कार। आपका पत्र ता० ८-३-६५ को आ गया था। मैं कल प्रवास से लौटा तब पढ़ने को मिला। आपने अपने शोध का विषय 'दादू' लिया है सो ठीक है। उनकी जीवनी के बारे में विभिन्न विचार व्यक्त हुए हैं, जो कि अपनी-अपनी सामान्य विशेष जानकारी से सम्बन्धित हैं। दादू जी की रचना दादूबानी नाम से प्रसिद्ध है। उसके कई प्रकाशन भी हैं। उनकी भूमिकाओं में दादू जी के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। वे प्रकाशन इस रूप में हैं—१. वेलडेयर प्रेस प्रयाग, २. रामचन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी, अजमेर, ३. डा० स्वामी धनीराम जी विरक्त नरेना जयपुर, इन प्रकाशनों की भूमिका देखें। दादू जी के शिष्य जनगोपाल-द्वारा रचित दादू जन्मलीला का भक्तमय जीवन चरित्र है। ये स्वामी लक्ष्मीराम द्वारा प्रकाशित है। स्वामी जयराम जी दास के पते से मिलती है। पं० परशुराम चतुर्वेदी एम० ए० द्वारा लिखी उत्तरी भारत की संत परम्परा में उपयोगी विवेचन है। मानवीय क्षितिमोहन सेन द्वारा लिखित बंगला भाषा में दादू भी द्रष्टव्य है जिसका प्रकाशन विश्वभारती शान्तिनिकेतन से हुआ है। डा० ताराचन्द्र द्वारा लिखित अंग्रेजी में दादू भी उपयोगी है जिसका प्रकाशन-स्थान प्रयाग या वाराणसी है। ये सब प्रकाशित साहित्य है। कुछ अप्रकाशित साहित्य भी है। उपरोक्त साहित्य एकत्रित करके देखिए। मेरे व्यक्तिगत विचार को—फिर सबके देखने पर आपको कुछ और ज्ञातव्य प्रतीत होगा या शंकास्पद होगा—तब व्यक्त किया जायगा।

मंगलदास स्वामी।

परिशिष्ठ-२

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

संस्कृत :

१. ऋग्वेद
२. गीता
३. छान्दोग्योपनिषद्
४. तैत्तिरीयोपनिषद्
५. ब्रह्म सूत्र (शंकर भाष्य)
६. भागवत महापुराण
७. योग दर्शन-पतंजलि
८. वृहदारण्यकोपनिषद्
९. श्वेताश्वतरोपनिषद्
१०. हठयोग प्रदीपिका

हिन्दी :

११. अनुसंधान की प्रक्रिया, डा० सावित्री सिन्हा, डा० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली, १९६० ई०
१२. अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोछड़, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा दिल्ली, २०२३ वि०
१३. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, २००८ वि०
१४. कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९६१ ई०
१५. कबीर दर्शन, डा० रामजी लाल सहायक, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, १९६२ ई०
१६. कबीर वचनावली, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०२५ वि०
१७. कबीर की विचारधारा, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर, २०१४ वि०
१८. कबीर एक विवेचन, डा० सरनाम सिंह शर्मा, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६, १९६० ई०

१९. कबीर साहित्य की परख, श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, २०११ वि०
२०. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०१८ वि०
२१. कश्मीर का लोक साहित्य, मोहन कृष्ण दर, आत्मा राम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, १९६३ ई०
२२. कश्मीरी भाषा और साहित्य, प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना, १९५६ ई०
२३. काशिर ज़बर, पं० जियालाल कौल जलाली, कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस, श्रीनगर, २००८ वि०
२४. गरीबदास जी की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
२५. गुलाल साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
२६. गुजराती और ब्रज भाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, डा० जगदीश गुप्त, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, १९५७ ई०
२७. चरनदास जी की बानी (भाग १, भाग २) बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९५२ ई०
२८. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, प्रभुदयाल मीत्तल, साहित्य संस्थान, मथुरा, १९६२ ई०
२९. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा० सरला शुक्ल, साहित्य मन्दिर प्रेस (प्रा० लि०) लखनऊ, २०१३ वि०
३०. तुलसीदास की भाषा, डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, २०१४ वि०
३१. तुलसी दर्शन मीमांसा, डा० उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ, २०१८ वि०
३२. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत, डा० वचनदेव कुमार, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६, १९६४ ई०
३३ दूलनदास जी की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१४ ई०
३४. नानक बाणी, डा० जयराम मिश्र, मित्र प्रकाशन (प्रा० लि०) इलाहाबाद २०२८ वि०
३५. निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डा० मोतीसिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०१९ वि०
३६. पलटू साहब की बानी (भाग १, २, ३) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१५ ई०
३७. ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति, डा० रूप नारायण, यंगमैन एण्ड कम्पनी, नई सड़क, दिल्ली ६, १९६२ ई०
३८. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, डा० सावित्री सिन्हा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, १९६१ ई०
३९. भक्ति का विकास, डा० मुन्शी राम शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९५८ ई०

४०. भक्ति साहित्य में मधुरोपासना, श्री परशुराम चतुर्वेदी, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग २०१८ वि०

४१. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, सुनीति कुमार चाटुर्ज्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५७ ई०

४२. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पं० गौरी शंकर हीराचन्द ओझा, मुन्शीराम मनोहर-लाल, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, नई सड़क, दिल्ली-६, १९५९ ई०

४३. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, १९६० ई०

४४. भारतीय दर्शन, सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय, धीरेन्द्र दत्त, पुस्तक भण्डार, पटना-४, १९६१ ई०

४५. भारतीय दर्शन, डा० यदुनाथ सिन्हा, पुस्तक प्रकाशक आगरा, १९६० ई०

४६. मराठी का भक्ति साहित्य, प्रो० भी० गो० देशपाण्डे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, १९५९ ई०

४७. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की तान्त्रिक पृष्ठभूमि, डा० विश्वनाथ उपाध्याय, साहित्य भवन (प्रा० लि०) इलाहाबाद, १९६३ ई०

४८. मलूकदास जी की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९४६ ई०

४९. रज्जब बानी, डा० ब्रजलाल वर्मा, उपमा प्रकाशन, कानपुर, १९६३ ई०

५०. रहस्यवाद, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, २०२० वि०

५१. रामचरितमानस, तुलसीदास, कल्याण कार्यालय, गोरखपुर, १९३८ ई०

५२. रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, डा० राजकुमार पाण्डेय, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६३ ई०

५३. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, २०१४ वि०

५४. रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, १९५७ ई०

५५. ललवाख, पं० जियालाल कौल जलाली, कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस, कोठी बाग, श्रीनगर, १९५६ ई०

५६. लल्लेश्वरी वाक्यानि, श्री राजानक भास्कराचार्य, विश्वनाथ एण्ड सन्स, श्रीनगर

५७. लल्लवाक्यानि (भाग १) श्री सर्वानन्द चरागी, ट्रस्ट पब्लिशिंग हाउस, के० स्टैण्डर्ड प्रेस, श्रीनगर, १९६६ वि०

५८. वैचारिकी, शचीरानी गुर्टू, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, १९६२ ई०

५९. शिव परिणय, कृष्ण राज़दान, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता, १९२३ ई०

६०. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब (भाग १) मुनि अर्जुन सिंह, मेहरचन्द एण्ड सन्ज़, खारी

बावली, दिल्ली, २०१७ वि०

६१. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, डा० जयराम मिश्र, साहित्य भवन, प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९६० ई०

६२. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब : एक परिचय, डा० धर्मपाल मैनी, धर्मपाल मैनी, अनन्त-भवन, ५ फील्ड गंड लुधियाना, पंजाब १९६२ ई०

६३. श्री रूपभवानी रहस्योपदेश:, डा० शिवनाथ शर्मा, श्री अलक्षईश्वरी साहिब ट्रस्ट, श्रीनगर, २००७ वि०

६४. सन्त काव्य, श्री परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, १९६१ ई०

६५. सन्त वैष्णवकाव्य पर तान्त्रिक प्रभाव, डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६२ ई०

६६. सन्त सुधासार, श्री वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५३ ई०

६७. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, पूना विश्वविद्यालय, पूना, १९६४ ई०

६८. सन्त साहित्य, डा० सुदर्शन मजीठिया, रूप कमल प्रकाशन, बंगलो रोड, दिल्ली-६, १९६२ ई०

६९. सन्त कबीर, डा० रामकुमार वर्मा साहित्य भवन, प्रा० लि०, इलाहाबाद, १९५७ ई०

७०. सन्त कवि रज्जब—सम्प्रदाय और साहित्य, डा० ब्रजलाल वर्मा, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

७१. सन्तों का वचनामृत, श्री रं० रा० दिवाकर, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९६२ ई०

७२. १६वीं शताब्दी के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, डा० रत्नकुमारी, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, २०१३ वि०

७३. सुन्दर ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) पुरोहित श्रीहरि नारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, १९९३ वि०

७४. सुन्दर बिलास, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१४ ई०

७५. सुन्दर दर्शन, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, किताब महल, इलाहाबाद, १९६० ई०

७६. सिद्ध साहित्य, डा० धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, १९५५ ई०

७७. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य, डा० के० भास्करन नायर, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६, १९६० ई०

७८. हिन्दी के जन पद संत, काकासाहेब कालेलकर, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९६३ ई०

७९. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ, २००७ वि०

८०. हिन्दी साहित्य कोश, डा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, २०१५ वि०
८१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, १९५८ ई०
८२. हिन्दी सूफी प्रेमाख्यान, श्री परशुराम चतुर्वेदी, लीडर प्रेस, प्रयाग, १९६२ ई०
८३. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, डा० राजबली पांडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ वि०
८४. हिन्दुत्व, रामदास गौड, ज्ञानमण्डल, काशी, १९६५ वि०
८५. हिन्दी और कन्नड में भक्ति-आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन, डा० हिरण्मय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९५९ ई०
८६. हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत काव्य, डा० प्रभाकर माचवे, चौखम्बा विद्या-भवन, वाराणसी-१, २०१९ वि०
८७. हिंदुई साहित्य का इतिहास, गार्सा द तासी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, १९५३ ई०
८८. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २००६ वि०
८९. हिन्दी साहित्य, डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, अत्तरचन्द कपूर एण्ड सन्ज़, दिल्ली, १९६४ ई०
९०. हिन्दी को मराठी संतों की देन, डा० विनयमोहन शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना-३, १९५७ ई०
९१. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर, १९६१ ई०

कश्मीरी

९२. अमृतवाणी, रामज्यू मल्ला, न्यू कश्मीर प्रेस, श्रीनगर, १९६१ ई०
९३. अब्दुल अहद नादिम (उर्दू मे) मीर गुलाम रसूल नाज़की, कल्चर्ल अकादमी, श्रीनगर, १९६१ ई०
९४. कश्मीरी ज़बान और शायरी (भाग २ उर्दू में) अब्दुल अहद आज़ाद, कल्चर्ल अकादमी, श्रीनगर, १९६२ ई०
९५. काशिर शायरी (उर्दू में) महीउद्दीन हाजनी, साहित्य अकादमी, दिल्ली, १९६० ई०
९६. नूरनामा (उर्दू में), मुहम्मद अमीन कामिल, कल्चर्ल अकादमी, श्रीनगर, १९६५
९७. मिर्ज़काक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, नार्मल प्रेस श्रीनगर, १९६३ ई०
९८. लल्लद्यद, जियालाल कौल और नन्दलाल तालिब, कल्चर्ल अकादमी, श्रीनगर
९९. वाख मिर्ज़काक, सर्वानन्द कौल प्रेमी, नार्मल प्रेस, श्रीनगर १९६३
१००. शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद, कल्चर्ल अकादमी, श्रीनगर, १९५९ ई०

१०१. संत माला, रघुनाथ दर, १९६३
१०२. हक्कानी, मौलाना फितरति कश्मीरी, कल्चर्ल अकादमी श्रीनगर, १९५९ ई०

ENGLISH

103. A critical study of Adi Grantha, Dr. Surinder Singh Kohli, The Panjabi Writers Co-operative Industrial Society Ltd., New Delthi, 1961.

104. A History of Kashmir, P.N. Kaul Bamzai, Metropolitan Book Co, I Faiz Bazar Delhi—1962.

105. A history of Kashmiri Pandits, Jia Lal Kilam, Gandhi Memorial College Publication :, 1955.

106. A History of Muslim Rule in India, Iswari Prasad, The Indian Press Ltd. Allahabad 1933.

107. Ain-I-Akbari of Abul Fazl, Jadu Nath Sarkar. vol, II, Royal Asiatic Society of Bengal, 1 Park Street, Calcutta, 1949.

108. Akbar the great Mogul, A. Smith, S. Chand & Co. Ram nagar, New Delhi, 1962.

109. A History of Indian Philosophy, Vol I, Surender Nath Das Gupta, University Press Cambridge, 1951.

110. A Manual of the Kashmiri Language, Vol I, Grierson Clarendon Press Oxford. (London), 1911.

111. An Idealistic View of Life, Dr. Radha Krishnan, Unwin Books, George Allen & Unwin Ltd. Ruskin House, Museum Street, London, 1961.

112. An Outline of Madhwa Philosophy, Dr. K. Narain, Udayana Publication, Allahabad, 1962.

113. A Short History of the Indian People, Dr. Tara Chand, Macmillan & Cop Limited, London, 1953.

114. A Sixteenth Century Indian Mystic Dadu and His Fallowers, W. G. Orr. Lutherworth Press, London, 1947.

115. A Source Book in Indian Philosphy, Radha Krishnam & Moore, Princeton University press, New Jersey, 1957.

116. Collected Works of Sir R. G. Bhandarkar, Vol. IV, M. Narayan Bapu ji, Bhandarkar Oriental Research Institute Poona, 1929.

117. Customary Law of Kashmir, N. K. Ganjoo, The Fine Art Press,

Srinagar, 1959.

118. Daughters of the Vitasta, P. N. Bazaz, Pamposh Publications, New Delhi, 1959.

119. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Part 9, James Hastings, T & T Clerk Edinburgh, New York Charles Seribners Sons, 1959.

120. Essay on Kashmiri Grammer, Grierson, Thacker Spink & Co, Calcutta, 1899.

121. Guru Nanak, Sir Jogindra Singh, The Unity Publishers, A 3 Hazrat Nizamuddin Extension New Delhi.

122. Handbook of language and Dilects of India, Amal Sarkar, Anil Sarkar, 2 Panditia Place, Calcutta-29, 1964.

123. Hinduism, K. M. Sen, Penguin Books Ltd, Harmondsworth, Middle sex.

124. History of Aurangzeb, J.N. Sarkar, 1928.

125. India's Past, A. A. Macdonell, Moti Lal Banarasidas, Book-sellers and Publishers Varanasi, 1956.

126 Indian Philosophy, Vol II, Dr. Radha Krishnan, Macmillan Company, Unwin Ltd New York, 1956.

127. Kashmir, J.P. Ferguson Centaur Press, London, 1961.

128. Kashmir Shaivaism (Part I), J. C. Chatterji, Indian Press, Allahabad, 1914.

129. Kabir and the Kabir Panth, G.H. Westcott, Susil Gupta (India) Limited, Calcutta-12, 1953.

130. Kashmir Lyrics, Prof. Jia Lal Kaul, Rinemisray Lambert Lane, Srinagar 1945.

131. Kashmir under the Sultans, Mohibbul Hassan, Iran Society, 159-B Dharamtala Street, Calcutta, 1959.

132. Kashmir : its Cultural Heritage, Kaumudi, Asia Publishing House, Bombay, 1952.

133. Kashmir, Vol I, G.M.D. Sufi, The University of Punjab Lahore, Pakistan, 1948.

134. Kashmir, Vol II, G. M. D. Sufi, The University of Punjab, Lahore, Pakistan, 1949.

135. Keys to Kashmir, Lalla Rookh Publications, Srinagar, 1957.

136. Lalla Vakyani, Sir George Grierson, The Royal Asiatic society,

74 Gros Venor Street W. I. London, 1920.

137. Lalla Yogishwari, Pandit Anand Kaul, The Mercantile Press, Lahore.

138. Life of Rupa Bhawani, Pandit Anand Kaul, The British Indian Press Mazgaon, Bombay, 1932.

139. Linguistic Survey of India, Grierson, Superintendent Government Printing Press, Calcutta (India) 1919.

140. Medieval Mysticism of India, Kshitimohan Sen, Luzac & Co. 46 Great Russel Street London, 1935.

141. Mysticism in Maharastra, R. D. Ranade, Aryabhushan Press Office Shanwar Peth, 1933.

142. Parmanand Sukti Sara, Vol I, Master Zinda Kaul, Durga Press, Srinagar, 1941.

143. Parmanand Sukti Sara, Vol II, Master Zinda Kaul, Durga Press, Srinagar, 1942.

144. Parmanand Sukti Sara, Vol III, Master Zinda Kaul, Fine Art Press, Srinagar, 1958.

145. Raj Tarangini—Kalhana (Stein), Munshiram Manohar Lal Oriental Book Sellers and Publishers, New Sarak Delhi-6, 1960.

146. Religions Sects of the Hindus, H.H. Wilson, Susil Gupta (India) Private Limited, Calcutta-12. 1958.

147. Sufies Mystics and Yogis of India, Bankey Behari, Bharatiya Vidya Bhawan, Chaupatty, Bombay, 1962.

148. Sufism, A. J. Arberry, George Allen & Unwin Ltd., Ruskin House, Museum Street London. 1956.

149. Sufism and Vedanta (Part I) Dr. Roma Chandri, Sripati Press, 14 D. L. Roy Street, Calcutta, 1945.

150. The Essentials of Mysticism, Evelyn Underbill, J.M. Dent and Sons Ltd, London, 1920.

151. The Gospel of Guru Nanak Sahib, Duncan Greenless, The Theosophical Publishing House, Adyar, Madras India, 1952.

152. The Kashmiri Pandit, Pt. Anand Kaul, Thacker Spink and Co, Calcutta.

153. The Mystical life, J.H.M. Whiteman, Faber and Faber, 24, Rus-

sell Square, London, 1961.
154. The Persian Sufies, Cyprian Rice O.P. George Allen and Unwin Ltd., Ruskin House Museum Street, London, 1964.
155. The Philosophy of Ramanujam, Dr. Krishna Dutt Bharadwaj, Sir Shankar Lal, Charitable Trust Society, New Delhi, 1958.
156. The Religions Policy of the Mughal Emperors, Shri Ram Sharma, Asia Publishing House, Bombay, 1962.
157. The Sikh Religion, Max Arthur Macauliffe, The Clarendon Press, Oxford, 1909.
158. The Theory and Art of Mysticism, Radha Kamal Mukerji, Asia Publishing House, Calcutta, 1960
159. The word of Lalla the prophetess, R. C. Temple, University Press, Cambridge, London, 1924.
160. Vaisnavism, Saivism and Minor Religious Systems, R. G. Bhandarkar, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1929.

पत्र-पत्रिकाएँ

१६१. तामीर पत्रिका, अक्टूबर ५७, जनवरी १९५८
१६२. प्रताप मैगज़ीन, एस० पी० कालेज, १९५५, १९५६
१६३. माध्यम पत्रिका, वर्ष १, अंक ५, १९६४
१६४. मार्ग दर्शक पत्रिका, वर्ष ५ अंक ७, १९-५, जम्मू काश्मीर विशेषांक
१६५. हिन्दी अनुशीलन, वर्ष १३, अंक १-२, १९६०
१६६. भारतीय साहित्य, अप्रैल १९६३, वर्ष ८, अंक २

पाण्डुलिपियाँ

१. मिर्ज़काक के काव्य की पाण्डुलिपि
२. संत लछकाक के काव्य की पाण्डुलिपि
३. संत रामानन्द के काव्य की पाण्डुलिपि
४. साहिब कौल के काव्य की पाण्डुलिपि